महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)
नैक द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त / Accredited with 'A' Grade by NAAC

हिन्दी उपन्यास एवं कहानी

एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
प्रथम सेमेस्टर
द्वितीय पाठ्यचर्या (अनिवार्य)
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 02

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

2

हिन्दी उपन्यास एवं कहानी

प्रधान सम्पादक

प्रो॰ गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक

प्रो॰ अरबिन्द कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास
अनुसंधान अधिकारी एवं पाठ्यक्रम संयोजक- एम. ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक मण्डल

प्रो॰ आनन्द वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग एवं अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ अरुण कुमार त्रिपाठी
प्रोफेसर एडजंक्ट, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास

प्रकाशक

कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र, पिन कोड : 442001

© महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रथम संस्करण : मई 2017

पाठ-रचना

डॉ॰ अमरेन्द्र कुमार शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

खण्ड – 1 : इकाई – 1
खण्ड – 4 : इकाई – 7
खण्ड – 5 : इकाई – 3

श्री पीयूष कुमार द्विवेदी
हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश

खण्ड – 1 : इकाई – 2

डॉ॰ राजीव कुमार झा
उपनिदेशक
यू॰जी॰सी॰ – एच॰आर॰डी॰सी॰, बी॰आर॰ अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

खण्ड – 2 : इकाई – 1, 2, एवं 3
खण्ड – 3 : इकाई – 1, 2, 3 एवं 4
खण्ड – 4 : इकाई – 3

श्री अजय कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
सत्यवती कॉलेज (प्रातः), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

खण्ड – 4 : इकाई – 1

डॉ॰ सतीश कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, एम॰एल॰एस॰एम॰ कॉलेज, दरभंगा, बिहार

खण्ड – 4 : इकाई – 2 एवं 4

प्रो॰ शम्भु गुप्त
प्रोफेसर
स्त्री अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

खण्ड – 4 : इकाई – 5
खण्ड – 5 : इकाई – 5

डॉ॰ उषा शर्मा
पूर्व सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
संत हिरदाराम कन्या महाविद्यालय, भोपाल, मध्यप्रदेश

खण्ड – 4 : इकाई – 6

डॉ॰ पूनम सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, एम॰डी॰डी॰एम॰ कॉलेज, बी॰आर॰ए॰ बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

खण्ड – 5 : इकाई – 1

श्री सत्यप्रकाश सिंह
अतिथि प्रवक्ता
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

खण्ड – 5 : इकाई – 2

डॉ॰ अमिष वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल, मिज़ोरम

खण्ड – 5 : इकाई – 4

डॉ॰ रमाकांत राय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी
भाऊ राव देवरस राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुद्धी, सोनभद्र, उत्तरप्रदेश

खण्ड – 5 : इकाई – 6 एवं 7

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन
आवरण, रेखांकन, पेज डिज़ाइनिंग, कम्पोज़िंग ले-आउट एवं प्रूफ़-रीडिंग

पुरन्दरदास

कार्यालयीय सहयोग

श्री विनोद रमेशचंद्र वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पहला प्रूफ़

श्री महेन्द्र प्रसाद
सम्पादकीय सहायक, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

टंकण कार्य सहयोग (खण्ड – 4 : इकाई – 6)

सुश्री राधा सुरेश ठाकरे
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आवरण पृष्ठ पर संयुत विश्वविद्यालय के वर्धा परिसर स्थित गांधी हिल स्थल का छायाचित्र श्री राजदीपसिंह राठौर फोटोग्राफर एंड डॉक्यूमेंटेशन सहायक, जनसंपर्क विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से साभार प्राप्त

http://hindivishwa.org/distance/contentdtl.aspx?category=3&cgid=77&csgid=65

- यह पाठ्यसामग्री दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम में प्रवेशित विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ उपलब्ध करायी जाती है।
- इस कृति का कोई भी अंश लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
- पाठ में विश्लेषित तथ्य एवं अभिव्यक्त विचार पाठ-लेखक के अध्ययन एवं ज्ञान पर आधारित हैं। पाठ्यक्रम संयोजक, सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- इस पुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन एवं अद्यतन रूप से प्रकाशित करने के सभी प्रयास किए गए हैं तथापि संयोगवश यदि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि रहगई हो तो उससे कारित क्षति अथवा संताप के लिए पाठ-लेखक, पाठ्यक्रम संयोजक, सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा।
- किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र वर्धा, महाराष्ट्र ही होगा।

पाठ्यचर्या विवरण

प्रथम सेमेस्टर
द्वितीय पाठ्यचर्या (अनिवार्य)
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 02
पाठ्यचर्या का शीर्षक : हिन्दी उपन्यास एवं कहानी

क्रेडिट – 4

खण्ड – 1 : उपन्यास और कहानी-साहित्य

इकाई – 1 : हिन्दी उपन्यास की क्रमिक विकास-यात्रा और परिवर्तित स्वरूप : प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास, वर्गीकरण, सामाजिक, ऐतिहासिक, घटनात्मक उपन्यास; प्रेमचंद-युगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास : प्रकृतवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक, पौराणिक, आंचलिक उपन्यास; आधुनिकता-बोध के उपन्यास, महिला उपन्यासकार

इकाई – 2 : हिन्दी कहानी की क्रमिक विकास-यात्रा और परिवर्तित स्वरूप : प्रारम्भिक कहानी, प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी कहानी; प्रेमचंद-युग : हिन्दी कहानी का नवोन्मेष, प्रेमचंदोत्तर-युग में हिन्दी कहानी, नयी-कहानी, विविध कहानी आन्दोलन : साठोत्तरी-कहानी / समकालीन-कहानी / अ-कहानी, सचेतन-कहानी, सहज-कहानी, समान्तर-कहानी, जनवादी-कहानी, सक्रिय-कहानी; समकालीन कथाकार, महिला कहानीकार

खण्ड – 2 : गोदान

इकाई – 1 : महाकाव्यात्मक उपन्यास की दृष्टि से 'गोदान' का मूल्यांकन, 'गोदान' का कथा-शिल्प, 'गोदान' शीर्षक की सार्थकता

इकाई – 2 : 'गोदान' की पात्र-सृष्टि : ग्रामीण-पात्र बनाम नगरवासी-पात्र, पुरुष-पात्र बनाम स्त्री-पात्र, प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ, प्रेमचंद की नारी-दृष्टि

इकाई – 3 : 'गोदान': भारतीय कृषक की संघर्षमय जीवन-गाथा का जीवन्त दस्तावेज़ बनाम मध्यमवर्ग की समस्याओं का चित्रण

खण्ड – 3 : बाणभट्ट की आत्मकथा

इकाई – 1 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इतिहास-बोध, सांस्कृतिक चेतना, इतिहास और कल्पना का मणिकांचन योग

इकाई – 2 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आधुनिकता, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का रचना-कौशल

इकाई – 3 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नारी-पात्र और आचार्य द्विवेदी की उदात्त मूल्य-चेतना, निपुणिका की चरित-सृष्टि : रचनाकार की नारी मुक्ति की आकांक्षा

इकाई – 4 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निपुणिका और भट्टिनि के चरित्रों के आधार पर प्रेम-दर्शन

खण्ड – 4 : कहानी – 1

इकाई – 1 : उसने कहा था – चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'
इकाई – 2 : कफ़न – प्रेमचंद
इकाई – 3 : पुरस्कार – जयशंकर प्रसाद
इकाई – 4 : पत्नी – जैनेन्द्रकुमार
इकाई – 5 : हीली-बोन् की बत्तखें – अज्ञेय
इकाई – 6 : रसप्रिया – फणीश्वरनाथ 'रेणु'
इकाई – 7 : परिन्दे – निर्मल वर्मा

खण्ड – 5 : कहानी – 2

इकाई – 1 : दोपहर का भोजन – अमरकान्त
इकाई – 2 : टूटना – राजेन्द्र यादव
इकाई – 3 : यही सच है – मन्नू भण्डारी
इकाई – 4 : वापसी – उषा प्रियंवदा
इकाई – 5 : बादलों के घेरे – कृष्णा सोबती
इकाई – 6 : अमृतसर आ गया है... – भीष्म साहनी
इकाई – 7 : मलबे का मालिक – मोहन राकेश

निर्धारित पाठ्य कृतियाँ :

01. गोदान – प्रेमचंद (चयनित अंश)
02. बाणभट्ट की आत्मकथा – हजारीप्रसाद द्विवेदी (चयनित अंश)
03. उसने कहा था – चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'
04. कफ़न – प्रेमचंद
05. पुरस्कार – जयशंकर प्रसाद
06. पत्नी – जैनेन्द्रकुमार
07. हीली-बोन् की बत्तखें – अज्ञेय
08. रसप्रिया – फणीश्वरनाथ रेणु
09. परिन्दे – निर्मल वर्मा
10. दोपहर का भोजन – अमरकान्त
11. टूटना – राजेन्द्र यादव
12. यही सच है – मन्नू भण्डारी
13. वापसी – उषा प्रियंवदा
14. बादलों के घेरे – कृष्णा सोबती
15. अमृतसर आ गया है... – भीष्म साहनी
16. मलबे का मालिक – मोहन राकेश

सहायक पुस्तकें :

01. आज की कहानी, विजयमोहन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
02. आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
03. इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी, सूरज पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
04. उपन्यास : स्थिति और गति, चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
05. उपन्यास : स्वरूप और संवेदना, राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
06. उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, वीरेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
07. उपन्यास और लोकजीवन, रैल्फ फॉक्स, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
08. उपन्यास का उदय, आयन वाट, हरियाणा साहित्य अकादेमी, चंडीगढ़
09. उपन्यास का सिद्धान्त, जार्ज लूकाच, मैकमिलन, नई दिल्ली
10. उपन्यास की संरचना, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
11. उपन्यास के पक्ष, ई.एम. फॉर्स्टर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
12. उपन्यास-लेखन शिल्प, सं. : ए.एस. ब्युरैक, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
13. कथाकार प्रेमचंद, जाफर रज़ा, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
14. कथा समय में तीन हमसफर, निर्मला जैन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
15. कलम का मजदूर प्रेमचंद, मदनगोपाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
16. कहानी : अनुभव और अभिव्यक्ति, राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
17. कहानी आन्दोलन एवं प्रवृत्तियाँ, राजेन्द्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
18. कहानी : नयी कहानी, नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
19. कहानी : स्वरूप और संवेदना, राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
20. कहानी की बात, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
21. कुछ कहानियाँ, कुछ विचार, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
22. गोदान, राधाकृष्ण मूल्यांकन माला, (आलोचना), सं. : राजेश्वर गुरु, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
23. गोदान : अध्ययन की समस्याएँ, गोपालराय
24. गोदान का महत्त्व, सं. : सत्यप्रकाश मिश्र
25. गोदान : कुछ सन्दर्भ, कमलेश कुमार गुप्त, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
26. जनवादी कहानी : पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक, रमेश उपाध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
27. जैनेन्द्र की आवाज, सं. : अशोक वाजपेयी, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली
28. नयी कहानी : प्रकृति और पाठ, सुरेन्द्र चौधरी
29. नयी कहानी की भूमिका, कमलेश्वर
30. नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, देवीशंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
31. प्रेमचंद, नरेन्द्र कोहली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

32. प्रेमचंद, रामविलास शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
33. प्रेमचंद : एक साहित्यिक विवेचन, नन्ददुलारे वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
34. प्रेमचंद : विरासत का सवाल, शिवकुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
35. प्रेमचंद : सामन्त का मुंशी, धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
36. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
37. प्रेमचंद और भारतीय किसान, रामबक्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
38. प्रेमचंद और भारतीय समाज, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
39. प्रेमचंद का पुनर्मूल्यांकन, शम्भुनाथ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
40. प्रेमचंद का सौन्दर्यशास्त्र, नन्दकिशोर नवल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
41. प्रेमचंद-पूर्व के हिन्दी उपन्यास, ज्ञानचंद जैन, आर्य प्रकाशन मण्डल, नई दिल्ली
42. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
43. प्रेमचंद : कहानी का रहनुमा, जाफर रज़ा, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
44. प्रेमचंद : चिन्तन और कला, सं. : इन्द्रनाथ मदान
45. प्रेमचंद : विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, मुरली मनोहर एवं रेखा अवस्थी, राजकमल प्रकाशन
46. बाणभट्ट की आत्मकथा पाठ और पुनर्पाठ, सं. : मधुरेश, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा
47. बीसवीं शताब्दी के चर्चित उपन्यास, राजेन्द्र मिश्र, प्रहलाद तिवारी, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
48. विवेक के रंग, सं. : देवीशंकर अवस्थी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
49. 'साखी' (पत्रिका) 'गोदान' पर केन्द्रित विशेषांक
50. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
51. हिन्दी उपन्यास : नया पाठ, हेमन्त कुकरेती, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
52. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख, इन्द्रनाथ मदान
53. हिन्दी उपन्यास : बदलते सन्दर्भ, शशिभूषण सिंहल
54. हिन्दी उपन्यास - विशेषतः प्रेमचंद, नलिनविलोचन शर्मा, ज्ञानपीठ, पटना
55. हिन्दी उपन्यास और सामाजिक चेतना, कुँवरपाल सिंह
56. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
57. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
58. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, एस.एन. गणेशन्
59. हिन्दी कहानी : प्रक्रिया और पाठ, सुरेन्द्र चौधरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
60. हिन्दी कहानी : समीक्षा और सन्दर्भ, विवेकी राय
61. हिन्दी कहानी का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
62. हिन्दी का गद्य साहित्य, रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
63. हिन्दी कहानी का इतिहास (खण्ड – 1 तथा 2), गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
64. हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान, रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

पाठानुक्रमणिका

क्र.सं.	खण्ड	इकाई	पृष्ठ क्रमांक
01.	खण्ड – 1	इकाई – 1	11 – 24
02.	खण्ड – 1	इकाई – 2	25 – 42
03.	खण्ड – 2	खण्ड-परिचय	43 – 43
04.	खण्ड – 2	इकाई – 1	44 – 58
05.	खण्ड – 2	इकाई – 2	59 – 73
06.	खण्ड – 2	इकाई – 3	74 – 82
07.	खण्ड – 3	खण्ड-परिचय	83 – 84
08.	खण्ड – 3	इकाई – 1	85 – 97
09.	खण्ड – 3	इकाई – 2	98 – 108
10.	खण्ड – 3	इकाई – 3	119 – 123
11.	खण्ड – 3	इकाई – 4	124 – 131
12.	खण्ड – 4	इकाई – 1	132 – 141
13.	खण्ड – 4	इकाई – 2	142 – 157
14.	खण्ड – 4	इकाई – 3	158 – 169
15.	खण्ड – 4	इकाई – 4	170 – 186
16.	खण्ड – 4	इकाई – 5	187 – 199
17.	खण्ड – 4	इकाई – 6	200 – 217
18.	खण्ड – 4	इकाई – 7	218 – 227
19.	खण्ड – 5	इकाई – 1	228 – 239
20.	खण्ड – 5	इकाई – 2	240 – 255
21.	खण्ड – 5	इकाई – 3	256 – 266
22.	खण्ड – 5	इकाई – 4	267 – 276
23.	खण्ड – 5	इकाई – 5	277 – 290
24.	खण्ड – 5	इकाई – 6	291 – 302
25.	खण्ड – 5	इकाई – 7	303 – 314

खण्ड – 1 : उपन्यास और कहानी-साहित्य

इकाई – 1 : हिन्दी उपन्यास की क्रमिक विकास-यात्रा और परिवर्तित स्वरूप : प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास, वर्गीकरण, सामाजिक, ऐतिहासिक, घटनात्मक उपन्यास; प्रेमचंद-युगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास : प्रकृतवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक, पौराणिक, आंचलिक उपन्यास; आधुनिकता-बोध के उपन्यास, महिला उपन्यासकार

इकाई की रूपरेखा

1.1.00. उद्देश्य कथन
1.1.01. प्रस्तावना
1.1.02. प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास
1.1.03. प्रेमचंद-युगीन हिन्दी उपन्यास
1.1.04. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास
1.1.05. मनोविश्लेषणवादी उपन्यास
1.1.06. हिन्दी उपन्यास में मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद की धारणा
1.1.07. सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास
1.1.08. ऐतिहासिक उपन्यास
1.1.09. हिन्दी उपन्यास की धारणा में नयी कहानी आन्दोलन का प्रभाव
1.1.10. आंचलिक उपन्यास
1.1.11. आधुनिकता-बोध के उपन्यास
1.1.12. महिला उपन्यासकार
1.1.13. पाठ-सार
1.1.14. बोध प्रश्न
1.1.15. सहायक ग्रन्थ-सूची

1.1.00. उद्देश्य कथन

इस इकाई का उद्देश्य है –

i. ‘उपन्यास’ शब्द की उत्पति का इतिहास
ii. हिन्दी उपन्यास की परिभाषा को जानना
iii. हिन्दी उपन्यास के क्रमिक विकास की जानकारी
iv. हिन्दी उपन्यास के विकास-यात्रा में साहित्यिक प्रवृत्ति का महत्त्व
v. हिन्दी उपन्यास के विकास-यात्रा में विचारधारा का प्रभाव

1.1.01. प्रस्तावना

हिन्दी उपन्यास का विकास कई चरणों में हुआ है। अपने आरम्भिक अवस्था में 'उपन्यास' कई शब्द रूपों में प्रयुक्त हुआ करता था। मराठी में उपन्यास के लिए 'कादम्बरी' शब्द इस्तेमाल होता था। गुजराती में 'नवलकथा', बांग्ला में अंग्रेजी शब्द 'नॉवेल' के आधार पर 'उपन्यास' नाम का प्रचलन हुआ। हिन्दी साहित्य पर बांग्ला साहित्य का प्रभाव माना जाता रहा है, उसी प्रभाव के कारण हिन्दी में 'उपन्यास' कहा जाने लगा। बांग्ला के प्रसिद्ध साहित्यकार भूदेव मुखर्जी की एक प्रसिद्ध किताब है – 'ऐतिहासिक उपन्यास'। यह किताब 1962 में प्रकाशित हुई है। इसी किताब में पहली बार 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग किया गया था।

हिन्दी में 'उपन्यास' शब्द का पहला प्रयोग 1875 में हुआ जिसका श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को दिया जाता है। श्रीपत राय और भैरवप्रसाद गुप्त द्वारा प्रकाशित और सम्पादित मासिक पत्रिका जिसका नाम 'उपन्यास' था 'कहानी' पत्रिका के साथ हिन्दी साहित्य में सामने आती है। यह पत्रिका उपन्यास लेखन को एक नई ज़मीन प्रदान करने वाला मंच था।

बालकृष्ण भट्ट अपने निबन्ध 'उपन्यास' में उपन्यास शब्द पर विस्तार से चर्चा करते हैं। वे लिखते हैं कि उपन्यास तीन शब्दों से मिलकर बना है – उप, नि और आस। हिन्दी का 'न्यास' संस्कृत के न्यासः से बना है जिसकी व्युत्पति नि+अस् में घञ् प्रत्यय लगने से हुई है। न्यास का अर्थ है – रखना, आरोपण करना आदि। इसमें 'उप' उपसर्ग लगाने से बनता है उपन्यास। जिसका अर्थ है – निकट रखना। 'अमरकोश' में विभिन्न अर्थों का सार बताते हुए उपन्यास का अर्थ बातचीत करना बताया गया है। 'अमरकोश' में उपन्यास के लिए शब्द मिलता है – "उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्" (बालकृष्ण भट्ट लिखित 'उपन्यास' शीर्षक निबन्ध में)। इस प्रकार 'उप' का अर्थ है समीप और 'न्यास' का अर्थ है रखना अर्थात् 'उपन्यास' वह विधा है जिसमें मानव जीवन के किसी तत्त्व को उक्तिसम्मत रूप में समन्वित कर समीप रखा जाए। संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में भी उपन्यास शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत साहित्य में एक स्थान पर कहा गया है – "उपन्यास प्रसन्नता प्रदान करने वाली कृति है।"

साहित्यिक विधाओं में 'उपन्यास' सर्वाधिक नयी, आधुनिक और लोकप्रिय विधा है। उपन्यास वह साहित्यिक विधा है जिसमें जीवन को समग्रता के साथ चित्रित किया जाता है। हेगल और रैल्फ फॉक्स दोनों ने कहा है कि "उपन्यास मध्यमवर्ग का महाकाव्य है।" कथा कहने की आदिम परम्परा से भिन्न उपन्यास वास्तव में आधुनिक सभ्यता की उपज है। उपन्यास ने अपने प्रारम्भिक अवस्था में प्राचीन संस्कृत महाकाव्यों, मध्यकालीन प्रेमाख्यानों, इतिहास से लेकर आधुनिककाल तक की विकास-यात्रा तय की है। ऐतिहासिक, राजनैतिक और सामाजिक रूपों और संरचनाओं में हुए परिवर्तनों के कारण मानव जीवन की समग्र घटनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले कथा-रूपों के संरचनाओं में भी नवीनता आई है। यह विदित है कि आरम्भिक काल में उपन्यास मनोरंजन के लिए लिखे जाते थे, उनमें यथार्थ का चित्रण बहुत कम किया गया है।

आरम्भिक हिन्दी उपन्यास पश्चिमी उपन्यासों की तुलना में भारतीय आख्यायिका परम्परा के कहीं अधिक करीब है। जिस प्रकार संस्कृत आख्यायिकाओं में कथा-वैचित्र्य और घटना कौतूहल पर जोर होता था और इसके लिए कल्पनाशीलता का सहारा लिया जाता था, ठीक उसी प्रकार आरम्भिक हिन्दी उपन्यासों में भी यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। दोनों जगह यथार्थ की गहन उपेक्षा मिलती है और दोनों मनोरंजन के उद्देश्य को लेकर चलते हैं। यहाँ तक कि, दोनों की शिल्प संरचना भी काफ़ी मिलती-जुलती है इसलिए 'अलिफ़-लैला' जैसी दास्तानों और 'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्ता सन्तति' जैसे उपन्यासों की प्रवृत्तियों को देखते और उस पर खिन्न होते हुए आचार्य महादेवप्रसाद द्विवेदी अपने निबन्ध 'उपन्यास-रहस्य' में उपन्यास की विषय-वस्तु के सन्दर्भ में एक सूत्र प्रस्तुत करते हैं, "उपन्यास कोई ऐसी-वैसी चीज नहीं। वह समय गया जब उपन्यास दो घण्टे दिल-बहलाव मात्र का साधन समझा जाता था। निकम्मे हुए बैठे हैं, लाओ कुछ पढ़ें, वक्त नहीं कटता, लाओ 'चपला' या 'चंचला' को ही देख जाएँ। उपन्यास जातीय जीवन का मुकुट होना चाहिए। उसकी सहायता से सामान्य नीति, राजनीति, सामाजिक समस्याएँ, शिक्षा, कृषि, वाणिज्य, धर्म, कर्म, विज्ञान आदि सभी विषयों के द्वारा जितनी सरलता से शिक्षा दी जा सकती है, उतनी सरलता से और किसी तरह नहीं दी जा सकती है।" (महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखित 'उपन्यास रहस्य' शीर्षक निबन्ध में)

ज़ाहिर है आचार्य महावीरप्रसाद दिवेदी उपन्यास को लेकर साहित्य में एक विस्तृत चिन्तनधारा को विस्तृत करने के लक्ष्य में शामिल हैं। दरअसल, उपन्यास किसे कहा जाए, उपन्यास की निर्मितियों में कौन-कौन से तत्त्व शामिल हो या यों कहें कि उपन्यास की एक मुक्कमल परिभाषा क्या हो – को लेकर साहित्यकारों में पर्याप्त मतभेद रहा है। यह मतभेद न केवल सैद्धान्तिक स्तर पर बल्कि उपन्यास के व्यावहारिक स्तर पर भी रहा है। उपन्यास की विषय-वस्तु से लेकर उपन्यास की भाषाई संगठन और यहाँतक कि उपन्यास के उद्देश्य को लेकर भी अलग-अलग और समेकित रूप में बहसें होती रही है। आचार्य द्विवेदी ने "उपन्यास जातीय जीवन का मुकुट होना चाहिए" कह कर उपन्यास को मनुष्य के जीवन से सीधे जुड़े होने की बात कही है। ज़ाहिर है, यह चिन्ता हिन्दी उपन्यास के लिए 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के मनोरंजनपरक ढाँचे के विपरीत हिन्दी उपन्यासों में उद्देश्यपरक चिन्तन है। हिन्दी में तमाम उपन्यासकारों ने और हिन्दी साहित्यकारों ने समय-समय पर उपन्यास की धारणा पर अपने-अपने विचार रखे हैं और परिभाषा भी देने की कोशिश की है। प्रेमचंद के 'उपन्यास' निबन्ध में यह दर्ज है कि, "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।" प्रेमचंद अपने इस तर्क को सिद्ध करने के लिए इंग्लैंड के प्रसिद्ध उपन्यासकार डिकेंस के उपन्यास 'पिकविस पेपर्स' का उदाहरण देते चलते हैं। उपन्यास की विषय-वस्तु कैसी हो! – के सन्दर्भ में वाल्टर बेसेंट की पुस्तक 'उपन्यास-कला' का उल्लेख करते हुए उसी निबन्ध में प्रेमचंद लिखते हैं – "उपन्यासकार को अपनी सामग्री आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिए जो उसे नित्य ही चारों तरफ मिलते रहते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि अधिकांश लोग अपनी आँखों से काम नहीं लेते। कुछ लोगों को यह शंका भी होती है कि मनुष्यों में जितने अच्छे नमूने थे, वे तो पूर्वकालीन लेखकों ने लिख डाले, अब हमारे लिए क्या बाकी रहा ? यह सत्य है लेकिन अगर पहले किसी ने बूढ़े, कंजूस, युवक, जुआरी, शराबी, युवती आदि का चित्रण किया है, तो क्या अब उसी वर्ग के दूसरे चरित्र नहीं मिल सकते ? पुस्तकों में नए चरित्र न मिले,

पर जीवन में नवीनता का अभाव नहीं रहा ।" इस लेख की निरन्तरता में प्रेमचंद उपन्यास की विषय-वस्तु पर एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं – "उपन्यास का क्षेत्र, अपने लिहाज से दूसरी ललित कलाओं से कहीं ज्यादा विस्तृत है ।" प्रेमचंद ने अपने इस निबन्ध में आगे कहते हैं – "इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास की रचना-शैली सजीव और प्रभावोत्पादक होनी चाहिए लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि हम शब्दों का गोरखधंधा रचकर पाठकों को भ्रम में डाल दें कि इसमें ज़रूर कोई-न-कोई गूढ़ आशय है। कहना चाहिए, उपन्यास की अवधारणा प्रस्तुत करने में हिन्दी रचनाकार कभी भारतीय वाङ्मय की ओर तो कभी यूरोपीय साहित्य की ओर बार-बार आते-जाते दिखलाई देते हैं ।" रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'उपन्यास' नामक निबन्ध लिखा है । इस निबन्ध में उपन्यास के सन्दर्भ से आचार्य शुक्ल अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं – "मानव जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना उपन्यास का काम है। यह उन सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं को प्रत्यक्ष करने का यत्न करता है जिससे मनुष्य का जीवन बनता है और जो इतिहास आदि की पहुँच के बाहर है ।" डॉ॰ श्यामसुन्दरदास उपन्यास को मानव जीवन की काल्पनिक कथा मानते हैं। डॉ॰ जे.बी. क्रिस्टले ने कहा है – "उपन्यास जीवन का विशाल दर्शन है उसका विस्तार साहित्य के किसी भी रूप से बढ़ा है ।" रॉल्फ फॉक्स अपनी किताब 'उपन्यास और लोक जीवन' में उपन्यास के बारे में कहते हैं – "उपन्यास हमारे आधुनिक बुर्जुआ समाज का महाकाव्य है । हम यहाँ तक कह सकते हैं कि उपन्यास बुर्जुआ साहित्य की न केवल सबसे प्रतिनिधि उपज है बल्कि उसकी श्रेष्ठतम रचना भी है ।"

उपर्युक्त परिभाषाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास की एक सर्वमान्य परिभाषा निर्धारित करना कठिन है लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि उपन्यास समय और स्थान के यथार्थ चित्रों, रूपों, बिम्बों, प्रतीकों के आधार पर निर्मित होता है जिसमें मनुष्य ही नहीं पूरी की पूरी प्रकृति अपनी समग्रता के साथ आती है।

1.1.02. प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास

प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास मुख्यतः जीवन के आदर्शों और औपनिवेशिक भारत की समस्याओं पर केन्द्रित हुआ करता था । प्रारम्भिक उपन्यासों में दो प्रवृत्तियाँ प्रमुख थीं । एक मनोरंजन और दूसरा सामाजिक सुधारों के साथ-साथ उपदेशात्मकता की । इस काल के उपन्यासों में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, जासूसी उपन्यासों की रचना अधिक हुई है, जिनका प्रत्यक्षतः जनजीवन से कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता है । रामस्वरूप चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' में उपन्यास के आरम्भिक विकास की गतिकी को रेखांकित करते हैं, उपन्यास अपने आरम्भ से माध्यमगत रूप में सामाजिक यथार्थ-चित्रण से जुड़ा हुआ है । प्रायः हर साहित्य में तिलस्मी, ऐय्यारी, रहस्य और चमत्कार-प्रधान किस्सों से अलग होकर उपन्यास जब अपने पूर्व रूप 'रोमांस' से भिन्न एक स्वतन्त्र कला रूप के तौर पर स्थिर होता है तो उसका प्रधान उपजीव्य समाज की विविध विषमताएँ और समस्याएँ ही बनती हैं । हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में ये समस्याएँ दो रूपों में उपजती हैं । एक तो अपनी जातीय रूढ़ियों के कारण और दूसरे विदेशी यूरोपीय संस्कृति की चुनौती सामने आने से । दरअसल, यही कारण रहा कि देवकीनन्दन खत्री ने शुद्ध मनोरंजन की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए 'चन्द्रकान्ता' (1898), 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (1896), 'नरेन्द्रमोहिनी' (1893), गोपालराम गहमरी ने 'सरकटी लाश' (1990),

'चक्करदार चूड़ी', जासूस की ऐय्यारी'(1914) जैसे उपन्यास लिखे । दूसरी ओर ठाकुर जगमोहन सिंह ने 'श्यामास्वप्न' नामक रोमानी उपन्यास लिखा और इन सबसे इतर लाला श्रीनिवास दास ने 'परीक्षागुरु' (1882), बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी'(1886), एक अजान सौ सुजान'(1892) जैसे सामाजिक उपन्यास लिखे जिसमें सामान्य रूप में नायक में आने वाले सकारात्मक परिवर्तनों को रेखांकित किया गया । लज्जाराम शर्मा के ही 'स्वतन्त्र रमा परतन्त्र लक्ष्मी' में रचनाकार ने पाश्चात्य संस्कृति के मुकाबले भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता स्थापित की है । हिन्दी उपन्यासों के प्रथम चरण में लिखे गए उक्त उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन, शिक्षा प्रधान एवं समाज सुधार ही रहा है ।

इस युग में श्रीनिवासदास का उपन्यास 'परीक्षागुरु' सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में 'परीक्षागुरु' को हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास माना है । हालाँकि बाणभट्ट की कादम्बरी को भारत का पहला उपन्यास माना जाता है लेकिन यह संस्कृत में लिखित है और इसमें उपन्यास के सारे लक्षण भी नहीं मिलते हैं । इस युग में बालकृष्ण भट्ट एक प्रमुख निबन्धकार और सम्पादक थे । भट्ट अपने उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' में ब्रिटिश प्रभाव के प्रतिपक्ष के रूप में भारतीय आदर्शों और परम्परा को प्रतिष्ठित करते दिखाई देते हैं । 'नूतन ब्रह्मचारी' के केन्द्र में एक महाराष्ट्रीयन परिवार है इस परिवार का किशोर पुत्र विनायकराव अपने संस्कार के कारण नूतन ब्रह्मचारी है । मात्र 8 वर्ष की उम्र में वह अपने निश्छल और निर्दोष आचरण से लोगों को प्रभावित करने की असाधारण क्षमता रखता है । अपने इन्हीं गुणों से वह डाकुओं को भी प्रभावित करता है । इसी युग में मेहता लज्जाराम शर्मा ने संख्या की दृष्टि से अपने समकालीन उपन्यासकारों में कदाचित सबसे अधिक सामाजिक उपन्यास लिखे हैं । वैचारिक स्तर पर वे सनातन हिन्दू धर्म के समर्थक लेखक हैं । ठाकुर जगमोहन सिंह-कृत 'श्यामा स्वप्न' भी एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है । यह प्रेमप्रधान एक प्रमुख उपन्यास है ।

प्रेमचंद-पूर्व युग के सम्बन्ध में शिवकुमार शर्मा की एक प्रमुख मान्यता है कि इस काल में सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, प्रेमप्रधान आदि विषयों पर उपन्यास लिखे गए । किशोरीलाल गोस्वामी, ब्रजनन्दन सहाय, बलदेवप्रसाद मिश्र तथा कृष्णप्रकाश सिंह आदि अनेक लेखकों ने इन विषयों पर उपन्यास लिखे हैं । इस आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, घटनाप्रधान आदि सभी विषयों पर उपन्यास लिखे गए ।

1.1.03. प्रेमचंद-युगीन हिन्दी उपन्यास

प्रेमचंद हिन्दी उपन्यास के विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली लेखक हैं । उन्होंने अपने पूर्व के उपन्यासों की चली आ रही प्रवृत्तियों को ठीक तरह से देखते हुए और कहीं-न-कहीं उसकी निरन्तरता में स्वयं को शामिल करते हुए आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व को नए सिरे से परिभाषित किया । प्रेमचंद इस बात पर यकीन करते थे कि "बुरा आदमी भी बिल्कुल बुरा नहीं होता, उसमें कहीं देवता अवश्य छिपा होता है ।" इस मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर ही प्रेमचंद के उपन्यासों के आधार पर 'आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद' हिन्दी साहित्य में अभिहित किया

जाने लगा। प्रेमचंद के उपन्यासों में यथार्थ घटना के स्तर पर चित्रित नहीं होते बल्कि वह अनुभूति के स्तर पर चित्रित होते हैं। प्रेमचंद का पहला उपन्यास 'सेवासदन' सन् 1918 ई. में आया। इस उपन्यास को उन्होंने उर्दू में 'बाजारे-हुस्न' नाम से लिखा था लेकिन इसे पहले हिन्दी में 'सेवासदन' के नाम से प्रकाशित कराया। इस उपन्यास में एक स्त्री के वेश्या बनने की कहानी है, इस सन्दर्भ में रामविलास शर्मा एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं –"हिन्दी उपन्यासों में यह नया यथार्थवाद था जिसे प्रेमचंद जन्म दे रहे थे।" औपनिवेशिक व्यवस्था के भीतर ग्राम जीवन और उसमें पैबस्त किसान के जीवन पर प्रेमचंद का पहला उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (सन् 1921 ई.) है जिसका आरम्भिक मसौदा उर्दू में 'गोशा-ए-आफियत' नाम से तैयार किया गया था। यह उपन्यास अवध के किसान-विद्रोह की याद दिलाता है। यह उपन्यास सामन्ती व्यवस्था के भीतर बेगार पद्धति की तीखी आलोचना प्रस्तुत करता है। रंगभूमि (सन् 1925 ई.) उपन्यास एक नेत्रहीन व्यक्ति सूरदास की कथा है। किसी नेत्रहीन व्यक्ति को उपन्यास का मुख्य पात्र बनाना, अब तक के हिन्दी उपन्यास में एक विलक्षण प्रयोग था। यह उपन्यास नवविकसित पूँजीवाद और भारतीय चिन्तनधारा के द्वन्द्व को रेखांकित करता है। कायाकल्प (सन् 1926 ई.) उपन्यास जागीरदारी व्यवस्था पर आधारित है। यह उपन्यास रियासतों के अंग्रेजों से सम्बन्ध और समझौते को अपने कथा-विन्यास में समेटता है। निर्मला (सन् 1927 ई.) उपन्यास सर्वप्रथम चाँद पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। निर्मला उपन्यास मोटे तौर पर बेमेल विवाह और दहेज की समस्या पर आधारित है। निर्मला का विवाह उसकी तिगुनी उम्र के व्यक्ति, जिसका नाम मुंशी तोताराम है, से हो जाता है। यह उपन्यास एक स्त्री के तनावों को पारिवारिक विन्यास के भीतर गहरे रूप में व्यंजित करता है। यहाँ यह उल्लेख कर देना उचित है कि हिन्दी में मनोवैज्ञानिक चित्रांकन की पद्धति यहीं से विकसित होती है। प्रेमचंद के 'निर्मला' उपन्यास को उस चिन्तन-पद्धति का जनक माना जाना चाहिए। इस उपन्यास के प्रकाशन के ठीक दो साल बाद ही जैनेन्द्र का 'परख' (सन् 1929 ई.) उपन्यास और इसी वर्ष इलाचन्द्र जोशी का 'घृणामयी' उपन्यास आया जो बाद में सन् 1950 ई. में 'लज्जा' शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ। 'लज्जा' उपन्यास एक युवती के पश्चात्ताप की कथा पर आधारित है। जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी के उपर्युक्त उपन्यास दरअसल मनोवैज्ञानिक उपन्यास का आगाज करता है। प्रेमचंद का उपन्यास 'गबन' (सन् 1931 ई.) छद्म शानो-शौकत, दिखावे और प्रदर्शन की प्रवृत्ति को रेखांकित करता है। इस उपन्यास की नायिका जालपा एक ऐसी स्त्री है जो इस दिखावे के कारण स्वयं को और अपने पति को वित्तीय संकट में डाल देती है। इसके लिए जालपा का पति अपने कार्यालय में गबन तक कर लेता है। कर्मभूमि (सन् 1932 ई.) महात्मा गाँधी के नेतृत्व में संचालित स्वाधीनता आन्दोलन और उसमें सम्मिलित जनता को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। यह उपन्यास अपने कथाविकास में अछूत और स्त्री वर्ग के आर्थिक संकटों को भी दर्ज करता है। 'गोदान' (सन् 1936 ई.) प्रेमचंद की सार्वकालिक रचना है। 'गोदान' में एक किसान की त्रासद जीवनगाथा है। इस गाथा में ग्राम के साथ शहर भी धीरे-धीरे शामिल होता जाता है। गाँव में कृषिकर्म में रत किसान होरी धीरे-धीरे शहर को जोड़ने वाली सड़क बनाने वाला मजदूर बन जाता है और वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है। यह उपन्यास स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों, जाति-व्यवस्था, विधवा विवाह आदि प्रसंगों को भी तार्किक ढंग से हमारे सामने रखता है। 'गोदान' के बाद प्रेमचंद ने 'मंगलसूत्र' उपन्यास लिखना आरम्भ किया था लेकिन इसे पूरा न कर सके। यह उपन्यास अपूर्ण रूप में सन् 1948 ई. में प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास एक परिवार के भीतर बनते और बदलते मूल्यों की टकराहट की कथा कहता है जो ज़ाहिर है बदलते समय और परिवेश का प्रभाव है।

यह कहा जा सकता है कि उपन्यास को स्तरीयता और सही स्वरूप देने का युगान्तकारी कार्य प्रेमचंद ने किया है। उपन्यास को प्राणतत्त्व प्रदान करने वाला वैशिष्ट्य उसका देश-काल बिद्ध होना प्रेमचंद के उपन्यासों में ही शक्तिशाली रूप में दृष्टिगत होता है। दरअसल हिन्दी उपन्यास प्रेमचंद के उपन्यास लेखन कालखण्ड (सन् 1916 ई. से सन् 1936 ई. तक) में अपना महत्त्वपूर्ण आकार ग्रहण करता है।

प्रेमचंद के दौर के कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार भी अपने उपन्यास में समय और परिवेश को पकड़ रहे थे और अपने उपन्यासों की कथा के आधार पर उपन्यास के विकास में नई-नई श्रेणियों का निर्माण कर रहे थे। इस दौर के महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार थे – जयशंकर प्रसाद, जिनके द्वारा रचित 'कंकाल' और 'तितली' उल्लेखनीय उपन्यास हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'-कृत 'माँ' और 'भिखारिणी', चण्डीप्रसाद शर्मा 'हृदयेश'-कृत 'मनोरमा' और 'मंगल प्रभात', शिवपूजन सहाय-कृत 'देहाती दुनिया', सियारामशरण गुप्त-कृत 'गोद' और 'नारी', वृन्दावनलाल वर्मा जो ऐतिहासिक उपन्यासकार माने गए, उनके द्वारा रचित 'लगन', 'संगम', 'प्रेम और भेंट', चतुरसेन शास्त्री जिन्हें ऐतिहासिक उपन्यासकार माना जाता है, उनके द्वारा रचित 'हृदय की परख', 'आत्मदाह', 'अमर अभिलाषा', भगवतीचरण वर्मा-कृत 'चित्रलेखा' आदि उपन्यास इस दौर के महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं।

1.1.04. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचंद के बाद हिन्दी उपन्यास अपना कलेवर धीरे-धीरे लेकिन नए अंदाज में बदलता है। उपन्यास की कथा में धीरे-धीरे मध्यम वर्ग अपने नागरिक आधिकारों के साथ शामिल होने लगते हैं। प्रेमचंद के बाद लिखे गए उपन्यासों की प्रवृत्तिगत विविधता बहुत है इसलिए उसे कई खानों में बाँटकर अध्ययन किए जाने का रिवाज़ हिन्दी साहित्य में रहा है। इन उपन्यासों का अध्ययन प्रकृतवादी, व्यक्तिवादी, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, यथार्थवादी, ऐतिहासिक, आंचलिक आदि श्रेणियों में रखकर किया जाता है। इसमें से कई ऐसी श्रेणियाँ हैं जो एक-दूसरे में समाहित होती हैं। हम यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण श्रेणियों के आधार पर हिन्दी उपन्यास के विकास को समझेंगे।

1.1.05. मनोविश्लेषणवादी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास की अवधारणा की निर्मिति में विश्व साहित्य के बदलते हुए परिदृश्य और परिदृश्य निर्माण के लिए आविष्कृत नए उपकरण (मनोविज्ञान, व्यक्तिवाद और अस्तित्ववाद) और सामाजिक आन्दोलन अपनी बड़ी भूमिका निभा रहे थे। उपन्यास में मजबूत कथानक के स्थान पर अब उपन्यास के पात्रों की आन्तरिक बनावट और उसके मन के सूक्ष्म कोणों को परखा जा रहा रहा था। इसके साथ ही कथा की लय पर विशेष जोर दिया जा रहा था। पात्रों की जैविक और बौद्धिक उपस्थिति कथा की बनावट में शामिल हो रही थी। उपन्यास में मानवीय व्यवहार और उसके अनुभव के सूक्ष्म स्तरों को उद्घाटित और अन्वेषित किया जाने लगा था। स्वयं प्रेमचंद भी उपन्यास की अवधारणा में 'मानव चरित्र के अध्ययन' पर बल देने की बात कर रहे थे। प्रेमचंद की इस बात को हम उनके उपन्यास 'निर्मला' में संकेत रूप में समझ सकते हैं। ऊपर हमने प्रेमचंद के इस उपन्यास का उल्लेख इसी

सन्दर्भ से किया है। दरअसल हिन्दी उपन्यास में कथा और शिल्प के स्तर पर एक नई भूमि का निर्माण होने लगा था।

1.1.06. हिन्दी उपन्यास में मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद की धारणा

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के तौर पर जैनेन्द्र कुमार का नाम सबसे पहले लिया जाता है। जैनेन्द्र कुमार के 'परख' (सन् 1929 ई.) उपन्यास को इस कड़ी का पहला उपन्यास माना जाता है, जहाँ हृदय और मस्तिष्क का द्वन्द्व अपने शुरुआती रूप में मौजूद है। मनौवैज्ञानिक उपन्यासों की विकासयात्रा जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 'सुनीता' (सन् 1935 ई.), 'त्यागपत्र' (सन् 1937 ई.), 'कल्याणी' (सन् 1939 ई.), 'सुखदा' (सन् 1952 ई.) से लेकर उनकी अन्तिम रचना 'दर्शाक' तक जो सन् 1985 ई. में प्रकाशित हुई थी, के अनेक पड़ावों और शिल्प के अनेक रूपाकारों से होकर गुजरती है। जैनेन्द्र के अधिकांश उपन्यासों में स्त्री पात्र अपने मन की स्वतन्त्र इयत्ता के साथ मौजूद होने की कशमकश में होती है। बाह्य संघर्ष की तुलना में उनका आन्तरिक संघर्ष ज्यादा प्रबल और प्रधान होता है। यहाँ इन उपन्यासों की कथा को प्रस्तुत करना हमारा अभिप्रेत नहीं है प्रत्युत हिन्दी उपन्यास के विकास की अवधारणा निर्माण में इन उपन्यासों का एक वैशिष्ट्य है, इसकी ओर संकेत मात्र किया जा रहा है। जैनेन्द्र कुमार के साथ ही इलाचन्द्र जोशी और इसी क्रम में अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, प्रभाकर माचवे आदि कई उपन्यासकार अपने-अपने परिवेश में उपन्यास के पात्रों के अन्तर्मन को टटोलते हुए प्रयोगशील रचना कर रहे थे। इलाचन्द्र जोशी-कृत उपन्यास 'घृणामयी', 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'निर्वासित, 'जिप्सी' तथा 'जहाज का पंक्षी' इसी कड़ी का हिस्सा हैं। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास पात्रों के भीतरी मन और उसकी क्रियाशीलता को टटोलते हैं। कभी-कभी उपन्यास के पात्र अपने मानसिक ग्रन्थि के आधार पर परिचालित होते दिखलाई देते हैं। उपन्यास के वातावरण में यह परिवर्तन दरअसल, वैश्विक परिदृश्य में आए बदलावों का परिणाम था, जिसका उल्लेख हम पहले कर आए हैं। इलाचन्द्र जोशी के आरम्भिक उपन्यास पश्चिम के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर लिखे गए। बाद में जोशीजी इस जकड़बन्दी से मुक्त होते हैं। अपने उपन्यास 'ऋतुचक्र' में वे इससे पूर्णतया मुक्त होते दिखलाई देते भी हैं। इसी क्रम में अज्ञेय के उपन्यासों का ढाँचा ज्यादा सुदृढ़ और अपने कथानक में विन्यस्त पात्रों की सुदीर्घ संवाद-योजना से निर्मित हुआ है। अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, मन की गहरी पहचान तथा सौन्दर्य की गहन संवेदनपरक स्थितियों की पड़ताल अज्ञेय के उपन्यासों की खासियत है। 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास का नायक 'शेखर' है जिसके बचपन से लेकर युवा होने और फिर क्रान्तिकारी राह पर चलने के तमाम पड़ाव हमारे सामने शृंखलाबद्ध रूप में आते हैं। हम एक पात्र के मनोविज्ञान और इस मनोविज्ञान की निर्मिति में बाह्य परिवेश की भूमिका को हस्तक्षेप करते हुए देखते हैं। इस उपन्यास का आना तत्कालीन समय में हिन्दी में एक घटना की तरह देखा गया और अज्ञेय पर कई तरह के आरोप-प्रत्यारोप भी लगते रहे। मानसिक द्वन्द्व के आधार पर विकसित होता हुआ यह उपन्यास अपनी उपस्थिति में बेजोड़ साबित हुआ और इसने उपन्यास की अवधारणा को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया। अज्ञेय का दूसरा उपन्यास 'नदी का द्वीप' हिन्दी उपन्यास के विकास और उसकी अवधारणा के लिहाज से इस अर्थ में एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास ठहरता है कि इस उपन्यास को लेकर उस समय के तमाम आलोचकों ने अपनी टिप्पणी की और

अधिकांश टिप्पणियाँ इस उपन्यास के विरोध में रही। कारण साफ़ है कि यह उपन्यास अब तक कथा के चले आ रहे ढाँचे से अपना थोड़ा भिन्न स्वरूप लिये हुए था। इस उपन्यास ने समाज में विन्यस्त विचार और व्यवहार के अन्तरालों को एकदम से सतह पर ला कर रख दिया था। इस उपन्यास की कथा में निहित प्रेमकथा उपन्यास के शिल्प को बार-बार सचेत करती दिखलायी पड़ती है। यह देखना दिलचस्प है कि यह प्रेमकथा पत्र शैली में उपन्यास के भीतर की बहस को उजागर करती है। जैसा कि होता आया है, 'शेखर : एक जीवनी' में उपन्यास के पात्र को अज्ञेय के निजी जीवन से जोड़ कर देखा गया था। 'नदी के द्वीप' के एक पात्र को भी उस समय के एक प्रसिद्ध लेखक के जीवन से जोड़ कर देखा गया। उस लेखक की विचारधारा पर चोट इस उपन्यास के पात्र के माध्यम से की गई। ऐसी कई बातें इस उपन्यास को लेकर हिन्दी के आलोचकों ने की हैं। यहाँ इतना संकेतित करना ही पर्याप्त है कि अज्ञेय के इस उपन्यास ने कथा और शिल्प के स्तर पर काफी हलचल पैदा की। इसी प्रकार की हलचल अस्तिववादी चिन्तन के सन्दर्भ से अज्ञेय के उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' ने की थी। अजनबीयत एक तकनीक बनकर उपन्यास में शामिल हो रही थी, इस उपन्यास के पात्र बर्फ के तूफान में फँसे गए हैं और इस कारण इसके पात्र दुनिया से एकदम कट गए हैं। वे सभी अपने अस्तित्व को लेकर एक गहरे संकट में हैं। उनमें अपने होने को लेकर एक गहरी चिन्तन-पद्धति निर्मित हो रही है। एक खास तरह का मृत्यु-गन्ध इन पात्रों के बीच फैला हुआ है जिसे पाठक बड़ी तीव्रता से महसूस कर सकता है। यह हिन्दी उपन्यास में सम्भवतः पहली बार हो रहा था। उपन्यास की अवधारणा के निर्माण की बहस में यह ढंग अज्ञेय के उपन्यास की विशेषता रही है।

1.1.07. सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास में प्रेमचंद के बाद लिखे गए उपन्यासों में जिस प्रकार की प्रवृत्तियों को हम देखते हैं, उनका विकास मोटे तौर पर यूरोपीय चिन्तन-पद्धति के आधार पर हुआ और यह स्वाभाविक था क्योंकि कोई भी साहित्य अपनी युगीन परिस्थितियों और युगीन प्रवृत्तियों के लक्षणों से अलग नहीं होता। हिन्दी उपन्यास मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद से प्रभावित रहा है। जैसा कि हम जानते हैं कि साहित्य की कोई भी प्रवृत्ति हमेशा विद्यमान नहीं रहती। भारत में आजादी के आन्दोलनों और आजादी के बाद हुए परिवर्तनों के प्रभाव से नए किस्म का समाज निर्मित हो रहा था। धीरे-धीरे एक शोषक पूँजीवादी समाज का निर्माण हो रहा था जिसके प्रतिकार के लिए प्रगतिवादी मूल्य या कि समाजवादी मूल्य उठ खड़ा हो रहा था, जिसका आगाज प्रेमचंद ने लखनऊ में सन् 1936 ई. के प्रगतिशील लेखक संघ में दिए अपने भाषण से कर दिया था। हालाँकि इससे पूर्व राहुल सांकृत्यायन ने सन् 1924 ई. में ही 'बाईसवीं सदी' लिखकर प्रगतिशील मूल्य की आधारशिला रख दी थी। हिन्दी उपन्यास एक बार फिर से नए दौर और उसके नए स्वरूप को धारण के लिए तैयार हो रहा था, जिसके आधार पर उपन्यास की अवधारणा की निर्मितियों को आकार लेना था। राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी आदि के उपन्यास प्रगतिशील प्रवृत्ति का निर्माण कर रहे थे। राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में समतावादी समाज की स्थापना का लक्ष्य केन्द्रीय रूप में मौजूद रहा जिसमें इतिहास अपनी द्वन्द्वात्मकता के साथ कथा की पृष्ठभूमि के रूप में विन्यस्त होता दिखाई देता है। यशपाल हिन्दी के ऐसे रचनाकार हैं जो सीधे क्रान्तिकारी पृष्ठभूमि से चलकर आए। मार्क्सवादी पृष्ठभूमि के कारण उनकी रचनाओं में यह विचार पूँजीवादी

प्रवृत्ति के विरुद्ध आती है। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'अमिता', 'दिव्या', 'झूठा-सच', 'मेरी-तेरी उसकी बात' जैसे उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास की अवधारणा को भिन्न किस्म से प्रभावित किया। नागार्जुन के उपन्यास में पात्र ग्रामीण भाव-बोध के साथ अपने जीवन-संघर्षों को लेकर उपस्थित होते हैं, जिसमें प्रकृति के रंग अपने पूरे ताप के साथ शामिल हैं। 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'कुंभीपाक' जैसे उपन्यास हिन्दी उपन्यास की धारणा में अपनी भाषा एवं शैली की दृष्टि से अपनी प्रयोगधर्मिता के कारण एक नया आधार प्रदान करते हैं। रांगेय राघव के उपन्यास 'घरोंदें', 'कब तक पुकारूँ', 'मुर्दों का टीला', 'चीवर' आदि उपन्यास के विषय-वस्तु और शिल्प को लेकर सर्वथा एक नया मानक गढ़ रहे थे। भैरवप्रसाद गुप्त अपने उपन्यास 'गंगा मैया', 'सती मैया का चौरा', 'धरती' आदि उपन्यासों के माध्यम से साहित्य में उभरे नए आन्दोलन को आकार दे रहे थे। उनके उपन्यासों में कथा कहने की नई प्रयोगधर्मी शैली और भाषा के टटकेपन ने लोगों का न केवल ध्यान खींचा बल्कि उनके बाद की पीढ़ी ने उनकी शैली को अपनाया भी। भीष्म साहनी अपने उपन्यासों में रंगधर्मी चेतना के साथ मार्क्सवादी नज़रिये को लेकर सामने आ रहे थे। 'तमस', 'बसन्ती', 'मय्यादास की माड़ी' जैसे उपन्यास वस्तु-तत्त्व की प्रधानता के साथ हिन्दी साहित्य में उपस्थित होते हैं। कथा कहने की यथार्थवादी शैली उनकी रचना को विश्वसनीय बना देती है। भीष्म साहनी अपने लेखन में अतीत की ओर जाते हैं, जहाँ से वे उस तत्त्व की पहचान करना चाहते हैं जिनके कारण हमारा भविष्य प्रभावित होता है। इस आधार पर स्पष्ट है कि उपन्यास लेखन में भीष्म साहनी प्रगतिवादी मूल्यों के साथ उपस्थित होते हैं।

1.1.08. ऐतिहासिक उपन्यास

आंचलिकता के ढाँचे में उपन्यास सर्वथा एक नए शिल्प के साथ उपस्थित हुआ। उपन्यास की धारणा में यह एक विलक्षण परिवर्तन की तरह देखा गया। हिन्दी उपन्यास में परिवर्तन की यह दिशा ऐतिहासिक उपन्यासों और सांस्कृतिक उपन्यासों में भी देखी जाती है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री महत्त्वपूर्ण नाम हैं। उनके उपन्यासों ने हिन्दी पाठक की दुनिया में इतिहास को एक कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'अनामदास का पोथा', 'चारु चन्द्रलेख' इतिहास के भीतर से परम्परा के उत्खनन के महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। ये सभी उपन्यास शिल्प की बुनावट की तुलना में अपनी कथा-वस्तु के लिए ज्यादा चर्चित हुए और हिन्दी उपन्यास की धारणा में भिन्न किस्म के मोड़ के लिए जाने गए।

1.1.09. हिन्दी उपन्यास की धारणा में नयी कहानी आन्दोलन का प्रभाव

नयी कहानी आन्दोलन के परिवेश में हिन्दी साहित्य एक बार फिर से अपने नए स्वरूप में सामने आ रहा था। इस पूरे आन्दोलन के परिदृश्य में और उससे बाहर भी कई रचनाकार महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की रचना कर रहे थे। सभी उपन्यासकार अपने उपन्यासों में नई जमीन को पकड़ने के दावे के साथ उपस्थित हो रहे थे। विश्वभर के समकालीन साहित्यिक विचारों की हलचल इन रचनाओं को प्रभावित कर रही थी। राजेन्द्र यादव-कृत उपन्यास 'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', 'शह और मात', हरिशंकर परसाई-कृत उपन्यास 'रानी नागफनी की कहानी',

श्रीलाल शुक्ल-कृत सबसे प्रसिद्ध उपन्यास 'राग दरबारी', अमरकान्त-कृत उपन्यास 'काले-उजले दिन', 'इन्हीं हथियारों से', कृष्ण बलदेव वैद-कृत उपन्यास 'गुजरता हुआ जमाना', 'काला कोलाज', राजकमल चौधरी-कृत उपन्यास 'मछली मरी हुई', 'एक अनार एक बीमार', मोहन राकेश-कृत उपन्यास 'अँधेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल', निर्मल वर्मा-कृत उपन्यास 'वे दिन', 'रात का रिपोर्टर', 'लाल टीन की छत', मनोहर श्याम जोशी-कृत उपन्यास 'हमजाद', 'कसप', 'क्याप', कृष्णा सोबती-कृत उपन्यास 'सूरजमुखी अँधेरे के', 'दिलो दानिश', 'ए लड़की', मन्नू भंडारी-कृत उपन्यास 'आपका बंटी', 'महाभोज', कमलेश्वर-कृत उपन्यास 'कितने पाकिस्तान', शिवप्रसाद सिंह-कृत उपन्यास 'नीला चाँद', 'वैश्वानर', शानी-कृत उपन्यास 'नदी और सीपियाँ', 'काला जल', मार्कण्डेय-कृत उपन्यास 'अग्निबीज' आदि दर्जनों लेखकों के उपन्यासों में आजादी के बाद के भारत के संघर्षों, स्वप्नों, आकांक्षाओं के बनने-बिगड़ने, मध्यमवर्गीय इच्छाओं की पूर्ति के लिए किए जाने वाले समझौतों को अपनी रचना में चित्रित किया गया। ज़ाहिर है, यह हिन्दी में आजादी के बाद बनते हुए समाज का नया भाव-बोध था जो इन उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी उपन्यास की अवधारणा के आधार को बड़े पैमाने पर प्रभावित कर रहा था।

1.1.10. आंचलिक उपन्यास

प्रगतिवादी मूल्यों के साथ ही हिन्दी उपन्यास की धारणा में आंचलिकता एक विशिष्ट पहचान के साथ आती है। यह पहचान किसी अंचल के भीतर घटने वाली सम्पूर्ण घटनाक्रम को गहराई के साथ उपन्यास में उपस्थित करती है। आंचलिक उपन्यासों में अंचल विशेष के पात्रों की आन्तरिक और बाह्य बनावट को सूक्ष्मता के साथ अपने शिल्प में गढ़ने की अवधारणा निहित होती है। यही शिल्प उपन्यास की अवधारणा निर्माण में एक अलग कोण का निर्माण करती है जिसमें फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' सबसे अग्रणी भूमिका निभाता है। यह एक तरह से हिन्दी उपन्यास में 'द रिटर्न ऑफ द नेटिव' की तरह था। राही मासूम रजा-कृत 'आधा गाँव', रामदरश मिश्र-कृत 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ', विवेकी राय-कृत 'सोना माटी', शैलेश मटियानी-कृत 'जलतरंग' जैसे उपन्यास हिन्दी उपन्यास में नए स्वाद और नए ढंग को स्थापित कर रहे थे। अपने क्षेत्र-विशेष और उस क्षेत्र में विन्यस्त समय की गहरी पड़ताल करता हुए उपर्युक्त उपन्यास हमारे सामने एक अनुप्रस्थ काट प्रस्तुत करते हैं।

1.1.11. आधुनिकता-बोध के उपन्यास

हिन्दी उपन्यास के विकास और उसकी अवधारणा में हिन्दी उपन्यास का समकालीन परिदृश्य अनेक विविधताओं से परिपूर्ण है। हर उपन्यास अपनी नई कहन शैली की घोषणा के साथ पाठक के सामने आता है। विषयवस्तु के साथ-साथ उसके रूप पर नई प्रयोगधर्मिता बड़े ही प्रभावी ढंग से सामने आ रही थी। सत्तर, अस्सी और नब्बे के दशक में हिन्दी साहित्य की तमाम विधाओं के आधार में परिवर्तन आया है। सत्तर के दशक को साठ में हुए नक्सलवादी आन्दोलनों ने बड़े पैमाने पर प्रभावित किया। सत्तर के दशक में आपातकाल, छात्र आन्दोलन, सम्पूर्ण क्रान्ति जैसी राजनैतिक घटना, हत्या के बाद सिक्ख विरोधी दंगे और नब्बे के दशक में वैश्वीकरण के प्रभाव

ने साहित्य के कलेवर को काफी बदला। रूस का विघटन भारत में विचार के स्तर पर एक संकट पैदा कर रहा था। बाबरी मस्जिद विवाद साम्प्रदायिक मुद्दों को नए सिरे से रेखांकित कर रहा था। काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'काशी का अस्सी', दूधनाथ सिंह का उपन्यास 'आखरी कलाम', सतीश जमाली का उपन्यास 'प्रतिबद्ध', स्वयंप्रकाश का उपन्यास 'बीच में विनय', संजीव के उपन्यास 'सर्कस' और 'भिखारी ठाकुर', सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'अँधेरे से परे', 'मुझे चाँद चाहिए', ममता कालिया के उपन्यास 'बेघर', 'एक पत्नी के नोट्स', मृदुला गर्ग का उपन्यास 'चित्त कोबरा', नासिरा शर्मा के उपन्यास 'सात नदियाँ एक समुन्दर', 'शाल्मली', प्रभा खेतान के उपन्यास 'आओ पेपे घर चलें', 'पीली आँधी', मैत्रयी पुष्पा के उपन्यास 'बेतवा बहती रही', 'सात आसमान' आदि महत्त्वपूर्ण रचनाकारों के उपन्यासों एक बार फिर से हिन्दी साहित्य के ताप में अपना योगदान दे रहे थे। सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' नब्बे के दशक में हुए नए परिवर्तन के शुरुआती लक्षण को लेकर सामने आता है। स्त्री-चेतना के स्वतन्त्र विकास और पुरुषवर्चस्व वाले समाज में अपने होने, अपने अस्तित्व को लेकर संघर्ष करती हुई स्त्री इस उपन्यास की कथा-बुनावट का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। अपने करियर को लेकर चिन्तित युवा वर्ग नब्बे के दशक में जिन परेशानियों से जूझ रहा था, जिन विसंगतियों के सामने खड़े होने को विवश हो रहा था, उसे उपन्यास बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ता है। परिवार की पारम्परिक और रूढ़िगत मान्यताओं को चुनौती देती हुई स्त्री जब अपने घर से बाहर निकलती है तब उसका सामना जिस तरह के सामाजिक ढाँचों से होता है, उसका एक आरेख यह उपन्यास हमारे सामने रखता है। उपन्यास के इन्हीं आरेखों के आधार पर हम नब्बे के दशक में हुए परिवर्तनों के लक्षण और उपन्यास की अवधारणा के आधारों में शामिल होते नए परिवर्तन को देखते हैं।

1.1.12. महिला उपन्यासकार

आधुनिक भारतीय समाज को ज्यादा लोकतान्त्रिक और लोकोन्मुखी बनाए जाने में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, इसे यदि और अधिक उदार और लोककल्याणकारी बनाया जाना है तो हमें स्त्री को समाज की समूची प्रक्रिया में उसका अपना स्थान देना होगा। कहना न होगा कि स्त्रियाँ अपना स्थान बना भी रही हैं। हिन्दी साहित्य के कलेवर और उसकी विविधता को हिन्दी लेखिकाओं ने काफ़ी समृद्ध किया है। न केवल विषय-वस्तु की नवीनता उनके लेखन के माध्यम से हिन्दी साहित्य में आई है बल्कि ऐसे कई पहलू भी हमारे सामने आए हैं जो अब तक न केवल अछूते थे बल्कि सोच के दायरे से भी बाहर थे। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिग्मंड फ्राइड का यह बयान बेहद मशहूर रहा है कि – "मनोविश्लेषण के क्षेत्र में इतने वर्ष काम करने के बाद भी मैं यह नहीं समझ पाया कि स्त्री आखिर चाहती क्या है ?" कम-से-कम हिन्दी उपन्यास में लेखिकाओं के उपन्यासों और एक हद तक उनकी आत्मकथाओं को पढ़ते हुए फ्राइड के सवाल का उत्तर मिल जाता है। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' (सन् 1967 ई.) और 'ज़िंदगीनामा' (सन् 1993 ई.), शिवानी के उपन्यास 'चौदह फेरे', 'कस्तूरी मृग' और अपराजिता, उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' और 'पचपन खंभे लाल दीवारें', मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' और 'महाभोज', ममता कालिया के उपन्यास 'बेघर' और 'एक पत्नी के नोट्स', मृदुला गर्ग के उपन्यास 'अनित्य', 'चितकोबरा' और 'कठगुलाब' चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आवां' और 'एक ज़मीन अपनी', सुधा अरोड़ा का उपन्यास 'यहीं कहीं था घर', मेहरुन्निसा परवेज का उपन्यास 'कोरजा', सूर्यबाला

का उपन्यास 'मेरे संधिपत्र', मंजुल भगत के उपन्यास 'अनारो' और 'गंजी', कमल कुमार के उपन्यास 'यह खबर नहीं' और 'मैं घूमर नाचूँ', कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास 'टपरेवाले', 'निलोफर' और 'बीता भर की छोकरी', कुसुम अंसल का उपन्यास रेखाकृति, नासिरा शर्मा के उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' और 'कुइयाँ जान', राजी सेठ का उपन्यास 'तत्सम', गीतांजलीश्री का उपन्यास 'माई', प्रभा खेतान के उपन्यास 'पीली आँधी', 'छिन्नमस्ता' और 'आओ पेपे घर चलें', मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम', 'चाक' और 'बेतवा बहती रही', मधु काँकरिया के उपन्यास 'सलाम आखिरी' और 'सेज पर संस्कृत', अलका सरावगी के उपन्यास 'शेष कादम्बरी' और 'कलिकथा वाया वाईपास', अनामिका का उपन्यास 'दस द्वारे का पिंजरा', अल्पना मिश्रा का उपन्यास 'अँधियारे तलछट में चमका', मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'कुछ भी तो रूमानी नहीं', 'कठपुतलियाँ' और 'बौनी होती परछाइयाँ', जयश्री राय के उपन्यास 'औरत जो नदी है', 'साथ चलते हुए' और 'दर्दाजा' आदि महिला उपन्यासकारों द्वारा रचित महान् कृतियाँ हैं जो हिन्दी उपन्यास की विविधता को सम्पन्न कर रहीं हैं ।

1.1.13. पाठ-सार

हिन्दी उपन्यास की विकास-परम्परा और उसकी अवधारणा को विश्लेषित करने का स्वरूप हमेशा एक बन्द किस्म की प्रणाली का निर्माण करता है। किसी भी तरह की अवधारणा या विकास निर्माण में जीवन-जगत् की पूर्णता सामने नहीं आ पाती है, अवधारणा उसे पूर्णता से पकड़ नहीं पाती। महज कुछ प्रतिनिधि प्रवृत्तियों, सामान्य लक्षणों के आधार पर अवधारणा निर्मित कर ली जाती है। उसके विकास-क्रम को समझ लिया जाता है। ठीक इसके दूसरी तरफ जीवन-जगत् की परिस्थितियाँ इतनी संश्लिष्ट होती हैं कि वे कभी पूर्णता प्राप्त कर लेने का दावा कर ही नहीं सकती। यानी किसी भी तरह की अवधारणा का निर्माण या विकास की परम्परा हमेशा एक अधूरेपन का शिकार होती हैं। उपन्यास में तो यह अधूरापन और भी सघन होता जाता है क्योंकि एक ही समय में लिखे जा रहे अलग-अलग लेखकों के अलग-अलग उपन्यास सर्वथा भिन्न किस्म के समय अन्तरालों, घटनाओं और व्यक्ति चित्र को प्रस्तुत करते हैं। एक ही समय में हम एक ओर इतिहास के आधार पर लिखी कथा और दूसरी ओर नई तकनीक के आधार पर लिखी कथा को पढ़ रहे होते हैं तो तीसरी ओर हम किसी मिथक के आधार पर कथा का आनन्द ले रहे होते हैं। इनके भीतर से कोई एक प्रवृत्ति को निकाल कर उसे अवधारणा में शामिल करना या उसके विकास-क्रम को सम्पूर्ण विकास-क्रम मान लेना उस विधा की समझ को अधूरेपन से भर देना है। दरअसल उपन्यास, लेखक की और उपन्यास के पात्र दोनों की ही अपने निज के भीतर की हुई यात्रा होती है, इस यात्रा में ज़रूरी नहीं कि उस लेखक और उस पात्र का जो अपना समय और भूगोल है, वह अपनी पूर्णता के साथ उपस्थित हो ही। एक अधूरापन इसमें हमेशा बना रहता है। फिर भी अध्ययन के दृष्टिकोण से हम अवधारणा निर्माण और उसके विकास-क्रम की बात करते हैं। यह इकाई भी इसी अधूरेपन के साथ हिन्दी उपन्यास की अवधारणा पर विश्लेषण करने का प्रयास करती है और उसके विकास-क्रम को रेखांकित करती है, कभी-कभी कहीं गहरे उतर कर और कहीं मात्र सतह पर। भारतीय मनस्तत्त्व में बसे कथा की परम्परा जो वाचिक से चलती हुई लिखित तक आती है और जिसके भीतर एक लम्बा समय अन्तराल अपनी साँसे ले रहा है, को इस इकाई में विश्लेषित करने की कोशिश की गई है।

हिन्दी उपन्यास की वस्तु-विन्यास आख्यान, मिथक से चलती हुई मनोरंजन के आधारों को ग्रहण करती हुई उद्देश्यपरक रास्तों पर आती है। हिन्दी उपन्यास की रूप-सज्जा समय के साथ निरे आदर्श-उद्देश्यों को छोड़ती हुई मनुष्य के विभिन्न जीवन-प्रसंगों को, उसके भीतर के मन को टटोलती हुई व्यक्ति के अस्तित्व की शिनाख्त करती है। हिन्दी उपन्यास अपने समय की प्रचलित विचार-सरणियों को शोषक सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध उपकरण के तौर पर अपने लिए आविष्कृत करती है। यह समय में आए भारी बदलावों, विभिन्न पड़ावों, व्यक्ति के निजी और सामाजिक तनावों को अपने कथा-तन्तु में समेटती हुई आगे बढ़ती है। इन समस्त लक्षणों को पहचानते हुए हिन्दी में उपन्यास की अवधारणा का निर्माण होता है और एक विकास-परम्परा को हमारे सामने उपस्थित करता है। यह अवधारणा और विकास की परम्परा का निर्माण अन्तिम रूप में कभी हमारे सामने नहीं आता और न ही इसकी माँग की जानी चाहिए। अवधारणा और विकास की संकल्पना हमेशा एक अधूरी अवधारणा है।

1.1.14. बोध प्रश्न

1. उपन्यास क्या है ?
2. हिन्दी उपन्यास की परम्परा को समझाते हुए उपन्यास की कुछ परिभाषाओं का उल्लेख कीजिए।
3. प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों की विशेषता का बिन्दुवार उल्लेख कीजिए।
4. प्रेमचंद युग के उपन्यास की मुख्य प्रवृत्ति क्या है ? यह अपने पूर्व की प्रवृत्ति से भिन्न कैसे है ?
5. मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कथा-विन्यास की विशेषता क्या है ?
6. "अस्तित्ववाद का हिन्दी उपन्यासों पर प्रभाव रहा है।" सोदाहरण समझाइए।
7. "यथार्थवाद हिन्दी उपन्यास को जन-सरोकारों से जोड़ता है।" स्पष्ट कीजिए।
8. महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों की चर्चा कीजिए ।

1.1.15. सहायक ग्रन्थ-सूची

1. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन
2. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, एस.एन.गणेशन्
3. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन
4. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन
5. हिन्दी उपन्यास और सामाजिक चेतना, कुँवरपाल सिंह
6. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख, इन्द्रनाथ मदान
7. हिन्दी उपन्यास विशेषत : प्रेमचंद, नलिन विलोचन

❖❖❖

खण्ड – 1 : उपन्यास और कहानी-साहित्य

इकाई – 2 : हिन्दी कहानी की क्रमिक विकास-यात्रा और परिवर्तित स्वरूप : प्रारम्भिक कहानी, प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी कहानी, प्रेमचंद-युग : हिन्दी कहानी का नवोन्मेष, प्रेमचंदोत्तर-युग में हिन्दी कहानी, नई-कहानी, विविध कहानी आन्दोलन : साठोत्तरी-कहानी / समकालीन-कहानी / अकहानी, सचेतन-कहानी, सहज-कहानी, समान्तर-कहानी, जनवादी-कहानी, सक्रिय-कहानी, समकालीन कथाकार, महिला कहानीकार

इकाई की रूपरेखा

1.2.00. उद्देश्य कथन
1.2.01. प्रस्तावना
1.2.02. प्रारम्भिक कहानी
1.2.03. प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी कहानी
1.2.04. प्रेमचंद-युग, हिन्दी कहानी का नवोन्मेष
1.2.05. प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी कहानी
1.2.06. नयी कहानी
1.2.07. अकहानी
1.2.08. सचेतन कहानी
1.2.09. सहज कहानी
1.2.10. समानान्तर कहानी
1.2.11. जनवादी कहानी
1.2.12. सक्रिय कहानी
1.2.13. समकालीन कथाकार
1.2.14. महिला कथाकार
1.2.15. पाठ-सार
1.2.16. बोध प्रश्न

1.2.00. उद्देश्य कथन

हिन्दी गद्य विधा की सबसे महत्त्वपूर्ण और सशक्त विधा 'हिन्दी कहानी' है। आधुनिक काल में हिन्दी कहानी कई विचारधाराओं में बँटती जा रही है। कहानी विधा के सशक्त हस्ताक्षर मुंशी प्रेमचंद को केन्द्र में रखकर हिन्दी कहानी का विभाजन किया गया है। प्रेमचंदोत्तर युग में कहानी का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। नयी कहानी से लेकर सक्रिय कहानी तक की यात्रा पूरी करने वाली हिन्दी कहानी को पढ़ने के बाद आप –

i. प्रारम्भिक कहानी तथा कहानीकारों से परिचित हो पाएँगे।
ii. प्रेमचंद पूर्वयुग का प्रेमचंद युग से तुलना कर सकेंगे।

iii. प्रेमचन्दोत्तर युग में कहानी किस रूप में विकसित हुई, मूल्यांकन कर सकेंगे।
iv. कहानी, नयी कहानी, अकहानी तथा कहानीकारों के विभिन्न वर्गों से रुबरू होंगे।

1.2.01. प्रस्तावना

हिन्दी गद्य विधाओं में 'कहानी' सबसे सशक्त विधा बनकर विकसित हुई है। आज 'कहानी' के पाठक अन्य सभी विधाओं की तुलना में सर्वाधिक है, यही कारण है कि पत्र-पत्रिकाएँ तो केवल कहानी पत्रिकाएँ ही हैं जो समकालीन कथाकारों की स्तरीय कहानियों के साथ-साथ उभरते हुए कहानीकारों की कहानियाँ भी छापती हैं। विगत 90 वर्षों में हिन्दी कहानी ने जो आशातीत प्रगति की है, वह उत्साहवर्द्धक है। अन्य सभी गद्य विधाओं की अपेक्षा आज की हिन्दी कहानी में युगबोध की क्षमता सबसे अधिक दिखाई पड़ती है। प्रेमचंद ने भारतीय हिन्दी साहित्य में जो प्रसिद्धि पाई उसका मुख्य कारण कहानी और उपन्यास है। प्रेमचंद की आरम्भिक कहानियों में आदर्श का पुट दिखाई देता है, जैसे – पंच परमेश्वर, आत्माराम, प्रेरणा, ईदगाह, नमक का दरोगा। कहना न होगा कि प्रेमचंद ने अपने से पूर्व की कहानियों के लोक से हटकर एक नये मार्ग की तलाश की जिसकी वजह से प्रेमचन्दोत्तर युग के कहानीकारों (जिसकी पृष्ठभूमि आदर्शवाद से निर्मित थी) का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है। उपन्यास और कहानी दोनों में ही 'कथातत्त्व' विद्यमान होता है अतः प्रारम्भ में लोगों की यह धारणा थी कि उपन्यास और कहानी में केवल आकार का ही भेद है किन्तु अब यह धारणा निर्मूल हो चुकी है। ज्यों-ज्यों कहानी की शिल्प-विधि का विकास होता गया, उपन्यास से उसका पार्थक्य भी अलग झलकने लगा। वास्तव में कहानी में जीवन के किसी एक अंग या संवेदना की अभिव्यक्ति होती है जबकि उपन्यास में जीवन की समग्रता का अंकन किया जाता है। स्पष्ट है कि कहानी की मूल आत्मा 'एक संवेदना या एक प्रभाव' है। कहानी का प्रमुख उद्देश्य भी कम-से-कम शब्दों में उस प्रभाव को अभिव्यक्त करना मात्र है। ब्लेनटज हेमिस्टन ने कहानी की परिभाषा देते हुए लिखा है – "The aim of a short story is to product a single effect with the greatest Economy of wards. " अर्थात् कहानी एक सूक्ष्मदर्शी यन्त्र है जिसके नीचे मानवीय अस्तित्व के दृश्य खुलते हैं।"

हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा की शुरुआत 1900 ई. के आस-पास ही मानना तर्कसंगत है, क्योंकि इससे पूर्व हिन्दी में 'कहानी' जैसी विधा का सूत्रपात नहीं हुआ था। हिन्दी जगत् में पूर्ण सहमति या पूर्ण असहमति के बिना, जैसे 'परीक्षागुरु' हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है, वैसी स्थिति हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी के रूप में छह-सात कहानियों के नाम लिए जाते हैं। विभिन्न विद्वान् अनेक आधारों पर इन कहानियों को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं। यद्यपि भिन्न स्वरूप में, इसकी शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हो चुकी थी। सन् 1803 में लिखी गई इंशा अल्ला ख़ाँ की 'रानी केतकी की कहानी' में 'कहानी' शब्द मौजूद है। इसलिए हिन्दी के कुछ आलोचक 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की पहली कहानी मानने के पक्ष में हैं। लल्लू लाल तथा सदल मिश्र भी उसी दौर के लेखक हैं जिन्होंने क्रमशः 'प्रेमसागर' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' जैसी बृहत् कथाओं की रचना की। इन कहानियों तथा इनके रचनाकारों का महत्त्व हिन्दी कहानी के उद्भव व विकास के दृष्टि से है जबकि साहित्यिक नज़रिये से बहुत कम है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग को हिन्दी गद्य के विकास का काल माना जाता है। वैसे भारतेन्दु युग में गद्य के लगभग सभी विधाएँ विकसित हुई। नाटक,

निबन्ध तो उस युग में खूब लिखे गए चाहे वे अनुदित हों या मौलिक। निबन्ध उस युग की प्रमुख विधा थी। एक बात तो सर्वस्वीकृत है कि बाबू श्यामसुन्दरदास, चिन्तामणि घोष तथा जगन्नाथ दास के नेतृत्व में सन् 1900 में सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसके माध्यम से हिन्दी कहानी का उद्‌भव और विकास माना जाता है। मौलिक कहानियों का वातावरण भी बन चुका था परन्तु इन मौलिक कहानियों पर शेक्सपीयर के नाटकों का, संस्कृत-नाटकों का, बांग्ला कहानियों का तथा लोकप्रचलित कथाओं का प्रभाव प्रतिभासित होता है। आरम्भिक दौर के कहानिकारों में किशोरी लाल गोस्वामी, माधवप्रसाद मिश्र, बंग महिला, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद तथा वृन्दावनलाल वर्मा का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। कहना न होगा कि इन कहानीकारों में से एक-दो को छोड़ दिया जाय तो शेष सभी कथाकारों को 'सरस्वती' ने प्रसिद्धी दिलाई। सन् 1900 में प्रकाशित 'इन्दुमती' किशोरीलाल गोस्वामी की पहली हिन्दी कहानी है जो 'सरस्वती' पत्रिका में छपी। इसी वर्ष 'सुदर्शन' में माधव प्रसाद मिश्र की 'मन की चंचलता' कहानी प्रकाशित हुई। सन् 1902 में 'सरस्वती' में ही भगवानदास बी.ए. की कहानी 'प्रेम की चुड़ैल' प्रकाशित हुई। सरस्वती में ही रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' सन् 1903 में और बंग महिला की कहानी 'दुलाई वाली' सन् 1907 में प्रकाशित हुई। हिन्दी के शुरुआती कथाकारों में उपर्युक्त नाम आते हैं। परन्तु आगे चलकर ये लेखक हिन्दी के कई धाराओं में प्रवृत्त हो गए। विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग मत के द्वारा हिन्दी की छह-सात कहानियों को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना है। आधुनिक ढंग की कहानियों का आरम्भ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सरस्वती के प्रकाशन काल से माना है। हिन्दी की आरम्भिक कहानियाँ निम्नलिखित हैं –

1.	इन्दुमती	किशोरीलाल गोस्वामी	सन् 1900 / संवत् 1957
2.	गुलबहार	किशोरीलाल गोस्वामी	सन् 1902 / सवंत् 1959
3.	प्रेम की चुड़ैल	मास्टर भगवानदास मिर्ज़ापुर	सन् 1902 / संवत् 1959
4.	ग्यारह वर्ष का समय	रामचन्द्र शुक्ल	सन् 1903 / संवत् 1960
5.	पण्डित और पण्डितानी	गिरिजादत्त वाजपेयी	सन् 1903 / संवत् 1960
6.	दुलाईवाली	बंग महिला राजबाला घोष	सन् 1907 / संवत् 1964

आचार्य शुक्ल 'इन्दुमती' के सन्दर्भ में लिखते हैं – यदि 'इन्दुमती' किसी बांग्ला कहानी की छाया नहीं हैं तो हिन्दी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है। इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय' फिर 'दुलाईवाली' का नम्बर आता है। शुक्लजी आगे लिखते हुए कहते है – "यदि मार्मिकता की दृष्टि भावप्रधान कहानियों को चुनें तो तीन मिलती है – 'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाई वाली'।

परन्तु बाद में ध्यान जाने पर लोगों ने उस पर किसी बांग्ला कहानी के साथ ही शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' के प्रभाव की चर्चा भी की। वह प्रभाव अपने में इतना स्पष्ट और मुखर था कि उसे मौलिक कहानी के बजाय रूपान्तरण माना गया।

आचार्य रामचन्द्र तिवारी ने हिन्दी के गद्य साहित्य में 'हिन्दी कहानियों का विकास' के सन्दर्भ में कहते है – "हिन्दी कहानियों का प्रारम्भ सभी इतिहासकारों ने एक स्वर से 'सरस्वती के प्रकाशन से ही स्वीकार किया

है। 'सरस्वती' के प्रकाशन के प्रारम्भिक दो वर्षों में हिन्दी कहानी की स्वरूप रचना हो रही थी। इस रचना में कई प्रकार के प्रयोग किए जा रहे थे। इन प्रयोगों में शेक्सपीयर के नाटकों के इतिवृत के आधार पर वर्णनात्मक शैली में लिखी गई कहानियाँ, जैसे 'इन्दुमती'। स्व-कल्पनाओं के रूप में रचित कहानियाँ, जैसे केशवप्रसाद सिंह का 'आपत्तियों का पहाड़', सुन्दर देश के काल्पनिक-चरित्रों को लेकर लिखी गई संवेदनात्मक कहानियाँ, जैसे गिरिजादत्त वाजपेयी-कृत 'पति का पवित्र प्रेम, काल्पनिक यात्रा-वर्णन की कहानियाँ, जैसे केशवप्रसाद सिंह-कृत 'चन्द्रलोक की यात्रा', 'आत्मकथा' रूप में प्रस्तुत कहानियाँ, उदाहरणस्वरूप कार्तिकप्रसाद खत्री की 'दामोदर राव की आत्मकहानी', संस्कृत नाटकों की आख्यायिका, जैसे पण्डित जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी-कृत 'रत्नावली' की आख्यायिका, घटना-प्रधान सामाजिक संवेदनात्मक कहानियाँ, जैसे पार्वतीनन्दन-कृत 'प्रेम का फुआरा' प्रमुख हैं।

उपर्युक्त प्रयोगों पर संवाद करते हुए डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल का अग्राकिंत मत विचारणीय है – "यहाँ यह भी स्पष्ट है कि इन समस्त प्रयोगों से निर्मित कोई भी कहानी शिल्प-विधि की दृष्टि से हिन्दी की मौलिक कहानी नहीं कही जा सकती, क्योंकि इन कहानियों में से कुछ भावपक्ष की दृष्टि से छायानुवाद है, भावानुवाद है और शेष कलापक्ष की दृष्टि से कहानी नहीं है, लेकिन यह अवश्य है कि इन प्रयोगात्मक कहानियों में से प्रायः अधिक कहानियाँ अपने लक्ष्य की ओर अवश्यमेव प्रेरित हैं। यही कारण है कि वस्तुतः इन्हीं की प्रेरणा और भावशक्ति के फलस्वरूप शीघ्र ही सरस्वती के तीसरे ही वर्ष मौलिक हिन्दी कहानी का आरम्भ हुआ। शिल्पनविधि की दृष्टि से हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी है, रामचन्द्र शुक्ल-कृत 'ग्यारह वर्ष का समय'।

इधर नवीन अनुसन्धानों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि सन् 1901 में 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का प्रकाशन 'छत्तीसगढ़मित्र' नामक पत्रिका में हुआ था, जिसके लेखक माधवराव सप्रे थे अतः यही हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी कही जा सकती है। हिन्दी कहानी के विकास का अध्ययन करने के लिए हम कथासम्राट प्रेमचंद को यदि केन्द्र बिन्दु मान लें तो उसे चार भागों में विभक्त कर सकते हैं – (i) प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी, (ii) प्रेमचंदयुगीन हिन्दी कहानी, (iii) प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी, (iv) नयी कहानी।

1.2.02. प्रारम्भिक कहानी

आधुनिक कलात्मक कहानी का आरम्भ आलोच्य युग में नहीं हुआ था। शुरुआती दौर के जो प्रकाशित संग्रह प्राप्त हुए हैं उनके नाम अग्राकिंत हैं – मुंशी नवलकिशोर द्वारा सम्पादित 'मनोहर कहानी' (1880) में संकलित एक सौ कहानियाँ, अम्बिकादत्त व्यास-कृत 'कथा कुसुम कलिका'(1888) राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द-कृत 'वामा मनोरंजन' (1886) और चण्डीप्रसाद सिंह-कृत 'हास्य रतन' (1886)। वे लोकप्रचलित तथा इतिहास पुराण-कथित शिक्षा, नीति या हास्यप्रधान कथाएँ हैं जिन्हें तत्कालीन लेखकों ने स्वयं लिखकर या लिखवाकर सम्पादन करके प्रकाशित करा दिया। शुरुआती दौर के स्वप्न-कथाओं को 'कहानी' की संज्ञा से सम्बोधित किया गया जो वास्तव में कथात्मक निबन्ध है जिसकी शुरुआत कथात्मक पद्धति पर हुआ है। जैसे-जैसे समाज विकसित हुआ वैसे-वैसे विकृतियाँ बढ़ने लगीं थी जिसकी छाया आगे की कहानियों में दिखाई देती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के सम्पादक डॉ॰ नगेन्द्र प्रारम्भिक कहानियों की चर्चा करते हुए लिखते हैं – "कहानियों के

अभाव में तत्कालीन पाठक लघु उपन्यासों, मध्यकालीन प्रेमकथाओं के गद्यात्मक रूपान्तरों, बैताल पच्चीसी और सिंहासन बत्तीसी की कहानियों, रसात्मक लोककथाओं और इन्हीं स्वप्न-कथाओं से अपनी मानसिक तुष्टि कर लेता है।" आचार्य रामचन्द शुक्ल ने ठीक ही लिखा है – "अंग्रेजी की मासिक पत्रिकाओं में जैसी छोटी-छोटी आख्यायिकाएँ या कहानियाँ निकला करती हैं वैसी कहानियों की रचना 'गल्प' के नाम से बंगभाषा में चल पड़ी थीं। ये कहानियाँ जीवन के बड़े मार्मिक और भावव्यंजक खण्डचित्रों के रूप में होती हैं। द्वितीय उत्थान की सारी प्रवृत्तियों का आभास लेकर प्रगट होने वाली 'सरस्वती' पत्रिका में इस प्रकार की छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे। अन्ततः सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कहानी ने नया जामा पहन लिया इसके पूर्व हिन्दी कहानी में कलात्मकता शून्य थी।

1.2.03. प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी

उपन्यास के साथ-साथ कहानी विधा की शुरुआत भी उर्दू भाषा में हुई है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में प्रेमचंद ने उर्दू में कहानी लिखना आरम्भ किया था। 1914-15 के पूर्व के काल को प्रेमचंद पूर्व युग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। पहले बताया जा चुका है कि सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कहानी का उदय हुआ। कहानी जब पूर्णरूप से अपने बाल्यावस्था में थी, उस समय के कथाकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, बंग महिला, माधवप्रसाद मिश्र, रामचन्द्र शुक्ल, लाला पार्वतीनन्दन, भगवानदास, गिरिजादत्त वाजपेयी आदि के नाम प्रमुख हैं। इस दौर के कुछ ऐसे भी लेखक हैं जो आगे चलकर प्रमुख कहानीकारों के श्रेणी में स्थापित हुए। ऐसे कथाकारों में बाबू वृन्दावनलाल वर्मा तथा जयशंकर प्रसाद के नाम उल्लिखित हैं। 1909 में 'इन्दु' नामक पत्रिका का प्रकाशन जयशंकर प्रसाद ने अम्बिकादत्त व्यास के सम्पादकत्व में आरम्भ किया। ऐसा माना जाता है कि 'इन्दु' का प्रकाशन 'सरस्वती' के विरोधी मंच के रूप में हुआ है। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी प्रेम को लगभग एक वर्जित क्षेत्र मानते थे, जबकि इन्दु में साधारणतः भावुक कहानियाँ छपती थीं। खासकर इन्दु पत्रिका में जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ भी प्रकाशित होती थी। बाद में इन कहानियों का संग्रह 'छाया' नाम से सन् 1912 ई. में प्रकाशित हुआ। राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी 'कानो में कंगना' भी 'इन्दु' में सन् 1913 में प्रकाशित हुई। सन् 1918 ई. में काशी से हिन्दी 'गल्पमाला' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसमें प्रसादजी के कहानियों के अतिरिक्त इलाचन्द जोशी एवं गंगा प्रसाद श्रीवास्तव की कहानियाँ भी छपने लगी थीं। प्रेमचंद की कुछ कहानियाँ भी सरस्वती में इस काल तक छपने लगी थीं। इन कथाकारों का विषय प्रेम, समाज सुधार, नीति और उपदेश से जुड़ा हुआ है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' इस काल के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार कहे जा सकते हैं। हिन्दी साहित्य-जगत् में गुलेरीजी सिर्फ तीन कहानियाँ लिखकर अमर हो गए। 'उसने कहा था, 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा'। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गुलेरीजी की कहानी 'उसने कहा था' पर मुग्ध होकर लिखा है – "संस्कृत के प्रकाण्ड प्रतिभाशाली विद्वान् हिन्दी के अनन्य उपासक श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' संवत् 1972 अर्थात् सन् 1915 की 'सरस्वती' में छपी थी। इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ सम्पुटित है। घटना इसकी ऐसी है, जैसी बराबर हुआ करती है, पर इसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गिक स्वरूप

झाँक रहा है, केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की बीभत्स विवृति नहीं है।"

'उसने कहा था' की विशेषता बताते हुए कहानी समीक्षक मधुरेश हिन्दी कहानी के विकास में लिखते हैं – "उसने कहा था प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई कहानी है, जो सन् 14 में उसके आरम्भ होने के बाद ही लिखी गई। गुलेरीजी ने युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिए बिना ही सैनिकों की दिनचर्या और सैनिक कार्रवाई का जैसा जीवन्त वर्णन किया है, उन वर्णनों की चित्रात्मक शैली का इस कहानी की सफलता में बहुत बड़ा योगदान है।" 'उसने कहा था' वस्तुतः हिन्दी की पहली कहानी है, जो शिल्प-विधान की दृष्टि से हिन्दी कहानी को एक झटके में ही प्रौढ़ बना देती है।"

कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह अपने युग की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जा सकती है। कहानी का मूल विषय है – आदर्श प्रेम, जो त्याग और बलिदान के लिए प्रेरित करता है। इस दृष्टि से भी यह सशक्त एवं प्रभावपूर्ण कहानी मानी गई है।

हिन्दी कथा-यात्रा के प्रथम चरण में कहानी अभी बाल्यावस्था में थी। प्रेमचंद के आगमन से पूर्व हिन्दी कहानी का कोई सशक्त रूप नहीं उभर पाया था, किन्तु अपवाद रूप में 'गुलेरीजी' और 'प्रसादजी' की कहानियों को लिया जा सकता हैं। इस विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी कहानी का विकास लगभग 1900 ई. से प्रारम्भ हुआ और धीरे-धीरे उसका मौलिक स्वरूप एवं स्वतन्त्र सत्ता विकसित हुई। 'उसने कहा था' कहानी को हिन्दी कहानी के विकास के प्रथम सोपान की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है।

1.2.04. प्रेमचंद-युग, हिन्दी कहानी का नवोन्मेष

प्रेमचंद हिन्दी के युग प्रवर्त्तक कहानीकार माने जाते हैं। पहले वे 'नवाब राय' के नाम से उर्दू में लिखते थे। उर्दू में लिखा हुआ उनका कहानी-संग्रह 'सोजे वतन' 1907 ई. में प्रकाशित हुआ था। स्वातन्त्र्य भावना से ओत-प्रोत होने के कारण इस कहानी संकलन को अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था। कालान्तर में वे हिन्दी में प्रेमचंद नाम से लिखने लगे और उनका यह नाम कथा साहित्य में अमर हो गया। उनकी पहली हिन्दी कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् 1916 में प्रकाशित हुई और अन्तिम 'कफन' सन् 1936 में। अतः इस काल को प्रेमचंद युग कहना समीचीन प्रतीत होता है। मुंशी प्रेमचंद ने अपने जीवनकाल में लगभग 300 कहानियों की रचना की जो 'मानसरोवर' के आठ खण्डों में संकलित हुई है। कहानी को जीवन का अंग मानने वाले प्रेमचंद ने कहा है – "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।"

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों सुजान भगत, मुक्तिमार्ग, पंच परमेश्वर, शतरंज के खिलाड़ी और 'महातीर्थ' को मनोवैज्ञानिकता के किसी रहस्य से गुँथा हुआ माना है। प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक घटना, अनुभूति और मनोवैज्ञानिकता के पुट का मिश्रण मिलता है परन्तु वे आदर्श को सदैव साथ लेकर चलते हैं। यह मोहभंग अन्ततः कफन काल की कहानियों में हुआ है। प्रेमचंद युग में कहानियों के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। कुछ

विद्वान् इस युग के कहानियों के निम्नलिखित रूप बताते हैं – चरित्रप्रधान कहानियाँ, वातावरणप्रधान कहानियाँ, कथानकप्रधान कहानियाँ और कार्यप्रधान कहानियाँ। इनका सामान्य परिचय इस प्रकार है –

i. **चरित्रप्रधान कहानियाँ** : डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने 'हिन्दी का गद्य साहित्य' नामक ग्रन्थ में हिन्दी कहानियों के विकास-क्रम के सन्दर्भ में लिखा है – "चरित्र-प्रधान कहानियों में लेखक का प्रमुख लक्ष्य किसी चरित्र का सुन्दर चित्रण होता है। कहानी की छोटी सीमा में चरित्र के किसी एक अंग को इस कुशलता से चरित्र किया जाता है कि सारा चरित्र स्पष्ट हो जाय।" प्रेमचंद की अधिकतर कहानियाँ चरित्रप्रधान हैं। आत्माराम, बड़े घर की बेटी, बाँका गुमान, दफ्तरी, बूढ़ी काकी, सारंधा, मुक्तिमार्ग, अग्नि समाधि आदि उनकी चरित्रप्रधान कहानियाँ है।

ii. **वातावरणप्रधान** : "वातावरणप्रधान कहानी का उद्देश्य जीवन की किसी एक प्रमुख भावना के प्रेरक उपादानों को कथानक के विकास का मूलकारण बनाकर कहानी का विकास करना है। लेखक इन उपादानों को इतनी बारीकी से उपस्थित करता है कि वे सजीव होकर भावना को संवेदित करने लगते हैं। हिन्दी में वातावरण प्रधान कहानी लेखकों में 'प्रसाद', 'सुदर्शन' तथा 'गोविन्दवल्लभ पन्त' प्रमुख है। चण्डीका प्रसाद हृदयेश तथा राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह ने भी अनेक वातावरण-प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। प्रसाद की 'आकाशदीप', प्रतिध्वनि, बिसाती, स्वर्ग के खण्डहर में, हिमालय का पथिक, समुद्र सन्तारण आदि उच्चकोटि की वातावरण प्रधान कहानियाँ मानी गई हैं।

iii. **कथानकप्रधान कहानियाँ** : चरित्रों और परिस्थितियों के सम्बन्ध को दर्शाने वाली कहानियों को कथानकप्रधान कहानी की श्रेणी में रखा गया है। कथानकप्रधान कहानियों के हस्ताक्षर विश्वम्भरनाथ शर्मा, ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी को माना जाता है।

iv. **कार्यप्रधान कहानियाँ** : कार्यप्रधान कहानियों में कार्य को प्रमुखता से स्थान दिया जाता है जो शुरू से अन्त तक चलती है जिसके प्रमुख कथाकार गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियाँ तथा दुर्गाप्रसाद खत्री की वैज्ञानिक कहानियाँ इसी कोटि की हैं। प्रेमचंद युग में उपर्युक्त के अतिरिक्त हास्य एवं व्यंग्यप्रधान कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, प्राकृतवादी कहानियाँ तथा प्रतीकवादी कहानियाँ भी प्रचलन में थीं। वर्तमान में कहानी को अनुभूति की एक इकाई के रूप में देखने की बात की जा रही है। जैसे-जैसे कहानी विकसित होती गई वैसे-वैसे उसमें बदलाव आता गया। डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है – "हिन्दी में कहानी प्रकारों के विकास के साथ ही शैली रूपों में भी विकास हुआ। धीरे-धीरे कहानी की प्रमुख पाँच शैलियाँ प्रचलित हुई। सर्वाधिक प्रचलित 'वर्णनात्मक शैली' है। इस शैली में स्वयं लेखक सम्पूर्ण कहानी सुना जाता है। दूसरी शैली 'संलाप शैली' जिसका प्रचलन अपेक्षाकृत कम है। इसमें कथा और चरित्र दोनों का विकास वार्तालाप के सहारे किया जाता है। 'आत्म-चरितात्मक शैली' में भी कहानियाँ लिखी गई हैं। इसमें लेखक अपने को उत्तम पुरुष में रखकर सम्पूर्ण कहानी प्रस्तुत करता है। इनके अतिरिक्त 'पत्र-शैली' तथा 'डायरी शैली' में भी कहानियाँ लिखी गई हैं।"

प्रेमचंद युग के प्रौढ़ावस्था में हिन्दी कहानियाँ नई दिशा को प्राप्त होने लगी थीं। प्रेमचंद की कहानियों में अन्त तक आदर्शवाद के प्रति मोह बना रहा। यथार्थ समस्याओं को लेकर भी उनका समाधान वे आदर्शवादी ढंग से ही करते रहे क्योंकि प्रेमचंद सुधारवादी युग के कलाकार थे। सुधारवादी युग के पश्चात् संघर्ष एवं संक्रान्तियुग सामने आया। कहानियों में मध्यमवर्ग की समस्याएँ उठाई जाने लगी। कला का झुकाव आदर्शवादी परम्परा से आगे बढ़कर यथार्थ एवं वैज्ञानिक यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुआ। इन नवीन संकेतों एवं सत्यों को लेकर कहानी क्षेत्र में नये कथाकार आगे बढ़े। इन लेखकों में जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी, यशपाल, अज्ञेय और अश्क महत्त्वपूर्ण हैं।

1.2.05. प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी कहानी

सन् 1936 से 1950 तक की कहानी को कथा-जगत् में प्रेमचन्दोत्तर कहानी काल के रूप में जाना जाता है। प्रेमचन्दोत्तर कहानी किसी एक दिशा की ओर अग्रसर नहीं हुई अपितु विविध दिशाओं में उसका विकास हुआ। कहानी इस काल की केन्द्रीय विधा रही है अतः उसके जीवन और जगत् के विविध पक्षों को अपनी परिधि में समेटने का प्रयास किया। इस काल में एक ओर तो प्रगतिवादी विचारधारा से अनुप्राणित कहानीकारों ने प्रगतिवादी कहानियाँ लिखीं तो दूसरी ओर मनोविश्लेषणात्मक कहानीकारों ने ऐसे विषयों पर कहानियाँ लिखीं जिनमें व्यक्ति मन की आन्तरिक परतों को खोलकर देखा गया था।

प्रगतिवादी कथाकारों में सर्वप्रमुख हैं – यशपाल, जिन्होंने मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित होकर अनेक कहानियों की रचना की। वर्ग-संघर्ष, शोषण, सामाजिक एवं भौतिक रूढ़ियों पर आक्रोश उनकी कहानियों के विषय रहे हैं। यशपाल की लिखी कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्रमुख हैं – वो दुनिया, पिंजड़े की उड़ान, फूलों का कुर्ता, तर्क का तूफान एवं चक्कोर कल्ब आदि। यशपालजी के कथा-शिल्प पर टिप्पणी करते हुए डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र ने लिखा है – "कथा-शिल्प और कथ्य की दृष्टि से यशपालजी प्रेमचंद के बहुत नजदीक हैं परन्तु वे अपनी कहानी को प्रेमचंद की तरह समस्या का समाधान देने वाले किसी आदर्श बिन्दु पर नहीं पहुँचाते, अपितु यथार्थ की कठोरता के तीखे व्यंग्य का बोध भर करा देते हैं।" रांगेय राघव, नागार्जुन, अमृतराय, मन्मथनाथ गुप्त आदि इसी परम्परा के अन्य कथाकार है।

मनोविश्लेषणवादी कहानी लेखकों में अज्ञेय, इलाचन्द जोशी एवं जैनेन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं। अज्ञेय ने व्यक्ति के परिवेश और संघर्ष को अपनी कहानियों में उकेरा है। उनकी कहानियों में मनोविश्लेषण के साथ-साथ प्रतीकात्मकता एवं बौद्धिकता का प्रभाव भी है। अज्ञेय ने कहानी को बौद्धिक एवं वैचारिक आधार प्रदान किए तथा प्रतीकों एवं बिम्बों के प्रयोग में वृद्धि की। अज्ञेय की कुछ प्रसिद्ध कहानियों के नाम है – रोज, खितीन बाबू, पुलिस की सिटी, हजामत का साबुन, कोठरी की बात, गैंग्रीन, पठार का धीरज आदि। उनके कई कहानी-संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं, यथा – विपथगा, परम्परा, शरणार्थी, कोठरी की बात, जयदोल, अमरवल्लरी और ये तेरे प्रतिरूप।

जैनेन्द्र के कहानियों में व्यक्ति-मनोविज्ञान के दर्शन होते हैं। मानवीय दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण जैनेन्द्र की कहानियों में प्रमुखता से हुआ है। वे प्रसाद की भाँति आदर्श पात्रों को जन्म नहीं देते अपितु यथार्थ धरातल से उठाए गए पात्रों को अपनी कहानी का विषय बनाते हैं। उनके पात्र अपने पास-पड़ोस से उठाए हुए मानव-चरित्र हैं। जैनेन्द्र की कहानियों का शिल्प भी अलग है क्योंकि कहानी की मूल संवेदना अपनी उष्णता के साथ उनमें अन्त तक व्याप्त रहती है। उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं – पत्नी, मास्टर साहब, परख, एक रात, ध्रुवयात्रा, ग्रामोफोन का रिकार्ड, पानवाला आदि। मनोविश्लेषणवादी परम्पगरा को गति प्रदान करने वाले एक अन्य कहानीकार हैं – इलाचन्द जोशी, जिनकी कहानियाँ मनोविज्ञान की दृष्टि से 'केस हिस्ट्री'-सी प्रतीत होती हैं। जोशी की कहानियों में दमित काम-वासना, अहं, कुण्ठा आदि का चित्रण किया गया है तथा इनमें घटनाओं की अपेक्षा चरित्र पर विशेष बल दिया गया है। जोशी की प्रमुख कहानियाँ हैं – रोगी मिस्त्री, परित्यक्ता, चौथे विवाह की पत्नी, प्रेतात्मा आदि। उनके कुछ कहानी संग्रहों के नाम हैं – खण्डहर की आत्माएँ, डायरी के नीरस पृष्ठ, आहुति और दिवाली।

प्रेमचन्दोत्तर कहानीकारों में से एक वर्ग उन कहानीकारों का है, जिन्हें यथार्थवादी कहानीकार कहा जा सकता है। इन कथाकारों ने आधुनिक समाज की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का उद्घाटन यथार्थपरक दृष्टिकोण से किया है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, रमाप्रसाद पहाड़ी, देवीदयाल चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, जानकीवल्लभ शास्त्री, रामवृक्ष बेनीपुरी, विष्णु प्रभाकर, राधाकृष्ण आदि इसी वर्ग के कहानीकार हैं। इनमें से कुछ कहानीकारों के संकलन इस प्रकार हैं – चन्द्रगुप्त विद्यालंकार-कृत चन्द्रकला अमावस, भय का राज्य, रमाप्रसाद पहाड़ी-कृत सफर, अधूरा चित्र, सड़क पर। इन संकलनों की कहानियों में आधुनिक समाज की अनैतिकता, मूल्यहीनता एवं उच्छृंखलता का सुन्दर निरूपण किया गया है। कहानीकारों के एक वर्ग ने अपनी कहानियों में कामवासना, सौन्दर्यलिप्सा एवं यौन समस्याओं का चित्रण स्वच्छन्द रूप में किया है। इन्हें यौनवादी कथाकार कहा जा सकता है। इस वर्ग के प्रमुख कहानीकारों में आर.सी. प्रसाद सिंह-कृत काल रात्रि, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'-कृत छोटा डॉक्टर, किशोर साहू-कृत टेसू के फूल, मधुसूदन-कृत उजाले से पहले, ब्रजेन्दक नाथ गौड़-कृत बिखरी कलियाँ आदि के नाम लिए जा सकते हैं। कुछ अन्य कहानीकारों ने युद्ध, क्रान्ति, शिकार आदि साहसिक विषयों को अपनी कहानियों का विषय बनाया। प्रभाकर माचवे ने द्वितीय विश्वयुद्ध से सम्बन्धित घटनाओं पर कहानियाँ लिखकर संकलन तैयार किया। पण्डित श्रीराम शर्मा ने 'शिकार' कथाओं की शुरुआत की किन्तु उनकी शिकार कथाएँ वास्तविक घटना पर आधारित होने के कारण 'रिपोर्ताज' के अधिक निकट हैं, कहानी के तत्त्व इनमें अत्यल्प हैं। हास्य-व्यंग्य से भरपूर कहानियों के लेखक के रूप में जीपी. श्रीवास्तव ने प्रसिद्धि प्राप्त की। उन्होंने शिष्ट परिहास द्वारा समाज के खोखलेपन की खिल्ली उड़ाई है। हरिशंकर परसाई, अमृतलाल ने समाज के खोखलेपन की खिल्ली उड़ाई है। हरिशंकर परसाई, अमृतलाल नागर और अन्नपूर्णानन्द की कहानियों में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

उक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्दोत्तर कथाकारों में मनोविश्लेषण प्रवृत्ति की प्रधानता है। वर्ग-संघर्ष एवं यथार्थवाद की ओर भी कुछ कहानीकारों का रुझान रहा है तथा उन्होंने प्रतीकात्मकता एवं सांकेतिकता का सहारा भी लिया है। इस काल में प्रेम, रोमांस एवं यौन समस्याओं को भी कहानीकारों ने

अपनी कहानियों की विषयवस्तु बनाया है। युगीन परिवेश को पूर्णतः व्यक्त करने में इस काल की कहानी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। कहानी के शिल्प ने भी इस काल में उत्तरोत्तर प्रगति की है। अब कहानी में घटना विरलता के साथ-साथ व्यक्ति चरित्र पर विशेष बल दिया है।

1.2.06. नयी कहानी

सन् 1950 के बाद की कहानी विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से पूर्ववर्ती कहानी से भिन्न है। पुरानी कहानी में जहाँ पूर्वाग्रह है वहीं नयी कहानी पूर्वाग्रह से मुक्त है। पुराने कहानीकार ने अपनी आँखों पर समाजवादी, नैतिकतावादी, रूमानी या मनोविश्लेषणवादी चश्मा लगाकर जीवन को देखा किन्तु नये कहानीकार ने सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जीवन को यथार्थ रूप में देखने समझने का प्रयास किया। उसकी कहानी भोगे हुए यथार्थ से जुड़ी है इसलिए वह अधिक प्रामाणिक है। आधुनिक मानव के जीवन को विविध कोणों से देखकर उसका सही परिप्रेक्ष्य में चित्रण करने का प्रयास इन कहानीकारों ने किया है। नयी कहानी के प्रवर्तकों ने यह घोषित किया कि नयी कहानी का लक्ष्य नए भावबोध या आधुनिकता बोध पर आधारित जीवन के यथार्थ का चित्रण करना है। इस तरह हम कह सकते हैं कि नया कहानीकार न अतीत के आदर्शों से जुड़ा है और न भविष्य के सपनों से। यह वर्तमान में और वर्तमान भी केवल अपने भोगे हुए यथार्थ को अपनी दृष्टि का केन्द्र बनाता है। इस प्रकार नयी कहानी में व्यक्तिवाद, यथार्थवाद, अनुभूतिवाद एवं आधुनिकतावाद की प्रतिष्ठा हुई जिसके फलस्वरूप वह जीवन, समाज और राष्ट्र के व्यापक परिवेश से कटकर कहानीकारों के वैयक्तिक जीवन की निजी सीमाओं से आबद्ध हो गई इसीलिए नयी कहानी में व्यक्तिनिष्ठ अहं, कामचेतना, यौनाचार, नारी-पुरुष सम्बन्धों का चित्रण प्रमुख रूप से हुआ है। नए कहानीकार का क्षेत्र मुख्यतः आधुनिक उच्च-मध्यमवर्ग है जिसमें परम्परागत आस्था एवं नैतिक मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन का ही ह्रास दृष्टिगोचर होता है। 'नयी कहानी' हिन्दी का पहला रचनात्मक आन्दोलन था। 'नयी कहानी' के कहानीकारों में एक ओर निकट अतीत में भोगी हुई परतन्त्रता की पीड़ा थी, तो दूसरी ओर आजादी के मिलते ही साम्प्रदायिक दंगों की पीड़ा। अतः कहानीकारों ने यथार्थ को वैयक्तिक स्तर पर अनुभव किया। इस कारण कहानी का यथार्थ विस्तृत होने पर भी उसका चित्रण व्यक्तिगत तथा पारिवारिक सम्बन्धों के धरातल पर ही अधिक किया गया।

नयी कहानी मुख्यतः मध्यमवर्ग पर आधारित है। आन्दोलन की शुरुआत में ग्राम्यांचल कहानियों पर जोर दिया गया जिसमें शिवप्रसाद सिंह, रेणु, मार्कण्डेय मुख्य कथाकार के रूप में दिखे। उपर्युक्त की तुलना में कमलेश्वर 'कस्बों के कहानीकार' माने गए। तत्पश्चात् नयी कहानी खुद-ब-खुद कस्बे और शहर पर केन्द्रित हो गई। बाद में ग्रामीण पृष्ठभूमि के कुछ लेखक शहर आए और शहर को रोमानी दृष्टि से व्यक्त किया। अन्ततोगत्वा 'नयी कहानी' मध्यगवर्गीय यथार्थ पर केन्द्रित कहानी है। मधुरेश के शब्दों में " 'नयी कहानी' ने राजनीति के प्रति उदासीनता और उपेक्षा का रुख़ अपनाया। राजनीति का जो स्वरूप सामने आया, उसमें उसके कर्णधारों के प्रकार के आदर और विश्वास की कोई गुँजाइश ही नहीं रह गई थी। यही कारण है कि नयी कहानी में नेताओं और उनसे जुड़े व्यक्तियों का उल्लेख हमेशा ही नकारात्मक रूप में व्यंग्यात्मक ढंग से हुआ है। 'नयी कहानी' का नेतृत्व जिन लेखकों के हाथों में था, वे भले ही इस राजनैतिक परिदृश्य के प्रति उदासीन दिखाई देते हों, लेकिन इस राजनीति में

विश्वास और आस्था के कारण ही 'नयी कहानी' की दो धाराएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। 'नयी कहानी' में विकास की प्रक्रिया निरन्तर बनी रही है। एक ओर जहाँ 'नयी कहानी' पुरानी कहानी की जड़वादी स्थिति की प्रतिक्रिया में जीवन के यथार्थ से जुड़कर चली वही दूसरी ओर इसकी अपनी यात्रा में भी उसने निरन्तर प्रगति की है।" 'नयी कहानी' के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए कमलेश्वकर कहते हैं – "पुरानी और नयी कहानी के बीच बदलाव का बिन्दु है 'नई वैचारिक दृष्टि'।"

नयी कहानी आन्दोलन के प्रमुख कहानीकार और उनके द्वारा रचित प्रमुख कहानियाँ निम्नलिखित हैं –

शिवप्रसाद सिंह	-	आर-पार की माला, मुर्दा सराय, इन्हें भी इंतज़ार है
मार्कण्डेय	-	महुए का पेड़, भूदान, हंसा जाई अकेला, माही
फणीश्वरनाथ रेणु	-	लाल पान की बेगम, तीसरी कसम
कमलेश्वर	-	बयान, राजा निरबंसिया, तलाश
निर्मल वर्मा	-	परिन्दे
अमरकान्त	-	ज़िंदगी और जोंक
राजेन्द्र यादव	-	टूटना
मोहन राकेश	-	मिसपाल

नयी कहानी को समृद्ध करने में हिन्दी कथा लेखिकाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, शिवानी, मेहरुन्निसा परवेज एवं रजनी पन्निकर जैसे कहानी लेखिकाओं ने पति-पत्नी एवं नारी-पुरुष सम्बन्धों को अपनी कहानियों में प्रमुखता से अभिव्यक्ति किया है। 'मैं हार गई', 'त्रिशंकु', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'यही सच है' आदि मन्नू भण्डारी के प्रमुख कहानी संकलन हैं। नए कहानीकारों में कुछ और चर्चित नाम है – महीप सिंह, दिनेश पालीवाल, राजकुमार भ्रमर, नरेन्द्र कोहली, गोविन्द मिश्र, श्रद्धा कुमार, ममता कालिया, निरूपमा सोबती, दीप्ति खण्डेलवाल आदि।

1.2.07. अकहानी

नयी कहानी की छाया 1960 तक प्रतिभासित होती है। इसके बाद उस पर यौन प्रसंगों की अधिकता, क्षणवादी भोगदृष्टि, अस्तित्ववादी, दर्शन एवं शिल्प सजगता के आरोप लगने लगे। कहानी में फिर बदलाव की बयार बहने लगी। तत्पश्चात् अनेक कहानी आन्दोलनों का उद्भव हुआ। अकहानी आन्दोलन वस्तुतः तत्कालीन मूल्यों तथा कथा-शिल्प दोनों के अस्वीकार का आन्दोलन है। अकहानी के प्रमुख हस्ताक्षरों में ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, कृष्णबलदेव वैद्य, श्रीकान्त वर्मा, दूधनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल के नाम लिए जा सकते हैं। इन कहानीकारों में जीवन-जगत् के यथार्थ की विविधता है, यौन प्रसंगों की अधिकता नहीं। अकहानी में यद्यपि विद्रोह का स्वर है किन्तु यौन सन्दर्भों तक सीमित रहने के कारण वह विकृत हो गया। अकहानी का प्रवर्त्तक गंगाप्रसाद विमल को कहा जाता है। गंगाप्रसाद विमल' का मत है – "अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा

किसी भी प्रकार की मूल्य-स्थापना का अस्वीकार है।" इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं कि "अकहानी कहानी के धारणागत प्रतीक से अलग एक अस्थापित कथाधारा है, जो सभी वर्गीकरणों, मूल्यांकन के आधारों और पूर्व समीक्षाओं को अस्वीकार करती है।"

अकहानी का शिल्प भी बदला हुआ है। उसमें पात्रों के नाम ग्राम का परिचय न देकर 'वह', 'मैं', 'तुम' आदि प्रयोगों की अधिकता है। सेक्स केन्द्रित होने के कारण 'अकहानी' आन्दोलन लम्बा सफर तय नहीं कर पाया। नैतिक वर्जनाओं और निषेधों के प्रति कहानीकारों ने आक्रामक रुख़ अख्तियार किया है। कुछ प्रसिद्ध अकहानियों के नाम इस प्रकार हैं –

रीछ	-	दूधनाथ सिंह
छलांग	-	ज्ञानरंजन
त्रिकोण	-	कृष्ण बलदेव वैद्य
विध्वंस	-	गंगाप्रसाद विमल

1.2.08. सचेतन कहानी

सचेतन कहानी से जुड़े हुए कहानीकारों में सर्वाधिक चर्चित नाम महीप सिंह का है। महीप सिंह को सचेतन कहानी का प्रवर्त्तक कहा जाता है। उन्होंने सचेतन दृष्टि को एक गतिशील स्थिति माना है, जो हमारे सक्रिय जीवन बोध पर निर्भर है। डॉ॰ रामदरश मिश्र के अनुसार – "सन् साठ के बाद की अनेक अश्लील कहानियों की भीड़ में एक सामूहिक स्वर में रचनात्मकता के स्तर पर उनका प्रतिवाद करने का प्रयास सचेतन कहानी को एक ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान करता है।" सचेतन कहानीकार की दृष्टि समाज और व्यक्ति के ऊपरी सम्बन्धों पर ही नहीं अपितु आन्तरिक सम्बन्धों पर भी पहुँचती है। उनके विचार से सचेतन दृष्टि व्यक्तिपरक न होकर सामाजिक है तथा काफी हद तक सन्तुलित और सामयिक है। सातवें दशक की कहानी में यह दृष्टि जिन कथाकारों में दिखाई दी उनके नाम हैं – महीप सिंह, वेदराही, रामदरश मिश्र, मनहर चौहान, रामकुमार भ्रमर, बलदेव वंशी। सचेतन कहानियाँ में प्रमुख कहानियाँ निम्नलिखित हैं –

सीमा	-	रामदरश मिश्र
एक खुला आकाश	-	बलदेव वंशी
युद्धमन	-	महीप सिंह
दरार	-	वेद राही
उसने नहीं कहा था	-	शैलेश मटियानी
गिरिस्तान	-	रामकुमार भ्रमर
चीले	-	हिमांशु जोशी

1.2.09. सहज कहानी

सचेतन कहानी के उपरान्त सहज कहानी का उद्भव हुआ। 'सहज कहानी' के प्रवर्त्तक अमृत राय ने 'नई कहानियाँ' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया जो इलाहाबाद से प्रकाशित होती थी। सहज कहानी का नारा देने वाले अमृत राय इस कहानी आन्दोलन को बहुत दूर तक नहीं ले जा सके। यह नारा आन्दोलन का रूप न ले सका। अपने से पूर्व बनाए गए साँचे का विरोध कर अमृतराय ने अपनी बात बलपूर्वक प्रस्तुत की परन्तु उन्हें सहज कहानी लिखने वाले नये लेखक उपलब्ध नहीं हुए।

1.2.10. समानान्तर कहानी

सहज कहानी की असफलता के बाद 'कमलेश्वर' ने 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से 'समानान्तर कहानी' नामक आन्दोलन चलाया। कमलेश्वर ने अक्टूबर 1974 से 'सारिका' नामक कहानी पत्रिका के 'समानान्तर कहानी विशेषांकों' का दौर प्रारम्भ किया जो मूलतः 1972 से ही प्रारम्भ हो चुका था। इस पत्रिका ने आम आदमी को प्रतिष्ठित करने पर जोर दिया। सारिका पत्रिका में छपने वाले कहानीकार अरविंद, आशीष सिन्हा, इब्राहिम शरीफ, कामतानाथ, जितेन्द्र भाटिया, दामोदर सदन, निरूपमा सोबती, मधुकर सिंह, मृदुला गर्ग, सुधा अरोड़ा, शीला रोहेकर, विभु कुमार, श्रवण कुमार, सतीश जमाली सुदीप, सन्त कुमार, से.रा. यात्री, रमेश उपाध्याय आदि हैं। डॉ० विनय ने समानान्तर कहानी में स्थापित होने वाले आम आदमी की व्याख्या करते हुए कहा है – "आम आदमी सिर्फ आम आदमी है, वह किसान, मजदूर, क्लर्क, सर्वहारा वर्गों में बँटा हुआ न होकर एक संश्लिष्ट व्यक्ति (व्यक्तित्व) है।

समानान्तर कहानीकार अपने समय के समानान्तर सोचता और लिखता है। इसके केन्द्र में आम आदमी है अर्थात् समानान्तर कहानी आन्दोलन आम आदमी की लड़ाई का पक्षधर है। यह आन्दोलन जन संघर्ष के प्रति समर्पित उन रचनाकारों का है जो मात्र द्रष्टा न होकर संघर्ष में भागीदार बनना चाहते हैं। यह कहानी आन्दोलन राजनीति के महत्त्व को स्वीकारता हुआ उसे सांस्कृतिक धरातल पर ले जाता है। समानान्तर कहानी की वैचारिकता बहुत स्पष्ट है तथा उसमें भावुकता के लिए स्थान नहीं है। इनमें अधिकतर कहानियाँ नारी मुक्ति केन्द्रित है। नौवें एवं दसवें दशक में कहानी आन्दोलनों से मुक्त हो गई। इस काल के प्रमुख कहानियाँ एवं कहानीकार हैं –

झुटपुटा	-	भीष्म साहनी
डायलिसिस	-	वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता
नंगा	-	शैलेश मटियानी
समागम	-	मृदुला गर्ग
साँझ बाली	-	सूर्यबाला
नील गाय की आँखें	-	नमिता सिंह
ललमुनियाँ	-	मैत्रेयी पुष्पा
बूँद	-	मंजुल भगत

1.2.11. जनवादी कहानी

जनवादी मंच की आधारशिला का निर्माण सन् 1977 में दिल्ली विश्वविद्यालय में हुआ। एक साल के बाद सन् 1978 में इसी मंच के तत्त्वावधान में हिन्दी लेखकों या कवियों का एक शिविर आयोजित किया गया। इस शिविर में दस वर्ष अर्थात् (1967 से 1977) ई. तक के जनवादी साहित्य का मूल्यांकन किया गया। जनवादी लेखक मंच के प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन के साथ ही हिन्दी कहानी क्षेत्र में जनवादी आन्दोलन ने सक्रियता के साथ-साथ तीव्र गति से अपना विस्तार किया। जनवादी लेखक मंच का प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन फरवरी 1982 ई. दिल्ली में हुआ। जनवादी कहानी आन्दोलन की शुरुआत कथासम्राट प्रेमचंद के 'कफन' और 'पूस की रात' जैसी कहानियों से माना जाता है जबकि इन कहानियों का समय क्रमशः 1936 तथा 1930 है। ठीक रूप से जनवादी कहानी का क्रमबद्ध विकास यशपाल की 'परदा', रांगेय राघव की 'गदल', भैरवप्रसाद गुप्त की 'हड़ताल', मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', शेखर जोशी की 'बोझ' जैसी कहानियों में देखा गया। तत्पश्चात् ज्ञानरंजन और काशीनाथ सिंह जैसे कहानीकारों ने जनवादी मंच को आगे बढ़ाने में सक्रिय भूमिका निभाई । रमेश उपाध्याय, रमेश बतरा, हेतु भारद्वाज, नमिता सिंह, असगर वजाहत, धीरेन्द्र अस्थाना, उदय प्रकाश आदि कहानीकारों ने इसे विस्तार किया। मार्क्सवादी विचारधारा को आधार बनाकर चलने वाली जनवादी कहानी का वैचारिक धरातल मुख्यतः किसानों, मजदूरों, पीड़ितों, दलितों और असहायों का जीवन-संघर्ष था। कुछ कहानीकारों का शिल्प कमजोर पड़ने के कारण उनके विचारधारा को महत्त्व देना था। अन्ततः जनवादी कहानी ने वैचारिक आग्रह से मुक्तक होकर दलितों, पीड़ितों के जीवन-संघर्ष को वाणी दी है।

1.2.12. सक्रिय कहानी

सक्रिय कहानी के सूत्रधार के रूप में राकेश वत्स का नाम उल्लेखनीय है। सक्रिय कहानी की स्थापना सन् 1979 ई. में 'मंच' पत्रिका के माध्यम से हुआ। राकेश वत्स ने सक्रिय कहानी की मूल प्रतिज्ञा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं – "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी। उस समझ और अहसास की कहानी जो आदमी को बेवसी, निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर स्वयं अपने भीतर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है।" सक्रिय कहानी के मुख्य कहानीकार जिन्होंने सक्रिय कहानी को सुदृढ़ किया निम्नलिखित हैं – रमेश बतरा, चित्रा मुद्गल, सच्चिदानन्द धूमकेतु, सुरेन्द्र सुकुमार, धीरेन्द्र अस्थाना आदि। सक्रिय कहानी की अन्य प्रमुख कहानियाँ हैं – 'अन्तिम प्रजापति', 'अभियुक्त', 'शुरुआत', 'एक बुद्ध और' आदि। सक्रिय कहानीकारों ने समाज में शोषण के जितने स्रोत और स्तर हैं, सबको अपने सामने रखा है और शोषित का पक्ष लेते हुए शोषण, भ्रष्टाचार, अन्याय को प्रश्रय देने वाली व्यवस्था का विरोध किया है।

1.2.13 समकालीन कथाकार

हिन्दी के प्रमुख समकालीन कथाकारों में नरेन्द्र कोहली, भीमसेन त्यागी, मधुकर सिंह, सतीश जमाली, बलराम, योगेश गुप्त, बटरोही, उदय प्रकाश, रमेश उपाध्याय, योगेश कुमार, स्वयं प्रकाश शिवमूर्ति, प्रियवंदा, जयनन्दन, अखिलेश, संजय इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भीष्म साहनी	-	भाग्यरेखा, पहला पाठ, पटरियाँ, वाङ्चू, शोभायात्रा, डायन।
मुक्तिबोध	-	काठ का सपना, सतह से उठता आदमी।
अमरकान्त	-	ज़िंदगी और जोंक, देश के लोग, मौत का नगर, मिलन मित्र
राजेन्द्र यादव	-	देवताओं की मूर्तियाँ, खेल खिलौने, जहाँ लक्ष्मी कैद है, अभिमन्यु की आत्महत्या, छोटे-छोटे ताजमहल, किनारे से किनारे तक, टूटना, अपने पार
मोहन राकेश	-	इंसान के खण्डहर, नये बादल, जानवर और जानवर, एक और ज़िंदगी, फौलाद का आकाश
धर्मवीर भारती	-	मुर्दों का गाँव, स्वर्ग और पृथ्वी, चाँद और टूटे हुए लोग, बन्द गली का आखिरी मकान।
निर्मल वर्मा	-	जलती झाड़ी, पिछली गर्मियों में, बीच बहस में, कव्वे और कालापानी, परिन्दे।
फणीश्वरनाथ रेणु	-	ठुमरी, आदिम रात्री की महक, अग्निखोर, अच्छे आदमी।
शिवप्रसाद सिंह	-	आर-पार की माला, कर्मनाशा की हार, इन्हें भी इंतजार है, मुर्दासराय
मार्कण्डेय	-	पान फूल, पत्थर और परछाइयाँ, महुए का पेड़, हंसा जाई अकेला।
रघुवीर सहाय	-	रास्ता इधर से है, जो आदमी हम बना रहे हैं
गंगाप्रसाद विमल	-	विध्वंस, शहर में, बीच की दरार, अतीत में कुछ।
रमेश बक्षी	-	एक अमूर्त तकलीफ, तलघर।
रवीन्द्र कालिया	-	नौ साल छोटी पत्नी, काला रजिस्टर, गरीबी हटाओ।
रामदरश मिश्र	-	खाली घर, एक वह, दिनचर्या, सर्पदंश, बसन्त का दिन।
शेखर जोशी	-	कोसी का घटवार, साथ के लोग।
ज्ञानरंजन	-	फेंस के इधर-उधर, यात्रा, क्षणजीवी।
काशीनाथ सिंह	-	लोग बिस्तरों पर, सुबह का डर, आदमी नामा।
दूधनाथ सिंह	-	सपाट चेहरे वाला आदमी, सुखान्त, पहला कदम।
रमेशचन्द शाह	-	जंगल में आग, मुहल्ले का रावण, मानपत्र, थियेटर।
गोविन्द मिश्र	-	नये पुराने माँ-बाप, अन्तःपुर, रगड़ खाती आत्माएँ।
महीप सिंह	-	सुबह के फूल, उजाले के उल्लू, धिराव, कुछ और कितना।
माहेश्वर	-	स्पर्श, डी.पी. सिंह की डिस्पेंसरी, मास्टर सेवाराम की सपना।
विवेकी राय	-	नई कोयल, गूँगा जहाज, कालातीत।
संजीव	-	सफरनामा, भूमिका, प्रेतमुक्ति, दुनिया की सबसे हसीन औरत।
मिथिलेश्वर	-	बाबूजी, बन्द रास्ते के बीच, दूसरा महाभारत।

शानी	-	बबूल की छाँव, डाली नहीं फूलती, शर्त का क्या हुआ।
राकेश वत्स	-	अतिरिक्त तथा अन्य कहानियाँ, अन्तिम प्रजापति, अभियुक्त।
अब्दुल बिस्मिल्लाह	-	टूटा हुआ पंख, कितने कितने सवाल, रैन बसेरा।

1.2.14. महिला कथाकार

प्रेमचंद युग के उदय के साथ ही महिला कहानीकारों का भी उदय हुआ है। प्रेमचंद युग की महिला कथाकारों में उषादेवी मित्र, कमला चौधरी, सत्यवती मलिक, श्रीमती होमवती देवी आदि का नाम उल्लेखनीय है। उपर्युक्त लेखिकाओं ने कहानी में तत्कालीन सामाजिक सन्दर्भों को विषय बनाया है। महिला कहानीकारों ने सामाजिक सरोकार, स्त्री की दयनीय स्थिति, बेरोजगारी इत्यादि को उद्घाटित किया है। प्रमुख महिला कथाकारों का नाम निम्नलिखित हैं –

शशिप्रभा शास्त्री	-	धुली हुई शाम,अनुत्तरित, दो कहानियों के बीच
शिवानी	-	लाल हवेली, पुष्प हार, रथ्या, स्वयं सिद्धा
कृष्णा सोबती	-	बादलों के घेरे, सिक्का बदल गया
मन्नू भण्डारी	-	यही सच है, एक प्लेट सैलाब, तीन निगाहों की एक तस्वीर
उषा प्रियंवदा	-	ज़िंदगी और गुलाब के फूल, फिर बसन्त आया, एक कोई दूसरा
ममता कालिया	-	छुटकारा, सीट नं. 6, एक अदद औरत
दीप्ति खण्डेलवाल	-	कड़वे सच, धूप के अहसास, वह तीसरा
मृणाल पाण्डेय	-	दरम्यान, शब्दबेधी
मृदुला गर्ग	-	कितनी कैदें, टुकड़ा-टुकड़ा आदमी, डैफोडिल जल रहे हैं
चित्रा मुद्गल	-	लाक्षागृह, अपनी वापसी, इस हमाम में
चन्द्रकला त्रिपाठी	-	टोना मांगे ली माई, मुक्ति, आवाजें, हीरा जनम अमोल
मणिका मोहिनी	-	अभी तलाश जारी है, स्वप्न दंश, पारू ने कहा था
प्रतिमा वर्मा	-	एक सुबह और, बँधे पावों का सफर
उषा शर्मा	-	बर्फ, फूल देही की छत, सूरज सहमा-सा, मंथन, समाधान निर्णय
राजी सेठ	-	अन्धे मोड़ से आगे, तीसरी हथेली, यात्रा मुक्त
मंजुल भगत	-	गुलमोहर के गुच्छे, टूटा हुआ इन्द्र धनुष, सफेद कौआ

1.2.15. पाठ-सार

प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंद युग से आगे निकलने वाली हिन्दी कहानी अपने प्रौढ़ावस्था में पहुँच गई है। इसके मध्य हिन्दी कहानी की जमीन को उर्वरा बनाने में जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी, यशपाल, अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ अश्क का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नयी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समानान्तर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी समेत अनेक आन्दोलनों ने हिन्दी कहानी को समृद्ध किया है। हिन्दी कहानी ने गाँव, अंचल आदिवासी क्षेत्र, कस्बा, नगर, महानगर सभी के जीवन-संसार को अपने में समावेशित कर लिया है। कथाकारों का रचना कौशल पहले के अपेक्षा अधिक निखरा है। आज कहानी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखी जा रही है। आज

की कहानी जीवन के बाह्य विस्तार के साथ-साथ व्यक्ति के अन्तर्मन के गहन द्वन्द्व को रेखांकित करती है। यन्त्रीकरण, पूँजीवादी संस्कृति औद्योगिक सभ्यता के बावजूद आज का हिन्दी कथाकार अत्यन्त संवेदनशील तथा मूल्यों की रक्षा करने वाला है। मनुष्य का जीवन समय के साथ-साथ लगातार जिस गति से परिवर्तित होता जा रहा है उसे कहानी में बाँधना अत्यन्त मुश्किल है परन्तु आज के कथाकार ने बड़ी बारीकी से इन समस्याओं को सुलझाया है। मानवीयता के प्रति अदम्य उत्साह, व्यापक विवेक, आस्था, श्रद्धा, यथार्थ के सीधे साक्षात्कार उपर्युक्त तत्त्वों का हिन्दी कहानी में दिग्दर्शन होता है। अपने अनुभव और ज्ञान की इस पूँजी के बल पर आगे बढ़ते हुए कथाकारों के हाथों कहानी का भविष्य सुरक्षित है।

1.2.16. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार पहली हिन्दी कहानी है –
   (क) इन्दुमती
   (ख) ग्यारह वर्ष का समय
   (ग) दुलाई वाली
   (घ) गुलबहार

2. 'उसने कहा था' किसकी कहानी है ?
   (क) किशोरीलाल गोस्वामी
   (ख) माधवराव सप्रे
   (ग) चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'
   (घ) अमृत राय

3. 'ग्यारह वर्ष का समय' का रचनाकाल है –
   (क) सन् 1900
   (ख) सन् 1903
   (ग) सन् 1907
   (घ) सन् 1908

4. प्रेमचंद उर्दू में किस नाम से लिखते थे ?
   (क) नबाब राय
   (ख) धनपत राय
   (ग) कथाकार प्रेमचंद

(घ) इनमें से कोई नहीं

5. अकहानी के प्रवर्त्तक माने जाते हैं –
   (क) महीप सिंह
   (ख) कमलेश्वर
   (ग) अमृतराय
   (घ) गंगाप्रसाद विमल

लघुत्तरीय प्रश्न

1. कहानी की विकास-यात्रा में प्रेमचंद पूर्व युग का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
2. समानान्तर कहानी पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्दी कहानी की क्रमिक विकास-यात्रा का विश्लेषण कीजिए।
2. प्रेमचन्दोत्तर युग में कहानी किस प्रकार विकसित हुई ? समीक्षा कीजिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : 'गोदान' उपन्यास

खण्ड-परिचय

प्रस्तुत खण्ड में आप उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद के कालजयी उपन्यास 'गोदान' का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड को तीन इकाइयों में विभक्त किया गया है, जो क्रमवार इस प्रकार हैं –

इकाई – 1 : महाकाव्यात्मक उपन्यास की दृष्टि से 'गोदान' का मूल्यांकन, 'गोदान' का कथा-शिल्प, 'गोदान' शीर्षक की सार्थकता

इकाई – 2 : 'गोदान' की पात्र-सृष्टि : ग्रामीण पात्र बनाम नगरवासी पात्र, पुरुष पात्र बनाम स्त्री पात्र, प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ, प्रेमचंद की नारी विषयक दृष्टि

इकाई – 3 : 'गोदान': भारतीय कृषक की संघर्षमय जीवन-गाथा का जीवन्त दस्तावेज़ बनाम मध्यमवर्ग की समस्याओं का चित्रण

उर्दू-हिन्दी के महान् कथाकार प्रेमचंद (31 जुलाई, 1880 – 08 अक्टूबर, 1936) बहुमुखी व्यक्तित्व के रचनाकार हैं। एक ओर वे हिन्दी के सशक्त कहानीकार हैं तो दूसरी ओर समर्थ उपन्यासकार हैं, उनका साहित्य कालजयी है। आधुनिक हिन्दी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधा कहानी और उपन्यास को अपने व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व से उन्होंने अप्रतिम प्रतिष्ठा प्रदान की है। उन्होंने मात्र कहानी और उपन्यास लेखन ही नहीं किया है, वरन् अपनी प्रतिभा की छाप अपने नाटकों, निबन्धों और अनुवादों में भी छोड़ी है।

'गोदान' प्रेमचंद का एक बृहत् उपन्यास है जिसका वर्ण्य-विषय अत्यन्त व्यापक है। इसकी व्यापकता को ध्यान में रखते हुए इसे कृषक-जीवन का महाकाव्य कहा गया है। उपन्यास के महत्त्व एवं उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचंद ने कहा है – "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"

निर्धारित तीनों इकाइयों में 'गोदान' उपन्यास के अनेक महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा की गई है। पहली इकाई में महाकाव्यात्मक उपन्यास की दृष्टि से 'गोदान' के मूल्यांकन का प्रयास किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आप 'गोदान' के कथा-शिल्प को भी समझ सकेंगे। 'गोदान' से सम्बन्धित दूसरी इकाई में उपन्यास के पात्र-सृष्टि के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। उपन्यास के विभिन्न पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला गया है। इस खण्ड की तीसरी इकाई 'गोदान' के नारी-पात्रों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति को रेखांकित करती है। प्रत्येक इकाई में प्रेमचंद के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विचारों पर विचार किया गया है। इन इकाइयों के अध्ययन से आप 'गोदान' में अभिव्यक्त सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सरोकार से भी परिचित हो सकेंगे।

❖❖❖

खण्ड – 2 : 'गोदान' उपन्यास

इकाई – 1 : महाकाव्यात्मक उपन्यास की दृष्टि से 'गोदान' का मूल्यांकन, 'गोदान' का कथाशिल्प, 'गोदान' शीर्षक की सार्थकता

इकाई की रूपरेखा

2.1.0. उद्देश्य कथन
2.1.1. प्रस्तावना
2.1.2. विषय-विस्तार
  2.1.2.1. होरी की कथा
  2.1.2.1. राय साहब और उनके मित्रों की कथा
2.1.3. 'गोदान' का कथा-शिल्प
2.1.4. 'गोदान' शीर्षक की सार्थकता
2.1.5. पाठ-सार
2.1.6. बोध प्रश्न
2.1.7. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

2.1.0. उद्देश्य कथन

इस इकाई में हम हिन्दी के महान् उपन्यासकार प्रेमचंद और निर्विवाद रूप से उनकी सर्वोत्तम औपन्यासिक सर्जना 'गोदान' का अध्ययन करेंगे । सन् 1936 में 'गोदान' के प्रकाशन तक प्रेमचंद की औपन्यासिक कला प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

i. महाकाव्यात्मक उपन्यास की दृष्टि से 'गोदान' का मूल्यांकन कर सकेंगे।
ii. 'गोदान' के कथा-शिल्प की प्रविधि को समझ सकेंगे।
iii. 'गोदान' शीर्षक की सार्थकता की विवेचना कर सकेंगे।

2.1.1. प्रस्तावना

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को उत्तर प्रदेश के बनारस के समीप लमही नामक गाँव में हुआ था। प्रारम्भ में वह अपने मूल नाम 'धनपत राय' के साथ-साथ 'नवाब राय' के नाम से भी उर्दू में लिखा करते थे किन्तु बाद में उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ कर दिया। 1936 में अपनी मृत्यु के पहले अपने 56 वर्षों के छोटे से जीवन में आम आदमी की कथा आम आदमी की भाषा में प्रस्तुत करके प्रेमचंद ने साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब झलकता है, इस तथ्य को रेखांकित किया। प्रेमचंद के विपुल साहित्य में उपन्यासों की परख और परीक्षा की जाए तो 1918 में प्रकाशित 'सेवासदन' हिन्दी में प्रकाशित उनका प्रथम उपन्यास माना जा सकता है जिसमें वारांगना शब्द से लांछित नारी-जीवन का चित्रण किया गया है। 'सेवासदन' के बाद उनके सारे उपन्यास हिन्दी में ही

प्रकाशित हुए। 'प्रेमाश्रम' का प्रकाशन 1921 में हुआ जिसमें भक्ति की आड़ में पतन की ओर उन्मुख होने वाली गायत्री जैसी नारियों का सफल चित्रांकन किया गया है। सन् 1925 में उनका 'रंगभूमि' शीर्षक उपन्यास प्रकाशित हुआ जो भारतीय जीवन के वैविध्य पर आधारित था। सन् 1926 में 1936 में 'गोदान' प्रकाशित हुआ और सन् 1936 में ही उन्होंने 'मंगलसूत्र' लिखना प्रारम्भ किया था परन्तु यह हिन्दी का दुर्भाग्य रहा कि 'मंगलसूत्र' के पूर्ण होने के पहले ही प्रेमचंद की मृत्यु हो गई जिससे यह उपन्यास अधूरा रह गया।

2.1.2. विषय-विस्तार

पाश्चात्य साहित्य में 'उपन्यास' को 'एपिक इन प्रोज' अर्थात् 'गद्यात्मक महाकाव्य' की संज्ञा दी गई है। सर्वप्रथम आंग्ल उपन्यासकार फील्डिंग ने उक्त अभिधान का प्रयोग किया था। फील्डिंग ने अपने दोनों उपन्यासों- 'जोसेफ एन्ड्रूज' (1752) तथा 'टौम जोन्स' को महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा है। गेटे ने उपन्यास को (Subjective Epic) तथा रैल्फ फॉक्स मध्यमवर्ग का महाकाव्य कहा। लेव तोलस्तोय के उपन्यास 'वार एंड पीस' के प्रकाशन के बाद तो अब महाकाव्यात्मक उपन्यास की स्थिति सबको स्वीकार्य है। कुछ आलोचकों ने 'ओडेसी' नामक महाकाव्य और डिफो के 'रोबिंसन क्रूसो' की तुलना द्वारा उपन्यास की महाकाव्यात्मकता की पहचान की थी, किन्तु इस सन्दर्भ में रैल्फ फॉक्स का 'एंड दि पीपुल' शीर्षक ग्रन्थ अधिक स्मरणीय है जिसमें 'एपिक इन प्रोज' की वैचारिकी की प्रस्तुति हुई है। पूँजीवाद ने सामन्तीय परम्परा की 'महाकाव्य' संज्ञक विधा को अपदस्थ कर 'उपन्यास' को जनजीवन के प्रतिनिधि साहित्य रूप की तरह ढाला था जिसके परिणामस्वरूप चरित्र-चित्रण की पद्धति, वस्तु-योजना, नायक की अवधारणा और जीवन मूल्यों में गुणात्मक परिवर्तन घटित हुआ था। हिन्दी क्षेत्र में प्रेमचंद इस बदलाव के विधायक सिद्ध हुए थे। प्रेमचंद ने बहुआयामी लोकजीवन के विशाल फलक पर अपने विराट् युग-जीवन को चित्रित किया है। उनके उपन्यास अनेक पश्चिमी उपन्यासों की महाकाव्यात्मकता की याद दिलाते हैं।

महाकाव्यात्मक उपन्यास में जीवन के विविध पहलू चित्रित किए जाते हैं। महाकाव्यात्मक उपन्यास राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर लिखा जाता है, जैसे लेव तोलस्तोय का 'वार एंड पीस' रूस पर नेपोलियन के अभियान से सम्बद्ध है, तो यशपाल का 'झूठा सच' देश-विभाजन और विभाजन के बाद के कठिन समय और प्रश्नों का वृत्त प्रस्तुत करता है। साथ ही, वह राष्ट्र की भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। रैल्फ फॉक्स ने महाकाव्यात्मक उपन्यास को राष्ट्रीय भावनाओं या जनता की आकांक्षाओं में पगी रचना कहा है और ल्यूबक ने उसे राष्ट्र की कहानी कहा है। सामरसेट माम के शब्दों में 'वार एंड पीस' उस समय के रूस का सम्पूर्ण चित्र है, साथ ही वह राष्ट्र की तत्कालीन समस्याओं का उद्घाटन करता है और इसके लिए लेखक जाति की भावनाओं और उसके कार्यों के अनेक विशद् चित्र प्रस्तुत करता है।

महाकाव्यात्मक उपन्यास में पात्र के व्यक्तित्व का केवल एक पहलू चित्रित नहीं किया जाता। उसमें आत्मा के आन्तरिक संघर्षों को लेकर मानसिक विकृतियों तथा उनसे उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण, प्रभावपूर्ण होता

है। उसमें जीवन की गहराई को पकड़ने का प्रयत्न होता है। महाकाव्यात्मक उपन्यास में पात्रों की संख्या ही अधिक नहीं होती, लेखक उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता देता है। वे स्वच्छन्दतापूर्वक समाज में विचरण करते हैं।

महाकाव्यात्मक उपन्यास का नायक भी इन गुणों से सम्पन्न होता है, तभी तो वह उपन्यास का केन्द्र बनकर उसे शक्ति, करुणा और गरिमा प्रदान करता है। इस प्रकार महाकाव्यात्मक उपन्यास का नायक देश-काल का प्रतिनिधि होता है। उसमें सार्वजनिक गुण पाए जाते हैं परन्तु साथ ही वह युग का नायक होता है जो अपनी चारित्रिक विशेषताओं से उपन्यास को ऊर्जा और औदात्य प्रदान करता है।

महाकाव्यात्मक उपन्यास का चित्रफलक विशाल होता है। वह युग का सम्पूर्ण आकलन होता है, साथ ही उसमें सार्वजनीन तत्त्व होते हैं अतः उसका कलेवर भी विशाल होता है। नायक कथा के केन्द्र में अवश्य रहता है परन्तु उपन्यास के कथा-सूत्र सम्पूर्ण युग को समेटने के प्रयत्न में इतने विविध और बिखरे होते हैं कि उसका कथानक सुगठित और सुसम्बद्ध न होकर विशृंखलित और असम्बद्ध होता है। ल्यूवक ने उसे 'Large and Crowded and Unmanageable Novel' कहा है।

महाकाव्यात्मक उपन्यास का कथानक शिथिल और असंगठित होता है पर इसका यह अर्थ नहीं कि उसका कोई ढाँचा ही नहीं होता। कलाकृति बनने के लिए एक ओर कथानक की एक संरचना आवश्यक है तो दूसरी ओर उसका मनमौजी विकास। महाकाव्यात्मक उपन्यास आख्यानों का शिथिल संयोजन होता है जिन्हें समय ही थोड़ा-बहुत सूत्रबद्ध करता है। लेखक विषय की विपुलता और विविधता पर अधिक बल देता है, कृति के रूप, आकार और शैली-शिल्प पर कम। महाकाव्यात्मक उपन्यास समाज और देश की तूफानी दुनिया को ही चित्रित नहीं करता, उसकी आशा-आकांक्षाओं को ही व्यक्त नहीं करता है अपितु मानव-जीवन में आस्था उत्पन्न करना उसका उद्देश्य है अतः इस प्रकार की रचना में गम्भीर चिन्तन और मनन के परिणामस्वरूप प्राप्त विचार भी पाए जाने स्वाभाविक हैं। रैल्फ फॉक्स ने कदाचित इसीलिए कहा है – "उपन्यास लिखना एक दार्शनिक धंधा है, उसमें चिन्तन का गुण निहित है।"

महाकाव्यात्मक उपन्यास का अन्त उपन्यास में प्रस्तुत कथानक या समस्याओं के अन्त के साथ नहीं होता। उसे पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि उपन्यास की कथा समाप्त हो गई, पात्रों की सुनिश्चित परिणति हो गई और अब पाठक को कुछ जानना शेष नहीं है। इसके विपरीत पात्रों और घटनाओं के विषय में उसकी जिज्ञासा बनी ही रहती है। इसीलिए शिपले ने उसकी तुलना क्षीण होती हुई मोमबत्ती से की है और कहा है, "The ending is tampering off, or an interruption of what could go lengthily on rather than a decisive resolution." यह सच है कि पुस्तक का सामूहिक प्रभाव अनिर्णयात्मक होता है परन्तु उसके अंशों में सुस्वरूपता, सुबोधता और प्रांजलता होतीहै। कभी पाठक को ऐसा नहीं लगता कि लेखक को अपने विचार या लक्ष्य पर नियन्त्रण नहीं रहा है, वह उसके हाथ से निकल गया है।

महाकाव्यात्मक उपन्यास का कलेवर विशद् होता है, पर उसका विशाल आकार उसकी शैली के औदात्य के लिए घातक नहीं होता। वस्तुतः अपने विषय को गरिमापूर्ण बनाने के लिए अपने महान् लक्ष्य को चरितार्थ करने के लिए उसे अपनी भाषा को सघन बनाना पड़ता है, शैली को उदात्त बनाना होता है। बदलता हुआ परिवेश जो भी उसके दृष्टि पथ में लाता है, उसे वह सत्य एवं सौन्दर्य की साकार प्रतिमा बना देता है। जीवन के प्रत्येक अंश को वह बड़ी कलात्मकता से प्रस्तुत करता है।

अरस्तू ने महाकाव्य के लिए उच्चतर जीवन का चित्रण आवश्यक माना था। आधुनिक युग में कविता के प्रति आकर्षण कम होता जाता है, उपन्यास-पाठकों की संख्या बढ़ रही है, अतः आज उपन्यास ही मानव-जाति का पथ-प्रदर्शक बन सकता है। महाकाव्य का स्थान महाकाव्यात्मक उपन्यास ने ले लिया है। चाहे प्रदर्शक के उपन्यास हों या हिन्दी के उपन्यास – 'बूँद और समुद्र', 'शेखर : एक जीवनी' या 'झूठा सच' सबमें गम्भीर जीवन-दर्शन है। जीवन की गम्भीर, शाश्वत समस्याओं को उठाया गया है, उन पर विचार किया गया है तथा कुछ मार्गदर्शन भी है।

प्रेमचंद की सभी औपन्यासिक कृतियों में 'गोदान' विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। 'गोदान' को महाकाव्यात्मक उपन्यास माना जाए या नहीं, इस सम्बन्ध में आलोचकों ने अपने-अपने ढंग से विचार व्यक्त किए हैं। प्रसिद्ध समीक्षक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का अभिमत है कि इसमें महाकाव्योचित औदात्य, सर्वतोमुखी जीवन-चित्रण एवं वीर-भावना का अभाव है अतः यह अपने युग का प्रतिनिधित्व नहीं करता। इस कारण से इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास कहना उचित नहीं है, किन्तु आचार्य नलिनविलोचन शर्मा के मत में 'गोदान' भारतीय जीवन का समग्रता से यथार्थ चित्रण करता है अतः महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जा सकता है। डॉ॰ गोपाल राय का विचार है – "'गोदान' ग्राम्य-जीवन और कृषि संस्कृति को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करने वाला अद्भुत उपन्यास है अतः इसे ग्राम्य जीवन और कृषि-संस्कृति का महाकाव्य कहा जा सकता है।" 'गोदान' में केवल ग्राम-संस्कृति ही नहीं है अपितु लगभग 60 पृष्ठों में नगर की कथा भी है जो यह प्रतिपादित करती है कि इसमें नगर संस्कृति का अभाव नहीं है। निश्चय ही प्रेमंचद केवल गाँव का चित्रण करने तक सीमित नहीं रहना चाहते थे। 'गोदान' में ग्राम अपनी समग्रता के साथ यथार्थ रूप में चित्रित है। प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों की भाँति 'गोदान' में दो कथावस्तुएँ हैं। इन दोनों कथाओं का समानान्तर क्रमिक विकास हुआ हैं। एक कथा होरी की है और दूसरी समानान्तर चलने वाली कथा राय साहब और उनके मित्रों की है। डॉ॰ रामरतन भटनागर ने लिखा है – "प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'गोदान' में भी दो कथावस्तुएँ रखी हैं। उनमें एक मुख्य है, दूसरी प्रासंगिक, यह बात नहीं। दोनों कथाएँ समानान्तर रेखा पर लगभग बिना मिले ही चली जाती हैं। एक कथा का नाम हम 'होरी की कथा' रख सकते हैं और दूसरी कथा को 'राय साहब और उनके मित्रों की कथा' कह सकते हैं।" इन दोनों कथाओं को प्रेमचंद ने बड़े कौशल से जोड़े रखा है। इस उपन्यास की कथावस्तु का सम्यक् विश्लेषण इन दोनों कथाओं पर ही दृष्टि रखकर सम्भव हो सकता है, क्योंकि ये दोनों ही कथाएँ उपन्यास के बृहत् कलेवर को सँभालती हैं। उपन्यासकार शहरी जीवन और ग्रामीण जीवन का तुलनात्मक अन्तर प्रस्तुत करना चाहता था इसलिए उपन्यास के लिए दोनों ही कहानियों को साथ-साथ चलाना ज़रूरी था।

2.1.2.1. होरी की कथा

होरी बेलारी गाँव का एक साधारण किसान है । पाँच बीघे जमीन उसके पास है । ज़मींदार राय साहब अमरपाल सिंह की उस पर कृपादृष्टि है इसलिए गाँव में उसकी प्रतिष्ठा है और वह महतो कहलाता है । धनिया उसकी पत्नी है और गोबर पुत्र । रूपा और सोना दोनों उसकी बेटियाँ हैं और शोभा तथा होरी उसके भाई, जिनको वही पालता-पोसता है । शादी के बाद दोनों भाई लड़-झगड़ कर बँटवारा करके अलग हो जाते हैं । होरी की आर्थिक दशा उत्तरोत्तर गिरती जाती है । होरी व्यवहार कुशल है और इसलिए यदा-कदा राय साहब को सलाम कर आता है । वह धनिया से कहता है – "तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई ! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख । यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है अब तक बचे हुए हैं, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गये । गाँव के इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई । जब दूसरे के पाँव तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है ।" आज होरी राय साहब के यहाँ जा रहा था । पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई खेती देखकर वह सोचने लगा कि अगर फसल अच्छी हो गई और परमात्मा की दया हुई तो वह एक पछाई गाय ले लेगा । "होरी के मन में गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी । यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न सबसे बड़ी साध थी ।" रास्ते में इसी गाँव से मिले पुरवे के ग्वाले भोला से होरी की भेंट हो गई । भोला की बहू लू लगने से मर चुकी थी और वह स्त्री पाने की लालसा रखता था । होरी ने उसे आशा दिलाई कि वह इस बात की फिक्र में रहेगा । भोला होरी को अपनी पछाई गाय 80 रुपये में सौंपने को तैयार हो गया, पर होरी ने उधार गाय लेने से इंकार दिया । भूसे का रोना रोने पर वह भोला को मुफ्त भूसा देने को तैयार हो गया । दूसरे दिन भोला घर आया और धनिया के कहने-सुनने पर भी होरी गोबर को साथ ले, तीन टोकरी भूसा भोला के घर डाल आया । यहाँ भोला की विधवा बेटी झुनिया से गोबर की भेंट हुई और दोनों एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हो गये । दूसरे दिन भोला के आग्रह पर गोबर भोला के यहाँ से गाय ले आया । होरी, धनिया, गोबर, सोना, रूपा – सभी गाय के आने से प्रसन्न थे । कुछ बाँस बचे थे, होरी ने उन बाँसों को दमड़ी बँसोर के हाथ बेच दिया । हीरा की पत्नी पुनिया ने इसका विरोध किया । होरी की गाय बहुत सुन्दर थी । उसे देखने गाँव के सभी लोग आये, पर होरी के सगे भाई हीरा और शोभा गाय देखने नहीं आए । होरी को बहुत दुःख हुआ । जब होरी उन्हें बुलाने उनके घर आया तो वे दोनों बैठे होरी की बुराई कर रहे थे कि होरी ने बँटवारे के समय जो रुपये दाब लिए थे अब निकल रहे हैं । होरी गाय को भोला को वापस देना चाहता था पर धनिया ने रोक लिया । एक दिन हीरा ने होरी की गाय को माहुर दे दिया । होरी यह बात जानता था । उसने यह बात धनिया से कह दी और इस पर घर में तूफान मच गया । हीरा घर से भाग गया । पुलिस तलाशी के लिए आई और दारोगाजी ने हीरा की अनुपस्थिति में उसके घर की तलाशी लेनी चाही पर होरी ने अपने परिवार की मर्यादा के लिए महाजनों से रुपये उधार लेकर दारोगा को देने चाहे पर धनिया ने चण्डी का-सा रूप धारण करके होरी से रुपये छीन लिए । थानेदार चुपचाप लौट गये और होरी की इज्जत बच गई । हीरा के जाने के बाद उसकी पत्नी पुनिया अकेली रह गई । होरी उसकी सहायता करने लगा । पहले तो धनिया बिगड़ी परन्तु अन्त में शान्त हो गई । इधर गोबर का हेल-मेल झुनिया से इतना बढ़ गया कि झुनिया गर्भवती हो गई और पाँच महीने का गर्भ लेकर होरी के दरवाजे पर आ खड़ी हुई । गोबर भाग गया और धनिया तथा होरी ने उसकी बात निभायी । होरी की सारे गाँव में

बदनामी फैल गई और उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया गया। पण्डित दातादीन और पटवारी लाला ने इधर पंचायत करके होरी पर 100 रुपये नकद और 30 मन अनाज दण्ड लगा दिया, उधर झुनिया को लड़का हुआ। होरी ने बिरादरी के निर्णय को सर्वोपरि माना। उसका सारा अनाज पंचों की भेंट चढ़ गया और अपना घर 80 रुपये में गिरवी रखना पड़ा। उसका परिवार दाने-दाने को मोहताज हो गया। ऐसे गाढ़े समय में हीरा की बहू पुनिया ने अनाज देकर होरी की सहायता की। इधर भोला अपनी बेटी झुनिया को शरण देने के कारण होरी से नाराज होकर गाय के रुपयों का तकाजा करने लगा और रुपये न मिलने पर होरी के बैलों को खोलकर ले गया। गोबर ने यह देखकर कि झुनिया को उसके परिवार में शरण मिल गई है, लखनऊ जाकर नौकरी कर ली थी और पैसा-पैसा जोड़कर वर्ष भर के बाद जब वह घर लौटा, तो घर की दशा देखकर चकित रह गया। उसके पास 20 रुपये थे। शहर में रहकर उसमें चालाकी आ गई थी। उसने होरी को ऋण से छुड़ाने के लिए चालाकी के अस्त्रों का प्रयोग किया परन्तु होरी के रूढ़ि-प्रेम, संस्कार, भीरु-हृदय, सीधापन, जीवन-दर्शन आदि पग-पग पर बाधक बन गए। गोबर हार गया और अपनी पत्नी बच्चे को लेकर गाँव से चला गया। सब कुछ पहले ही समाप्त हो चुका था। जो कुछ शेष था उसे बेचकर होरी ने सोना का विवाह किया। गोबर सोना के विवाह में नहीं आया। दातादीन की सलाह से होरी ने अपनी छोटी बेटी रूपा का विवाह दो सौ रुपये लेकर बूढ़े रामसेवक से कर दिया और अपनी जमीन को बेदखली से बचा लिया। गोबर रूपा के विवाह में आया और माता-पिता की शोचनीय अवस्था देखकर दुखी हुआ। हर महीने खर्चा भेजने का आश्वासन उसने होरी को दिया और लखनऊ चला गया। इधर रूपा बूढ़े रामसेवक को पतिरूप में पाकर अत्यधिक प्रसन्न थी। रामसेवक रूपा के इशारे पर नाचता। रूपा के इशारे पर उसके एक गाय होरी के घर भेज दी। होरी को अब केवल एक चिन्ता थी कि किसी तरह रामसेवक के रुपये वापस कर दे इसके लिए वह रात-दिन एक करके कठिन परिश्रम करने लगा। इसी बीच एक दिन अचानक हीरा लौटा और होरी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की कि इतने दिन उसने उसकी गृहस्थी सँभाली। साथ ही अपनी भूल स्वीकार करके क्षमा याचना भी की। हीरा की क्षमा-याचना ने मानों होरी के अरमानों को पूरा कर दिया। एक दिन मजदूरी करते हुए वह लू खा गया और उसकी मृत्यु हो गई। उसी दिन सुतली बेचकर कमाये 20 आने पैसे धनिया ने 'गोदान' के नाम पर मातादीन के हाथ पर रख दिये और कहा – "महाराज न घर में गाय है, न बछिया, न पैसा, यही पैसे हैं, यही इनका 'गोदान' है।"

2.1.2.1. राय साहब और उनके मित्रों की कथा

'गोदान' की दूसरी प्रमुख कथा राय साहब, मालती, मेहता, खन्ना साहब, मिर्ज़ा आदि व्यक्तियों से सम्बन्धित है। सभी पात्र नागरिक हैं। राय साहब अमरपाल सिंह होरी के गाँव के ज़मींदार है। सेमरी और वेलारी दोनों गाँव अवध-प्रान्त के हैं। राय साहब सेमरी गाँव में रहते हैं और हर वर्ष कई आयोजन करते हैं। किसानों को उन्हें समय-समय पर भेंट अवश्य देनी पड़ती है। जेठ के दशहरे पर वे धनुष-यज्ञ की योजना करते हैं जिनमें राय साहब के अनेक मित्र सम्मिलित होते हैं जिनमें 'बिजली' के सम्पादक ओंकारनाथ, श्यामबिहारी तंखा, विश्वविद्यालय के अध्यापक मेहता, चीनी मिल के मैनेजिंग डायरेक्टर खन्ना, उनकी पत्नी गोविन्दी, लेडी डॉक्टर मिस मालती और मिर्ज़ा खुर्शेद प्रमुख हैं। मिस मालती इंग्लैड से डाक्टरी पढ़कर आयी हैं और आधुनिक विचारों

की महिला हैं। खन्ना मालती के उपासक हैं, मालती मेहता की ओर आकर्षित हैं। इसके बाद सब लोग तीन दल बनाकर शिकार के लिए प्रस्थान करते हैं। इसमें राय साहब व मिस्टर खन्ना का एक दल, खुर्शेद और तंखा का दूसरा दल, मेहता और मालती का तीसरा दल बनता है। ये लोग देहाती जीवन का आनन्द उठाने के लिए किसी नदी के तट पर भोजन बनाना चाहते हैं और जल-क्रीड़ा का प्रोग्राम बनाते हैं। मालती मेहता से प्रेम करती है। वह एकान्त चाहती है, पर मेहता को शिकार की धुन है। उधर खन्ना साहब और राय साहब व्यापार-विषयक बातें करते हैं। मिर्ज़ा खुर्शेद और तंखा एक हिरन का शिकार करते हैं और समस्त ग्राम की दावत करते हैं। एक बार मिर्ज़ा खुर्शेद कबड्डी का आयोजन करते हैं। मेहता खेल में भाग लेते हैं और तंखा, मालती और राय साहब दर्शकों में उपस्थित रहते हैं। मेहता जीत जाते हैं। मालती मेहता से प्रेम करती है, पर मेहता उसे अपनी जीवन-संगिनी के अनुपयुक्त समझते हैं। वे अपने आदर्श की दुहाई देते हुए मिर्ज़ा से कहते हैं – "मैं अपनी जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहता हूँ, वह उनमें नहीं है और न शायद हो सकती है। मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है जो अपनी बेजबानी से, अपनी कुर्बानी से अपने को बिल्कुल मिटा कर पति की आत्मा का अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है पर आत्मा स्त्री की होती है।" इधर खन्ना और गोविन्दी में भी अनबन रहती है। खन्ना को विलासितापूर्ण जीवन पसन्द था और गोविन्दी को सादगीपूर्ण। वह आन्तरिक प्रेम को महत्त्व देती थी और खन्ना धन और बाहरी चीज को अतः पैसा पास होने पर भी वे दोनों एक-दूसरे से दूर होते जा रहे थे। गोविन्दी और खन्ना की लड़ाई पुत्र की बीमारी को लेकर होती है। खन्ना गोविन्दी को पीट डालते हैं। गोविन्दी रूठकर अपने बेटे के साथ पार्क में जाकर बैठ जाती है और तभी मेहता आ जाते है और गोविन्दी को भारतीय-नारी का कर्त्तव्य समझाकर घर वापस भेजते हैं। खन्ना की मिल में मजदूर हड़ताल कर देते हैं। खन्ना उस हड़ताल को अनुचित बतलाते हैं, परन्तु गोविन्दी, ओंकारनाथ आदि उसे न्यायोचित घोषित करते हैं। अचानक रात को मिल में आग लग जाती है। खन्ना कंगाल हो जाते हैं। गोविन्दी उन्हें आश्वासन देती हुई कहती है – "तो तुम दिल इतना छोटा क्या करते हो ? धन के लिए , जो सारे पाप की जड़ है ? उस धन से, हमें क्या सुख था ? सबेरे से आधी रात तक एक न एक झंझट-आत्मा का सर्वनाश।" अब गोविन्दी खन्ना में कोई मन-मुटाव नहीं रहता। इधर मालती का दिन पर दिन कायाकल्प होता जा रहा था। उसने जब तक पुरुष को मात्र विलास की सामग्री समझा था पर मेहता के सम्पर्क में आने पर वह उसकी ओर आकर्षित होती चली गई पर मेहता ने सदैव उसे परीक्षा की आँखों से देखा, प्रेम की आँखों से नहीं। मालती "आदर्शवाद के प्रभाव में आकर मेहता से विवाह करने से इंकार कर देती है। इस फैसले पर पहुँचती है कि वह अपने प्रेमी को मित्र बनाकर ही सफल और सुखी जीवन व्यतीत कर सकती है, भार्या बनकर नहीं।" राय साहब कौंसिल का चुनाव लड़ने, अपनी पुत्री का विवाह करने एवं ससुराल की जायदाद को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। उनकी लड़की मीनाक्षी की शादी हो जाती है पर वह शादी सफल नहीं रहती। राय साहब अपने जीवन में जो सुख का स्वर्ग बनाते हैं उसे अपनी ही ज़िंदगी में ध्वस्त होते देखते हैं। वे निराश होकर उपासना और भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं पर शान्ति नहीं पाते। मिर्ज़ा खुर्शेद वेश्याओं की नाटक-मण्डली खोलने का विचार करते हैं, पर मेहता इससे संतुष्ट नहीं होते। राय साहब के पुत्र रुद्रपाल से राय साहब के प्रतिद्वन्द्वी सूर्यप्रताप सिंह अपनी लड़की का विवाह करना चाहते हैं पर रुद्रपाल मालती की बहन सरोज को अपनी जीवनसंगिनी बना चुका है। यहाँ भी राय साहब को निराशा ही होती है।

गोबर लखनऊ जाकर पहले तो मिर्ज़ा खुर्शेद के यहाँ नौकरी करता है फिर खोमचा लगाता है। इसके बाद मिस्टर खन्ना की चीनी मिल में काम करने लगता है। सरकार शक्कर मिल पर उत्पादन कर लगा देती है, तो मिल मालिकों को मजदूरी दर घटाने का बहाना मिल जाता है। 'बिजली' के सम्पादक ओंकारनाथ के प्रोत्साहन से मिल में हुई हड़ताल के कारण झगड़ा होता है। गोबर घायल हो जाता है। स्वस्थ होकर गोबर मालती के यहाँ नौकरी करने लगता है और मालती के बाग में ही एक छोटी-सी झोंपड़ी में अपनी पत्नी झुनिया और पुत्र मंगल के साथ रहने लगता है। मालती मंगल को बहुत मानती है। मंगल को चेचक निकल आने पर मालती के वात्सल्य भरे सेवाभाव को देखकर मेहता बहुत प्रभावित होते हैं। "मालती का यह अटूट वात्सल्य, यह अदम्य मातृभाव देखकर उनकी आँखे सजल हो गईं। मन में ऐसा पुलक उठा कि अन्दर जाकर मालती के चरणों को हृदय से लगा लें। अन्तस्तल से अनुराग में डूबे हुए शब्दों का एक समूह मचल पड़ा – प्रिय, मेरे स्वर्ग की देवी, मेरी रानी, डार्लिंग।" अन्त में मेहता और मालती मित्र बनकर साथ-साथ रहते हैं। मालती चाहती है मेहता अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जगी हुई मानवता को और भी उत्साह से और जोर के साथ बढ़ाते जायें। कुछ आलोचकों ने यह आरोप लगाया है 'गोदान' में किसान और भू-स्वामी वर्ग के संघर्ष तथा स्वातन्त्र्य-संग्राम का निरूपण नहीं है। प्रेमचंद भारतीय गाँवों और नगरों के आर्थिक यथार्थ को गहन मानवीय संवेदना के साथ उपस्थापित करते हैं। इस दृष्टि से यह रचना प्रेमचंद के यथार्थ-बोध के नये आयाम का दिग्दर्शन कराती है।

महाकाव्यात्मक उपन्यास के लिए उदात्त चरित्रों की सृष्टि और महत् उद्देश्य की सिद्धि आवश्यक है। प्रेमचंद ने 'गोदान' में असाधारण व्यक्तित्व और अविस्मरणीय चरित्रों का सृजन किया है। होरी और धनिया प्रेमचंद के अमर पात्र हैं। पूरे उपन्यास में उनके श्रम और संघर्ष के साथ-साथ उनकी मनुष्यता प्रभावित करती है। धनिया के चरित्र में भी जो तीक्ष्णता और मानवीय संवेदना है वह विलक्षण है। प्रेमचंद 'गोदान' के माध्यम से उस शोषण-चक्र को अनावृत करना चाहते हैं जो सामन्तवाद और महाजनी सभ्यता के गठजोड़ से बना है।

अन्त में निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि 'गोदान' अपने कलेवर में महाकाव्यात्मक उपन्यासों के प्रायः सभी तत्त्वों को अन्तर्निहित किये हुए है।

2.1.2. 'गोदान' का कथा-शिल्प

महान् कलाकार की प्रतिभा निर्बन्ध होती है, वह अपने विषय के अनुरूप सदा नई शिल्प-विधि की खोज करता है, अपने लिए शिल्प की सर्जना स्वयं करता है। शिल्प ही वह माध्यम है जिसके द्वारा उपन्यास अपने विषय का अनुसन्धान करता है, उसे मूर्त-रूप देता है। शिल्प के ही माध्यम से वह अपने अनुभवों को सम्यक् कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने में समर्थ होता है। उपन्यास का विषय स्थिर, पूर्व निर्धारित विश्वास न होकर यथार्थ की अनुभूति की परिवर्तनशील प्रक्रिया है। उसमें समाविष्ट विचारों, जीवन-मूल्यों को उसके शिल्प से अलग नहीं किया जा सकता। शिल्प गौण बाह्य उपकरण न होकर उपन्यास की आन्तरिक प्रक्रिया है। वह जितना ही कथ्य के अनुरूप होगा, उतना ही उत्कृष्ट होगा और महान् कृति को जन्म देगा, "From is the objectifying of idea

and its excellence depends upon its appropriateness to the ideal." हिन्दी उपन्यास में नवीन शिल्प की खोज सर्वाधिक हुई है।

कथा-शिल्प के प्रामाणिक प्रस्तोता पर्सी लुब्बाक ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'द क्राफ्ट ऑफ फिक्कशन' में कथा-शिल्प पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। कथा-शिल्पों दो कोटियों में विभाजित करते हुए उन्होंने पहली कोटि को 'सीनिक' अर्थात् दृश्यात्मक तथा दूसरी कोटि को 'पैनोरमिक' अर्थात् परिदृश्यात्मक कहा है। विश्व के अधिकांश उपन्यास इन्हीं दोनों शैल्पिक कोटियों पर आधारित हैं। लेव तोलस्तोय ने इस प्रविधि का प्रयोग कर उसे स्पृहणीय ऊँचाई प्रदान की है। हिन्दी में प्रेमचंद ने इस शिल्प या प्रविधि का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए 'गोदान' का प्रारम्भ 'सीनिक', अर्थात् दृश्यात्मक प्रविधि से होता है – "होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा – गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। जरा मेरी लाठी दे दे।"

धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथकर आयी थी। बोली अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है ? होरी ने अपनी झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़कर कहा – "तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिन्ता है कि अबेर हो तो मालिक से भेंट न होगी। असनान-पूजा करने लगेंगे, तो घण्टों बैठे बीत जायेगा। इसी से तो कही हूँ, कुछ जलपान कर लो। और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा। अभी तो परसों गये थे।" "तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई ! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची है।"

उत्तर भारतीय राज्य उत्तरप्रदेश के गाँव में रहने वाले एक मामूली किसान-परिवार में पति-पत्नी के बीच बातचीत का यह सहज टिपिकल दृश्य है। पति होरीराम को ज़मींदार के पास जाने की हड़बड़ी है। कोई काम नहीं है, वैसे ही मिलने-जुलने। बड़े आदमी से मिलते-जुलते रहने से छोटे कारिन्दे तंग करने की हिम्मत नहीं करते किन्तु पत्नी धनिया को यह बात पसन्द नहीं। नांद में चारा खाते बैल, उपले पाथती औरत, कहीं जाने के पहले ख्याल से लाठी लेना – समर्थ रहते हुए भी। रास्ते में आने वाली किसी प्रकार की परेशानी या मुसीबत को लाठी से ही देख लेने की गरज, पहुँचने में विलम्ब न हो जाए, इसलिए जलपान किए बिना ही चल देना, पत्नी का जलपान के लिए आग्रह करना, ठुकराए जाने पर नाराजगी, ये सारी बातें एक स्वाभाविक गँवई दृश्य का निर्माण करती हैं। दृश्य में चिन्ता और बेबसी की करुण अन्तर्धारा निरन्तर प्रवाहित है। उपन्यास का आरम्भ चूँकि संलापीय शैली में होता है इसलिए नाटकीयता का सहज प्रवेश हो गया है।

इसके बाद का अंश 'पैनारमिक', अर्थात् परिदृश्यात्मक शिल्प का उदाहरण प्रस्तुत करता है – "धनिया इतनी व्यवहारकुशल न थी। उसका विचार था कि हम ज़मींदार के खेत जाते हैं तो वह अपना लगान ही तो लगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ। यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इस बीच बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे जितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो, मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी और इस विषय पर

स्त्री-पुरुष में आए दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छह सन्तानों में अब केवल तीन ज़िंदा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का और दो लड़कियाँ सोना और रूपा क्रमशः बाहर और आठ साल की। तीन लड़के बचपन में ही मर गए। उसका मन कहता था अगर उसकी दवा-दारू हुई होती तो वे बच जाते परन्तु वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवाँ ही तो था पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं और सारी देह ढल गई थी। ... पेट की चिन्ता ही के कारण तो।

यह पैनोरमिक डिसक्रिप्शन पाठकों को गँवई जीवन के वृहत्तर लोक में ला खड़ा करता है। धनिया के बहाने उत्तर भारत के कृषक-समुदाय की त्रासद ज़िंदगी की व्यथा-कथा को परिदृश्यात्मक स्वरूप देने का प्रयास हुआ है और इसी तरह पूरे उपन्यास में दृश्यात्मक और परिदृश्यात्मक शिल्प के विवेकसम्मत मिश्रण से प्रेमचंद ने 'गोदान' को वृहत्तर शैल्पिक फलक प्रदान किया है। इतना ही नहीं, आगे चलकर उनका यह कथात्मक शिल्प 'रिवर्स' हो जाता है। दूसरे शब्दों में दूसरे एपिसोड से लेकर अन्तिम यानी पैंतीसवें एपिसोड तक पहले परिदृश्यात्मक, फिर दृश्यात्मक प्रविधि के मिश्रण से शिल्प का संसार हिस्सा दृश्य रूप में ही अवतरित होता है। यही बात रॉबर्ट लिडेन भी कहते है – "The most vital part of a novel is always in the form of scene and scene is the condition to which narrative seems always to aspire."

पहले कथाकार केन्द्र से परिधि की ओर जाता दिखता है फिर परिधि से केन्द्र की ओर। एक बात और, दृश्यात्मक शिल्प का प्रयोग करते समय कथाकार अदृश्य रहता है। सामने होते हैं सिर्फ उनके पात्र। कथाकार दृश्यात्मक प्रविधि वाले हिस्से में तटस्थ रहता है। उसे जो कुछ कहना होता है, वह पात्रों के माध्यम से रख देता है। यह टेकनिक नाटकीयता की सृष्टि करती जाती है लेकिन जहाँ तक परिदृश्यात्मक प्रविधि का प्रश्न है, इसमें कथाकार पाठकों के रू-ब-रू होकर अपनी बातें रखता जाता है। डॉ॰ गोपाल राय के शब्दों में – "कल्पना की दूरबीन पाठकों को थमा देता है।" यहाँ वह वाचक या कि नैरेटर की भूमिका में होता है। पाठकों को वह एक वृहत्तर लोक में ले जाता है। उसे वह सब कहने की छूट होती है, जो वह पहले प्रकार के शिल्प में नहीं ले पाता है। इसे कुछ लोग 'नैरेटिव टेकनिक' भी कहते हैं। ये दोनों प्रवधियाँ मिलकर एक तीसरी प्रविधि (टेकनिक) का निर्माण करती हैं जिसे अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में महाकाव्यात्मक (एपिक) का नाम दिया है। यह कारण है कि 'गोदान' न सिर्फ विषय वस्तु के लिहाज, बल्कि शिल्पगत प्रयोग के लिहाज से भी महाकाव्यात्मक उपन्यास है। कहना न होगा कि प्रेमचंद ने इस टेकनिक का इस्तेमाल कमोबेस अपने सारे उपन्यासों में किया है।

'गोदान' के कथा-शिल्प के प्रसंग में सबसे अधिक विवाद इस बात पर है कि उसकी कथावस्तु सुसंगठित नहीं है। हिन्दी के कुछ आलोचकों ने 'गोदान' की कथावस्तु के बिखराव को उसका शिल्पगत दोष माना था लेकिन नलिनविलोचन शर्मा ने 'गोदान' की कथावस्तु के इसी विखराव को ही उसके शिल्प की मौलिकता और वैशिष्ट्य स्वीकार किया है। उत्तर भारत के जनजीवन के प्रवाह के सन्दर्भ में ग्राम-कथा और नगर-कथा के इस सम्ग्रन्थन को समन्विति का अभाव नहीं कहा जा सकता है। जिस तरह पुराने मन्दिरों, चैत्यों आदि के भित्तिचित्र अनन्वित होकर भी ऐक्य का अनुभव कराते हैं उसी तरह 'गोदान' भारतीय लोक जीवन के बिखरे मनकों की सूत्रबद्ध माला है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि 'गोदान' प्रेमचंद का शिल्प की दृष्टि से भी एक सशक्त उपन्यास है। 'गोदान' की भाषा पात्रानुकूल है। गाँव के पात्र ग्रामीण भाषा जबकि नगर के पात्र नागरिक भाषा का प्रयोग करते हैं। यदि प्रेमचंद केवल 'किसानों की शोषण-गाथा' तक की अपने को सीमित रखते तो 'गोदान' के कथा-शिल्प में और अधिक कसावट आ सकती थी।

2.1.4. 'गोदान' शीर्षक की सार्थकता

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचंद को उत्तर भारत के जनजीवन को समग्रता के साथ रूपायित करने वाले रचनाकार के रूप में ज्ञापित किया है। सम्भवतः प्रेमचंद के तमाम कथा-साहित्य के वैविध्य और विस्तार पर ध्यान देते हुए उन्होंने यह स्थापना की है कि हिन्दी और उर्दू की दुनिया में कोई ऐसा लेखक नहीं है जो इस सन्दर्भ में प्रेमचंद की बराबरी कर सके। प्रेमचंद का पूरा कथा-साहित्य ग्रामीण और नागरिक दोनों प्रकारों के जीवन से आबद्ध है। 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में हम ग्रामीण और नागरिक भारत के समन्वित चित्रों के दर्शन करते हैं। किसान, भू-स्वामी, साहूकार, मध्यमवर्ग के लोग, छोटे भूखण्डों को जोतनेवाले काश्तकार और कई तरह के श्रमिक भारतीय लोकजीवन को मूर्त करते हैं। 'गोदान' के स्थापत्य की दुर्बलता को चिह्नित करते हुए समीक्षकों ने इसमें ग्राम-कथा और नगर-कथा में सम्बद्धता का अभाव दर्शित किया है। कुछ लोगों के अनुसार 'गोदान' में नगर-कथा क्षेपक की तरह है। वह आधिकारिक नहीं, प्रासंगिक है। यहाँ प्रमुखता कृषक-जीवन को मिली है। नन्ददुलारे वाजपेयी कहते हैं कि जैसे किसी मकान के निचले हिस्से में एक परिवार रहता है और ऊपरी तल पर दूसरा परिवार रहता है जिनमें कभी-कभी दुआ-सलाम भर का नाता रहता है उसी प्रकार ग्रामीण पात्रों और नागरिक पात्रों में निकटता नहीं है। ऐसी स्थिति में 'गोदान' समग्र भारतीय जीवन का तो छोड़ ही दें, उत्तर भारत के भी पूर्ण जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाला उपन्यास नहीं ठहरता है। 'वार एंड पीस' में कोई एक नायक नहीं है। संघर्ष करने वाला पूरा रूसी समुदाय उस उपन्यास का नायक है। इस दृष्टि से 'गोदान' का फलक प्रशस्त नहीं, संकीर्ण है। यदि इसका नायक होरी है तो वह एक मामूली व्यक्ति है जिसके जीवन में केवल अवसाद और कष्ट है। उसमें किसी प्रकार का जुझारूपन नहीं है। वह परिस्थितियों का शिकार है और अपनी ही भूमि पर मजदूर हो जाता है। यहाँ ध्यान देने की एक बात है कि प्रेमचंद ने उसकी पराजय में उदात्तता के दर्शन किए हैं। उसके जीवन के जहाज के मस्तूल टूट चुके हैं वह आर्थिक दृष्टि से विपन्न हो चुका है, फिर भी वह लोकहित से दूर नहीं है। जमीन उसके लिए 'मर्यादा' है। गाय भी उसके लिए प्रतिष्ठा की वस्तु है। ये दोनों चीजें उससे छिन जाती हैं। जिस तरह यूरोप के दुखान्त नाटकों के नायक विध्वंस अर्थात् 'कैटोसस्ट्रोफी' के शिकार होते हैं उसी तरह होरी भी भारतीय जीवन की उस 'ट्रेजेडी' का नायक जान पड़ता है जो शोषण, अन्धविश्वास, महाजनी सभ्यता और पारिवारिक विघटन को झेलता है। उसके गुण ही उसके विनाश के मूल में हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कई विचारकों ने 'गोदान' को कृषक-जीवन की ट्रेजडी कहा है। पूरे 'गोदान' में ऐसी ट्रेजेडी केवल ग्रामीण परिवेश में ही घटित नहीं होती है। नागरिक जीवन में राय साहब अपने पुत्र की इस बगावत को झेलते हैं। उनका बेटा, मालती की बहन सरोज से विवाह कर लेता है। वे स्वयं बैंकर खन्ना के कर्जदार हैं। शान-शौकत के निर्वाह के लिए अपनी हैसियत से बढ़कर वे खर्च करते हैं और चुनाव तक लड़ते हैं। बैंकर खन्ना का चीनी का कारखाना जल जाता है। वह पत्नी

को छोड़कर मालती के पीछे दौड़ता है परन्तु उस 'तितली' को प्राप्त नहीं कर पाता है। उसी प्रकार मेहता भी मालती को प्राप्त नहीं कर पाता है। चुनावों का दलाल तंखा भी मायूसी में जीता है। कुल मिलाकर ग्रामीण और नागरिक दोनों वर्गों के पात्र सुखी नहीं है। इस दृष्टि से प्रेमचंद ने यहाँ राष्ट्रीय संघर्ष से अलग हटकर एक संक्रमणशील और क्षयी समाज के निरूपण में सफलता पाई है। नलिनविलोचन शर्मा ने इसी तथ्य को धारा एवं तट के न्याय के द्वारा व्यक्त किया है। भारतीय जीवन भी एक नदी की तरह है जिसमें एक तट पर गाँव है और दूसरे तट पर नगर किन्तु प्रवाह दोनों को सींचता है जो परस्पर विच्छिन्न होकर भी एक ही भूखण्ड के दो अंश हैं जो एक ही धारा से जुड़े हुए हैं।

'गोदान' शीर्षक से ऐसा प्रतीत होता है कि इस उपन्यास के केन्द्र में एक गाय है। बहुत सारे लोग गाय में धार्मिक धारणा को चिह्नित करते हैं, परन्तु भारतीय लोकजीवन में 'गो' शब्द बह्वर्थगर्भित और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहाँ इन्द्रियों का नियमन करने वाले को गोस्वामी कहते हैं, गहन अनुसन्धान करने को गवेषणा कहते हैं तथा बन्द कमरे में रोशनी और हवा के द्वार को गवाक्ष कहते हैं। गाय केवल द्वार की शोभा नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक समृद्धि की परिचायिका भी है। होरी के अन्तिम काल में सवा रुपये की जो सुतली बिकती है वह प्रतीकात्मक रूप से 'गोदान' है। 'गो' शब्द का एक अर्थ 'प्राण' भी होता है। होरी वहाँ प्राण विसर्जन करता है जो कभी उसकी भूमि थी पर अब नहीं है। उसकी सद्गति के लिए वही दातादीन पण्डित 'गोदान' ग्रहण करते है जो कर्ज में फँसे होरी को बँधुआ मजदूर बना देते हैं। 'गोदान' के लेखन के पश्चात प्रेमचंद ने अपनी अन्तिम कहानी लिखी थी जिसका शीर्षक है 'कफन'। उसमें वे लिखते है कि जीते जी जिसको चीथड़ा भी उपलब्ध नहीं है मरने पर उसे 'कफन' चाहिए। यह 'गोदान' शीर्षक होरी के प्राण के विसर्जन की ही कथा नहीं है अपितु धार्मिक मान्यताओं को तिलांजलि देने की भी व्यंग्यगाथा है। इस दृष्टि से 'गोदान' के शीर्षक की प्रतीकात्मकता ही नहीं, उसकी अर्थगर्भिता भी विचारणीय है।

लोग समुद्र को उसके विस्तार और गाम्भीर्य के लिए जानते हैं किन्तु बिन्दु का भी अपना महत्त्व होता है। अनेक बूँदों के मेल से ही समुद्र साकार होता है। 'गोदान' की कथा बूँद के रूप में भारतीय जीवन के दुःख को अभिव्यंजित करती है। यह वही दु:ख है जो किसी भी महाकाव्य में विस्तार से वर्णित होता है। वाल्मीकि के राम जीवन-भर संतप्त रहते हैं और उनको सुख नाम की वस्तु की सम्प्राप्ति नहीं होतीहै। वे भारत के जातीय महाकाव्य के विषाद-दग्ध नायक हैं। होरी भी भारत की दबी-कुचली हुई जनता के विशाद को घनीभूत रूप में उपस्थित करता है। जिस तरह राम सीता से वियुक्त होते है और सरयू नदी में डूबकर प्राण-विसर्जन करते हैं ठीक उसी तरह होरी भी परिस्थितिवश दुःख के समुद्र में डूबता है। कहा जाता है कि भारतीय महाकाव्य दुखान्त नहीं होते हैं किन्तु 'रामायण' ही नहीं, 'महाभारत' भी एक दुखान्त सृष्टि है। 'गोदान' की जो 'ट्रेजडी' है वह 'रामायण' और 'महाभारत' की 'ट्रेजडी' का आधुनिक भाष्य है।

2.1.5. पाठ-सार

महाकाव्यात्मक उपन्यास की अवधारणा पाश्चात्य विवेचकों के द्वारा प्रस्तुत की गई है। 'वार एंड पीस' के सन्दर्भ में नन्ददुलारे वाजपेयी ने उसको राष्ट्र के प्रतिनिधित्व से जोड़ा है। इसके पीछे जातीय साहित्य की मान्यता देखी जा सकती है। प्रेमचंद ने कहीं भी 'गद्यात्मक महाकाव्य' के रूप में 'गोदान' का उल्लेख नहीं किया है। परवर्ती आलोचकों ने प्रदर्शक की इस विधा से सूत्रबद्ध करने का प्रयास किया है। इस क्रम में इसके कथागत स्थापत्य की विशृंखलता को इसकी विशेषता बतलाते हैं। वे ग्राम-कथा के साथ नगर-कथा के सम्ग्रन्थन को क्षेपक नहीं, समग्र भारतीय जीवन के चित्रण का उपक्रम मानते हैं। भारतीय लोकजीवन ग्रामीण ही नहीं नागरिक भी है। प्रेमचंद इन दोनों को जोड़कर एक मुकम्मल तस्वीर पेश करना चाहते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसको उत्तर भारत के समग्र जीवन का चित्रागार कहा है, वह असंगत नहीं है। चरित्रों की विविधता और प्रसंगों की विपुलता के द्वारा लेखक भारतीय लोकजीवन के आन्तरिक सच को प्रकट करना चाहता है। 'गोदान' इस दृष्टि से एक बड़ी कृति है जो ग्रामीण और नागरिक जीवन को एक साथ सामने लाती है।

महाकाव्यात्मक उपन्यास में कथावस्तु की समन्विति नहीं मिलती। यह त्रुटि नहीं, गुणवत्ता है। 'गोदान' स्थापित ढाँचे का अतिक्रमण करता है। इसका फलक बड़ा है। इसमें चरित्रों और घटनाओं का निर्बाध प्रवाह मिलता है। यह प्रवाहशीलता और व्यापकता ही गद्यात्मक महाकाव्य की पहचान है।

2.1.6. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. "प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे।" यह कथन है –
   (क) रामचन्द्र शुक्ल
   (ख) हजारीप्रसाद द्विवेदी
   (ग) रामविलास शर्मा
   (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

   सही उत्तर – (ख)

2. होरी के गाँव का क्या नाम है ?
   (क) बेलारी
   (ख) सेमरी
   (ग) शिवपालगंज
   (घ) अरीगेय

   सही उत्तर – (क)

3. "विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी।" प्रेमचंद ने यह कथन 'गोदान' के किस पात्र के लिए प्रस्तुत किया है ?
   (क) धनिया
   (ख) मालती
   (ग) सिलिया
   (घ) झुनिया

सही उत्तर – (क)

4. इन उपन्यासों को रचनाकाल के आरोही क्रम में व्यवस्थित कीजिए –
   (क) प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गबन, कर्मभूमि
   (ख) कर्मभूमि, गबन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि
   (ग) गबन, कर्मभूमि, रंगभूमि, प्रेमाश्रम
   (घ) रंगभूमि, कर्मभूमि, गबन, प्रेमाश्रम

सही उत्तर – (क)

5. किसने साहित्य को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी भूमि पर स्थित करने का प्रयास किया ?
   (क) प्रेमचंद
   (ख) प्रसाद
   (ग) निराला
   (घ) जैनेन्द्र

सही उत्तर – (क)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रेमचंद का आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद क्या है ?
2. 'गोदान' के रचना-उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
3. होरी और गोबर की चेतना के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
4. 'गोदान' के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
5. संक्षेप में 'गोदान' की कथा-वस्तु का विवेचन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'गोदान' के महाकाव्यात्मक आयाम पर प्रकाश डालिए।
2. 'गोदान' उपन्यास की कथा-योजना को प्रस्तुत कीजिए।
3. " 'गोदान' में प्रेमचंद भारतीय किसानों की वेदना को अभिव्यक्त करते हैं।" स्पष्ट कीजिए।
4. 'गोदान' के कथा-शिल्प की प्रविधि पर एक समीक्षात्मक निबन्ध लिखिए।

5. " 'गोदान' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।" सप्रमाण उत्तर लिखिए।

2.1.7 उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. 'गोदान' नया परिप्रेक्ष्य, ग्रन्थ निकेतन, पटना, डॉ॰ गोपाल राय
2. प्रेमचंद का अध्ययन, सं. : सत्येन्द्र, राधाकृष्ण मूल्यांकन माला
3. प्रेमचंद उनकी कृतियाँ एवं कला, निबन्ध, बाबू गुलाब राय
4. प्रेमचंद, डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान
5. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, डॉ॰ गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : 'गोदान' उपन्यास

इकाई – 2 : 'गोदान' की पात्र-सृष्टि : ग्रामीण पात्र बनाम नगरवासी पात्र, पुरुष पात्र बनाम स्त्री पात्र, प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ, प्रेमचंद की नारी विषयक दृष्टि

इकाई की रूपरेखा

2.2.0. उद्देश्य कथन
2.2.1. प्रस्तावना
2.2.2. विषय-विस्तार
2.2.3. पुरुष पात्र बनाम स्त्री पात्र
2.2.4. प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ
 2.2.4.1. 'गोदान' का प्रधान पात्र : होरी
 2.2.4.2. प्रोफेसर मेहता
 2.2.4.3. 'गोदान' की प्रधान स्त्री पात्र : धनिया
 2.2.4.4. मालती
2.2.5. 'गोदान' के गौण पात्र
 2.2.5.1. राय अमरपाल सिंह
 2.2.5.2. गोबर
2.2.6. प्रेमचंद की नारी विषयक दृष्टि
2.2.7. पाठ-सार
2.2.8. बोध प्रश्न
2.2.9. उपयोगी ग्रन्थ सूची

2.2.0. उद्देश्य कथन

पहली इकाई में उपन्यास की अवधारणा के सन्दर्भ में 'गोदान' का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में आप 'गोदान' उपन्यास के पात्रों – ग्रामीण पात्रों, नगरवासी पात्रों, पुरुष पात्रों, स्त्री पात्रों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

i. प्रेमचंद के 'गोदान' के पात्रों से परिचित हो सकेंगे।
ii. 'गोदान' के महत्त्वपूर्ण पात्रों के चारित्रिक विशेषताओं से भी अवगत हो सकेंगे।
iii. प्रेमचंद के नारी विषयक दृष्टिकोण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.2.1. प्रस्तावना

चरित्र के आधार पर प्रायः दो प्रकार के पात्र कथा-साहित्य में परिकल्पित किए जाते हैं। एक गतिशील चरित्र वाले पात्र और दूसरे स्थिर चरित्र वाले पात्र। अपनी सहज मानवीय गतिशीलता के आलोक में आज पहले प्रकार के पात्रों को ही अधिक उपर्युक्त माना जाता है एवं स्थिर चरित्र वाले पात्र जो प्रत्येक देशकाल में हैं पर समग्र जीवन-समाज को प्रभावित कर पाने की क्षमता के अभाव में साहित्य उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं देता फिर भी ऐसे पात्र और चरित्र कथा-साहित्य में यदा-कदा मिल ही जाया करते हैं। आज की कहानी में जिस प्रकार के पात्रों का अंकन-प्रत्यांकन हो रहा है, निश्चय ही वे सहज, स्वाभाविक, मानवीय प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि, परिचायक, प्रबल एवं प्रभावी हैं। आज की कहानी में व्यक्ति के बाद सामूहिक व्यक्तित्व को अधिक उभार एवं विकास मिल रहा है। कुशल कथाकार संकेतों से ही पात्र के समूचे व्यक्तित्व को अपने वर्गगत वैशिष्ट्य में उभार दिया करते हैं। इस दृष्टि से प्रेमचंद का यह कथन उचित है कि "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ का स्वाभाविक चित्रण करना अपना ध्येय समझती है।" कुशल कथाकार इस ध्येय की पूर्ति में हमेशा समक्ष रहे हैं, आज भी सक्षमता से निर्वाह कर रहे हैं।

प्रेमचंद द्वारा रचित 'गोदान' कृषक जीवन का महाकाव्य है जिसमें उपन्यासकार ने होरी की व्यथा-कथा के माध्यम से कृषक-वर्ग के शोषण का यथार्थ चित्र अंकित किया है। प्रेमचंद ने 'गोदान' में होरी और धनिया, मालती और मेहता, गोबर और झुनिया, मातादीन और सिलिया खन्ना और गोविन्दी के माध्यम से ऐसे चरित्र प्रस्तुत किए हैं जो अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'गोदान' में प्रेमचंद ने जिन पात्रों की कल्पना की है, वे इन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप है। उनके पात्र कठपुतली पात्र नहीं हैं।

2.2.2. विषय-विस्तार

औपन्यासिक कथा-संसार के प्रमुख नियामक और उसके स्वरूप निर्धारक उपन्यास के पात्र ही होते हैं। पात्रों से ही कथा-संसार बनता है। औपन्यासिक पात्रों का चुनाव उनका सजीव चित्रण और उनके माध्यम से मानव अनुभवों, संवेदनाओं और जीवन-यथार्थ की अभिव्यक्ति ही उपन्यास का उद्देश्य है। प्रेमचंद का कथा-संसार वैविध्यपूर्ण है और यह स्वाभाविक ही है कि उनके पात्र आर्थिक-सामाजिक स्थिति, शीक्षा-दीक्षा, वय, लिंग, विचार, मानसिकता आदि दृष्टियों से अनेक वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'गोदान' में यदि एक ओर ठेठ ग्रामीण पात्र हैं तो दूसरी ओर आधुनिक मानसिकता वाले नागरिक पात्र भी हैं। ग्रामीण पात्रों में भी विभिन्न आर्थिक स्थितियों के किसान, किसान-मजदूर, पटवारी, पुरोहित, ज़मींदार का कारिन्दा, धनी किसान, साहूकार आदि अनेक वर्गों के पात्र हैं। नागरिक या अर्द्धनागरिक पात्रों में ज़मींदार, प्रोफेसर, सम्पादक, डॉक्टर, बैंकर, दलाल, दुकानदार आदि के साथ-साथ मजदूर, ताँगेवाले, छोटे दुकानदार आदि अनेक तबकों के पात्र हैं। इस पात्र-समुदाय में पुरुष और स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े सवर्ण और अवर्ण, पण्डित और अनपढ़ अनेक प्रकार के लोग हैं। कहना न होगा कि पात्रों का यह वैविध्य ही 'गोदान' को महाकाव्यात्मक स्वरूप प्रदान करता है। प्रेमचंद ने अपने पात्रों की योजना करते समय मानव मूल्यों को सदैव ध्यान में रखा है। कृषकों एवं मजदूरों के प्रति उनके हृदय में गहरी सहानुभूति

थी, उनका हृदय सदैव इनके प्रति सदय रहा। वे अपने पात्रों को एक मनुष्य के रूप में देखते हैं, अतः उसमें गुणों के साथ-साथ दोषों का भी समावेश दिखाते हैं। प्रेमचंद के 'गोदान' के अधिकांश पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं अर्थात् वे 'व्यक्ति चरित्र' होते हुए भी 'समूह चरित्र' लगते हैं। होरी का चरित्र एक कृषक का चरित्र है। एक सामान्य किसान में जो गुण-दोष होते हैं, वे सब होरी के चरित्र में देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार राय साहब ज़मींदार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो 'मेहता' बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिनिधि हैं। 'मालती' को शिक्षित महिला वर्ग का प्रतिनिधि पात्र कह सकते हैं तो 'गोबर' प्रगतिशील चेतना से युक्त नवयुवक वर्ग का प्रतिनिधि बनकर सामने आया है। प्रेमचंद ने खलनायक की नई परिकल्पना की है। वे वास्तव में किसी व्यक्ति को नहीं अपितु समाज, समूह, वर्ग, व्यवस्था, परम्परा, रूढ़ियों को खलनायक मानते हैं। प्रेमचंद के चरित्रांकन की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपने प्रत्येक पात्र की खूबियों को बड़ी बारीकी से उभारा है।

समग्रतः हम कह सकते है कि 'गोदान' में प्रेमचंद ने जिन पात्रों की सृष्टि की है, वे मानव पात्र हैं, उनका चरित्रांकन मनोविज्ञान की दृष्टि से किया गया है, वे गतिशील पात्र हैं, उनके मानसिक अन्तर्द्वंद को उसमें स्थान मिला है। इन पात्रों में सजीवता, प्रभावशीलता एवं सशक्तता है तथा वे अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं। 'गोदान' कृषक होरी के ग्रामीण जीवन की कथा है। जो 'गोदान' के ग्रामीण पात्रों का प्रतिनिधित्व करता है। ज़मींदार राय साहब और उनके नगरवासी मित्र नगरवासी पात्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। नगर पात्रों की कथा ग्रामीण जीवन की ही कथा का एक अंश है। प्रेमचंद ने नगरवासी पात्रों के जीवन की कथाएँ 'गोदान' में सायास संयोजित की हैं, उन कथाओं का किसान और उसके ग्राम्य जीवन की कथा से गहरा सम्बन्ध है। 'गोदान' में अनेक नागरिक पात्रों को सम्मिलित करने को ऊपरी तौर पर असम्बद्ध समझा जाता है लेकिन इन पात्रों की कथा की ग्रामीण जीवन से एक संगत सम्बद्धता है। प्रेमचंद ने ग्रामीण पात्रों के रूपाकृति के वर्णन में जो अभिरुचि दिखाई है वह नगरीय पात्रों में विद्यमान नहीं है। कथा-विकास के साथ पात्र अनेक स्थितियों से गुजरते हैं और प्रेमचंद उन सब पर अपनी दृष्टि रखते हैं और पात्रों की विभिन्न स्थितियों, मनोदशाओं एवं प्रतिक्रियाओं को सूक्ष्मता से चित्रित करते हैं। 'गोदान' के प्रमुख पात्रों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है –

<u>प्रमुख ग्रामीण पात्र</u> – धनिया, गोबर, सोना, रूपा, झुनिया, दमड़ी, बंसार, हीरा, झिंगुरी, मंगरू साह, हरखू।

<u>प्रमुख नगरवासी पात्र</u> – ओंकारनाथ, तंखा, मेहता, कामिनी / गोविन्दी, खन्ना, मिर्ज़ा खुर्शेद, सरोज, वरदा, चुहिया

2.2.3. पुरुष पात्र बनाम स्त्री पात्र

पात्र लेखक की मानस सृष्टियाँ होते हैं। प्रेमचंद अपने पात्रों के साथ सम्पृक्त रहते हैं तथा उन्हें अपना दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। 'गोदान' में कुल 84 पात्र हैं जिनमें 56 पुरुष और 28 स्त्री पात्र हैं। सम्पन्न वर्ग के पात्रों की संख्या 11, मध्यमवर्ग के पात्रों की संख्या 33 और पिछड़े वर्ग के पात्रों की संख्या 49 है। महत्ता की दृष्टि से 'गोदान' में तीन तरह के पात्र उपस्थित हैं। प्रमुख पात्र, गौण पात्र और अति गौण पात्र। प्रमुख पात्रों का सम्बन्ध उपन्यास की आधिकारिक कथावस्तु से जुड़ा हुआ है। मुख्य पात्रों को विकसित करने एवं प्रभावपूर्ण बनाने के

लिए उपन्यासकार गौण पात्रों का सहारा लेता है। 'गोदान' के पुरुष-पात्रों में होरी और मेहता मुख्य पात्र हैं। गौण पुरुष-पात्रों में राय साहब अमरपाल सिंह, तंखा, मिर्ज़ा खुर्शेद, गोबर, मातादीन, दातादीन, झिंगुरी सिंह और नोखेराम पटवारी का नाम लिया जा सकता है। 'गोदान' के महत्त्वपूर्ण स्त्री-पात्रों में धनिया, मालती और गोविन्दी प्रमुख हैं। गौण स्त्री पात्रों में झुनिया, रूपा, सोना, सिलिया, सरोज, चुहिया आदि प्रमुख हैं। अति गौण पात्र वे होते हैं जो प्रत्यक्ष रूप से आधिकारिक कथा से सम्बन्धित नहीं होते वे थोड़ी देर के लिए रंगमंच पर आते हैं और कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ते। इन पात्रों में कलिया, हरखू, सरोज, दारोगाजी आदि कुछ नाम लिए जा सकते हैं।

2.2.4. प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ

2.2.4.1. 'गोदान' का प्रधान पात्र : होरी

होरी 'गोदान' का प्रधान पात्र है। होरी एक दीन-हीन किसान है और 'गोदान' का नायक है। होरी 'गोदान' का ही नहीं हिन्दी उपन्यास का एक युगान्तकारी पात्र है। परम्परागत 'हीरो' के ध्वंस पर होरी का निर्माण हुआ है। हिन्दी साहित्य में पहली बार एक भारतीय किसान का चित्रण एक व्यक्ति के रूप में किया गया है। आचार्य शान्तिप्रिय द्विवेदी का मानना है कि होरी स्वयं प्रेमचंद हैं लेकिन डॉ० रामविलास शर्मा अकेले होरी को प्रेमचंद नहीं मानते। उनका मत है 'गोदान' के किसी एक पात्र को प्रेमचंद का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता लेकिन अगर मेहता से होरी को जोड़ा जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा वह बहुत-कुछ प्रेमचंद से ही मिलता-जुलता होगा। मेहता में यदि उन्होंने अपने विचार डाले हैं तो होरी में बराबर परिश्रम करते रहने की दृढ़ इच्छाशक्ति। अतः निश्चित है कि होरी प्रेमचंद के व्यक्तित्व का प्रतिनिधि पात्र नहीं है। होरी पुराने विचारों का साधारण किसान है। उसका हृदय उदार है। ईश्वर के प्रति उसमें गहरी आस्था है। वह विनोदप्रिय भी है। समय-समय पर धनिया से वह विनोद भी करता है। वह उदार पिता और सच्चा पति भी है, किन्तु दरिद्रता की गोद में पला होरी एक विपन्न किसान है। होरी के चरित्र में यत्र-तत्र दुर्बलताएँ भी हैं। वे सारी दुर्बलताएँ एक भारतीय किसान की दुर्बलताएँ हैं। धनिया को कभी-कभी पीट देना, परिस्थितियों से वशीभूत होकर चालाकी से काम लेना, बेईमानी करना जैसे – भाई के हिस्से के बाँस बेच कर पैसे बचा लेना, सन गीला कर देना, पास में रुपये होते हुए भी महाजन से कसमें खाना – उसकी यह सारी अनैतिकता परिस्थिति-जन्य है। होरी 'गोदान' का नायक है, वह 'गोदान' जो भारतीय कृषक जनता का रंगमंच है। "एक साधारण किसान की चिरसंचित अभिलाषा की ट्रेजडी है 'गोदान'। अभिलाषा भी किसी महल-दुमहले की नहीं, सम्पदा की नहीं, सामाजिक ख्याति की नहीं, वरन् महज़ एक गाय की। गाय तो द्योतक है किसान की जीवन अभिलाषा की, जो उसके लिए बहुत बड़ी बात है और ट्रेजडी यही है कि किसान की साधारण अभिलाषा भी पूरी नहीं होती है, चाहे वह मर ही क्यों न जाए।

होरी परिवार की मर्यादा का रक्षक है। वह जानता है कि हीरा ने उसकी गाय को जहर दिया है किन्तु वह इस बात को सार्वजनिक नहीं करता है। होरी जानता है कि किसानी से पेट नहीं भरता है किन्तु किसानी छोड़कर मजदूरी करने में उसकी प्रतिष्ठा को ठेस लगती है। होरी मानवीय गुणों से सम्पन्न है। झुनिया गर्भवती होने पर उसके घर आ जाती है तो होरी उसे आश्रय देता है और अपनी बिरादरी और समाज से दुश्मनी मोल ले लेता है। निराश्रित

सिलिया को भी होरी अपने घर में आश्रय देता है। भले ही होरी को जीवनपर्यन्त आर्थिक तंगी से जूझना पड़ा तथापि उसने मानवता का त्याग कभी नहीं किया और अनैतिक आचरण से सदैव दूर रहा। अपने पाँच बीघे खेत की रक्षा करने के लिए वह संघर्ष करता रहा किन्तु अन्ततः वह जमीन उसके हाथ से निकल ही गई। अन्त में मजदूरी करके उसे अपना जीवन-यापन करना पड़ा और अत्यधिक श्रम करने के कारण उसे लू लग गई और काम करते-करते अन्ततः होरी का प्राणान्त हो गया। डॉ॰ रामविलास शर्मा ने होरी के विषय में लिखा है – "उपन्यास का प्रमुख पात्र होरी उपन्यासकार की अमर सृष्टि है। यह पहला अवसर है जब हिन्दी कथा साहित्य में किसान का चित्रण एक व्यक्ति के रूप में किया गया है। ... होरी पेशे और व्यक्ति दोनों दृष्टियों से किसान है। उसके चरित्र का चित्रण करने में प्रेमचंद ने अपनी समस्त कला उड़ेल दी है।"

2.2.4.2. प्रोफेसर मेहता

'गोदान' में दो नगरवासी पात्र अपनी विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण हैं, उनमें प्रोफेसर मेहता सबसे समर्थ पात्र है। वे दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर हैं तथा राय साहब अमरपाल सिंह के मित्रों में से हैं। मेहता अविवाहित हैं तथा बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं। 'गोदान' में मेहता वास्तव में प्रेमचंद के विचार-वाहक हैं। कार्यरूप में होरी और विचाररूप में मेहता प्रेमचंद का पूरा व्यक्तित्व प्रस्तुत कर देतेहैं। मिस्टर मेहता का चरित्र प्रेमचंद ने एक ऐसे दार्शनिक के रूप में अंकित किया है जो दर्शन को इस संसार में लागू करने को तैयार है। मेहता कोरे आध्यात्मिक पक्ष को लेकर नहीं चलते, वे जीवन में सिद्धान्तहीन और व्यक्ति उनकी घृणा के पात्र हैं। वे अवसरवाद और पाखण्ड के विरोधी हैं। एक स्थान पर राय साहब से वे कहते हैं – "मैं चाहता हूँ हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हो। आप कृषकों के शुभेच्छु हैं। उन्हें तरह-तरह की रियायतें देना चाहते हैं। ज़मींदारों के अधिकार छीन लेना चाहते हैं बल्कि उन्हें आप समाज का शाप कहते हैं फिर भी आप ज़मींदार हैं, वैसे ही ज़मींदार जैसे हजारों और ज़मींदार हैं।"

मेहता रूप-सौन्दर्य को नहीं, कर्म सौन्दर्य को महत्ता देते हैं। मालती का रूप-सौन्दर्य उन्हें प्रभावित करता है। मेहता की नारी सम्बन्धी-धारणाएँ बहुत ऊँची हैं। वे मिर्ज़ा खुर्शेद से कहते हैं – "मैं आपसे किन शब्दों में कहूँ कि स्त्री मेरी नजरों में क्या है ? संसार में जो कुछ सुन्दर है उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहताहूँ। मैं उससे यह आशा करता हूँ कि मैं उसे मार भी डालूँ तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आए। अगर मैं उसकी आँखों के सामने किसी अन्य स्त्री को प्यार करूँ तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी को पाकर मैं उसके चरणों में गिर पड़ूँगा और इस पर अपने को अर्पण कर दूँगा।" वीमेंन्स लीग में भाषण देते हुए मेहता कहते हैं – "स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अँधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा, त्याग और अहिंसा जीवन का उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है।"

प्रोफेसर मेहता इस उपन्यास में अपने नारी सम्बन्धी विचारों, सफलता और समाजवाद सम्बन्धी टिप्पणियों और प्रेम सम्बन्धी अभिमत के लिए बराबर ध्यान आकर्षित करते हैं। वे व्यक्ति के विकास के लिए विवाह को ज़रूरी नहीं मानते हैं और उनका विचार है कि 'समानता' कभी समाज में कायम नहीं हो सकती। वे

दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं और उनकी आय का एक हिस्सा दूसरों की सहायता में व्यय होता है। डॉ॰ गोपाल राय का विचार है – "कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि प्रेमचंद ने मेहता की चरित्र-दृष्टि अपने विचारों या आदर्शों, जैसे – मनसा-वाचा-कर्मणा एक होना, सहज प्राकृतिक जीवन बिताना, कृत्रिम जीवन से दूर रहना की अभिव्यक्ति के लिए किया है।" उन्होंने मेहता से कहलाया है – "मैं नकली ज़िंदगी का विरोधी हूँ। अगर माँस खाना अच्छा समझते हो तो खुलकर खाओ।"

मेहता के नारी-सम्बन्धी विचारों को देखा जाए तो शुरू में वे बहुत रूढ़िवादी लगते हैं। वे प्रेम-विवाह के विरुद्ध हैं, नारी को मताधिकार नहीं देना चाहते। वे वफा और त्याग की मूर्ति समझते हैं और मानते हैं कि कुर्बानी नारी को ही देनी चाहिए। वे उसके कर्म-क्षेत्र में आने को अच्छा नहीं समझते। कुछ समीक्षकों को लगता है कि ये सभी विचार प्रेमचंद के भी हैं। वास्तविकता यह नहीं है। प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी प्रेमचंद स्वयं घर से बाहर के क्रियाकलापों में संलग्न रही हैं। जहाँ वे स्वतन्त्रता के नाम पर पनपती नारी की भोगवादी उच्छृंखलता का विरोध करते हैं, वहाँ वे अवश्य प्रेमचंद के प्रतिनिधि जान पड़ते हैं। इसी तरह उनकी प्रेम सम्बन्धी विचारणा में अतिवाद है। उनके लिए "प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं, खूँखार शेर है, जो अपने शिकार पर किसी की आँख भी नहीं पड़ने देता।"

होरी और मेहता में एक समानता है। होरी की तरह मेहता भी काम से जी नहीं चुराते। वे किताबी कीड़े नहीं हैं। प्रेमचंद के अनुसार – "डॉ॰ मेहता को काम करने का नशा था। आधी रात को सोते थे और घड़ी रात रहे ही उठ जाते थे। कैसा भी काम हो, उसके लिए वे कहीं-न-कहीं से समय निकाल लेते थे। "इस कर्मनिष्ठा के साथ उनकी ज़िंदादिली भी जुड़ी हुई है। पठान का स्वाँग भरते और कबड्डी खेलते मेहता बहुत जीवन्त लगते हैं। मालती के साथ उनका प्रेम वास्तविक है, लेकिन उनकी अहम्-केन्द्रित मानसिकता के चलते उनका विवाह नहीं हो पाता। वे मालती के उपासक बन जाते हैं और उसी के निर्देशों के अनुरूप ज़िंदगी जीने लगते हैं।

मेहता की दृष्टि से खन्ना साहब की पत्नी गोविन्दी आदर्श स्त्री है और वे उसके प्रति श्रद्धा भाव रखते हैं। जब उन्हें गोविन्दी के बारे में यह पता चलता है कि वह मालती के कारण दुखी है तब उन्होंने यह जिम्मा अपने ऊपर ले लिया कि उनके पति को मालती के चंगुल से छुड़ा देंगे। वे नकली जीवन के विरोधी हैं और कहते हैं – "मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ जो प्रसन्न होकर हँसता है, दुखी होकर रोता है और क्रोध में आकर मार डालता है जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं, जो रोने को कमजोरी और हँसने को हल्कापन समझते हैं उनसे मेरा कोई मेल नहीं।" मेहताजी का यह भी विचार है – "नारी केवल माता है और उसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि मेहता प्रेमचंद का एक अमर-पात्र है। अकेले मेहता को प्रेमचंद का प्रतिनिधि पात्र कहना कठिन है फिर भी प्रेमचंद का जीवन-दर्शन मेहता के माध्यम से ही इस उपन्यास में अभिव्यंजित हुआ है। प्रेमचंद का मेहता मानव-पात्र है। प्रारम्भ में वह असाधारण है, परन्तु उसकी यह असाधारणता धीरे-धीरे

साधारण होती चली जाती है और मेहता विशिष्ट से सामान्य बन जाता है। देवत्व का ओढ़ाया हुआ लबादा जब उपन्यासकार उन पर से उतारकर रख देता है, तो वे हमारे लिए अपरिचित नहीं रह जाते हैं यही मेहता की विशिष्टता है।

2.2.4.3. 'गोदान' की प्रधान स्त्री पात्र : धनिया

धनिया 'गोदान' की प्रमुख नारी पात्र है। उसका चरित्र भारतीय ग्रामीण नारी का प्रतिनिधि चरित्र है। धनिया से हमारा परिचय 'गोदान' के प्रारम्भिक अंश में होता है। वह छत्तीस साल की उम्र में अभाव, कुपोषण की मार से असयम वृद्ध हो गई नारी के रूप में हमारे समक्ष आती है। उसके तीन बच्चे इलाज के अभाव में बचपन में ही दम तोड़ गए हैं। अभावों ने उसे मुँहफट और विद्रोही बना दिया है। धनिया जीवन भर निर्धनता की चक्की में पिसने वाली एक असहाय नारी है। जीवन में आने वाले संघर्ष उसे तोड़ देते हैं परन्तु उसके पाँवों की ताकत को देखकर विस्मित रह जाना पड़ता है। वह होरी की सहधर्मिणी है, केवल सहधर्मिणी ही नहीं, शोषण के अबाध-चक्र के विरुद्ध संघर्ष में वह होरी की सहचरी है। होरी की पत्नी यदि धनिया न होती तो होरी पूरा किसान बनकर हमारे सामने नहीं आ पाता। धनिया होरी के जीवन की पूर्ति है। होरी के जीवन को समग्रता देना ही धनिया लक्ष्य है। एक भारतीय नारी की तरह पति-निष्ठा उसका स्वाभाविक गुण है। वह 'सोहाग' के तृण को पकड़कर विपन्नता के सागर को पार करने का दुस्साहस करती है लेकिन जीवन-संघर्ष में आहत होरी एक दिन चल बसता है। पतिनिष्ठा के अतिरिक्त उसके व्यक्तित्व में वात्सल्य भाव भी सघन है। यह भाव अपने बच्चों – गोबर, सोना, रूपा के प्रति तो भरपूर है ही, दूसरे दुखियों के प्रति भी पर्याप्त है। झुनिया और सिलिया को वह शरण देती है, यह जानते हुए भी इसका अर्थ आपत्ति को निमन्त्रण देना है। वह झुनिया को समझाती है – "तू चल घर में बैठ, मैं देख लूँगी काका और भैया को। संसार में उन्हीं का राज नहीं है।" वह दलित सिलिया को भी आश्वस्त करती है। जब मातादीन के मुँह में हड्डी दी जाती है तो अकेली धनिया इस दुस्साहस को सही मानती है – "बड़ा अच्छा किया हरखू चौधरी ने। ऐसे गुण्डों की यही सजा है।" धनिया किसान-वर्ग की नारी पात्र है। इस वर्ग की नारियों का जीवन सीधा सरल होता है,उसमें जटिलताएँ कम होती हैं।

होरी और धनिया का जीवन प्रेमचंद ने आपस में इतना घुला-मिला दिया है कि हम उसे एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकते। यह स्नेहमयी पत्नी धनिया अपने पति के जीवन के रास्ते में आशीर्वादों का जाल बिछा देना चाहती है – "होरी कन्धे पर लाठी लेकर निकला तो धनिया द्वार पर खड़ी होकर उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कम्पन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकल कर होरी को अपने अन्दर छिपाए लेता था। विफलता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी।" होरी की मृत्यु धनिया को तोड़ देती है। होरी की मृत्यु पर जब 'गोदान' का प्रश्न आता है तो बीस आने पैसों में उसके जीवन की करुणा कन्दन कर उठती है। पाठक का हृदय होरी की मृत्यु से तो टूटता ही है, परन्तु धनिया की मार्मिक विवशता से उसके अन्तर का कोना-कोना रो उठता है। भारतीय ग्रामीण नारी की प्रेमचंद ने गहरी निकटता से देखा था, तभी उनकी धनिया हमें

इतना अभिभूत करती है। 'बादाम' की भाँति ऊपर से कठोर परन्तु हृदय की कोमल धनिया 'गोदान' के ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित कथानक की धुरी है। सारा कथानक होरी के साथ-साथ उसके चारों ओर घूमता है। एक पल को आँखों से धनिया ओझल हुई हो, कि पाठक उसे तलाशने लगता है।

धनिया का चरित्र प्रारम्भ से लेकर अन्त तक 'गोदान' में अपनी एक विशेष स्थिति रखता है। ऐसा लगता है कि प्रेमचंद ने अपने भीतर की सारी करुणा उड़ेल कर उस जीवन्त नारी पात्र की सृष्टि की हो। उसमें त्याग, तपस्या, कठोरता, ममता, दया, जिजीविषा और अपनी अस्मिता के लिए डटकर लड़ने की संघर्षशीलता है। वह गाँव की तमाम शोषक शक्तियों क्या महाजन, क्या ज़मींदार ! सबसे टकराती है और उनके चेहरों का नकाब उतारती है। धर्म और समाज की गलाजत का पर्दाफाश करती है। धनिया के चरित्र के विषय में हंसराज रहबर ने ठीक ही लिखा है – "धनिया बहुत साहसी औरत है। वह जिस बात को ठीक समझ ले फिर समाज, बिरादरी, नियम, कानून किसी बात की परवाह नहीं करती उसे कर डालती है। ... अपने अदम्य साहस और कर्मशीलता के कारण वह कई बार गाँव-भर का नेतृत्व करती हुई दीख पड़ती है।"

2.2.4.4. मालती

मालती 'गोदान' की एक अन्य प्रमुख नारी पात्र है। 'गोदान' में मालती का परिचय प्रेमचंद इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं – "दूसरी महिला जो ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख-छवि पर हँसी फूटी पड़ती है, मिस मालती है। आप इग्लैंड से डॉक्टरी पढ़ आई हैं और अब प्रैटिक्स करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा हैं। गाल कोमल, पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई है। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिरजवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है वहाँ हाव-भाव मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया।"

स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रकार के पात्रों में मालती अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। मेहता को केन्द्र में रखकर उसके चरित्र का अध्ययन करना आसान है। मेहता के सम्पर्क में आने से पूर्व मालती का जीवन एक उच्छृंखल पारी का जीवन है और मेहता के सम्पर्क में आने के बाद उसके व्यक्तित्व में एक परिवर्तन दिखाई देता है। राय साहब के यहाँ उत्सव में हम दोनों को पहली बार एक साथ देखते हैं। दोनों में अजीब सजीवता है – "एक में अपनी बौद्धिकता और स्पष्टवादिता के कारण तो दूसरे में अपने तितलीपन के कारण। मेहता और मालती में प्रारम्भ से एक साम्य मिलता है। दोनों जीवन को खेल समझकर खेलते हैं। मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी है। केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है और जीये भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हँसती है इसलिए कि उसे उसके भी दाम मिलते हैं। उसका चमकना इसलिए नहीं है कि वह चहकने और चमकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढ़ा लिया है कि

जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं, वह इसलिए चहकती और विनोद करती है कि इससे उसके कर्त्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।" मेहता के लिए आनन्द सिद्धि है, मालती के लिए साधन।

वह मेहता के प्रति आकृष्ट होती है और शीघ्र ही समर्पित प्रेमिका बन जाती है। मेहता से लोक-मंगल का पाठ पढ़कर उसकी कायापलट होने लगती है और वह लोक-सेवा में जुट जाती है। जब उसे ज्ञात होता है कि मेहता के प्रेम सम्बन्धी विचार अहंवादी और पशुत्व के सोच के निकट हैं तो वह बिना विवाह किए उनके साथ रहने का निर्णय करती है। यद्यपि मेहता बाद में लज्जित होते हैं फिर भी वह उन्हें दुनिया के दुखियों का संताप हरने की प्रेरणा देती है। अपनी त्याग-तपस्या की धुन में वह इतनी ऊँची उठ जाती है कि मेहता के लिए दिव्य आकाश-कुसुम बनकर रह जाती है। उपन्यास में मालती का चरित्र विकासशील है। 'स्वार्थ' से 'लोकहित' की ओर संक्रमण उसके चरित्र की खास विशेषता है। वह पूछती है – "अपनी छोटी-सी गृहस्थी बनाकर, अपनी आत्माओं को छोटे-से पिंजरे में बन्द करके, अपने सुख-दुःख को अपने ही तक रखकर क्या हम असीम के निकट पहुँच सकते हैं ? कुछ आलोचकों को लगता है कि प्रेमचंद ने मालती के चरित्र को अतिरिक्त आदर्शवाद से आच्छादित कर दिया है। वास्तविकता यही है कि आधुनिक नारी के 'मॉडल' के रूप में वे आत्मसीमित, रूपगर्विता नारी के स्थान पर लोकसेवा में जुटी नारी का आदर्श प्रस्तुत करना चाहते थे इसलिए उन्होंने 'मालती' को पत्नी के बजाय 'कम्पेनियनशिप' के पक्ष में दर्शाया है।

2.2.5. 'गोदान' के गौण पात्र

प्रधान पात्रों के साथ 'गोदान' के सम्यक् अध्ययन के लिए गौण पात्रों का भी अध्ययन आवश्यक है क्योंकि ये पात्र कथानक को संचालित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

2.2.5.1. राय अमरपाल सिंह

राय साहब अमरपाल सिंह होरी के गाँव के ज़मींदार हैं। होरी बेलारी में रहता है और राय साहब सेमरी गाँव में रहते हैं। 'गोदान' में प्रेमचंद ज़मींदार राय साहब अमरपाल सिंह का परिचय इन शब्दों में देते हैं – "पिछले सत्याग्रह-संगाम में राय साहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये थे तबसे उनके इलाके के असामियों को उनके प्रति बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, या डाँड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। राय साहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवसाय के गुलाम थे। राय साहब की सज्जनता उस पर कोई असर न डाल सकती थी इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ भर की भी कमी न होने पर भी उनका यश मानों बढ़ गया था। असामियों से यह हँसकर बोल लेते थे। यही क्या कम है। सिंह का काम तो शिकार करना है अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में उसे जंगल में न भटकना पड़ता।"

नये युग की परिस्थितियों में ज़मींदार अच्छा बन गया हो, सो बात नहीं है। "शोषक तो वह अब भी है लेकिन अब वह गुर्राकर, गरजकर अपना शिकार नहीं करता, गाँधी टोपी लगाकर, जेल जाकर बेचारे गरीब अनपढ़ असामियों के ह्रदय को प्रभावित करके अपना काम करता है। राय साहब जेल जाकर जनता के श्रद्धा-पात्र बने रहते हैं और नजरे और डालियाँ भेजकर सरकार के कृपापात्र। राय साहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाये रखते हैं।"

ज़मींदार कैसे खोखले, अस्वाभाविक समाज के व्यक्ति हैं यह राय साहब स्वयं जानते हैं। वे जानते हैं कि गरीबों का शोषण करके वे अपनी धँसती हुई इमारत को थामे रखने के लिए हर प्रकार की चेष्टाएँ कर रहे हैं, लेकिन ये चेष्टाएँ कारगर होने की नहीं है। परिस्थितियाँ खुद उनके वर्ग के अस्तित्व को मिटा देने के लिए बनती चली जा रही हैं।

'गोदान' में हमें कहीं नहीं जान पड़ता कि राय साहब ने उदार, सहृदय ज़मींदार बनने की कोशिश की हो। प्रारम्भ से अन्त तक वे अपने स्वार्थों को बनाए रखने की कोशिशों में लिप्त मिलते हैं। यहाँ तक कि ओंकारनाथ को रिश्वत देकर वे अखबार का मुँह बन्द किए रखना चाहते हैं जिससे उनके अत्याचारों, अनाचारों का भाँडा न फूटे। वे गाँव के किसानों को चूसकर अपनी झूठी मर्यादा बनाए रखने के हजार कामों में रुपया व्यय करते रहते हैं। 'गोदान' के अन्त में हम देखते हैं – "राय साहब को अपना राजसी ठाठ निभाने के लिए वही असामियों पर इज़ाफा, बेदखली और नजराना करना और लेना पड़ता था जिससे उन्हें घृणा थी। वह प्रजा को कष्ट न देना चाहते थे। उनकी दशा पर उन्हें दया आती थी लेकिन अपनी ज़रूरतों से हैरान थे।" यह बात राय साहब ढंग-ढंग से कहते हैं – "मैं किसानों के प्रति न्याय करना चाहता हूँ लेकिन परिस्थितियों से मजबूर हूँ।"

बदला हुआ युग महाजनों का है जो गाँव के किसानों और शहरों में ज़मींदारों को खोखला बनाते जा रहे हैं। सामन्ती व्यवस्था में तब भी एक सीमा है लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था, महाजनी सभ्यता तो ऐसी है कि जिसमें गरीब और अधिक गरीब और अमीर और अधिक अमीर होता जाता है। इस व्यवस्था के दो स्पष्ट प्रतीक खन्ना और तंखा हैं।

2.2.5.2. गोबर

होरी का बेटा गोबर नई पीढ़ी के किसान का प्रतिनिधि है। गोबर जानता है कि गरीब-अमीर मनुष्य व्यवस्था की देन है। कर्ज के नाम पर फैले शोषण-चक्र को वह अच्छी तरह जानता है। शहर के मजदूरों के सम्पर्क में रहकर गोबर में विद्रोही चेतना का उदय हुआ है। लेकिन शहर की विकृतियाँ शीघ्र ही उसके तेज को खत्म कर देती हैं। गोबर का परिचय देते हुए प्रेमचंद ने लिखा है – "गोबर साँवला, लम्बा, इकहरा युवक था जिसे इस काम से रुचि न मालूम होती थी। प्रसन्नता की जगह मुख पर असंतोष और विद्रोह था। वह इसलिए काम में लगा हुआ था कि वह दिखाना चाहता था, उसे खाने-पीने की कोई फिक्र नहीं है।" गोबर प्रारम्भ से ही विद्रोही है। वह होरी से कहता है – "यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो ? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ

सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है । नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है । फिर किसी की क्यों सलामी करो ।" त्रिलोकीनाथ खन्ना ने गोबर के बारे में लिखा है – 'वह गाँव के अन्धविश्वासी और रूढ़िग्रस्त जीवन में फूटने वाला नया स्वर है । अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और अत्याचार के प्रति असहिष्णु युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है, गोबर । अपने नाम के विपरीत गुण और स्वभाव धारण करने वाला है, गोबर । यह युवक गोबर होरी की तरह ज़मींदार की इच्छापूर्ति के लिए ईंधन बनने को तैयार नहीं ।"

गोबर जिस नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है उस पीढ़ी की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है विद्रोह । जो कुछ भी प्राचीन है परम्परागत है और जिसके आधार पर सामन्तवादी व्यवस्था टिकी हुई है । उसके प्रति विद्रोह की भावना नई पीढ़ी के युवक के चरित्र का मूलतत्त्व है । गोबर इस विद्रोह भाव से भरा हुआ है ।

गोबर के चरित्र में आधुनिक पीढ़ी की मूल्यहीनता भी दिखाई पड़ती है । होरी, धनिया, मिर्ज़ा साहब, झुनिया तथा चुहिया के प्रति उसका व्यवहार नितान्त स्वार्थपूर्ण, कृतज्ञतारहित और घिनौना है । जिस निमर्मता के साथ वह धनिया को लखनऊ जाते समय लगने वाली बातें सुनाता है उससे उसके चरित्र का ओछापन प्रकट होता है । इसी प्रकार मिर्ज़ा साहब के साथ भी उसका व्यवहार कृतघ्नता और स्वार्थ से भरा हुआ है । मिर्ज़ा साहब उसे नौकरी देते हैं, रहने के लिए जगह देते हैं, उससे कोठरी का किराया नहीं लेते पर जब वे उससे दो रुपये उधार माँगते हैं तो वह रुपये रहने पर भी इन्कार कर देता है । जो गोबर गाँव में महाजनी शोषण का विरोधी था, वही शहर में छोटा-मोटा महाजन हो जाता है और पड़ोस के इक्केवालों, गाड़ीवानों और धोबनियों को एक आना रुपया सूद पर कर्ज देता है । दूसरी बार गाँव से लखनऊ लौटने पर उसे शराब पीने की आदत लग जाती है और वह नशे में झुनिया को गाली देता, पीटता और घर से निकालने लगता है । जो चुहिया उसका उपकार करती है, उसे भी वह खरी-खोटी सुनाता है ।

गोबर की जीवन-कथा में स्पष्ट है कि उसकी मूल्यहीनता नगरीय जीवन की उपज है । जब तक वह गाँव में रहता है, उसके चारित्रिक मूल्य सुरक्षित रहते हैं । शहर में जाते ही एक साल के भीतर उसमें काइयाँपन आ जाता है । पैसा उसके जीवन की मूल प्रेरक शक्ति बन जाता है । यह नगर में पनपने वाली पूँजीवादी व्यवस्था परिणाम है । उसमें कुछ और परिवर्तन होते हैं – "उसने अंग्रेजी फैशन के बाल कटवा लिए हैं, महीन धोती और पम्पशू पहनता है, एक लाल ऊनी चादर खरीद ली और पान-सिगरेट का शौकीन हो गया है । सभाओं में आने-जाने से उसे कुछ-कुछ राजनैतिक ज्ञान भी हो चला है । राष्ट्रों और वर्ग का अर्थ समझने लगा है । सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिष्ठा और लोक-निन्दा का भय उसमें बहुत कम रह गया है ।

यहाँ तक गोबर का चरित्र अत्यन्त यथार्थवादी तथा प्रगतिशील विचारधारा के अनुरूप है और वह सही अर्थों में नई, जागरूक, विद्रोही और मूल्यहीन पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है । पर प्रेमचंद का आदर्शवादी रुझान उन्हें यही करने नहीं देता है । वे गोबर के चरित्र को झटके के साथ आदर्शवादी मोड़ दे देते हैं । मजदूरों के संघर्ष में गोबर घायल हो जाता है और इस घटना से उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है । गोबर के चरित्र की अन्तिम परिणति

सुशीलता, विनय और सहनशीलता उसके पूर्ववर्ती चरित्र का अनिवार्य विकास नहीं, वरन् बाहर से आरोपित लगती है।

2.2.6. प्रेमचंद की नारी विषयक दृष्टि

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में विपुलता और विशालता है। फलतः उनके स्त्री चरित्रों में भी पर्याप्त विपुलता एवं विस्तार है। प्रेमचंद ने प्रायः सभी तरह के नारी चरित्रों को उपस्थापित करने का प्रयत्न किया है। उनके चरित्रों में अनपढ़ स्त्री चरित्र भी हैं तो पढ़ी-लिखी आधुनिक स्त्रियाँ भी हैं। प्रेमी के प्रति सर्वस्व निछावर कर देनेवाली वेश्याएँ हैं तो गृहिणी और सती नारियाँ भी हैं। नारी-अस्मिता के तलाश में प्रेमचंद को अपने स्त्री चरित्रों के चरित्रांकन में पर्याप्त सफलता मिली है। स्त्री चरित्रों के निर्माण में हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचंद की स्थिति एक प्रकाश-स्तम्भ की तरह है। उनकी विलक्षणता आकर्षक है। प्रेमचंद के साहित्य में कुछ ऐसी भी स्त्री पात्र हैं जिन्होंने उत्पीड़न, अत्याचार, शोषण का अपनी तीक्ष्णता से जमकर मुकाबला किया है। 'गोदान' की धनिया एक ऐसी ही पात्र है। उसे प्रायः झगड़ालू स्त्री माना जाता है किन्तु वह झगड़ालू है नहीं। अन्याय, अत्याचार, शोषण, क्रूरता, ढोंग, धोखेबाजी का वह पग-पग विरोध करती है इसलिए उसे झगड़ालू कहा जाता है। उसका बेटा गोबर जब चमार जाति की एक लड़की झुनिया से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और उसे घर में छोड़कर समाज के भय से घर छोड़कर भाग जाता है। गाँव के सारे ठेकेदार न्याय के निमित्त होरी पर जुर्माना लगा देते हैं। धनिया भड़क उठती है – "मुझसे इतना बड़ा जुर्माना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों न उसको निकालकर सड़क की भिखारी नहीं बना दिया। यही न्याय है।" धनिया किसी की परवाह नहीं करती वह न्याय पर अडिग रहती है। प्रेमचंद द्वारा रचित वह एक विलक्षण स्त्री पात्र है। मातादीन के उपदेश पर भड़क उठती है। मातादीन का बेटा भी एक चमारिन से फँसा है और वह जाति और धर्म का उपदेश दे रहा है। कुल प्रतिष्ठित घर की मर्यादा की बात मातादीन उठाते हैं जबकि प्रत्येक दृष्टि से वे स्वयं भ्रष्ट हैं, पतित हैं – "हमको कुल, प्रतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज, कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते। ब्याहता न सही, पर उसकी बाँह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। वही काम बड़े करते हैं, उनसे कोई नहीं बोलता, उन्हें कलंक नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं तो उनकी मरजाद बिगड़ जाती है, नाक कट जाती है। बड़े आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं।" वह मातादीन को फटकारती है, डपटकर जवाब देती है – "भीख माँगोगे तुम, जो भिखमंगे की जात हो। हम तो मजूर ठहरे, जहाँ काम करेंगे वहीं चार पैसे पायेंगे।"

ग्रामीण क्षेत्र में शोषण करने, पैसा ठगने के अनेक तरीके हैं। होरी के भाई हीरा ने होरी की गाय को जहर देकर मार डाला है और घर छोड़कर भाग गया। दारोगा आया है, घर की तलाशी लेना चाहता है। घर की तलाशी सबसे बड़ी अप्रतिष्ठा की बात समझी जाती है। धनिया ने दरोगा का मुकाबला किया। उसने उसे निर्भीकतापूर्वक ललकारा – "हाँ, दे दिया, अपनी गाय थी मार डाली, फिर ! फिर किसी दूसरे का जानवर तो नहीं मारा। तुम्हारी जाँच में यही निकलता है तो लिखो, पहना दो हाथों में हथकड़ी।" धनिया को होरी ने डाँटा किन्तु गोबर बीच में आ गया। धनिया शेर बनकर बोलने लगी – "तू हट जा गोबर। देखूँ तो ! क्या करता है मेरा। दारोगाजी बैठे हैं।

इसकी हिम्मत देखूँ। घर में तलाशी लेने से इसकी इज्जत जाती है। अपनी में हरिया को सारे गाँव के सामने लतियाने से इसकी इज्जत नहीं जाती।" दारोगा भी स्वीकार करता है कि "औरत है बड़ी दिलेर।" विरोध के ऐसे अनेक प्रसंग उपस्थित हैं, हर जगह धनिया ने डटकर मुकाबला किया है। अपने प्रखर स्वर में अन्याय का विरोध किया है।

प्रेमचंद ने नारी को सिर्फ प्रेरक शक्ति के रूप में ही नहीं, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के कन्धे से कन्धे लगाकर काम करने वाले साथी के रूप में देखा है। उन्होंने नारी-हृदय की उन शाश्वत भावनाओं के आधार पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनकी युगों से उपेक्षा होती रही है इसीलिए प्रेमचंद की नारी पारिवारिक तथा सामाजिक संघर्षों के बीच और भी निखरी है। प्रेमचंद नारी की स्वतन्त्रता के समर्थक होने के साथ ही संयम और मर्यादा के भी समर्थक हैं। 'गोदान' में मेहता गोविन्दी से कहते हैं – "नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है।" प्रेमचंद स्त्रियों को शिक्षित भी देखना चाहते हैं उनका मानना है – "जब तक स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होगी और सब कानून-अधिकार उनको बराबर न मिल जायेंगे तब तक महज बराबर काम करने से ही काम नहीं चलेगा।" एक अन्य प्रसंग में राय साहब के सभी मित्र, पूँजीपति, ज़मींदार, व्यापारी, अधिकारी उपस्थित थे। इसी बीच एक पठान कन्धे पर बन्दूक और तलवार लटकाए अकस्मात् उपस्थित हो गया। सभी को धमकाने लगा। किसी में भी पठान का मुकाबला करने की हिम्मत नहीं आई। वह डॉ० मिस मालती को जबरदस्ती उठा ले जाने की घोषणा करने लगा। मालती का मुख क्रोध से तमतमा उठा। वह बोली – "होगा क्या, मेरी इतनी बेइज्जती हो रही है और आप लोग बैठे देख रहे हैं। बीस मर्दों के होते हुए एक उजड्ड पठान मेरी दुर्गति कर रहा है और आप लोगों के खून में गर्मी नहीं आई। आपको जान इतनी प्यारी है।"

प्रेमचंद नारी के अनेक रूपों के चितेरे हैं। अपने चित्रण-क्रम में वे एकांकी नहीं हैं। वे पत्नी और प्रेमिका की भूमिकाओं का निर्वाह करने वाली नारियों के यथार्थ चित्रण में सफल रहे हैं। प्रेमचंद स्त्री के ममत्व के पक्षधर हैं। वे उसकी वफा, सेवा और मातृभावना को भारतीय दृष्टि से देखते हैं। उनकी नारी विषयक दृष्टि सहधर्मिणी के शील-गुणों की परख करती है। धनिया तेज-तर्रार है किन्तु पत्नी के रूप में वह होरी से हार्दिक रूप से जुड़ी है। गोविन्दी भी खन्ना के प्रति संवेदनशील है। प्रेमिका के रूप में सिलिया मातादीन के प्रति निष्ठामयी है। झुनिया भी गोबर का साथ निभाती है। मालती मेहता को चाहती है। वह प्रेमी की परिणीता नहीं हो पाती है, किन्तु मेहता के प्रति उसकी हित कामना सदैव बनी रहती है।

2.2.7. पाठ-सार

किसी भी कथात्मक रचना में जो पात्र आते हैं वे विविध भावनाओं से जुड़े होते हैं। 'गोदान' में बहुत सारे पात्र मिलते हैं जो विविध भावों का संवहन करते हैं। होरी किसान के जीवन के संघर्ष और जीवट के रस को प्रकट करता है। धनिया के चरित्र का स्वाद तल्ख़ लेकिन उसमें ममता का अमृत भी मिलता है। मातादीन में कुलीनता और प्रेम का द्वन्द है। सिलिया अछूत वर्ग की है उसमें प्रेम का स्पर्श और स्वाभिमान का रस भी मिलता है। मालती के चरित्र में तितली के पंखों की रंगीनी और उड़ने की प्रवृत्ति है किन्तु वह मधुमक्खी की तरह संग्रहणशील

भी है। मेहता उसे ज्ञान का आसव पिलाता है किन्तु वह उस ज्ञान को उस कोल्हू से भी उपमित करता है जो मनुष्यता को पीस डालती है। ज्ञान और जीवन की सरलता मेहता को काम्य है। वह स्त्री को वफा और त्याग की मूर्ति मानता है किन्तु स्त्री पर कोई और अपनी दृष्टि डाले इसे वह बर्दाश्त नहीं कर सकता है। उसमें सहजता और अहम् दोनों का समन्वय दिखाई पड़ता है।

चरित्रों की विविधता का अर्थ होता है जीवन के विषद पहलुओं का साक्षात्कार करना। प्रेमचंद की पात्र-योजना में जो प्रशस्तता मिलती है वह जीवन की विषदता की परिचायिका है। प्रेमचंद चरित्र के एक ही पहलू पर केन्द्रित नहीं रहते हैं वे उसके कई पक्षों को ध्यान में रखते हैं। यही कारण है उनकी स्त्री पात्र एक जैसी नहीं है। उनमें जीवन की समग्रता के दर्शन होते हैं।

2.2.8. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. धनिया किस उपन्यास की पात्र है ?
   (क) गोदान
   (ख) मैला आँचल
   (ग) झूठा सच
   (घ) सेवासदन

सही उत्तर – (क)

2. मेहता किस उपन्यास का महत्त्वपूर्ण चरित्र है ?
   (क) गोदान
   (ख) कर्मभूमि
   (ग) रंगभूमि
   (घ) सेवासदन

सही उत्तर – (क)

3. 'गोदान' में प्रेमचंद के प्रगतिशील विचारों का वाहक पात्र है ?
   (क) गोबर
   (ख) प्रोफेसर मेहता
   (ग) होरी
   (घ) धनिया

सही उत्तर – (ख)

4. प्रेमचंद का अन्तिम पूर्ण उपन्यास कौन-सा है ?
   (क) सेवासदन

(ख) गोदान

(ग) निर्मला

(घ) मंगलसूत्र

सही उत्तर – (ख)

5. उपन्यास सम्राट की उपाधि से किस उपन्यासकार को विभूषित किया जाता है ?

(क) प्रेमचंद

(ख) जैनेन्द्र

(ग) यशपाल

(घ) रेणु

सही उत्तर – (क)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धनिया का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कीजिए।
2. "मेहता प्रेमचंद के दार्शनिक विचारों का वाहक पात्र है।" स्पष्ट कीजिए।
3. गोबर के चरित्र की विशेषताएँ बताइए।
4. राय अमरपाल सिंह के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।
5. "मालती 'गोदान' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र है।" विवेचन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'गोदान' के दो प्रमुख पुरुष पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. 'गोदान' के दो प्रमुख स्त्री पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. 'गोदान' में प्रेमचंद के नारी विषयक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
4. 'गोदान' में प्रेमचंद के यथार्थवादी दृष्टिकोण का कहाँ तक निर्वाह हुआ है। समीक्षा कीजिए।
5. होरी का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कीजिए।

2.2.9. उपयोगी ग्रन्थ सूची

1. गोदान : संवेदना और शिल्प, डॉ० चन्द्रेश्वर कर्ण, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. गोदान : एक पुनर्विचार, सं. : परमानन्द श्रीवास्तव, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. कलम का मजदूर, मदन गोपाल
4. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र
5. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद, महेन्द्र भटनागर

खण्ड – 2 : 'गोदान' उपन्यास

इकाई – 3 : 'गोदान': भारतीय कृषक की संघर्षमय जीवन-गाथा का जीवन्त दस्तावेज़ बनाम मध्यमवर्ग की समस्याओं का चित्रण

इकाई की रूपरेखा

2.3.0 उद्देश्य कथन
2.3.1 प्रस्तावना
2.3.2 विषय-विस्तार
2.3.3 पाठ-सार
2.3.4 बोध प्रश्न
2.3.5 उपयोगी ग्रन्थ-सूची

2.3.0. उद्देश्य कथन

पिछली दो इकाईयों में 'गोदान' के महाकाव्यात्मक स्वरूप, कथा-शिल्प, 'गोदान' की पात्र सृष्टि एवं प्रेमचंद की नारी विषयक दृष्टि का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत इकाई में भारतीय कृषक-जीवन के संघर्षों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

i. भारतीय कृषक वर्ग की संघर्षमयी जीवन-गाथा के बारे में जान सकेंगे।
ii. तत्कालीन मध्यमवर्ग की समस्याओं से परिचित हो सकेंगे।
iii. कृषक-जीवन की समस्याओं और मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याओं से परिचित हो सकेंगे।

2.3.1. प्रस्तावना

बहुत दिनों तक यह मान्यता थी कि उपन्यास का उद्‌भव 'रोमांस' से हुआ है। जब बंगाल में इसे 'उपन्यास' के साथ-साथ 'गल्प' कहा गया था तब भी यह धारणा बद्धमूल थी कि यह काल्पनिक और मनगढ़न्त साहित्य रूप है। मराठी में इस विधा को 'कादम्बरी' कहा जाता रहा है जिससे बाणभट्ट की रूमानी कथाकृति की याद आती है। 'रोमांस, गल्प और कादम्बरी' के अभिधान उपन्यास के आरम्भिक स्वरूप को निर्धारित करते हैं किन्तु जब भारत के लोगों ने क्लारा की 'प्रोग्रेस ऑफ रोमांस' शीर्षक पुस्तक पढ़ी तब उन्हें लगा कि यह विधा अविश्वसनीय काल्पनिक वृत्तान्तों से अलग जाकर यथार्थ की ओर उत्तरोतर अग्रसर हुई है। 'रोमांस' के वायवीय तत्त्वों से अलग जाकर जब लेखकों ने उपन्यास के यथार्थवादी झुकाव को समझा तब एक नई विधा का निर्माण हुआ जिसे ठीक ही 'नोवेल' कहा गया। उपन्यास में जो नवीनता लक्षित हुई थी वह यथार्थ के सम्यक् निरूपण के कारण सम्भव हो पाई थी। भारतेन्दु-युग में भी भारतेन्दु ने 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती' के नाम से उपन्यास लेखन का प्रादर्श बनाना चाहा था जो कुछ ही पन्नों में सिमटकर अधूरा रह गया लेकिन इनसे इस विधा के मूलभूत

विशेषताओं को सामने ला दिया कि उपन्यास में पर्यवेक्षणजन्य आत्मानुभवों तथा संसारी गतिविधियों का चित्रण होना चाहिए। प्रेमचंद के पूर्व उपन्यास या तो मनोरंजन का साधन था या नैतिक उद्देश्यों का संवाहक। प्रेमचंद ने इन दोनों धाराओं को समाहित कर लिया था। उनके उपन्यास साहित्य में घटना वैचित्र्य और समाज के बदलाव के विचार एक साथ दृष्टिगत होते हैं। नलिनविलोचन शर्मा ने इस प्रसंग में टिप्पणी की है कि प्रेमचंद के उपन्यास आपाततः मनोरंजन के साधन हैं और सत्य के वाहक भी, किन्तु 'गोदान' इसका अपवाद है। वह केवल सत्य का वाहक है। नलिनजी कदाचित रैल्फ फॉक्स की इस मान्यता से प्रभावित हैं कि समृद्धि और ऐश्वर्य की सभ्यता महाकाव्य में अभिव्यक्त होती है किन्तु जटिलता वैषम्य और संघर्षकी सभ्यता उपन्यास में प्रतिफलित होती है। 'गोदान' यथार्थ की विकृतियों के साथ-साथ लोकचित्त के नये मोड़ को सामने लाता है। कृषक संस्कृति और औद्योगिक संस्कृति के टकराव ने इस उपन्यास को एक नया धरातल प्रदान किया है।

प्रेमचंद ने 'गोदान' के प्रारम्भ में ही कहा है कि किसान पक्का स्वार्थी होता है किन्तु उसका जीवन प्रकृति के साथ तालमेल स्थापित करता हुआ चलता है। 'गोदान' का होरी स्वार्थमुक्त नहीं है लेकिन वह मानव प्रकृति से असंलग्न भी नहीं है। भारतीय किसान के जीवन में बहुत संकट आते हैं, उसे यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं। आर्थिक और सामाजिक दबाव उसकी जीवनधारा को अवरुद्ध करते हैं किन्तु वह विकट स्थितियों में भी अपने कृषक-कर्म से विरत नहीं होता है। संघर्ष उसे समाप्त नहीं करता है, शक्ति देता है। होरी टूटकर भी संघर्ष से मुख नहीं मोड़ता है। जिस तरह 'रंगभूमि' का सूरदास जीवन को खेल की तरह ग्रहण करता है उसी तरह होरी संघर्ष को जीवनगत यथार्थ की तरह स्वीकार करता है। वह एक अच्छे किसान से मजदूर हो जाता है, किन्तु कर्म से विलग नहीं होता है। वह परिस्थितियों से निरन्तर लोहा लेता है। इस क्रम में वह पानीपत के महाराणा साँगा की तरह अनेक वर्णों से विभूषित होता है। इस लड़ाई में उसके अस्त्र-शस्त्र टूट जाते हैं किन्तु प्रेमचंद उन भग्न आयुधों को उसकी विजय पताका के रूप में वर्णित करते हैं। होरी निम्नवर्गीय पात्र है परन्तु अपनी विसंगतियों के बावजूद वह अपनी मानवीयता को अक्षुण्ण रखता है। रिश्तों के निर्वाह में वह बेजोड़ है। बँटे हुए भाई के घर की तलाशी को वह रोकता है। उसी तरह बेसहारा गर्भवती झुनिया को अपने यहाँ आश्रय देता है। उसके बेटे गोबर ने जिस औरत की बाँह पकड़ी थी उसके सम्मान की रक्षा को वह अपना कर्त्तव्य समझता है। दण्ड भुगतकर भी उसके द्वारा एक बेसहारा स्त्री को संरक्षण देने में मानवीय विशेषता दृष्टिगत होती है। निम्नवर्गीय होरी चारित्रिक दृष्टि से उच्चता का प्रतिमान है।

होरी में मध्यमवर्ग की कलुषता और धूर्तता नहीं है। इसके विपरीत बेलारी गाँव के परजीवी लोग दूसरों की विवशता का लाभ लेने में सन्नद्ध हैं। पटवारी नोखेलाल कलम की मार मारते हैं। उनकी रक्षिता नोहरी पैसों के बल पर अपना प्रभाव विस्तार करना चाहती है। गाँव के तथाकथित पंच किसानों के दोहन और शोषण में निरत हैं। वे अकर्मण्य होकर भी 'महाजन' कहलाते हैं।

'गोदान' की नगर-कथा के कई पात्र मध्यमवर्ग की असंगतियों को उद्धृत करते हैं। वे गाँव के मध्यमवर्ग की तुलना में अधिक चालाक और 'ढुलमुल यकीन' हैं। प्रेमचंद ने गरीब किसान की परिस्थितियों, गाँव के पंचों की मक्कारी और नागरिक पात्रों की विभाजित मानसिकता को एक साथ चित्रित किया है। इस तरह 'गोदान' गाँव

के कृषकों के संघर्ष और शोषण तथा नागरिक जीवन के पाखण्ड को एक साथ उजागर करता है। दोनों प्रसंगों को मिलाकर प्रेमचंद उत्तर भारत के जीवन को समग्रता में समाकलित करते हैं।

2.3.2. विषय-विस्तार

'गोदान' का केन्द्रीय कथ्य कृषक जीवन है जिसका प्रतिनिधि पात्र होरी है। प्रेमचंद ने इस पात्र के माध्यम से उत्तर भारत के ग्राम्य जीवन का बहुआयामी दिग्दर्शन कराया है। होरी की कथा भारतीय किसान के दैन्य ही नहीं, संघर्ष को भी अभिव्यंजित करती है। भारतीय उपन्यास में होरी के अवतरण के पूर्व ओड़िया भाषा में फकीर मोहन सेनापति ने 'छ माण आठ गुण्ठ' के नायक की प्रस्तुति 19वीं शताब्दी में ही कर दी थी। सेनापति ने किसानों के शोषण और संघर्ष को एक साथ निरूपित किया था। बाल्जाक ने 'दी पीजेन्ट्स' में फ्रांस के कृषक जीवन के यथार्थ और जुझारूपन को एक साथ उपस्थित किया था। 'गोदान' में प्रेमचंद ने होरी को भारतीय किसान की विवशताओं और जिजिविषा की समवेत अभिव्यक्ति की है।

होरी पारिवारिक बँटवारे, कर्ज और ज़मींदार के चंगुल में फँसा हुआ एक किसान है जिसके लिए 'मरजाद' सर्वोपरि है। जमीन और गाय उसके लिए 'मरजाद' की वस्तुएँ है, जिन्हें परिस्थितियों ने छीन लिया है। वह अपने ही खेत पर मजदूरी करने के लिए लाचार हो गया है। वह दुलारी सहुआइन, नोखेलाल पटवारी और पण्डित दातादीन का ऋण के बोझ को ढोते हुए विवशता भरी ज़िंदगी बसर करता है और अन्त में लू की चपेट में आकर उसके प्राण छूट जाते हैं। एक तरह से उसकी पूरी ज़िंदगी एक शोषित व्यक्ति की कहानी है किन्तु अपनी दुर्गति पर विचार करने के क्रम में वह पराजय में निहित जय का अनुभव करता है। इस सन्दर्भ में प्रेमचंद की यह टिप्पणी स्मरणीय है – "जीवन के संघर्ष में सदैव उसकी हार हुई परन्तु उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लड़ने की शक्ति दे देती थी।" जब घर से भागा हुआ उसका भाई हीरा जिसने उसकी गाय को जहर दिया था, लौटता है तब होरी अपने अन्तिम काल में प्रसन्नता और विजय का अनुभव करता है। इस क्रम में प्रेमचंद ने उसकी जिस उदात्त मनोदशा का वर्णन किया है वह दुखान्त को उदात्त बना देता है। प्रेमचंद लिखते हैं – "होरी प्रसन्न था। जीवन की सारी झंझट, सारी निराशाएँ मानों उसके चरणों पर लोट रही थी, कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं ? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसके विजय की पताकाएँ है। उसकी छाती फूल उठी है, उस पर तेज आ गया है। हीरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान हो गई है।" होरी के चरित्र की यह नई दीप्ति भारतीय किसान की कारुणिक कथा को जीवन की ज्योति से आलोकित कर देती है।

होरी एक खाता-पीता किसान था किन्तु उसका परिवार निरन्तर टूटता चला जाता है। वह जीवन भर 'मरजाद' की रक्षा के लिए ऋण काढ़ता है और अन्ततः अपनी भूमि खो देता है। यह सर्वनाश भारतीय किसान की दुर्दशा का जीवन्त और यथार्थ स्वरूप है किन्तु होरी अपनी पराजय में भी महत्ता नहीं खोता है। उसका 'गोदान' वस्तुतः बलिदान का प्रतीक हो जाता है। प्रेमचंद इस बलिदान में किसान की हार नहीं, जीत के दर्शन करते हैं।

प्रेमचंद इस तथ्य की व्यंजना करते हैं कि भारतीय किसान टूट कर भी ज़िंदा है। वे बलिदान को हार नहीं, विजय का सुफल मानते हैं।

भारतीय ग्रामीण जीवन की सबसे विकट स्थिति 'अलग्योझा' अर्थात् पारिवारिक विघटन है। जमीन का बँटवारा और कर्ज के भार से भारतीय किसान आक्रान्त रहा है किन्तु वह परिवार की प्रतिष्ठा बचाने के लिए प्राणपण से संघर्ष करता है। वह कर्म से नहीं कटता है किन्तु प्रारब्ध उसे दबोचता चला जाता है। होरी लाचारी में अपनी बेटी को एक उम्रदराज व्यक्ति के हाथों में सौंप देता है। वह मानसिक और आर्थिक दबावों से विकल हो जाता है किन्तु मानवता का दामन नहीं छोड़ता है। पर्ल.एस. बक ने 'द गुड अर्थ' में चीन के किसानों की दयनीयता का चित्रण किया है किन्तु उन्होंने उनकी अपराजेय संकल्प शक्ति की पहचान नहीं की है। भारतीय किसानों के बीच एक उक्ति चलती है कि 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'। होरी मानसिक तौर पर विजयी रहता है। यह भारतीय किसान की अदम्य जीवनी-शक्ति का परिचायक है। वह आहत होकर भी मन से धराशायी नहीं होता है। प्रेमंचद इतिहास के शिक्षक थे। वे जानते थे कि हल्दी-घाटी का हारा हुआ महाराणा प्रताप इतिहास में जीवित है और फाँसी पर चढ़ जाने वाले क्रान्तिकारी भी अपने बलिदान के बल पर जीवन्त हैं। होरी का सब कुछ लुट जाता है किन्तु उसकी मनस्विता सुरक्षित रहती है। वह काम करते हुए इस संसार से विदा लेता है। वह आत्महत्या नहीं करता बल्कि जमीन पर मजदूरी करता हुआ नियति से संघर्ष करता है। भारतीय किसान की इस विशिष्टता को प्रेमचंद ने होरी के माध्यम से रूपायित किया है। यह कहना बहुत संगत है कि 'गोदान' तत्त्वतः भारतीय किसान के जीवन-संघर्ष की प्रामाणिक महागाथा है।

होरी निम्नवर्ग का किसान है किन्तु उसकी माली हालत अच्छी रही है। धीरे-धीरे वह अपनी आर्थिक और सामाजिक शक्ति खोता चला जाता है लेकिन कर्म के प्रति उसकी निष्ठा बनी रहती है। वह अपने टूटे-फूटे परिवार को एक करने का प्रयास करता रहता है। रिश्तों के रिसते हुए घावों को ठीक करने में वह लगातार प्रयत्नशील है। उसके जीवन में नाकामियाँ आती हैं लेकिन वह पलायन नहीं करता है। कबीर ने जो कहा था कि पुर्जा-पुर्जा कट जाने के बाद भी जो रणक्षेत्र को नहीं छोड़ता है वही विजेता होता है, होरी एक ऐसा ही योद्धा किसान है जो क्षत-विक्षत हो जाने के बाद भी 'कबहूँ न छाड़ैं खेत' की मानसिकता की रक्षा करता है। धनिया भी सुतली की बिक्री से प्राप्त सवा रुपये की रकम का 'गोदान' करके होरी के अन्तकाल को विपन्नता के अभिशाप से मुक्त कर देती है। यहाँ पण्डित दातादीन 'गोदान' पाकर हार जाते है किन्तु होरी धर्म के क्षेत्र में भी विजयी सिद्ध होता है।

बेलारी गाँव की संरचना मूलतः ऋण लेनेवालों और ऋण देने वालों से निर्मित है। महाजन से कर्ज लेकर होरी और उसकी तरह के अन्य लोग एक शोषित वर्ग की प्रतीति कराते हैं। दुलारी सहुआइन, झिंगुरी सिंह, पटवारी नोखेलाल और दातादीन गाँव के ऐसे महाजन हैं जो दुर्बल लोगों को दबा के रखते हैं। दबाने वाले और दबने वाले इन दोनों वर्गों के बीच खाई है, किन्तु गाँव के महाजन भी सामन्तों की कोटि में नहीं आते हैं। वे भी तत्कालीन अर्थव्यवस्था की पकड़ में हैं। उन्हें उच्च वर्ग में शुमार नहीं किया जा सकता है। तब क्या ऐसे लोगों को हम ग्रामीण जीवन के मध्यमवर्ग के पात्रों में परिगणित कर सकते हैं!

भारतीय जीवन में अँगरेजों के आने के बाद मध्यमवर्ग अस्तित्व में आता है। यह मुख्यतः पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नागरिक वर्ग है। सर्वप्रथम बंगाल में अंगरेजों से सम्पृक्त होने के कारण इस वर्ग का उदय होता है। गाँवों में इस वर्ग का कोई अता-पता नहीं था। कलकत्ते में इस वर्ग के विकास की परिस्थितियाँ थीं और वहाँ के साहित्य में इनका भरपूर चित्रण भी हुआ है। हिन्दी-क्षेत्र में मुख्यतः उच्च वर्ग और निम्न वर्ग में समाज बँटा हुआ था। इस मध्यमवर्ग को पहली बार हम हिन्दी के पहले उपन्यास 'परीक्षागुरु' में पहचानते है। लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' का परिवेश नागरिक है। इसका नायक कुसंगति में पड़कर अपनी सम्पत्ति खो देता है और उसका चरित्र अविश्वसनीय हो जाता है। इस उपन्यास के बाद बालकृष्ण भट्ट के 'एक अजान और सौ सुजान' में हम इस मध्यमवर्ग की गतिविधियों की पहचान कर सकते है। आर्थिक परिस्थितियों के बदलने और नई शिक्षा की शुरुआत के कारण हिन्दी-क्षेत्र में भी मध्यमवर्ग का निर्माण होने लगा था। तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में यह वर्ग पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करनेवाला दृष्टिगत होता है। बंगाल में इसकी विकृतियाँ और भी व्यापक ढंग से सामने आती हैं। कार्ल मार्क्स ने 'बुर्जुआ' और 'सर्वहारा' के बीच जिस मध्यमवर्ग की चर्चा करते हुए उसे 'घड़ी का पेंडुलम' बतलाया है वह अपने प्रखर रूप के सबसे पहले बांग्ला साहित्य में मूर्तिमान होता है। यह वर्ग न धनाढ्य है और न विपन्न। दोनों के बीच उसकी एक विचित्र स्थिति है। वह धनी बनना चाहता है और निम्न वर्ग के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है। न उसके पास सामन्तों की शक्ति है, न सर्वहारा की निर्धनता। अँग्रेजी में जिसको 'व्हाइट कालर' वाले लोग कहते है वह इस वर्ग की आडम्बरप्रियता और लाचारगी को व्यक्त करने वाली पदावली है। प्रेमचंद ने सर्वप्रथम 'प्रतिज्ञा' में इस वर्ग का चित्रण किया था। इस उपन्यास का अमृत राय उनके उपन्यास-साहित्य का पहला मध्यमवर्गीय पात्र है। इसी तरह प्रेमचंद ने 'सेवासदन' के गजाधर, 'निर्मला' के मुंशी तोताराम और 'गबन' के रमानाथ को मध्यमवर्गीय नागरिक जीवन के प्रतिनिधि चरित्रों के रूप में प्रस्तुत किया है। 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' आदि में भी इस तरह के पात्र यथास्थान मिल जाते हैं। ये तमाम चरित्र किसी-न-किसी रूप में नागरिक हैं।

'गोदान' मूलतः ग्रामीण जीवन की कथा है अतः ऐसा लगता है कि इसमें प्रेमचंद ने मध्यमवर्ग की ओर ध्यान नहीं दिया है। यह अर्द्धसत्य है। उन्होंने बेलारी गाँव के नोखेलाल पटवारी और उनकी रक्षिता नोहरी, दातादीन एवं मातादीन, पटेश्वरी, झिंगुरी सिंह आदि को मध्यमवर्गीय व्यक्तियों की तरह दूसरों के श्रम पर जीवित रहने वाले व्यक्तियों की तरह पेश किया है। ये पात्र गाँव के तथाकथित 'उजली कालर' धारण करने वाले लोगों की तरह हैं। ये अपने पैंतरों से निम्न वर्ग को अपने प्रभुत्व में लाते है और उसके साथ मनमाना व्यवहार करते हैं। ये बहुत पढ़े-लिखे लोग नहीं हैं लेकिन शिक्षित वर्ग की मक्कारी और धूर्तता की इनमें कमी नहीं है। यह परजीवी वर्ग बेलारी गाँव में मध्यमवर्ग का अहसास कराता है। मार्क्स के शब्दों में यह विचलनशील लोलक (Pendulum) की तरह है जिसमें स्थिरता नहीं, मुद्दों के मुताबिक पैतरे बदलने की मनोवृत्ति मिलती है। ये बुद्धिबल से किसानों का अपने कब्जे में रखते है और उनका शोषण करते हैं। गाँव में सामाजिक और आर्थिक जीवन के संचालन में इनकी बड़ी भूमिका है। कर्ज देना, बेदखली करवाना, दण्ड देना, पुलिस की दलाली करना आदि इनकी विशेषताएँ हैं जो ग्रामीण मानसिकता के विपरीत हैं। गाँव के इस परजीवी वर्ग को प्रेमचंद ने पंचों के रूप में उल्लिखित किया है परन्तु वे 'पंच परमेश्वर' के पंच की प्रकृति से पृथक् हैं। ये समय देखकर अपना रुख़ बदलते हैं। यह ढुलमुलपन

मध्यमवर्ग का विश्वव्यापी वैशिष्ट्य है। 'गोदान' में ग्राम-कथा के साथ-साथ राय साहब और उनके मित्रों की नगर-कथा भी प्रवाहित होती है। लखनऊ शहर इस कथा की मूल भूमि है। इस नगर-कथा के राय साहब और खन्ना क्रमशः ज़मींदार और उद्योगपति हैं। ये उच्चवर्ग के पात्र हैं। मालती पढ़ी-लिखी लेडी डॉक्टर है। वह रूप, कौशल और ज्ञान से सम्पन्न है। लखनऊ के समाज में वह 'तितली' की तरह समझी जाती है। उसका सौन्दर्य बहुत से लोगों को आकृष्ट करता है। मेहता दर्शनशास्त्र के सुशिक्षित प्राध्यापक हैं। वे हजार रुपये तनख्वाह में पाते हैं और बुद्धिजीवी की तरह व्यवहार करते हैं। मालती उन्हें चाहती है किन्तु वे मालती को नहीं चाहते है। उनमें रूढ़ि और प्रगति के तत्त्व एक साथ मिलते हैं। मध्यमवर्गीय चरित्रों की एक विशेषता है कि वे संक्रमणशील होते हैं। उनमें एक दुचित्तापन मिलता है। वे जैसे दिखाई देते हैं वैसे नहीं हैं। जिस तरह समुद्र में 'आइसबर्ग' जितना ऊपर दिखाई देता है उससे अधिक नीचे छिपा हुआ रहता है, मध्यमवर्ग की यही फितरत है। मालती केवल 'तितली' नहीं 'मधुमक्खी' भी है। उसमें अहंकार ही नहीं, ममता और करुणा भी है। इसी तरह मेहता में विद्या ही नहीं वैचारिक रूढ़िबद्धता भी है। वे प्रेम करना चाहते हैं किन्तु प्रेम उनके लिए सीधी-सादी गाय नहीं खूँखार शेर है। वे प्रेमिका पर स्वत्वाधिकार चाहते हैं, यह मध्यमवर्गीय नैतिकता का लक्षण है। स्त्री की स्वच्छन्दता उन्हें अच्छी नहीं लगती। वे हंस और बाज में फर्क करते हैं। हंस जिस तरह बाज नहीं बन सकता उसी तरह स्त्रियाँ पुरुष नहीं बन सकतीं। मेहता का यह दृष्टिकोण मध्यमवर्गीय मानसिकता का परिचायक है।

'गोदान" के मिर्ज़ा खुर्शेद सम्पन्नता के विध्वंस के बाद सामान्य जीवन जीने लगते हैं। वे जूतों की दुकान खोलते हैं। कबड्डी में रुचि लेते हैं और जीवन को एक सफेद कागज की तरह देखते हैं। मार्क्स की भाषा में ये एक 'डिक्लास' पात्र हैं जो अपनी उच्चवर्गीय भूमि से उतरकर सामान्य जीवन में प्रवेश करते हैं। उच्चवर्गीय धनाढ्य लोगों के बीच संचरण करते हुए मिर्ज़ा खुर्शेद मध्यमवर्ग के एक ललित पात्र के रूप में सामने आते हैं। उनमें आर्थिक दृष्टि से मध्यमवर्ग की स्थिति दृष्टिगत होती है किन्तु मन से वे मानवतावादी हैं। धनी वर्ग के कुसंस्कारों को छोड़कर वे एक सामान्य जीवन जी रहे हैं। प्रेमचंद ने उन्हें मध्यमवर्ग के एक उज्ज्वल चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है।

'गोदान' का तंखा अमीरों के बीच घूमता है किन्तु वह सम्पन्न व्यक्ति नहीं है और उसे लेखक ने एक राजनैतिक दलाल के रूप में वर्णित किया है। वह पैसों के लिए किसी के पक्ष में जा सकता है। उसमें किसी प्रकार की वचनबद्धता नहीं है। मध्यमवर्ग की एक खास विशेषता कही गई है कि उसमें किसी प्रकार की प्रतिश्रुति अर्थात् 'कमिटमेंट' का अभाव देखा जाता है। वह सबके साथ है किन्तु किसी के साथ नहीं है। वह अपने लिए जीता है। तंखा आत्मकेन्द्रित पात्र है। वह भारी हरिण के बोझ को लाभ की उम्मीद में ढो सकता है और राय अमरपाल सिंह को छोड़कर उनके विरोधियों के पास भी जा सकता है। 'गोदान' का यह पात्र एक व्यावहारिक मध्यमवर्गीय चरित्र है।

प्रेमचंद स्वयं पत्रकार थे किन्तु उन्होंने 'गोदान' के बिजली सम्पादक ओंकारनाथ के चरित्र की धज्जियाँ उड़ाई हैं। ईमानदारी का स्वाँग रचने वाला यह सम्पादक लोभ-लाभ से ग्रस्त होकर कुछ भी लिख सकता है और कुछ भी छाप सकता है। वह राय साहब के खिलाफ लिखता है और उनके अहसानों के नीचे दबा हुआ भी है।

जब वह राय साहब के खिलाफ छापता है तब उनसे बेइज्जत भी होता है। अमरपाल सिंह उसे दिए गए उपहारों की याद दिलाते हैं। वह बुद्धिजीवी पात्र है किन्तु उसके बिकाऊ चरित्र को प्रेमचंद ने बड़ी निर्ममता के साथ उजागर किया है। मध्यमवर्गीय चरित्र में जो पाखण्ड का आडम्बर और टिकाऊपन का अभाव दिखलाई पड़ता है, पण्डित ओंकारनाथ उसके सही उदाहरण हैं। मध्यमवर्ग के छद्म को बेनकाब करने में यहाँ प्रेमचंद कृतकार्य हुए हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि 'गोदान' केवल कृषक -जीवन की ही कथा नहीं है, अपितु उसमें हिन्दी-क्षेत्र में प्रादुर्भूत अभिनव मध्यमवर्ग का चित्रण भी भली-भाँति हुआ है।

2.3.3. पाठ-सार

इस इकाई की मुख्य विषयवस्तु भारतीय कृषक-जीवन के संघर्ष का चित्रण और प्रेमचंद का मध्यमवर्गगत निरूपण है। प्रेमचंद ने होरी को उत्तर भारत के ग्रामीण किसान का प्रतिनिधि पात्र बनाया है। उसके ब्याज से उन्होंने ग्रामीण जीवन की टूटती हुई आर्थिक संरचना और कृषक-जीवन की संघर्षशीलता को मुखरित किया है। किसान ज़मींदार के सम्बन्धों, महाजनी सभ्यता के दुष्परिणामों, सामाजिक मूल्यों के विघटन और गाँवों की सद्‌भावहीनता को उन्होंने सांगोपांग ढंग से प्रस्तुत किया है। खेत और गाय किसान होरी के लिए प्रतिष्ठा की वस्तुएँ हैं। ये दोनों चीजें होरी की आकांक्षाओं के केन्द्र में हैं लेकिन गाय उसके खूँटे पर मर जाती है और खेत उसके लिए बेगाना हो जाता है। होरी के सपने तार-तार हो जाते हैं और वह अपने ही उस खेत पर मजदूर बनने के लिए विवश हो जाता है। जहाँ लू लगने से उसकी मृत्यु हो जाती है। वह निरन्तर परिस्थितियों के प्रहार सहता है किन्तु उसकी कर्मशक्ति और निष्ठा नष्ट नहीं होती है। वह भारतीय किसान के दुःख-दैन्य और संघर्ष को एक साथ सामने लाता है। इस क्रम में उसकी पराजय अन्ततः उसके जीवन की जय के रूप में प्रतिभाषित होती है।

बेलारी गाँव के परजीवी पंच जो किसान होरी की दुर्गति के सूत्रधार हैं वे गाँव के अकर्मण्य मध्यमवर्ग का अहसास कराते हैं। इन ग्रामीण लोगों ने होरी को अनेक मुसीबतों में डाला है, किन्तु वह अपने सद्‌गुणों से भटका नहीं है। उसने बँटे हुए अहितकारी भाई की इज्जत नीलाम नहीं होने दी और गर्भवती झुनिया को अपने परिवार में आश्रय दिया है जिसका उसे खामियाजा भुगतना पड़ता है। बेटी के विवाह में उसका मान घटता है, किन्तु वह संतान का सुख देखना चाहता है। भाई हीरा घर से भाग गया है। उसने उसकी गाय को 'माहुर' दे दिया है। होरी उसकी अनुपस्थिति में उसके परिवार की भी देखभाल करता है। उसका बेटा गोबर बाप के शील-स्वभाव से प्रसन्न नहीं है किन्तु वह बेटे के प्रति भी दुर्भावना नहीं रखता है। सम्बन्धों के निर्वाह-क्रम में वह भारतीय किसान के मूल स्वभाव को उदाहृत करता है। लखनऊ की नागरिक कथा उच्च वर्ग और बुद्धिजीवी मध्यमवर्ग के खोखलेपन को सामने लाती है। शहर के पढ़े-लिखे लोग उच्चवर्ग से जुड़ते है, किन्तु वे न सामन्त बन पाते हैं और न सर्वहारा के समर्थक। वे अपने ही सीमित दायरे में व्यवहार करते हैं। यों तो बाहर से वे दिखते कुछ हैं और वस्तुतः होते कुछ और हैं किन्तु उनमें केवल दोष ही नहीं, गुण भी है। मालती की स्वच्छन्दता में मानवता की कमी नहीं है। इसी तरह मेहता में पढ़ाई और रूढ़िप्रियता के द्वन्द्व के दर्शन होते हैं। तंखा और ओंकारनाथ नागरिक जीवन के मध्यमवर्ग की सीमाओं और शक्तियों को भलीभाँति व्यक्त करते हैं। वहाँ केवल मिर्ज़ा खुर्शेद ऐसे पात्र हैं जो

वर्गच्युत होकर सहज जीवन से एकाकार होते हैं। प्रेमचंद ने मध्यमवर्ग की विडम्बनाओं के साथ-साथ उसकी सम्भावनाओं की भी अनदेखी नहीं की है।

2.3.4. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. इनमें से प्रेमचंद का महाकाव्यात्मक उपन्यास कौन-सा है ?
   (क) सेवासदन
   (ख) निर्मला
   (ग) गबन
   (घ) गोदान

सही उत्तर – (घ)

2. प्रेमचंद का जीवनकाल है –
   (क) 1880-1936 ई.
   (ख) 1885-1940 ई.
   (ग) 1875-1930 ई.
   (घ) इनमें से कोई नहीं

सही उत्तर - (क)

3. 'गोदान' का प्रकाशन-वर्ष क्या है ?
   (क) 1936 ई.
   (ख) 1930 ई.
   (ग) 1918 ई.
   (घ) इनमें से कोई नहीं

सही उत्तर - (क)

4. इनमें से कौन-सा पात्र 'गोदान' का नहीं है ?
   (क) होरी
   (ख) धनिया
   (ग) गोबर
   (घ) सोफिया

सही उत्तर- (घ)

5. प्रेमचंद का पहला उपन्यास है–
   (क) सेवासदन
   (ख) प्रेमाश्रम
   (ग) निर्मला
   (घ) गोदान

सही उत्तर - (क)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'गोदान' के वस्तु-संगठन का विवेचन कीजिए।
2. "जब दूसरे पाँव तले अपनी गर्दन दबी हुई हो तो उन पाँव को सहलाने में ही कुशल है" – इन पंक्तियों की व्याख्या कीजिए।
3. उपन्यास कला की कसौटी पर 'गोदान' का मूल्यांकन कीजिए।
4. " 'गोदान' में नगर-कथा अप्रासंगिक है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. " 'गोदान' ग्राम जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य है।" इस कथन का विश्लेषण कीजिए।
2. 'गोदान' का नायक कौन है ? सप्रमाण उत्तर दीजिए।
3. 'गोदान' में वर्णित कृषक-समस्या पर विचार कीजिए।
4. 'गोदान' की भाषा-शैली पर सम्यक् विचार प्रकट कीजिए।
5. " 'गोदान' भारतीय कृषक जीवन की 'ट्रेजेडी' है।" विवेचना कीजिए।

2.3.5 उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. प्रेमचंद और उनका युग, डॉ॰ रामविलास शर्मा
2. कलम का सिपाही, अमृत राय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1992
3. प्रेमचंद घर में, शिवरानी देवी
4. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, चौथी आवृत्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. प्रेमचंद पर आधृत डॉ॰ कमल किशोर गोयनका के ग्रन्थ

❖❖❖

खण्ड – 3 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास

खण्ड-परिचय

प्रस्तुत खण्ड में आप आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी रचित ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड को चार इकाइयों में विभक्त किया गया है, जो क्रमवार इस प्रकार हैं –

इकाई – 1 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इतिहास-बोध, सांस्कृतिक चेतना, इतिहास और कल्पना का मणिकांचन योग

इकाई – 2 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आधुनिकता, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का रचना-कौशल

इकाई – 3 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नारी पात्र और आचार्य द्विवेदी की उदात्त मूल्य-चेतना, निपुणिका की चरित-सृष्टि : रचनाकार की नारी मुक्ति की आकांक्षा

इकाई – 4 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निपुणिका और भट्टिनि के चरित्रों के आधार पर प्रेम-दर्शन

हजारीप्रसाद द्विवेदी-प्रणीत 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास के लिए रचनाकार ने इतिहास से सामग्री ग्रहण करके उसे आधुनिककाल के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। उनके चरित्र ऐतिहासिक होते हुए भी संवेदना, विचार एवं अनुभूति के धरातल पर आधुनिक हैं। यह उपन्यास ऐतिहासिक तथ्यों के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ समकालीन भारतीय समाज में हो रहे बदलावों को भी अभिव्यक्ति देता है। इस खण्ड की प्रथम इकाई 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निहित इतिहास-बोध और सांस्कृतिक चेतना पर केन्द्रित है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उपन्यास को पूर्णतः ऐतिहासिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न हिन्दी साहित्य में अपने प्रकार का एक नूतन उपक्रम है, इसलिए उपन्यासकार ने इसे 'अभिनव प्रयोग' की संज्ञा दी है। उपन्यासकार ने जिन काल्पनिक प्रसंगों और पात्रों का नियोजन किया है वे इसकी ऐतिहासिकता को और अधिक सजीव और प्रभावपूर्ण बनाते हैं। इससे 'बाणभट्ट' के समय का इतिहास वर्तमान परिवेश में साकार हो उठता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' ऐतिहासिक तथ्य ही नहीं प्रस्तुत करता है, बल्कि इतिहास-रस की भी पूर्णरूप से अनुभूति कराता है। द्वितीय इकाई में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आधुनिकता और रचनात्मक दक्षता पर विचार-विमर्श किया गया है। यहाँ समकालीन प्रासंगिकता के सन्दर्भ में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को देखने-समझने का प्रयत्न किया गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी की रचनात्मकता का महत्त्व इसलिए भी है कि उन्होंने अभिजन की तुलना में जन और शास्त्र की तुलना में लोक को प्रतिष्ठा दी है। मनुष्य उनकी सर्जना के केन्द्र में है। इस उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप से साम्प्रतिक राजनैतिक-सामाजिक स्थितियों का चित्रण नहीं है, फिर भी उसके ऐतिहासिक सन्दर्भों से आधुनिक जीवन और समाज के चित्र उभर कर सामने आते हैं। तृतीय इकाई में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नारी-पात्रों पर विचार किया गया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी के तीन रूप प्रमुख हैं – प्रेमिका रूप, संन्यासिनी रूप और धर्मपत्नी रूप। इन तीनों स्वरूपों को प्रस्तुत करके द्विवेदीजी ने नारी-मुक्ति के प्रति अपनी आस्था दिखाई है। उन्होंने निपुणिका के चरित्र के माध्यम से नारी-मन के मनोविज्ञान को व्यक्त किया है। चतुर्थ इकाई में निपुणिका और भट्टिनी के चरित्रों के आधार पर 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रेम के दर्शन को

प्रस्तुत किया गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस तथ्य पर बल दिया है कि प्रेम का अवलम्ब मनुष्य है, देवत्व नहीं। यह एक सहज मानवीय स्वभाव है जो सर्वथा स्वीकार्य है।

इस उपन्यास का मुख्य उपजीव्य बाण का 'हर्षचरितम्' है जिसे संस्कृत-साहित्य में 'आख्यायिका' के रूप में मान्यता दी जाती है। हर्षकालीन सभ्यता और संस्कृति को समझने के लिए यह एक अनिवार्य ग्रन्थ है। गद्य-काव्य में भी इसके हर्षकालीन इतिहास की उपादेय सामग्री सम्प्राप्त होती है। डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन में' इस ग्रन्थ का साधिकार विश्लेषण किया है। यह रचना 'बाणभट्ट की रचना' के प्रणयन के बाद की है। इसके पूर्व ही संस्कृतज्ञ द्विवेदीजी ने 'हर्षचरितम्' और हर्ष के द्वारा प्रणीत नाटकों को आधार मानकर अपना औपन्यासिक वितान ताना है जिसमें इतिहास को आधुनिक दृष्टि से देखा गया है। यहाँ काल्पनिक चरित्रों के द्वारा भी तत्कालीन देश-काल का निरूपण किया गया है किन्तु वह चित्रण आधुनिक दृष्टि से सम्पृक्त है। इस उपन्यास की स्त्रियाँ कल्पना की सृष्टि हैं किन्तु उन्हें हर्षकालीन इतिहास-बोध के विपरीत नहीं कहा जा सकता है। यहाँ लेखक की एक विशेष दृष्टि सामने आती है जो आधुनिक स्त्री-चित्रण की ओर इंगित करती है। उपन्यास का बाणभट्ट 'स्त्री-शरीर' को 'देव मन्दिर' मानता है। यह बांग्ला-साहित्य में वर्णित स्त्री-विषयक मान्यता के अनुकूल है। रवीन्द्रनाथ ने नारी को आधी मानवी और आधी कल्पना कहा है – "अर्धेक मानवी तुमि अर्धेम कल्पना"। इस कृति में मानवी के रूप में स्त्री-चित्रण को कल्पना के द्वारा उदातत्ता दी गई है। प्रस्तुत उपन्यास में छोटे-बड़े तमाम वर्गों की स्त्रियों को कल्पना के स्तर पर उन्नमित किया गया है। इस तरह यह कृति आधुनिक युग की नारी-संवेदना को साकार करती है। रवीन्द्रनाथ से प्रभावित होकर ही सुमित्रानन्दन पन्त ने स्त्री को देवी, माँ, सहचरी और प्राण के रूप में याद किया है। उन्होंने जब निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखीं थीं तब वे बांग्ला साहित्य में वर्णित स्त्री की पावन छवि को ही उपस्थापित कर रहे थे –

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि।
त्रिवेणी की लहरों का गान!

स्त्री को त्रिवेणी-तीर्थ से उपमित करना ही बाणभट्ट द्वारा कथित 'स्त्री-शरीर' को 'देव मन्दिर' के रूप में स्वीकार करना है।

❖❖❖

खण्ड – 3 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास

इकाई – 1 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इतिहास-बोध, सांस्कृतिक चेतना, इतिहास और कल्पना का मणिकांचन योग

इकाई की रूपरेखा :

3.1.0. उद्देश्य कथन
3.1.1. प्रस्तावना
3.1.2. हजारीप्रसाद द्विवेदी व्यक्तित्व और कृतित्व
3.1.2.1. हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्य
3.1.3. विषय-विस्तार
3.1.3.1. बाणभट्ट की आत्मकथा में इतिहास-बोध, इतिहास और कल्पना का मणिकांचन योग
3.1.3.2. बाणभट्ट की आत्मकथा की 'मूलकथा'
3.1.3.3. बाणभट्ट की आत्मकथा में सांस्कृतिक चेतना
3.1.4. पाठ-सार
3.1.5. बोध प्रश्न
3.1.6. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

3.1.0. उद्देश्य कथन

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अद्वितीय है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। यह उपन्यास हर्षकालीन इतिहास का आधार लेकर लिखा गया है और ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में एक 'अभिनव प्रयोग' है। आलोचक, निबन्धकार, साहित्येतिहासकार और उपन्यासकार के रूप में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की उपस्थिति हिन्दी साहित्य को गरिमामयी बनाती है। आचार्य द्विवेदी द्वारा रचित यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग तो है ही, औपन्यासिक शिल्प का भी अनूठा प्रतिमान स्थापित करती है। इस इकाई में आप –

i. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' शीर्षक उपन्यास की कलात्मक समीक्षा के बारे में परिचित हो सकेंगे।
ii. उपन्यास की मूल कथावस्तु और उसकी विशिष्टता से अवगत हो सकेंगे।
iii. हजारीप्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
iv. आत्मकथा में वर्णित इतिहास-बोध, इतिहास और कल्पना के मणिकांचन योग को समझ सकेंगे।

3.1.1. प्रस्तावना

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व हिन्दी साहित्य में मूर्धन्य है। उनके व्यक्तित्व को सिर्फ आलोचक, निबन्धकार और उपन्यासकार के रूप में सीमित नहीं किया जा सकता है। उनके

सम्पूर्ण साहित्य में उनके नवोन्मेष और पाण्डित्य की झलक दिखाई पड़ती है। उपन्यासकार द्विवेदीजी ने 'भारतीय उपन्यास' के प्रादर्श का अन्वेषण किया है। आचार्य द्विवेदी द्वारा प्रणीत चारों उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारु चन्द्रलेख', 'पुनर्नवा' एवं 'अनामदास का पोथा' हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा को अग्रसर करते हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारु चन्द्रलेख' और 'पुनर्नवा' का सम्बन्ध प्राचीन भारतीय इतिहास से है जबकि 'अनामदास का पोथा' अर्थात् रैक्व आख्यान का सम्बन्ध औपनिषदिक इतिहास से है। द्विवेदीजी ने अपने उपन्यासों को शुद्ध 'गल्प' माना है और गल्प को 'कल्प' कहा है लेकिन अपने उपन्यासों में इतिहास के भीतर के इतिहास को उद्घाटित करने में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। इतिहास साहित्य का उपजीव्य है और साहित्य इतिहास की प्रामाणिकता का आधार है। ये दोनों स्वतन्त्र होते हुए भी परस्पर सम्बद्ध हैं। साहित्य में जिस युग का चित्रण होता है, उसमें केवल वही नहीं होता जो बाहर से दिखाई देता है, बल्कि रचनाकार द्वारा अभिलक्षित चित्रण भी होता है। इतिहासकार यदि समग्रता में से प्रासंगिक सामग्री चुन लेता है तो साहित्य इतिहास द्वारा उपलब्ध उपकरणों के आधार पर एक सम्पूर्ण चित्र को प्रस्तुत करता है। एक की प्रवृत्ति विश्लेषणात्मक है तो दूसरे की संश्लेषणात्मक। द्विवेदीजी इतिहास की असंदिग्ध महत्ता के कायल थे। वे कहते हैं – "इतिहास प्रेम की बात मैं नहीं जानता मगर इतिहासबोध को पलायन समझना आधुनिकता नहीं, आधुनिकता का विरोध है।" द्विवेदीजी आग्रहपूर्वक स्वीकार करते हैं कि जो इतिहास को नहीं स्वीकार करे, वह आधुनिक नहीं और जो चैतन्य को न माने, वह इतिहास नहीं। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व सर्वाधिक सर्जनात्मक है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इतिहास और कल्पना के आधार पर ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि की गई है। साहित्य के वर्गीकरण के अनुसार आत्मकथा, जीवनी और उपन्यास परस्पर पृथक् विधाएँ हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के स्थापत्य में जीवनी, उपन्यास और आत्मकथा के सभी तत्त्व आनुशंगिक रूप से कलात्मक ढंग से नियोजित हैं। आत्मकथा के शिल्प में लिखी गई यह रचना आलोचकों की दृष्टि में वस्तुतः एक उपन्यास है। नलिनविलोचन शर्मा के अनुसार – 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक महान् ऐतिहासिक उपन्यास है। आत्मकथा जैसी लगने वाली यह जीवनी वस्तुतः एक उपन्यास ही है और द्विवेदीजी यहीं एक कुशल कलाकार के रूप में प्रकट भी होते हैं। उन्होंने केवल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि या केवल ऐतिहासिक पात्र को ही नहीं चुना है बल्कि दोनों का संश्लेषण किया है। इस आत्मकथा में आद्योपान्त औपन्यासिकता का अकृत्रिम निर्वाह हुआ है। द्विवेदीजी ने ऐतिहासिक वृत्त और सूक्ष्म बाह्य वर्णन के साथ-साथ बाणभट्ट के आन्तरिक द्वन्द्व और संघर्ष का जिस विलक्षणता के साथ विश्लेषण किया है वह उनके निर्माण-कौशल का परिचायक है। नलिनविलोचन शर्मा यह मानते हैं कि द्विवेदीजी ने बाणभट्ट की जीवनी प्रस्तुत की है जिसमें कल्पना के मणिकांचन योग के कारण औपन्यासिकता का समावेश हो गया है। उन्होंने इस रचना के गद्य की तारीफ करते हुए कहा है कि "बाण की अत्यन्त कृत्रिम और आलंकारिक गद्य-शैली के बदले आधुनिक आदर्श के अनुरूप गद्य के सहारे ही लेखक बराबर बाण की याद दिलाते रहने में सफल हुआ है।"

3.1.2. हजारीप्रसाद द्विवेदी व्यक्तित्त्व और कृतित्व

हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के महान् उपन्यास लेखक, आलोचक और ललित निबन्धकार के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं। उनका जन्म 20 अगस्त, सन् 1907 ई. को उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के अन्तर्गत आरत दुबे का छपरा, ओझवलिया नामक गाँव में हुआ था। सन् 1930 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ज्योतिषाचार्य तथा इन्टर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे शान्ति निकेतन में अध्यापक होकर चले गए। सन् 1940 से 1950 तक उन्होंने 'हिन्दी भवन' के निदेशक के पद पर कार्य किया। तत्पश्चात् वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। काशी विश्वविद्यालय के बाद सन् 1960 में वे पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए। यहीं पर उन्हें 'टैगोर प्रोफेसर' के पद से सम्मानित किया गया। सन् 1968 में उन्होंने काशी विश्वविद्यालय के 'रेक्टर' का पद सँभाला। इसके बाद 19 मई 1979 तक अर्थात् मृत्युपर्यन्त वे वाराणसी में ही रहे। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के सम्पर्क ने उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को और अधिक व्यापक आयाम प्रदान किया। क्षितिमोहन सेन, विधुशेखर भट्टाचार्य और बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे व्यक्तियों की संगति में उनकी रचनात्मक सक्रियता को गति और दिशा मिली। हिन्दी साहित्य की दूसरी परम्परा के प्रतिनिधि के रूप में आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी की काव्य-परम्परा को कबीर से जोड़कर उसे एक प्रगतिशील मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। भक्तिकाल को भारतीय चिन्ता-धारा का सहज और स्वाभाविक विकास मानने वाले साहित्येतिहासकार के रूप में उनकी भूमिका ऐतिहासिक है। उपन्यासकार के रूप में जहाँ उन्होंने 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारु चन्द्रलेख', 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' के द्वारा हिन्दी उपन्यास को एक नई दिशा दी है, वहीं अपने ललित निबन्धों के द्वारा हिन्दी निबन्ध को एक नई भंगिमा का अवदान दिया है। द्विवेदीजी ने केवल पुस्तकों की ही रचना नहीं की है। उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष हैं। उनके सम्पूर्ण साहित्यिक जीवन में उनकी और भी उपलब्धियाँ हैं – यथा अभिनवभारती ग्रन्थमाला का सम्पादन, कलकत्ता (1940-46), विश्वभारती पत्रिका का सम्पादन (1941-47), अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कराँची अधिवेशन (1946) की साहित्य-परिषद की अध्यक्षता, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के हस्तलेखों की खोज (1952) तथा साहित्य अकादेमी से प्रकाशित 'नेशनल बिबलियोग्राफी' (1954) का निरीक्षण। ये उपलब्धियाँ केवल द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की महत्ता की द्योतिका ही नहीं बल्कि उनके निरन्तर कर्मरत जीवन की अप्रतिहत गतिशीलता भी है। द्विवेदीजी को सन् 1940 में लखनऊ विश्वविद्यालय से 'डी.लिट्.' की मानद उपाधि प्राप्त हुई। सन् 1957 ई. में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया गया। उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था।

3.1.2.1. हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्य

आलोचना साहित्य : कबीर (1940), कालिदास की लालित्य-योजना, नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक, मृत्युंजय रवीन्द्र, साहित्य सहचर ('साहित्य का साथी' भी इसी में संकलित), सूर-साहित्य (1936)

साहित्येतिहास :	नाथ सम्प्रदाय, हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, मध्यकालीन धर्म साधना (1940)
निबन्ध साहित्य :	अशोक के फूल (1948), विचार और वितर्क (1949), हमारी साहित्यिक समस्याएँ (1949), साहित्य का मर्म (1950), कल्पलता (1951), विचार प्रवाह (1959), कुटज (1964), सहज साधना, आलोक पर्व
उपन्यास साहित्य :	बाणभट्ट की आत्मकथा (1946), चारु चन्द्रलेख (1962), पुनर्नवा (1972), अनामदास का पोथा (1976)
सम्पादित साहित्य :	काव्यशास्त्र, नाथ सिद्धों की वाणियाँ (1957), बौद्ध धर्म (लेखक : बाबू गुलाब राय), संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, सन्देश रासक (1960)
अनूदित साहित्य :	प्रबन्ध चिन्तामणि (हिन्दी अनुवाद), प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद (मौलिक) (1951), मेघदूत : एक पुरानी कहानी (स्वतन्त्र अनुवाद), रवीन्द्र के अनेक नाटकों तथा अन्य रचनाओं का अनुवाद, यथा – मृत्युंजय रवीन्द्र में संकलित कविताएँ, लाल कनेर, मेरा बचपन इत्यादि।

3.1.3. विषय-विस्तार

3.1.3.1. बाणभट्ट की आत्मकथा में इतिहास-बोध, इतिहास और कल्पना का मणिकांचन योग

'बाणभट्ट की आत्मकथा' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित हिन्दी की अनन्य औपन्यासिक कृति है। इसका रचनाकाल सन् 1946 है। उपन्यास में बीस उच्छवास हैं। इसका प्रारम्भ 'कथामुख' से तथा अन्त 'उपसंहार' से होता है। यह 314 पृष्ठों का ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धनकालीन भारत का चित्रण है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सातवीं शदी के भारत की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों का निरूपण 'बाणभट्ट' को केन्द्र में रखकर किया है। उस समय स्थाणीश्वर का शासक सम्राट हर्षवर्द्धन था और बाणभट्ट उनका दरबारी कवि था। बाणभट्ट का संस्कृत-साहित्य में विशेष स्थान है। 'हर्षचरितम्' एवं 'कादम्बरी' उसकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। इस उपन्यास की रचना 'हर्षचरितम्' एवं 'कादम्बरी' को आधार-ग्रन्थ बनाकर की गई है किन्तु यहाँ द्विवेदीजी ने युगीन समस्याओं तथा जीवन-मूल्यों पर आए संकट को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से गृहीत कथानकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास के अधिकांश पात्र ऐतिहासिक हैं जिनमें हर्षवर्द्धन, राज्यश्री, कृष्णवर्द्धन, शीलभद्र और जयन्त भट्ट का उल्लेख तो इतिहास में मिलता है किन्तु तुवरमिलिन्द और भट्टिनी (चन्द्रदीधीति) काल्पनिक हैं तथा लोरिकदेव का अवतरण लोक-गाथाओं के भीतर से हुआ है।

3.1.3.2. बाणभट्ट की आत्मकथा की 'मूलकथा'

यह उपन्यास डॉ॰ द्विवेदी ने व्योमकेश शास्त्री के छद्म नाम में लिखा है। कथा के 'कथामुख' में ही यह स्वीकार कर लिया गया है कि इस कथा की प्राप्ति आस्ट्रियावासिनी मिस कैथराइन को सोण नदी के किनारे प्राप्त हुई थी तथा प्रस्तुत 'आत्मकथा' केवल उसका अनुवाद है। "आगे जो कथा दी गई है वह दीदी का अनुवाद है।"

कथा का प्रारम्भ 'बाण' की इस स्वीकारोक्ति से होता है कि वह अपना वास्तविक नाम छिपा गया है। यह छिपाना इसलिए है कि वह अपने को 'आवारा' (हर्षचरितः कोज्यं भुजंगमः) मानता है तथा उसका बहुरूपधारी व्यक्तित्व निपुणिका और भट्टिनी के लिए एक साथ कई समस्याएँ खड़ी करता है। निपुणिका बाल-विधवा के रूप में अनेक कष्ट पाकर घर से भाग चुकी है तथा बाण की नाटक-मण्डली की कुशल अभिनेत्री है। एक बार बाण की असमय हँसी उसे वहाँ से भाग जाने पर विवश करती है और छह वर्षों के बाद जब वह पान बेचने वाली के रूप में बाण को मिलती है और उसे अपने घर ले जाती है तब वहाँ महावराह की मूर्ति और तुलसी उसकी सात्त्विकता का प्रमाण देती जान पड़ती हैं। इसके बाद वह बाण से देवपुत्र तुवरमिलिन्द की कन्या चन्द्रदीधिति का मौखरियों के छोटे राजकुल से उद्धार का आश्वासन माँगती है। यही राजकन्या भट्टिनी है।

कथा यहाँ से कई मोड़ लेती है। बाण निपुणिका और भट्टिनी का त्रिकोण बनता है और यहाँ से कथा में मानसिक द्वन्द्व का समावेश होता है। दूसरी ओर उस समय की तन्त्र-मन्त्र मूलक साधना को रूपायित करने के लिए महामाया, विरतिवज्र और अघोर भैरव की प्रस्तुति की गई है। अघोर भैरव का बाण पर स्नेह है वे उसे साधना के सहज मार्ग से परिचित कराते हैं।

इस उपन्यास में एक साथ कई कथाएँ चलती हैं। बाण भट्टिनी को सुरक्षित उसके घर छोड़ आने की जिम्मेदारी लेता है जिसके लिए वह राजा की सहायता लेता है। रास्ते में संघर्ष होता है, फिर महामाया और अघोर भैरव की सहायता से वे लोग मिलते हैं। निपुणिका धीरे-धीरे यह पूरी तरह महसूस कर लेती है कि बाण का आकर्षण भट्टिनी के प्रति है। वह मन से दुखी होकर धीरे-धीरे रुग्ण होती चली जाती है। इसी बीच कई घटनाएँ घटती हैं। अनेक पात्रों के जीवन रहस्य पर से परदा उठता है। बाणभट्ट धीरे-धीरे राजनैतिक जाल में उलझता जाता है। उसे चिन्ता पैदा करने वाले कई आदेश कुमार कृष्ण से प्राप्त होते हैं। एक बार उसे पुरुषपुर जाने का आदेश होता है। इससे पूर्व भट्टिनी के अनुरोध पर वह और निपुणिका एक साथ महाराज हर्ष की नाटिका का अभिनय करते हैं। यह अभिनय महाराज हर्ष के स्वागत के लिए होना था। वासवदत्ता का अभिनय करते-करते निपुणिका संज्ञाहीन होकर गिरती है और वहीं उसकी मृत्यु होती है। यह मृत्यु भट्टिनी और बाण के आगे की बाधा दूर करती है। इसी बीच बाण को पुरुषपुर जाने का आदेश मिलता है। पुरुषपुर जाते समय बाण का हृदय हाहाकार कर उठता है "फिर क्या मिलना होगा।" उपन्यास की मूल कथा यहीं समाप्त हो जाती है। 'उपसंहार' में व्योमकेश शास्त्री 'कथामुख' के आगे का प्रसंग उपस्थित करते हैं तथा कतिपय पात्रों की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालते हैं।

इस उपन्यास में मौखरियों का पराभव तथा वर्द्धनों के यहाँ उनका शरण लेना इतिहाससम्मत है। राज्यश्री का विवाह कन्नौज के मौखरि वंश में हुआ था जो उस समय अपनी आखिरी साँसें गिन रहा था। इस उपन्यास में जिसे छोटा राजकुल कहा गया है वह इन्हीं मौखरियों के अन्तःपुर का नाम है।

निपुणिका ने बाण को यह भी बताया कि कान्यकुब्ज की जनता में मौखरियों के प्रति आदरभाव को महाराज हर्षवर्द्धन जानते हैं, इसीलिए मौखरिवंश का यह दावेदार स्थाणीश्वर में 'महाराज' कहकर भी पुकारा जाता है। उसे कोई अधिकार नहीं दिया गया है परन्तु सम्पत्ति दी गई है इसीलिए उसमें अनुत्तरदायी भोगलिप्सा बढ़ गई है जो अब अत्यन्त निकृष्ट अनाचार का रूप धारण कर चुकी है। महाराज हर्ष को यह विदित है परन्तु जनता में मौखरि वंश के मान को देखते हुए वे 'छोटे महाराज' को हटा नहीं सकते। इसी छोटे महाराज के अन्तःपुर में तुवरमिलिन्द की कन्या भट्टिनी बन्दी है जिसका उद्धार करने का संकल्प बाण लेता है।

उपन्यासकार का उक्त कथन वर्तमान जातिगत भेद एवं ऊँच-नीच की भावना को ही व्यक्त करता दिखाई देता है। बाणभट्ट इस भेदभाव के लिए विकृत समाज व्यवस्था को दोष देता है – "यह जो दुःख ताप है, निर्यातन है, घर्षण है, परदाराभिमर्श है, यह विकृत समाज व्यवस्था के विकृत परिणाम हैं।"

उस काल में हूणों के आक्रमण से जनता त्रस्त थी तथा युद्ध के भीषण परिणामों एवं रक्तपात की आशंका से सर्वत्र भय व्याप्त था। बाणभट्ट को आशंका थी कि कहीं धरती मानव-रक्त से स्नात न हो जाए। वह सोच रहा था – "हे भगवान् ! क्या यह रक्त-स्नान रोका नहीं जा सकता ... क्या धरित्री रक्त-स्नान से बच जायेगी या फिर और भी डूब जाएगी ?" बाणभट्ट की यह चिन्ता स्पष्ट आज के युद्ध की आशंकासे ग्रस्त मानव-समाज की चिन्ता है।

साहित्य में 'इतिहास' ज्यों-का-त्यों नहीं आता। उसमें कल्पना के माध्यम से परिवर्तन किया जाता है जिससे वह 'रस' प्रदान कर सके तथा वर्तमान सन्दर्भों में भी उपयोगी हो। द्विवेदीजी ने पात्र-परिकल्पना में ही नहीं, अपितु प्रसंग-योजना में भी कल्पना का सहारा लेकर इस उपन्यास की रचना की है। बाणभट्ट, हर्षवर्द्धन, कृष्णवर्द्धन, राज्यश्री आदि ऐतिहासिक पात्र हैं। निपुणिका, भट्टिनी, तुवरमिलिन्द, अघोर भैरव, महामाया आदि काल्पनिक पात्र हैं। निपुणिका के चरित्र को द्विवेदीजी ने बड़ी कुशलता से गढ़ा है क्योंकि वह भले ही सातवीं शती की नारी हो किन्तु अपने कार्य एवं व्यवहार से वह बीसवीं सदी की आधुनिक नारी के अधिक समीप है। निश्चय ही वह नारी-मुक्ति-आन्दोलन के सन्दर्भ में प्रासंगिक बन गई है।

द्विवेदीजी ने 'हर्षचरितम्' और कादम्बरी जैसी साहित्यिक रचनाओं को इस उपन्यास की सामग्री के लिए उपजीव्य रूप में प्रयुक्त किया है। उपसंहार में वे लिखते हैं – "कादम्बरी में प्रेम की अभिव्यक्ति इस प्रकार की दृप्त भावना है, परन्तु इस कथा में सर्वत्र प्रेम की व्यंजना गूढ़ और अदृप्त भाव से प्रकट हुई है। ऐसा जान पड़ता है कि एक स्त्रीजनोचित लज्जा सर्वत्र उस अभिव्यक्ति में बाधा दे रही है। सारी कथा में स्त्री महिमा का बड़ा तर्कपूर्ण और जोरदार समर्थन है। कथा का जिस ढंग से आरम्भ हुआ उसकी स्वाभाविक परिणति गूढ़ और अदृप्त प्रेम ही हो सकती है।"

प्रायः देखा जाता है कि ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रामाणिकता का आधार केवल इतिहास होता है किन्तु प्रस्तुत उपन्यास को प्रामाणिक बनाने के लिए दो नवीन प्रयास किए गये हैं – मिस कैथराइन की कथा का समावेश और बाण की शैली का अनुकरण।

मिस कैथराइन तथा प्रस्तुत कृति की उपलब्धि का 'इतिहास' बताते हुए लेखक ने लिखा है 'मिस कैथराइन का भारतीय विद्याओं के प्रति असीम अनुराग था। अपने देश में रहते समय ही उन्होंने संस्कृत और हिन्दी का अच्छा अभ्यास किया था। 68 वर्ष की उम्र में वे इस देश में आई और अक्लान्त भाव से वहाँ के प्राचीन स्थानों का आठ वर्ष तक लगातार भ्रमण करती रहीं। ... अपनी कष्टसाध्य यात्राओं के बावजूद वे इधर लौटतीं तो इन लोगों के आनन्द का ठिकाना न रहता। नई बात सुनने के लिए ... या नई चीज देखने के लिए हम लोगों की भीड़ लग जाती। दीदी (मिस कैथराइन) एक-एक करके, कभी कोई तालपत्र की पोथी, कभी पुरानी पोथी के ऊपर की चित्रित काठ की पाटी, कभी पुराने सिक्के निकालकर हमारे हाथों पर रखती जातीं और उनका इतिहास सुनाती जातीं। अन्तिम बार दीदी राजगृह से लौटीं। इस बार वे सोणनद की यात्रा करके आई थीं और उन्हें बाणभट्ट की आत्मकथा की प्राचीन पाण्डुलिपि मिल गई थी। इस कारण वे अत्यन्त प्रसन्न थीं। दूसरे दिन में शाम को दीदी के स्थान पर पहुँचा। नौकर से मालूम हुआ कि उस रात को दीदी दो बजे तक चुपचाप बैठी रहीं और फिर एकाएक अपनी टेबिल पर आकर लिखने लगीं। रात भर लिखती रहीं और लिखने में ऐसी तन्मय थीं कि दूसरे दिन आठ बजे तक लालटेन बुझाए बिना लिखती रहीं। फिर टेबिल पर ही सिर रखकर लेट गई और शाम को तीन बजे तक लेटी रहीं, फिर उन्होंने स्नान किया और अब चाय पीने जा रही हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा के रूप में दीदी को अमूल्य वस्तु हाथ लगी है। मैं ध्यान से सारी कथा पढ़ गया। मुझे अपार आनन्द आ रहा था। इतने दिन बाद संस्कृत साहित्य में एक अनोखी चीज प्राप्त हुई है। रात यों ही बीत गई। सबेरे मैं कलकत्ते के लिए रवाना हो गया। वहाँ एक सप्ताह रुकना पड़ा। लौटकर आया तो मालूम हुआ कि दीदी काशीवास करने चली गई हैं। किसी को कोई पता-ठिकाना नहीं दे गई। दो साल तक वह कथा यों ही पड़ी रही। एक दिन मैंने सोचा कि बाणभट्ट के ग्रन्थों से मिलाकर देखा जाए कि कथा कितनी प्रामाणिक है। कथा में ऐसी बहुत-सी बातें थीं जो उन पुस्तकों में नहीं हैं। इनके लिए मैंने समसामयिक पुस्तकों का आश्रय लिया और एक तरह से कथा को नए सिरे से सम्पादित किया। आगे जो कथा दी गई है, वह दीदी का अनुवाद है और फुटनोट में जो पुस्तकों के हवाले दिये हुए हैं, वे मेरे हैं। कथा ही असल में महत्त्वपूर्ण है, टिप्पणियाँ तो उसकी प्रामाणिकता के सबूत हैं।" इस प्रकार उपन्यासकार ने इस आत्मकथा को प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास को पूर्णतः ऐतिहासिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यह 'प्रयत्न' हिन्दी-साहित्य में अपने प्रकार का नया प्रयोग है जिसे 'अभिनव प्रयोग' कहा गया है। उपन्यासकार ने जिन काल्पनिक वृत्तान्तों और पात्रों का संयोजन किया है वे इसकी ऐतिहासिकता को और अधिक सजीव एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। इससे बाणयुगीन इतिहास के परिवेश में तत्कालीन युग साकार हो उठता है। यहाँ उस काल की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ स्पष्टतः मुखरित हो गई हैं, अतः कहा

जा सकता है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नामक उपन्यास केवल ऐतिहासिक तथ्य ही प्रस्तुत नहीं करता वरन् इतिहास-रस की पूर्णरूप से अनुभूति कराता है।

3.1.3.3. बाणभट्ट की आत्मकथा में सांस्कृतिक चेतना

आचार्य द्विवेदीजी की औपन्यासिक कृतियों में संस्कृति केन्द्रस्थ रही है। 'संस्कृति' का मूल अर्थ है 'परिष्कृति'। द्विवेदीजी ने एक स्थान पर कहा है – "मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है।" अपनी साहित्य-साधना के प्रत्येक स्तर पर उन्होंने संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त की है। यह कहने में कोई अनुपयुक्तता नहीं होगी कि अपनी सांस्कृतिक्ति अनुभूतियों की अभिव्यंजना के लिए ही उन्होंने इतिहास को देखा है। भारतीय उपन्यास की अवधारणा के अनुसन्धान और उसका औपन्यासिक कृतियों द्वारा संस्थापन का जो आग्रह यहाँ दृष्टिगत होता है, उसकी प्रामाणिकता लेखक की सांस्कृतिक अनुभूतियों तथा अभिव्यक्ति में ढूँढ़ी जा सकती है।

'संस्कृति' व्यापक अर्थबोधक शब्द है। प्राथमिक स्तर पर इसका अर्थ है – ज्ञान और कर्म के क्षेत्र में हमारे पूर्वजों के द्वारा उपलब्ध वैचारिक विरासत । उच्चतर अवस्था में यह किसी भी राष्ट्र की आत्मा है, प्राणधारिका शक्ति है, जीवन की गम्भीर अनुभूति है। यह राष्ट्रीय जीवन का चेतनामूलक संस्कार है। इसे वैदिक वाङ्मय में 'चिति' शब्द से व्यक्त किया गया है। आज की लोकप्रिय मनोवैज्ञानिक मीमांसा-पद्धति यह मानती है कि चेतन मस्तिष्क निमित्त कारण है। उसे अचेतन मस्तिष्क संचालित करता है। व्यक्ति-स्तर पर अचेतन मस्तिष्क की जो स्थिति है वही स्थिति जातीय-राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृति की है। विचार, भाव, भाषा और अन्य अनेक कारणों से साहित्य संस्कृति से अभिन्न रूप में जुड़ा रहता है। यह मौलिक तथ्य है कि सार्वभौमिकता पाने के लिए किसी भी कृति को सांस्कृतिक सन्दर्भ में प्रासंगिक और सार्थक होना पड़ता है। मूल्यों को अधिगृहीत, संरक्षित और चरितार्थ करने का प्रत्यक्ष माध्यम संस्कृति है। संस्कृति दृष्टि को उदारता और भव्यता ही नहीं देती, उसे मुक्ति भी प्रदान करती है। साहित्य और संस्कृति का अन्तस्सम्बन्ध प्राकृतिक विधान है। हमारे लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ऐसी संस्कृतियाँ हो सकती है जिनमें कोई साहित्य न हो, कम-से-कम लिखित साहित्य किन्तु ऐसे साहित्य की कल्पना भी नहीं हो सकती जिसकी कोई संस्कृति न हो।

साहित्य और संस्कृति का अन्तस्सम्बन्ध एक प्राकृतिक विधान है इसे प्रकारान्तर से समझा जा सकता है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी माना गया है, यह अधूरा सत्य है। पूर्ण सत्य यह है कि मनुष्य एक ऐतिहासिक प्राणी है। वह इतिहास के अनन्त प्रवाह से निर्मित हुआ है। ऐसे मनुष्यों से निर्मित समाज एक ऐतिहासिक सत्ता ही है। इतिहास स्वयं संस्कृति की कुक्षि से जन्म लेता है। इस निष्कर्ष का आधार देखा जा सकता है – "जिस सामाजिक और सांकेतिक विश्व में मनुष्य अपने मौलिक संस्कार अर्जित करते हैं, उसे चिरकाल से एक सनातन आदर्श व्यवस्था का लौकिक अनुकरण समझा जाता रहा है।" 'सनातन आदर्श' शब्दान्तर से संस्कृति को ध्वनित करता है तथा 'लौकिक अनुकरण' दिक् और काल को अर्थात् उसके इतिहास पक्ष को। सनातन आदर्श का सम्बन्ध आन्तरिक चेतना से। यह संस्कृति का एक विशिष्ट आयाम है। डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय की व्याख्यानुसार, "सामाजिक परम्परा के रूप में संस्कृति में स्थूल ऐतिहासिकता देखी जा सकती है। दूसरी ओर अनन्त

मूल्यानुसन्धान को अभिव्यक्त करने के नाते उसमें परमार्थ की ओर एक क्रमबद्ध उपसर्पण के सनातन इतिहास का संकेत मिलता है ।" इस वक्तव्य में मूल्यानुसन्धान साहित्य के वास्तविक मर्म के सन्निकट है । यह एक प्रक्रिया है तथा इसकी बीजभूत प्रेरणा वह सनातन इतिहास है जिसे संस्कृति कहना सर्वथा उपयुक्त है । 'संस्कृति' को कभी 'जीवन का ढंग' कहा गया है तो कभी उसे मानव-जीवन के आचार, विचार और व्यवहार का संस्कृत या परिमार्जित रूप माना गया है । स्वयं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का विचार है कि "मानव की श्रेष्ठ साधनाएँ संस्कृति के अन्तर्गत आती हैं । समग्रतः संस्कृति को हम उन उदात्त मूल्यों का समुच्चय मान सकते हैं जो हमारे समस्त क्रिया-व्यापारों को निर्देशित एवं नियन्त्रित करते हैं ।" 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की सांस्कृतिक चेतना को रेखांकित करते समय हमें कृति में व्यंजित समस्त मूल्यों से लेकरनयेपन की आहट तक को ध्यान में रखना होगा ।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में सातवी-आठवीं सदी का जीवन-यथार्थ है । इसमें एक ओर द्विवेदीजी ने मध्ययुगीन मूल्य-बोध की प्रतीति कराई है तो दूसरी ओर आवश्यक होने पर उस बोध के अप्रासंगिक पक्षों पर कड़ा प्रहार भी किया है । समाज में वर्ण-व्यवस्था का वर्चस्व बना हुआ था । निम्नवर्ग की दृष्टि में ब्राह्मण की सत्ता देवता-जैसी थी । एक वृद्ध महिला का कथन है – "तुम ब्राह्मण हो आर्य, पृथ्वी के देवता हो आर्य, तुम्हारे आशीर्वाद से मेरा कल्याण होगा ।" लेकिन उपन्यास में ऐसे संकेत भी हैं कि ब्राह्मण अपने कर्मों के फलस्वरूप देवत्व से च्युत हो चुका था और उसे मिथ्याचारी, डरपोक, पाखण्डी आदि विशेषण प्राप्त हो चुके थे । पुनर्जन्म और कर्मफल के भारतीय सिद्धान्त अभी समाज में मान्य थे लेकिन लोग भाग्यवादी होते जा रहे थे । इस संक्रमण को द्विवेदीजी ने ज्योतिष पर विदेशी प्रभाव के रूप में दर्शाया है – "इधर हाल ही में यवन लोगों ने जिस होराशास्त्र और प्रश्नशास्त्र नामक ज्योतिष विद्या का प्रचार इस देश में किया है, वह यावनी पुराण-गाथा के आधार पर रचा हुआ एक अटकलपच्चू विधान है । भारतीय विद्या ने जिस कर्मफल और पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, उसके साथ इसका कोई मेल ही नहीं है ।" मध्ययुगीन संस्कृति में धर्मकी केन्द्रीय भूमिका रही है । 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से पता चलता है कि 'धर्म' का स्वरूप विकृत हो रहा था । उसमें बाह्याचार और पाखण्ड की वृद्धि हो रही थी । धर्म की आड़ में अनेक युवक अपनी युवा पत्नियों को छोड़ कर पथभ्रष्ट हो रहे थे । नारी के प्रति 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' जैसी धारणा व्यवहार में अनुपस्थित थी । उसे केवल भोगविलास का एक उपकरण मान लिया गया था । वह लुटेरों द्वारा अपहृत होकर राजाओं के अन्तःपुर में बेची जा रही थी । आचार्य द्विवेदी ने इस सांस्कृतिक अधोपतन का दृढ़ विरोध किया है ।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निवृत्ति-मार्ग या वैराग्यमूलकता को द्विवेदीजी ने स्वीकार नहीं किया है । उनकी दृष्टि में यह एक तरह का पलायन है । उनके अनुसार 'चिन्मय' की तलाश 'मृण्मय' की उपेक्षा करके नहीं हो सकती । इसी तरह नारी देह को वे 'मन्दिर' मानते हैं । वे नारी के भीतर अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने की छटपटाहट को भी व्यक्त करते हैं । निपुणिका का कथन है – "मुझे इस योग्य बना दो कि आप अपनी अग्नि से धधक कर समूचे जंगल को भस्म कर दूँ ।" सुचरिता का कथन है कि सम्पूर्ण मानव देह ही मन्दिर है, जबकि बाणभट्ट नारी के प्रति बहुत उदात्त विचार रखता है – "मैं नारी-सौन्दर्य को संसार की सबसे अधिक प्रभावोत्पादिनी शक्ति मानता रहा हूँ ।" जो लोक के लिए वरेण्य है, हितकारी है उन मूल्यों को उपन्यासकार का पूरा समर्थन प्राप्त

है। कुमार कृष्णवर्द्धन से इसीलिए कहलाया गया है – "लोक कल्याण प्रधान वस्तु है। वह जिससे सधता हो, वही सत्य है।"

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में सांस्कृतिक चेतना का एक नैतिक पक्ष भी है। अपने विवेक से अनुचित और उचित का निर्णय करते हुए आचरण करने पर लेखक ने बल दिया है। लोक, शास्त्र, गुरु आदि उतने प्रामाणिक नहीं हैं जितना अपने भीतर का देवता। बाणभट्ट का कथन है – "मैं अपनी बुद्धि से अनुचित-उचित की विवेचना करता हूँ। मैं मोह और लोभवश किए गये समस्त कार्यों को अनुचित मानता हूँ।" ज़ाहिर है, इस उपन्यास की सांस्कृतिक चेतना, नैतिक, लोकवादी और मूल्यवादी है।

कहा गया है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में व्यक्त प्रणयानुभूति विशिष्ट है और यह निगूढ़ और अदृप्त है। उपन्यास के कथ्य में सांस्कृतिक बोध के साथ प्रणय की व्यापक अनुभूति संश्लिष्ट है। भट्टिनी के माध्यम से कहा गया है – "नरलोक से लेकर किन्नरलोक तक एक ही रागात्मक हृदय विद्यमान है।" उपन्यास में भट्टिनी, निपुणिका, बाणभट्ट आदि उसी रागात्मक हृदय की अनेक संवेदनाओं को गूँथते दिखाई देते हैं। 'आत्मकथा' में इनका प्रेम-त्रिभुज तो है ही, विरतिवज्र-सुचरिता, अघोरभैरव-महामाया के युग्म भी प्रणयानुभव की अनेक छवियों को उभारते हैं।

बाणभट्ट समाज की दृष्टि से भले ही 'बंड' और 'भुजंग' हो, प्रेम के धरातल पर वह पवित्र और उदात्त भावों से सम्पन्न है। प्रेम उसके लिए इतना महत्त्वपूर्ण है कि वह चरम-मूल्य महावराह को भी एक बार कमतर आँकता है। वह महावराह की मूर्ति को बचाने की अपेक्षा भट्टिनी की प्राण-रक्षा को वरीयता देता है। प्रेम के सम्बन्ध में द्विवेदीजी का मानना है – "प्रेम एक और अविभाज्य है। उसे केवल ईर्ष्या और असूया ही विभाजित करके छोटा कर देते हैं।" आश्चर्यजनक रूप से भट्टिनी, बाणभट्ट और निपुणिका के प्रेम में ईर्ष्या और यौन-शुचिता की माँग उपन्यास में कई स्थलों पर ध्वनित है। द्विवेदीजी ने निपुणिका या निउनिया की सृष्टि प्रेम की उदात्तता के निदर्शन-हेतु ही की है। 'हर्षचरितम्' में एक हरिणिका नाम की नर्तकी का उल्लेख है। सम्भवतः द्विवेदीजी ने उसे ही निपुणिका के रूप में गढ़ दिया है। उसका प्रेम सात्त्विक है और आत्मदान की गरिमा से सम्पन्न भी। वह वर्ण और सामाजिक स्तर का निषेध करती हुई भट्ट से प्रेम करती है और अन्ततः भट्ट-भट्टिनी के रास्ते से अलग हट जाती है। बाणभट्ट उसके अनुराग से उसके मरणोपरान्त ही परिचित हो पाता है। वैसे वह स्वयं उसकी मानस-मूर्ति का आराधक रहा है। निपुणिका का प्रेम निरन्तर ऊँचाई की ओर अग्रसर हुआ है। वह 'मोह' से प्रारम्भ हुआ है और उसकी परिणति भक्ति में हुई है।

'बाणभट्ट' की आत्मकथा' का प्रेम बैठे-ठाले का प्रेम नहीं है। यह जीवन-संघर्षों के समान्तर पल्लवित-पुष्पित हुआ है। निपुणिका और बाणभट्ट भट्टिनी की रक्षा में सन्नद्ध हैं और भय-संत्रास और विभिन्न स्थितियों में उनका प्रेम दृढ़ होता रहता है। यह प्रेम कहीं कर्त्तव्य-पालन के आड़े नहीं आता है। उपन्यास के अन्त में बाणभट्ट न चाहते हुए भी भट्टिनी से विदा लेता है। यह क्षण 'मोह' पर कर्त्तव्य-निष्ठा की विजय का सूचक है।

भट्टिनी का प्रणय आभिजात्यपूर्ण है, अतः उसमें मुखरता नहीं है। उसका प्रेम 'प्लेटोनिक लव' के निकट पड़ता है, लेकिन उसके समर्पण में गोपन के बावजूद अनन्यता है। अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना को द्विवेदीजी नारी-तत्त्व और शक्ति-तत्त्व मानते हैं। निपुणिका और भट्टिनी में इस तत्त्व की उदात्त उपस्थिति है। द्विवेदीजी का यह भी मानना है कि नारी में त्रिपुर-भैरवी का वास होता है और यह सारा विश्व त्रिपुर भैरवी की ही लीला है। उनके अनुसार – "यह जो कुछ हो रहा है, त्रिपुर भैरवी की ही लीला है। शूलपाणि के मुण्डमाल की रचना में कोई भी बाधा नहीं डाल सकता। उसकी लीला को वही मोड़ सकता है जिसने अपने को सम्पूर्ण रूप में त्रिपुर भैरवी के साथ एक कर दिया है।" इस उद्धरण से प्रकट है कि भट्ट, भट्टिनी और निपुणिका का रागात्मक सम्बन्ध दार्शनिक पृष्ठाधार भी लिये हुए है। शैव दर्शन की यह धारणा कि प्रकृति क्रियाशील होती है और वही पुरुष को प्रेरित तथा आकर्षित करती है, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के कथ्य विशेषतः रागात्मक सम्बन्धों की योजना में ध्वनित है। बाणभट्ट को सम्भवतः इसीलिए प्रेमजगत् में अत्यन्त भोला और अपनी ओर से कोई पहल न करने वाला बताया गया है। दार्शनिक संकेतों ने 'आत्मकथा' के प्रेम को अतिरिक्त दीप्ति प्रदान की है।

3.1.4. पाठ-सार

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। आत्मकथा की घटनाएँ ऐतिहासिक नहीं हैं परन्तु उनकी पृष्ठभूमि सर्वथा ऐतिहासिक है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का कथा-संसार इतिहास पर आधारित होते हुए भी उसमें कल्पना तथा लोकश्रुति से प्राप्त प्रसंगों का बाहुल्य है। इतिहास केवल इतना ही है कि हर्षवर्द्धन के राजदरबार में कुछ प्रारम्भिक कठिनाइयों के बाद बाणभट्ट को राजकवि के रूप में प्रतिष्ठा मिली थी। इस प्रकार उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास को पूर्णतः ऐतिहासिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यह 'प्रयत्न' हिन्दी-साहित्य में अपने प्रकार का नया प्रयोग है इसलिए उपन्यासकार ने इसे 'अभिनव प्रयोग' की संज्ञा दी है। उपन्यास में उपन्यासकार ने जिन काल्पनिक घटनाओं और पात्रों का प्रयोग किया है, वे इसकी ऐतिहासिकता को और अधिक सजीव एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। इससे बाणयुगीन इतिहास के परिवेश में तत्कालीन युग साकार हो उठा है, उस काल की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ स्पष्ट: मुखरित हो गई हैं अतः कहा जा सकता है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नामक उपन्यास केवल ऐतिहासिक तथ्य ही प्रस्तुत नहीं करता वरन् ऐतिहासिक रस की भी पूर्णरूप से अनुभूति कराता है।

3.1.5. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. इनमें से हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास कौन-सा है ?
   (क) बाणभट्ट की आत्मकथा
   (ख) चारु चन्द्रलेख

(ग) पुनर्नवा

(घ) उपर्युक्त सभी

सही उत्तर – (घ)

2. 'निउनिया' हजारीप्रसाद द्विवेदी के किस उपन्यास का चरित्र है ?

(क) पुनर्नवा

(ख) अनामदास का पोथा

(ग) चारु चन्द्रलेख

(घ) बाणभट्ट की आत्मकथा

सही उत्तर – (घ)

3. 'नारी शरीर देव मन्दिर की भाँति पवित्र है' यह कथन किसका है –

(क) हजारीप्रसाद द्विवेदी

(ख) प्रेमचंद

(ग) जयशंकर प्रसाद

(घ) इनमें से कोई नहीं

सही उत्तर – (क)

4. अघोर भैरव किस उपन्यास का पात्र है ?

(क) बाणभट्ट की आत्मकथा

(ख) अनामदास का पोथा

(ग) पुनर्नवा

(घ) इनमें से कोई नहीं

सही उत्तर – (क)

5. महामाया पात्र किस औपन्यासिक कृति में है ?

(क) बाणभट्ट की आत्मकथा

(ख) अनामदास का पोथा

(ग) पुनर्नवा

(घ) इनमें से कोई नहीं

सही उत्तर – (क)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के किसी एक नारी पात्र की विशेषता बताइए।
2. हजारीप्रसाद द्विवेदी का क्या वैशिष्ट्य है ?
3. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का प्रतिपाद्य क्या है ?

4. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी-मुक्ति की आकांक्षा पर एकलघु निबन्ध लिखिए।
5. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' शीर्षक उपन्यास में प्रस्तुत सांस्कृतिक चेतना का विवेचन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की ऐतिहासिकता पर विचार कीजिए।
2. उपन्यास-कला की दृष्टि से 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का विवेचन कीजिए।
3. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।
4. " 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में तत्कालीन युगीन यथार्थ को अभिव्यक्ति मिली है।" विवेचना कीजिए।
5. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के माध्यम लेखक क्या सन्देश देना चाहता है ? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।

3.1.6. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास, सं. : महेन्द्र मोहन
2. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, भाग-1, यश गुलाटी
3. दूसरी परम्परा की खोज, नामवर सिंह
4. आज का हिन्दी उपन्यास, सं. : इन्द्रनाथ मदान
5. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : व्यक्ति एवं साहित्य, गणपतिचन्द्र गुप्त

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास

इकाई – 2 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आधुनिकता, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का रचना-कौशल

इकाई की रूपरेखा

3.2.0. उद्देश्य कथन
3.2.1. प्रस्तावना
3.2.2. विषय-विस्तार
3.2.2.1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आधुनिकता
3.2.2.2. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का रचना-कौशल
3.2.3. पाठ-सार
3.2.4. बोध प्रश्न
3.2.5. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

3.2.0 उद्देश्य कथन

किसी भी रचना के प्रणयन के पीछे एक विशिष्ट प्रयोजन होता है जिससे कृति के कथ्य में एकनिष्ठता आती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक चरित्रमूलक उपन्यास है जिसके द्वारा लेखक ने हर्षकाल के प्रख्यात आख्यायिकाकार और कथाकार 'बाणभट्ट' के व्यक्तित्व को नये रूप में प्रस्तुत करना चाहा है। उन्होंने इतिहास की रक्षा करते हुए उपलब्ध स्रोतों के आधार पर एक मौलिक कृति का सृजन किया है। इतिहास को कल्पना के द्वारा मण्डित करके लेखक ने मानव-चरित्र के शाश्वत सत्य को प्रकटित करना चाहा है। उन्होंने इतिहास, संस्कृति और दर्शन के प्रकाश में कथानायक की एक ऐसी छवि निर्मित की है जो भारतीय परम्परा के अनुकूल लगती है। इस क्रम में उन्होंने प्राचीन वातावरण को आधुनिक सन्दर्भ में साकार किया है।

हर्षकालीन समाज के विविध सन्दर्भों को प्रस्तुत करना द्विवेदीजी का लक्ष्य रहा है किन्तु उन्होंने अपने समय की विविध चेतनाओं को भी अभिव्यक्ति दी है। वे इतिहास की प्राणधारा आधुनिक मानसिकता से जोड़ने में सफल रहे हैं। देश की अव्यवस्था और राष्ट्रीयता पर होनेवाले प्रहारों के प्रतिरोध के लिए उन्होंने आख्यान रचा है। अतीत और वर्तमान को सूत्रबद्ध करने में उनकी रचनाशीलता की शक्ति प्रकट होती है। ज्ञात सामग्री को दुहराना उनका उद्देश्य नहीं है बल्कि अतीत की प्रासंगिकता का निरूपण करना उद्देश्य है। परिस्थितियों की दुर्गति से उबरने के लिए वे जिस महावराह का मिथ प्रस्तुत करते हैं उनकी व्यंजना दूरगामी है।

3.2.1. प्रस्तावना

प्रायः ऐसा समझा जाता है कि इतिहासपरक रचनाएँ शुद्ध वस्तुनिष्ठ होती हैं किन्तु साहित्य में जब इतिहास को विषय-वस्तु के रूप में ग्रहण किया जाता है तो तथ्यों के कंकाल में मांस-मज्जा का प्रवेश हो जाता है और एक

जीवन्त प्रतिमा की रचना सम्भव होती है। जिसको 'मैटर ऑफ फैक्ट' या तथ्य-मात्र कहा जाता है वह साहित्य में सत्य के रूप में साकार होता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की संरचना इतिहास के यथातथ्य वातावरण में भाव-साथ के सन्निवेश के कारण मनोरम हो गई है। कल्पना का उपयोग करते हुए द्विवेदीजी ने अपनी रचना को केवल तथ्य-संकलन की शुष्कता से बचाया है। इसमें जो काल्पनिक पात्र आए हैं वे ऐतिहासिक आधार नहीं रखते हैं किन्तु उन्हें परिवेश से विच्छिन्न करके नहीं देखा जा सकता है। तुवरमिलिन्द की ऐतिहासिकता विवादास्पद है और हर्ष एवं बाण का अस्तित्व इतिहास-सम्मत है लेकिन अन्य काल्पनिक पात्र ऐतिहासिक वातावरण के प्रतिकूल नहीं हैं। लेखक ने इतिहास के बिन्दु से कथा का प्रारम्भ किया है किन्तु उसके वृत्त में कई काल्पनिक प्रसंग समाविष्ट हो गए हैं। ये सन्दर्भ इतिहास में आधुनिकता के प्रक्षेप को उद्धृत करते हैं। देश की अराजकता, विभाजित जनसमुदाय की मानसिकता और हिंसा आदि के वर्णन-क्रम में वर्तमानकालिक समस्याएँ प्रतिच्छायित हुई हैं। स्त्रियों की हीन दशा और देश की बहुविध चिन्ताएँ इस रचना में सहजतः अंकित हो गई हैं। कोई भी कृति अपने समय से कटी हुई नहीं होती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' अतीत के फलक पर वर्तमान का भी बोध कराती है।

यह उपन्यास जिन पात्रों को सामने लाता है, वे अधिकांशतः ऐतिहासिक विवरण से सम्पुष्ट नहीं होते हैं। बाण में एक उद्धारक की मनोवृत्ति मिलती है जिसे हम सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव कह सकते हैं। स्त्री की महिमा और मुक्ति के जो स्वर यहाँ सुनाई पड़ते हैं, वे वर्तमान को प्रतिध्वनित करते हैं। वर्तमान काल के स्वर चालीस के दशक वाले भारत को मुखरित करते हैं किन्तु ये रेशम पर खादी के पैबन्द की तरह नहीं हैं। अतीत में वर्तमान का ऐसा स्वर-संयोजन प्रायत्निक या आरोपित नहीं है। इससे मूलकथा के प्रवाह में कहीं व्याघात उपस्थित नहीं होता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' औपन्यासिक शिल्प को अभिनव आयाम प्रदान करती है। इसमें कथानायक के साथ-साथ कई पात्रों की मनोवृतियों तथा इतिहास और कल्पना की बुनावट के दर्शन होते हैं। यह एक चरित्रप्रधान उपन्यास है जो प्राचीनता के साथ-साथ आधुनिकता को मिलाकर चलता है। इसकी निपुणिका, भट्टिनी, सुचरिता आदि में स्त्री-जीवन के प्रणयमूलक कई रूप सामने आते हैं। नारी-जाग्रति और प्रेम को यहाँ हृदय-सता के सुन्दर सत्य की तरह निरूपित किया गया है। घटनाओं और चरित्रों की पारस्परिक संगति इस रचना को रसात्मक कलाकृति के रूप में स्थापित करती है। इसमें कथान्त जैसी कोई स्थिति नहीं है। जिस तरह बाण के ग्रन्थ अपने अधूरेपन में पूर्णता की प्रतीति कराते हैं उसी तरह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' कथात्मक परिणति से अलग जाकर अपने अधूरेपन के सौन्दर्य से पाठकों को अभिभूत करती है। यहाँ प्रेम का बीज तत्त्व किसी तरह के शारीरिक संयोग के रूप में प्रस्फुटित नहीं हुआ है किन्तु उसकी अन्तर्धारा पूरी कृति को अनुभूति के स्तर पर तरल बनाती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का यह रचनात्मक शिल्प प्रेम के औदात्य से जगमगा गया है। प्रभावान्विति की दृष्टि से यह प्रेमकथा के नये प्रदर्ष को सामने लाने का प्रयास है।

3.2.2. विषय-विस्तार

3.2.2.1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आधुनिकता

बाणभट्ट की आत्मकथा हर्षकाल की पृष्ठभूमि पर रचित एक प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें इतिहाससम्मत देशकाल का प्रभावी चित्रण हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बाणभट्ट के 'हर्षचरितम्' और महाराज हर्ष के द्वारा रचित नाट्य-साहित्य विशेषतः 'रत्नावली' और 'प्रियदर्षिका' को सामने रखते हुए अतीत का जीवन्त वर्णन किया है। इस क्रम में उन्होंने तत्कालीन लोक-जीवन में प्रचलित विधियों और साधना-पद्धतियों की भी अनभिज्ञता प्रदर्शित की है। इस तरह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' सातवीं शताब्दी के उत्तर भारत के एक विश्वसनीय इतिवृत्त और अभिलेख की श्रेणी में परिगणित हो सकती है। प्राचीनता का ऐसा चित्रण लेखक के इतिहास-ज्ञान का परिचायक है किन्तु इतिहास सदैव प्राचीन ही नहीं होता, वह वर्तमान का विस्मरण नहीं करता है। ई.एच. कार ने ठीक ही कहा है कि इतिहास अतीत से वर्तमान का सतत संवाद है। समसामयिक दृष्टि से ही ऐतिहासिक घटनाओं का पर्यवेक्षण और निरीक्षण इतिहासकार का उद्देश्य होता है। इस दृष्टि से क्रांचे का यह कथन उचित है कि "इतिहास सदैव समसामयिक होता है।" 'बाणभट्ट की आत्मकथा' हर्षकालीन परिवेश को सफलता के साथ आकलित करती है किन्तु यहाँ रचनाकार ने कई समसामयिक प्रश्नों को भी पिरोया है। स्त्रियों और राष्ट्रीय जीवन के कई सुलगते हुए सवाल लेखक की संवेदना को अनुप्राणित करते हैं।

तत्कालीन स्थिति के अनुरूप आत्मकथा की वैचारिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। प्रीति की तन्मयता उपन्यास की वर्णनात्मकता की अपेक्षा अधिक है। यहाँ आदर्श की स्थापना पर बहुत जोर है। तात्कालिक युग में सामयिक समस्याओं को रखकर युगीन अपेक्षा की पूर्ति की गई है। उपन्यास वर्तमान के ज्वलन्त प्रश्नों को नहीं भूलता है। बाल-विवाह, विधवा-विवाह, पुनर्विवाह, पारिवारिक व्यवस्था, धर्म, साधना आदि से सम्बद्ध प्रश्नों पर द्विवेदीजी के मंतव्य यथास्थान प्राप्त होते हैं। उनकी मानवतावादी विचारधारा रचना की पृष्ठभूमि में है। सामाजिक मंगल उनका ध्येय है। प्रेम के उदात्त रूप को आचार्य द्विवेदीजी ने बाण, निपुणिका तथा भट्टिनी के माध्यम से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। अभुक्त प्रेम की लालसा की ओर तीनों बढ़े हैं। भट्टिनी के साथ बाण का साहचर्य उसे उच्छृंखल नहीं बना पाता है। बाण निपुणिका के देहार्पण को स्वीकार नहीं करता है। यदि उसमें वासना के तार झंकृत भी हुए हैं तो वे मुखरित नहीं है। उसका प्रेम उदात्त है यद्यपि उसमें विरक्ति नहीं है। सामयिक सन्दर्भों में द्विवेदीजी ने नैतिकता को महत्त्व दिया है।

नारी-शक्ति को उपन्यास में सँवारा तथा सजाया गया है। प्रेमिका के रूप में निपुणिका तथा भट्टिनी, पत्नी के रूप में सुचरिता, संन्यासिनी के रूप में महामाया और गणिका के रूप में मदनश्री को स्वस्थ एवं उच्च धरातल प्रदान किया गया है। उपन्यास में नारी-शक्ति की प्रतिष्ठा का बराबर प्रयास किया गया है। द्विवेदीजी ने प्रेमिका के स्वरूप को विशुद्ध और उदात्त रूप दिया है क्योंकि नारी समाज की शक्ति है। यह नारी की अस्मिता की जाग्रति का युगीन स्वर है।

जनतन्त्र के सम्बन्ध में भी उपन्यासकार अपने विचार व्यक्त करता है। प्रजा-तन्त्र में देश की रक्षा का भार सभी के ऊपर होता है, यह विचार महामाया व्यक्त करती है – "राजाओं का भरोसा करना प्रमाद है, राजपुत्रों की सेना का मुँह ताकना कायरता है। आत्मरक्षा का भार किसी एक जाति पर छोड़ना मूर्खता है। ... समस्त आर्य्यावर्त एक है – एक समाज, एक प्राण, एक धर्म। देश-रक्षा सबका समान धर्म है।" यह राष्ट्रीय चेतना तत्कालीन स्वाधीनता-संग्राम से उद्‌भूत हुई है।

उपन्यासकार ने बतलाया है कि नारी की प्रतिष्ठा का अर्थ उसकी सामाजिक स्वीकृति है। उसे गौरवान्वित करना समाज का कर्त्तव्य है। लेखक ने म्लेच्छों के प्रति घृणा को आततायियों के विरोध का रूप दिया है। स्त्रियों की मर्यादा से खेलनेवाले दस्यु दंगाइयों की ओर इंगित करते हैं। यह सही है कि देश व स्वतन्त्रता का रक्षण आवश्यक है परन्तु युद्ध की विभीषिका में मानव-सृष्टि को नहीं जलना पड़े, यह विचारणीय है। मनुष्य किसी से भी भयभीत न हो – न वेद से, न लोक से, न गुरु से और न धर्म से। यह वास्तविक स्वातन्त्र्य-दृष्टि है। वस्तुतः पाप भी मनुष्य का अपना सत्य है। उसे स्वीकार करके ही वह सार्थक बन सकता है। पाप को दबाने से मनुष्य नष्ट हो जाता है। समस्त गुणों और अवगुणों को ईश्वर को अर्पित करना ही मुक्ति का मार्ग है। ऐसा न करने पर यह जीवन भार स्वरूप रहता है। जीवन पर मनुष्य की अटूट निष्ठा होनी चाहिए। फल की चिन्ता अनावश्यक है। नारी के सहयोग के बिना मानव जीवन सुख-शान्ति से व्यतीत नहीं हो सकता। मनुष्य को अपनी आन्तरिक कुण्ठा को त्याग कर ईश्वर पर अटूट विश्वास करके आगे बढ़ना चाहिए। मानसिक दासता मानव-जीवन के विकास में सबसे अधिक बाधक है। जीवन गति का पर्याय है। भय जीवन को कुण्ठित कर देता है। भय से अमंगल की उत्पत्ति होती है। कर्म पर निष्ठा रखने वाले को किसका भय है ! कर्म ही जीवन की गति है और स्त्री-पुरुष इस गति के दो चक्र हैं। इन दोनों से ही जीवन-संघर्ष को चरितार्थता प्राप्त होती है। यों तो 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का प्रकाशन-वर्ष 1946 है लेकिन उसका लेखन-काल कुछ पहले का रहा है। राजनैतिक दृष्टि से वह कालखण्ड उथल-पुथल से भरा था। सन् 1942 की अगस्त क्रान्ति का दमन हो चुका था और द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था। भारत की स्वतन्त्रता सम्भावित थी और दो राष्ट्रों का सिद्धान्त भारत के विभाजन की भूमिका बना रहा था। ऐसे ही समय सातवीं शताब्दी के हर्षवर्धन के युग को केन्द्र में रखकर द्विवेदीजी ने इस ऐतिहासिक उपन्यास का प्रणयन किया था। सामान्यतः ऐसा लगता है कि संस्कृत के महान् लेखक और उनके समय का ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रस्तुत करना ही लेखक का अभीष्ट है, किन्तु कोई भी कृति समसामयिक परिस्थितियों से विच्छिन्न नहीं होती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' इतिहास और संस्कृति के गह्वर से निकलकर अन्ततः अपने समय के अभिलेख के तौर पर सामने आती है। डॉ॰ गोपाल राय ने इस उपन्यास को प्रेम संवेदना पर केन्द्रित माना है। इसमें उन्होंने कई प्रेमियों के युग्मों को रेखांकित किया है। चन्द्रदीधिति यानी भट्टिनी बाण से प्रेम करती है और बाण निपुणिका की ओर आकृष्ट है। सुचरिता एवं विरतिवज्र का प्रेम-प्रसंग इस उपन्यास को पुराने 'रोमांस' का रूप देता है किन्तु प्रेम की इस केन्द्रीयता की तह में वह स्त्री-विमर्श प्रच्छन्न है जो आज हिन्दी-साहित्य में व्यक्त होकर मुख्य धारा का नियमन कर रहा है। जब निउनिया बाणभट्ट से यह प्रश्न पूछती है कि "क्या स्त्री होना ही मेरे सारे अनर्थों की जड़ नहीं है ?" तब यह उपन्यास तत्कालीन भारतीय स्त्री के नियति की ओर इंगित करता है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' परतन्त्र भारत में लिखित उपन्यास है। संसार विश्वयुद्ध में जल रहा था और देश स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल था। भारत के सीमान्त क्षेत्रों में जिन्हें द्विवेदीजी ने 'प्रत्यन्त देश' कहा है, वहाँ संकट के बादल घिरे हुए हैं। देश में साम्प्रदायिक सौहार्द नष्ट हो गया है और दंगे सुलग रहे हैं। देशकी एकता दाँव पर लगी हुई है। सामाजिक और राजनैतिक सौमनस्य का लोप हो गया है। उपन्यास में वर्णित यह हर्षकालीन राष्ट्रीय संकट नहीं है। द्विवेदीजी की महामाया जब जनता का आह्वान करती है तब उसमें सम्पूर्ण राष्ट्र के सम्बोधन का स्वर मुखरित होने लगता है। "ब्राह्मण से चाण्डाल तक एक हो जाओ" महामाया की यह पुकार राष्ट्रीय ऐक्य की वांछनीयता की ओर ध्यानाकर्षण करती है। मतभेदों से ग्रस्त पराधीन भारत टूटने जा रहा है।यह समसामयिक सत्य यहाँ आकार ले रहा है। हूणों का आक्रमण एक आवरण है। वास्तविकता यह है कि पूरा भारत अस्थिर हो चुका है। उसकी केन्द्रीय शक्ति छिन्न-भिन्न होने जा रही है। द्विवेदीजी इस परिस्थिति को इतिहास की ओट से बाहर आकर दर्शित करते हैं। जिस तरह 'प्रसाद' ने 'चन्द्रगुप्त मौर्य' में खण्डित भारत को एक करने की आकांक्षा व्यक्त की थी उसी तरह द्विवेदीजी जातीय और धार्मिक भेद-भाव को दूर कर राष्ट्र को एक देखना चाहते हैं। भट्टिनी कुलीना है किन्तु उसका अपहरण हुआ था। बाण ने महावराह की तरह उस धरित्रीधर्मा स्त्री का उद्धार किया था। द्विवेदीजी के समय का भारत स्त्री की मान-मर्यादा को भूल चुका था। दंगों में अनेक स्त्रियाँ अपहरण की भेंट चढ़ रही थीं। भट्टिनी एक काल्पनिक सृष्टि है जो हर्षवर्धन के काल से अधिक दो टुकड़ों में बँटने वाले तत्कालीन भारत की नारी को प्रतीकांकित करती है। निउनिया निम्न वर्ग की है और स्त्री भी है तथा उसका शील सुरक्षित नहीं है। बाणभट्ट स्त्री के शरीर को देव-मन्दिर की तरह स्वीकार करता है किन्तु वास्तविकता यह है कि इस देव मन्दिर को उस समय बारम्बार विध्वस्त किया जा रहा था। इतिहास और संस्कृति के इन्द्रजाल को तोड़कर इस उपन्यास की स्त्रियाँ धूलि-धूसरित समसामयिक यथार्थ की प्रतीति कराती हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ऐसी ही स्त्रियों के समुद्धार के लिए महावराह के मिथक का प्रयोग किया है। यह विश्वास गाँधीयुगीन चेतना से जुड़ा हुआ है किन्तु तत्कालीन भारत की आस्था विखण्डित हो गई है और चतुर्दिक् अराजकता छा गई है। जो भट्टिनी निरन्तर महावराह भी मूर्ति को अपने साथ रखती है वह जल-यात्रा के क्रम में उसे फेंक देती है। आस्था के प्रतीक महावराह के विग्रह को जल में विसर्जित करने का परामर्श बाणभट्ट देता है। यह एक मोहभंग की स्थिति है। तत्कालीन भारतीय मानस अपना विश्वास खो चुका है। वह अनास्था से आक्रान्त हो गया है। यह अकारण नहीं है कि युगपुरुष गाँधी भारत के अन्तिम ब्रिटिश वायसराय लुइस फ्रांसिस एल्बर्ट विक्टर निकोलस माउण्टबेटन (लार्ड माउण्टबेटन) से कहते हैं "I have lost my time." गाँधी के सपने क्षत-विक्षत हो चुके हैं। उनकी अहिंसा निरर्थक हो चुकी है। चारों ओर मार-काट मची हुई है। देश उन्मादग्रस्त है। ऐसी स्थिति में 'जलौधमग्ना धरा' का उद्धार किसी भी वराह अवतार के द्वारा सम्भव नहीं है। आस्था की यह जलसमाधि डूबते हुए देश की व्यथा को प्रतीकांकित करती है। उपर्युक्त सन्दर्भ इस ऐतिहासिक उपन्यास को समसामयिक बना देते हैं। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों की तरह ही यह कृति वर्णित देश-काल के भीतर वर्तमान के प्रक्षेपण को प्रस्तुत करती है।

कोई भी रचना शून्य में उत्पन्न नहीं होती है। जिस तरह वाल्मीकि से लेकर आज तक 'रामकथा' को अनेक दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया है। उसी तरह किसी भी ऐतिहासिक या पौराणिक पात्र पर अवलम्बित रचना समसामयिक परिस्थितियों की देन होती है। परम्परागत आख्यान को बिना विकृत किए जब नये स्वरों से

जोड़ा जाता है तब एक सफल रचना सामने आती है । प्रत्यंत देश की अराजकता, प्रताड़ित जनता की पीड़ाओं और राष्ट्रीयता की दरारों के उल्लेखों में हजारीप्रसाद द्विवेदी का अपना समय बोलता है । भारत का विभाजन सन्निकट है, द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी घटित हो चुकी है और देश में दंगे हो रहे हैं । युद्ध और अशान्ति की छाया में रचित 'बाणभट्ट की आत्मकथा' वर्तमानकालिक दुखद स्थितियों को अभिव्यंजित करती है । प्राचीन पटभूमि पर वर्तमान का यह चित्रण आधुनिकता का बोध कराता है । जिस तरह 'रामचरितमानस' का कलिकाल वर्णन मुगलकाल की विसंगतियों को व्यक्त करता है उसी तरह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' अपने समय के क्षोभ और हाहाकार को वाणी देती है ।

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत की स्थितियाँ विपन्न हो गई थी । चतुर्दिक मार-काट मची हुई थी । हिंसा का बोलबाला था । जनता विस्थापन के भय से त्रस्त थी । जिस तरह 'कुरुक्षेत्र' महाभारत की पृष्ठभूमि पर रचित होकर भी अपने समय के सवालों से सम्बद्ध है और धर्मवीर भारती का 'अन्धा युग' व्यास की भूमि पर एक आधुनिक दृष्टिसम्पन्न कथा को प्रस्तुत करता है उसी तरह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' भी अतीत के ब्याज से समसामयिक जीवन का अवलोकन करती है । द्विवेदीजी ने अतीत से वर्तमान तक माननीय नियति के संकटों की परख की है । उन्होंने धरती के उद्धार के मिथक के रूप में जिस महावराह की चर्चा की है । वह उनकी आस्था का द्योतक है लेकिन मनुष्य को बचाने के लिए कभी-कभी आस्था का भी विसर्जन करना पड़ता है । डूबती हुई नाव की रक्षा करने के लिए बाण भट्टिनी से महावराह की मूर्ति को जलधारा में फेंक देने का परामर्श देता है । यह प्रसंग मनुष्य के जीवन को केन्द्रियता देता है, न कि किसी परम्परागत विश्वास को । वेद और लोक दोनों से ऊपर मनुष्य की अस्मिता है । द्विवेदीजी इस तथ्य की पुष्टि के लिए प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं । उनकी दृष्टि में अतीत का शव जब वर्तमान के सम्मुख आता है तब वह शिव से अधिक कल्याणकारी हो जाता है । 'साहित्य की शव साधना और शिव साधना' शीर्षक नामक निबन्ध में द्विवेदीजी ने मुर्दे की तरह पट सोये हुए अतीत को आग्रहपूर्वक वर्तमान से वार्तालाप कराने के लिए जिस मन्त्र जाप का उल्लेख किया है वह भूत को वर्तमान के लिए उपयोगी बनाने वाला है । जब मुर्दे की पीठ पर बैठा हुआ साधक शव को जगाकर प्रसन्न कर देता है तब मुर्दा जो दे सकता है वह महादेव भी नहीं दे सकते । 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का अतीत चित्रण जब वर्तमान को आलोकित करने लगता है तब साहित्य का मंगलमय स्वरूप सामने आता है । इसकी आधुनिकता कृत्रिम और आरोपित नहीं स्वतःस्फूर्त है । द्विवेदीजी ने अतीत को विकलित किए वर्तमान को ध्वन्यात्मक ढंग से सामने लाने में सफलता प्राप्त की है ।

3.2.2.2. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का रचना-कौशल

काव्य-रूप की दृष्टि से 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ एक उपन्यास है । यद्यपि उपन्यासकार ने इसके औपन्यासिक रूप को ढँकने के लिए और इसे आत्मकथात्मक रूप देने के लिए दीदी की कहानी तथा अपने फुटनोटों की कहानी गढ़ी है तथापि ये प्रयत्न इसके बन्ध और औपन्यासिक रूप को, आवृत करने में असफल रहे हैं । 'बाणभट्ट की आत्मकथा' विशुद्ध रूप से एक उपन्यास है और इसका बाण की वास्तविक आत्मकथा से कोई सम्बन्ध नहीं है । 'कथामुख' और 'उपसंहार' की योजना कादम्बरी की शैली के आधार पर है ।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' का शिल्प-विधान अन्य उपन्यासों से अलग है । सम्पूर्ण उपन्यास 20 उच्छवासों में विभक्त है तथा आरम्भ में लिखा गया है – "अथ बाणभट्ट की 'आत्मकथा' लिख्यते" । संस्कृत साहित्य में आत्मकथा जैसी कोई विधा नहीं है अतः उपसंहार में 'कैथराइन दीदी' को क्रोध करते दिखाया गया है कि द्विवेदीजी ने इसे 'ऑटोबायोग्राफी' क्यों कहा है ।

आत्मकथा में आत्मघटित अतीत की स्मृतियाँ होती हैं । यहाँ बाणभट्ट अपने अतीत जीवन को स्मृत करता है अतः पूर्वदीप्ति पद्धति (फ्लैश बैक) का उपयोग इस उपन्यास में किया गया है । बाणभट्ट अपने कुल का परिचय देता है और यह भी बताता है कि उसे 'बंड' कहा जाने लगा था । उपन्यास में अनेक स्थलों पर वर्णनात्मक एवं नाटकीय शैली का भी प्रयोग किया गया है । कथानक में ऐसी घटनाओं का समावेश किया गया है जो पाठक की जिज्ञासा बढ़ाने वाली हैं तथा वे उपन्यास की रोचकता में वृद्धि करती हैं ।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में किस्सागोई का तत्त्व विद्यमान है । घटनाएँ इस प्रकार से नियोजित की गई हैं जिससे पाठकों में कौतूहल एवं जिज्ञासा का भाव निन्तर बना रहे। उदाहरण के लिए, प्रथम उच्छवास के समापन पर पाठकों के कौतूहल को बनाए रखने के लिए यह कहा गया है – "इसके बाद मुझे ऐसी घटना लिखनी है जिसे लिखते समय मुझे आज भी भय और आशंका से काँप उठना होता है ।"

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में अलंकृत वर्णनात्मक शैली की प्रचुरता है । आत्मविश्लेषण एवं मनोविश्लेषण के द्वारा पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन किया गया है । बाणभट्ट स्वयं वैचारिक द्वन्द्व से अनेक बार गुजरता है और अन्त में अपना रास्ता खोज लेता है । ऐसा प्रतीत होता है कि द्विवेदीजी ने इस उपन्यास के भाषा-शिल्प में वही प्रवृत्ति ग्रहण की है जो स्वयं बाणभट्ट ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'कादम्बरी' में अपनायी है । लम्बी वाक्य-रचना, लम्बे पदबन्ध, अलंकृत भाषा, संस्कृतनिष्ठ क्लिष्ट शब्दावली बाणभट्ट की शैलीगत विशेषताएँ हैं और जिनके आवागमन से यह उपन्यास को बाणभट्ट के आत्मवृत्तान्त की प्रतीति करता है । उपन्यास में सम्प्राप्त दार्शनिक विवेचनों ने भी भाषा को कुछ क्लिष्ट बना दिया है । यथा – "इस ब्रह्माण्ड का प्रत्येक अणु देवता है, त्रिपुर सुन्दरी ने जिस रूप में तुझे सबसे अधिक प्रभावित किया है, उसकी पूजा कर ।"

द्विवेदीजी ने मनोविश्लेषण एवं आत्मविश्लेषण की पद्धति द्वारा पात्रों का चरित्रांकन किया है । बाणभट्ट वैचारिक द्वन्द्व से बार-बार गुजरता है और तब कहीं जाकर अपना रास्ता खोज पाता है । इस उपन्यास में जो 'कथामुख' दिया गया है उसमें आस्ट्रिया निवासिनी कैथराइन दीदी का उल्लेख है । उन्हें 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के कुछ अंश मिले जिनका हिन्दी अनुवाद करके उन्होंने व्योमकेश शास्त्री को दे दिया । व्योमकेश शास्त्री स्वयं हजारीप्रसाद ही हैं । उन्होंने जब बाणभट्ट की कृतियों में दिए गए विवरणों से मिलान करते हुए इसकी परीक्षा की तो उन्हें इसमें सत्य प्रतीत हुआ । बाणभट्ट की अधिकांश रचनाएँ अपूर्ण हैं, इसीलिए इस उपन्यास को भी अपूर्ण छोड़ा गया है । 'उपसंहार' में कैथराइन दीदी का एक पत्र है । इस सबके द्वारा यह विश्वास दिलाने की चेष्टा की गई है कि वह वास्तव में बाणभट्ट की आपबीती है और पाठक एक सत्यकथा पढ़ रहे हैं । शैली-शिल्प की दृष्टि से भी इसे हजारीप्रसाद द्विवेदी का अभिनव प्रयोग माना जा सकता है ।

'बाणभट्ट' ने 'हर्षचरितम्' को आख्यायिका कहा है। आचार्य दण्डी के अनुसार आख्यायिका की कथावस्तु प्रख्यात और इतिहास सम्मत होती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का चरित नायक इतिहास प्रसिद्ध है किन्तु उसका सांगोपांग जीवन विस्तार से कहीं वर्णित नहींहै। द्विवेदीजी ने इस उपन्यास में कल्पना की तीसरी आँख के सहारे बाण की चरित को नये ढंग से देखा है। इस क्रम में वे छठी-सातवीं शताब्दी की परिवेश का अतिक्रमण नहीं करते हैं। बाण के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए वे उसे तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना से जोड़ते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में जब वे काल्पनिक प्रसंगों और चरित्रों का अवतरण करते हैं तब वे दण्डी द्वारा कथित कथा की विधा के निकट आते हैं। 'बाणभट्ट की कादम्बरी' कथा है जिसमें काल्पनिक प्रसंगों और पात्रों की प्रस्तुति हुई है। निपुणिका, भट्टिनी, सुचरिता, अघोर भैरव आदि के वृत्तान्त काल्पनिक कथाओं की प्रतीति कराते हैं, किन्तु उन्हें हम इतिहास-विरुद्ध नहीं कह सकते हैं। एक सांस्कृतिक आवरण में ये काल्पनिक तत्त्व की अपनी विश्वसनीयता सिद्ध करते हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने जिसे 'वैशाली की नगरवधू' के सन्दर्भ में 'इतिहास-रस' कहा है, वह यहाँ व्यंजित है। इतिहास को रसात्मक कलेवर देना कथा-लेखन की एक सुविचारित पद्धति है। बांग्ला के उपन्यासकार राखालदास वंद्योपाध्याय ने 'करुणा और शशांक' में इसी शैली का विनियोग किया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' इतिहास और कल्पना के इस संश्लेष को भली-भाँति प्रकट करती है। काल्पनिक कथाओं को बाणभट्ट के चरित्र के साथ जोड़ने में प्रकारान्तर से सामयिकता की पगध्वनि भी सुनाई पड़ती है जो कहीं से कथा-रस को बाधित नहीं करती है। 'प्रत्यंत देश' की उथल-पुथल, जनता की प्रताड़ना और राष्ट्रीयता की क्षति एवं एकता के संकेत आरोपित नहीं जान पड़ते हैं। ये कथाकार की सृजनशीलता से नाभिनाल सम्बद्ध हैं।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' का स्थापत्य एक विविध चरित्रों और वृत्तान्तों के सम्ग्रन्थन को मूर्त करता है। पुराने मन्दिरों, चैत्यों और गुहाओं में सम्प्राप्त भित्तिचित्रों की शृंखला से इस कथा-शैली का सादृश्य स्थापित किया जा सकता है। अलग-अलग चरित्रों और उनके जीवन प्रसंगों का समायोजन इस उपन्यास के कथा-फलक को प्रशस्त बनाना है। यहाँ हम बिखराव नहीं, आन्तरिक संगति का अनुभव करते हैं। ये सारे वृत्तान्त हर्षकालीन समाज के सांस्कृतिक स्तरों अवगत कराते हैं। शक्ति-साधन, अघोरतन्त्र, त्रिपुरसुन्दरी आदि के उल्लेख कहीं से अनैतिहासिक नहीं है। इनमें युगीन सच्चाइयाँ सम्पुटित हैं। बाण के युग में ऐसी स्थितियाँ विद्यमान थीं। बाण, भट्टिनी और निपुणिका की आधिकारिक कथा को ये प्रासंगिक कथाएँ सम्पुष्ट करती हैं। पूरे युग के व्यापक चित्रण की दृष्टि से ये सन्दर्भ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हें मूलकथा के 'विधातक' नहीं 'उपकारक' तत्त्व के रूप में देखा जा सकता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास का रचना-शिल्प विशृंखलित नहीं विशिष्ट उद्देश्य से परिचालित है। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए द्विवेदीजी ने आत्मकथा के शिल्प का सहारा लिया है। बाण की रचना-शैली की प्रतिकृति को आदर्श बनाकर अधूरेपन की पूर्णता का बोधक बना दिया है। बाण का चरित्र उपन्यास का नाभि-केन्द्र है। यहाँ से विविध कथा तरंगें उठती हैं और हमारे मानसिक तट को भिगोती हैं। वस्तुविन्यास का परम्परागत ढाँचा यहाँ अनुपलब्ध है। जब द्विवेदीजी बाण की शैली में उच्छवास शब्द को ग्रहण करते हैं तब साँसों के उतार-चढ़ाव की तरह कथा-विन्यास का नियमित क्रम संसूचित होता है। उपन्यास की सांस्कृतिक भाषा इस शिल्प को शक्ति देती है।

3.2.3. पाठ-सार

'बाणभट्ट की आत्मकथा' का शीर्षक दो बातों के लिए उल्लेखनीय है। बाणभट्ट शब्द से यह उपन्यास हर्षकाल के एक प्रसिद्ध साहित्यकार की ओर संकेत करता है तथा आत्मकथा शब्द से कथा-विन्यास की विशिष्ट शैली का परिज्ञान होता है। बाण एक ऐतिहासिक पात्र है जिसकी आत्मकथा के रूप में द्विवेदीजी ने इस उपन्यास की रचना की है। प्राचीन इतिहास संस्कृति और परिवेश सम्भवतः इस उपन्यास को आधार प्रदान करते हैं किन्तु यहाँ इतिहास के शुष्क विवरण का समाकलन नहीं है। बाण के मुख से उच्चरित कथा इतिहास को एक नई दृष्टि से उपस्थापित करती है। प्राचीनता के परिधान में आधुनिक काल की मनोदशा को प्रकट करना इस उपन्यास का आन्तरिक लक्षण है। स्त्रियों और पुरुषों के अनेक चरित्र आलोच्य युग के साथ-साथ लेखक के वर्तमान को भी ध्वनित करते हैं। बाण का इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व एक खूँटी की तरह है जिस पर कई तरह की कथाएँ लटकी हुई हैं। परस्पर भिन्न वस्तुओं का यह वैविध्य बाण से सन्दर्भित होने के कारण एक विशेष रूप की सृष्टि करता है। यह रूप-सृजन उपन्यास के बंध को नई पहचान देता है। यहाँ हम वर्णनात्मक और घटनात्मक उपन्यास लेखन की प्रविधि से अलग जाकर एक नए रचनातन्त्र को आकार लेते देखते हैं। आत्मकथा के रूप में इतिहास और कल्पना का यह मिश्रण प्राचीनता और आधुनिकता के ताने-बाने से निर्मित है। जिस तरह 'अज्ञेय' की 'शेखर : एक जीवनी' जीवनी न होकर मूलतः उपन्यास है उसी तरह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आत्मकथा न होकर उपन्यास है। यह द्विवेदीजी का रचना-कौशल ही है कि उन्होंने एक प्रख्यात ऐतिहासिक चरित्र के इतिवृत्त को आत्मकथा की शैली में प्रस्तुत कर कथावस्तु को विश्वसनीयता प्रदान की है। जैसे बाण की कोई भी कृति सम्पूर्ण नहीं है उसी तरह यह उपन्यास भी कथागत पूर्णता पर ध्यान नहीं देता है। बाण में 'वर्णना का वैभव' मिलता है जो द्विवेदीजी के वस्तु-वर्णनों में भी दृष्टिगत होता है। वस्तु-संघटन की दृष्टि से इसमें आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं की समन्विति मिलती है किन्तु 'हर्षचरितम्' एवं 'कादम्बरी' की भाँति ही यहाँ कथागत चरम परिणति की अनुपस्थिति है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में जो भाषिक अलंकरण और सौष्ठव दृष्टिगत होता है वह लेखक की शैली को चरित्र नायक के लेखक के समीप ले जाता है। यह उपन्यास प्राचीन देश-काल की प्रामाणिकता और आधुनिक युग के स्वरों को एक साथ उदाहृत करता है। इतिहास और कल्पना, युग-सत्य एवं व्यक्ति-सत्य तथा प्रयोगशील औपन्यासिक काव्यरूप को एक साथ उपस्थापित करनेवाली यह कृति उत्कृष्ट रचनाधर्मिता का साक्षात्कार कराती है।

3.2.4 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. कौन-सा पात्र 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नहीं है ?
   (क) निपुणिका

(ख) भट्टिनी

(ग) शशि

(घ) बाणभट्ट

सही उत्तर – (ग)

2. इनमें से कौन-सा पात्र 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का नारी पात्र नहीं है ?

(क) मल्लिका

(ख) भट्टिनी

(ग) महामाया

(घ) निपुणिका

सही उत्तर – (क)

3. डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी को किस वर्ष साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था ?

(क) 1973 ई.

(ख) 1975 ई.

(ग) 1980 ई.

(घ) इनमें से कोई नहीं

सही उत्तर – (क)

4. "मैंने तुम्हारा नाम कलंकित किया था पर तुमने मेरा नाम रख लिया।" यह कथन सम्बन्धित है –

(क) भट्टिनी-बाणभट्ट से

(ख) निपुणिका-बाणभट्ट से

(ग) निपुणिका-कृष्णवर्द्धन से

(घ) इसमें से कोई नहीं

सही उत्तर – (ख)

5. "पुजारी जैसे मूर्ख रसिकों से डरती तो निउनिया आज से छह वर्ष पहले ही मर गई होती।" यह कथन सम्बन्धित है –

(क) निपुणिका-बाणभट्ट से

(ख) कृष्णवर्द्धन-भट्टिनी से

(ग) निउनिया-तुवरमिलिन्द से

(घ) इनमें से कोई नहीं

सही उत्तर – (क)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नारी चेतना के स्वर का विवेचन कीजिए।

2. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आत्मकथात्मकता पर संक्षेप में विचार कीजिए।
3. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की संवाद योजना पर विचार कीजिए।
4. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के वस्तु-विन्यास पर एक निबन्ध लिखिए।
5. उपन्यासकार के रूप में हजारीप्रसाद द्विवेदी का मूल्यांकन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आधुनिकता पर विचार कीजिए।
2. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के रचना-कौशल का विश्लेषण कीजिए।
3. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के संरचना शिल्प पर विचार कीजिए।
4. सामाजिक राष्ट्रीय सन्दर्भ में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का मूल्यांकन कीजिए।
5. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।

3.2.5. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, डॉ॰ गोपाल राय
2. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, डॉ॰ रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ॰ त्रिभुवन सिंह
4. आज का हिन्दी उपन्यास, सं. : इन्द्रनाथ मदान
5. 'आलोचना' पत्रिका, उपन्यास विशेषांक

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास

इकाई – 3 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नारी पात्र और आचार्य द्विवेदी की उदात्त मूल्य-चेतना, निपुणिका की चरित-सृष्टि : रचनाकार की नारी मुक्ति की आकांक्षा

इकाई की रूपरेखाः

3.3.0. उद्देश्य कथन
3.3.1. प्रस्तावना
3.3.2. विषय-विस्तार
  3.3.2.1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नारी पात्र
    3.3.2.1.1. भट्टिनी
    3.3.2.1.2. निपुणिका
    3.3.2.1.3. सुचरिता
    3.3.2.1.4. महामाया
  3.3.2.2. हजारीप्रसाद द्विवेदी की उदात्त मूल्य-चेतना
  3.3.2.3. हजारीप्रसाद द्विवेदी की नारी-मुक्ति की आकांक्षा
3.3.3. पाठ-सार
3.3.4. बोध प्रश्न
3.3.5. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

3.3.0. उद्देश्य -कथन

कोई भी रचना प्रयोजनहीन नहीं होती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' स्वभावतः एक विशेष उद्देश्य से प्रेरित है। यह उपन्यास मनुष्य-केन्द्रित है। मानवीय स्वतन्त्रता इसकी परिचायिका शक्ति है। निपुणिका इस सत्य को स्वर देती है। महामाया यदि देश में जाग्रति लाना चाहती है तो निपुणिका स्त्री की अदम्य जिजिविषा को जगाना चाहती है। निर्भीकता स्वतन्त्रता की शुरुआत है, यह उपन्यास इस तथ्य को अभिव्यंजित करता है। यह कृति जिस मूल्य-चेतना से संचालित है वह तत्त्वतः व्यापक स्वतन्त्रता की द्योतिका है। स्त्री यहाँ स्वतन्त्रता को प्रतीकांकित करती है। वह अपने त्याग और धैर्य के बल पर नया वातावरण रचती है। उसके शील की शुद्धता शिवत्व को साकार करती है। द्विवेदीजी ने मनुष्य के चरित्र में निहित उदात्त गुणों को रेखांकित करने के लिए इस उपन्यास का सृजन किया है।

3.3.1. प्रस्तावना

पात्र-रचना उपन्यास का महत्त्वपूर्ण आयाम है। रचनाकार की जीवन-दृष्टि को अभिव्यक्त और सृजित करने में वह अहम भूमिका निभाती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के सभी प्रमुख पात्र (बाणभट्ट के अतिरिक्त) कल्पना प्रसूत हैं। इन पात्रों के निर्माण में उपन्यासकार की अनुभूति, संवेदना, विचारधारा तथा असाधारण

सर्जनात्मक प्रतिभा साकार हुई है। ये सभी पात्र जीवन्त हैं और उपन्यासकार की आत्मीयता के भागीदार। अपने व्यक्तित्व की पहचान के साथ ही वे पूरे परिवेश को मूर्त करते हैं। युग-विशेष के ऐतिहासिक यथार्थ की रक्षा करते हुए समकालीन अपेक्षाओं और यथार्थ का इनके माध्यम से खुलकर चित्रण हुआ है। नारी-मुक्ति की अनिवार्यता, नारी-पुरुष की समानता, मनुष्यता का सन्धान और प्रेम की सामाजिक अर्थवत्ता, जातीय विभेद, छुआ-छूत, ऊँच-नीच पर प्रहार, कर्मकाण्ड जनित मिथ्या रूढ़ियाँ, असहमति, राष्ट्रीय अखण्डता और एकता में बाधक प्रवृत्तियों का विरोध आदि यथार्थ स्थितियों एवं परिवर्तन की आकांक्षाओं को इन पात्रों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

परम्परागत रूढ़ियों और मिथ्या विश्वासों की जड़ता से मुक्त ये औपन्यासिक पात्र जीवन-दृष्टि की प्रखरता और मानवतावादी चेतना से सम्पन्न हैं। विशिष्ट चेतन दृष्टि से लेखक ने अपने नारी पात्रों को गढ़ा है। सामाजिक अन्तर्विरोधों के बीच वे उसे अधिक सशक्त लोककल्याणकारी और अधिक रचनाशील बना सके हैं। नारी उनके लिए मानवीय आदर्श की प्रतिमूर्ति है। उनकी अन्तःप्रकृति संवेदना, प्रेम, उत्सर्ग और समर्पण से परिपूर्ण है। वे पुरुष से एकात्म होकर न केवल पूर्ण मानवीय रूप ग्रहण करती हैं अपितु उनको भी समाज-हित में प्रेरित करती हैं। आचार्य द्विवेदी ने अपने प्रमुख पुरुष पात्रों के द्वारा नारी की महत्ता, उसकी गरिमा और उदात्त भाव-प्रवणता को प्रकट किया है। वराहमिहिर कहते हैं – "स्त्रियाँ ही रत्नों को भूषित करती हैं, रत्न स्त्रियों को क्या भूषित करेंगे ?" बाणभट्ट स्त्री-देह को देव-मन्दिर के समान पवित्र मानता है। वह कहता हैं – "स्त्री के दुःख इतने गम्भीर होते हैं कि उसके शब्द उसका दशमांश भी नहीं बता सकते।" महामाया कहती है – "नारी-हीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, अपने आपको खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है।" बाणभट्ट सुचरिता को देखकर वराहमिहिर का स्मरण कर कहता है – "आज यदि वराहमिहिर यहाँ उपस्थित होते तो ... कहते – धर्म-कर्म, भक्ति-ज्ञान, शान्ति-सौमनस्य कुछ भी नारी का संस्पर्श पाए बिना मनोहर नहीं होते। नारी देह वह स्पर्शमणि है जो प्रत्येक ईंट-पत्थर को सोना बना देती है।" अवधूत अघोर भैरव महामाया से कहते हैं – "मैं सारे जीवन नारी की उपासना करता रहा हूँ। मेरी साधना अपूर्ण रह गई है। तुम विशुद्ध नारी बनकर मेरा उद्धार करो – विशुद्ध नारी त्रिपुर-भैरवी।" बाणभट्ट निपुणिका के बारे में सोचता है – "नारी से बढ़कर अनमोल रत्न और क्या हो सकता है ? पर उससे अधिक दुर्दशा किसकी हो रही है ?" विभिन्न पात्रों के द्वारा नारी के सम्बन्ध में व्यक्त विचार द्विवेदीजी के नारी-विषय के चिन्तन को स्पष्ट करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में एक भी ऐसा नारी पात्र नहीं है जो अपने चरित्र से स्त्री की गरिमा की अभिवृद्धि न करता हो।

3.3.2. विषय-विस्तार

3.3.2.1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नारी पात्र

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में विभिन्न पात्रों की संयोजना की गई है। हजारीप्रसाद द्विवेदी सातवीं शताब्दी को कागज में उतारने के लिए हर सम्भव प्रयत्नशील रहे हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रत्येक चरित्र अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक पात्र विभिन्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के पुरुष पात्रों में बाणभट्ट का नायकत्व सर्वस्वीकृत है परन्तु नायिकाओं के रूप में दो नारी पात्र प्रमुख दिखाई पड़ते हैं – 'निपुणिका'

और 'भट्टिनी'। बाणभट्ट का प्रेमपूर्ण सम्बन्ध दोनों से है। फलागम की स्थिति भट्टिनी को प्राप्त होती है परन्तु निपुणिका को जो संघर्ष करना पड़ता है वह भट्टिनी को नहीं करना पड़ता है। भट्टिनी उच्च कुल की है और सम्पूर्ण कथा उसी के साथ विकासोन्मुख है। निपुणिका उपन्यास के प्रारम्भ होने के साथ ही बाणभट्ट के साथ दिखाई देती है जबकि भट्टिनी द्वितीय उच्छवास में उपन्यास में प्रस्तुत होती है। भट्टिनी को बाण से मिलाने का श्रेय निपुणिका को प्राप्त है अतः निपुणिका भट्टिनी से अधिक महत्त्वपूर्ण स्त्री चरित्र मानी जा सकती है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास के नारी-पात्रों पर दृष्टिपात करने पर उपर्युक्त चार पात्रों के अतिरिक्त भी अनेक नारी पात्र हैं किन्तु वे उतने महत्त्वपूर्ण नहीं दिखाई देते। मदनश्री, चारुस्मिता, योगिनियाँ, चामुण्डा और अन्य अनेक नारियाँ उपन्यास की कथा को गति देने में सहायक अवश्य हुई हैं किन्तु सम्पूर्ण कथा को ये पात्र प्रभावित नहीं करते।

3.3.2.1.1. भट्टिनी

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में यद्यपि कई नारी पात्र हैं, यथा – भट्टिनी, निपुणिका, महामाया, सुचरिता आदि तथापि इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नारी पात्र 'भट्टिनी' है। 'भट्टिनी' देवपुत्र तुवरमिलिन्द की अत्यन्त रूपवती कन्या है जिसका बलात् अपहरण कर लिया गया है। छोटा राजकुल से उसकी मुक्ति बाणभट्ट, निपुणिका एवं कुमार कृष्णवर्द्धन के सहयोग से ही सम्भव हो सकती है। भट्टिनी का वास्तविक नाम चन्द्रदीधिति है। यह देवपुत्र तुवरमिलिन्द की एक मात्र कन्या है। देवपुत्र तुवरमिलिन्द अपनी वीरता के लिए समस्त आर्य्यावर्त में विख्यात हैं और सभी लोग उनका नाम बड़े आदर तथा सम्मान के साथ लेते हैं। भट्टिनी में राजकुमारी के समान ही व्यक्तित्व की महत्ता है। इसका सौन्दर्य अतुलनीय है। भट्टिनी का चरित्र उदात्त है। उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

"आगुल्फ आच्छादित नील आवरण में से उनका मनोहर मुख सौगुना रमणीय दिखाई दे रहा था, मानों ज्योत्स्ना-रूप धवल मन्दाकिनी-धारा में बहते हुए शैवाल-जाल में उलझा हुआ प्रफुल्ल कमल हो, क्षीर-सागर में संचरण करती हुई नीलवसना पद्मा हो, कैलास पर्वत पर खिली हुई सुपुष्पा दमनक-यष्टि हो, नील मेघ-मण्डल में झलकने वाली स्थिर सौदामिनी हो। उनकी बड़ी-बड़ी मनोहर आँखों की शोभा अपना उपमान ही थी।"

"उसके सारे शरीर से स्वच्छ कान्ति प्रवाहित हो रही थी। अत्यन्त धवल प्रभा-पुंज से उसका शरीर एक प्रकार ढका हुआ-सा ही जान पड़ता था, मानों वह स्फटिक गृह में आबद्ध हो, या दुग्ध सलिल में निमग्न हो, या विमल चीनाशुंक से समावृत हो, या दर्पण में प्रतिबिम्बित हो, या शरदकालीन में घनपुंज में अन्तरित चन्द्रकला हो। उसकी धवल कान्ति दर्शक के नयन-मार्ग से हृदय में प्रविष्ट होकर समस्त कलुष हो धवलित कर देती थी, मानों स्वर्गदामिनी की धवल धारा समस्त कलुष कालिमा का क्षार्लन कर रही हो। मेरे मन में बार-बार यह प्रश्न उठता रहा कि इतनी पवित्र रूप-राशि किस प्रकार इस कलुष धरित्री में सम्भव हुई ? निश्चय ही यह धर्म के हृदय से निकली हुई है। मानों विधाता ने शंख से खोदकर, मुक्त से खींचकर मृणाल से सँवार कर, चन्द्र-किरणों के कूर्चक से

प्रक्षालित कर, सुधाचूर्ण से धोकर, रजत-रज से पोंछकर, कुटज, कुन्द और सिन्धुवार पुष्पों की धवल कान्ति से सजाकर ही उसका निर्माण किया है।"

भट्टिनी के सौन्दर्य से हर कोई अभिभूत है। बाणभट्ट तो भट्टिनी को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है और उसके मुख से ये शब्द निकलते हैं – "इतनी पवित्र रूप-राशि किस प्रकार इस कलुष धरित्री में सम्भव हुई।" भट्टिनी महावराह की आराधिका है। उसका व्यक्तित्व अप्रतिम सौन्दर्य से मण्डित है और स्वभाव शान्त है। भट्ट को वह अपना अभिभावक मानती है और उसका बहुत सम्मान करती है। उसके आचरण में एक स्वाभाविक गम्भीरता एवं औदात्य का समावेश है। वह सन्तुलित वाणी में अपना मंतव्य व्यक्त करती है। उसके हृदय में किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष नहीं है। वन्दिनी भट्टिनी कातर स्वर में महावराह से अपने उद्धार की प्रार्थना करती है। स्वभाव से गम्भीर एवं वाणी से कोमल भट्टिनी नारी-जाति का भूषण है। बाणभट्ट तो उसे साक्षात् देवी ही मानता है। वह कहता है – "मैं अकिंचन हूँ, साधनहीन हूँ, पथभ्रान्त हूँ, मेरे पास है ही क्या, जिससे तुम्हारी पूजा करूँ, तुम देवी हो, सौ बार प्रतिवाद करो, तो भी देवी हो – इस कलुष-पंकिल संसास्सागर की प्रफुल्ल पद्मिनी, इस धूलि धूसर वन भूमि की मालती लता।" भट्टिनी को नगरहार से पुरुषपुर, पुरुषपुर से जलन्धर और फिर न जाने कहाँ-कहाँ दस्युओं के साथ घूमना पड़ा और अन्त में स्थाणीश्वर के छोटे राजकुल में वह लायी गई। दस्युओं के स्पर्श से उसका अहम् भाव एवं अभिमान चूर-चूर हो चुका है। अब वह अपने को देवपुत्र तुवरमिलिन्द की पुत्री होने के कारण विशिष्ट नारी न मानकर एक सामान्य नारी मानती है। उसका अभिमान एवं कुलीनता का गर्व लुप्त हो चुका है। वह अपने को घर्षिता, अपमानिता और कलंकिनी स्त्री मानती है किन्तु बाणभट्ट उसे कलंकिनी नहीं मानता। वह उसे आश्वस्त करता हुआ कहता है – "देवी, पावक को कभी कलंक स्पर्श नहीं करता, दीपशिखा को अन्धकार की कालिमा नहीं लगती ... जाह्नवी की वारिधारा को धरती का कलुष स्पर्श नहीं करता। देवी ! स्यारों के स्पर्श से सिंह किशोरी कलुषित नहीं होती। असुरों के गृह में जाने से लक्ष्मी धर्षिता नहीं होती। चींटियों के स्पर्श से कामधेनु अपमानित नहीं होती। चरित्रहीनों के बीच वास करने से सरस्वती कलंकित नहीं होती।"

बाण के इन आश्वासनकारी वचनों ने भट्टिनी का मुख प्रभातकालीन नवमल्लिका की भाँति खिला दिया। वह बाणभट्ट की प्रसंशा करती हुई कहने लगी – "तुम सच्चे कवि हो। मेरी बात गाँठ बाँध लो ! तुम इस आर्य्यावर्त के द्वितीय कालिदास हो।" महावराह की आराधना में लीन रहनेवाली भट्टिनी भक्ति-कातर स्वर में महावराह की स्तुति करती है। भक्ति के इस सम्बल ने उसे संकल्प-शक्ति एवं दृढ़ता प्रदान की है। अपने इन गुणों के कारण वह नारी-जाति का भूषण बन गई है। बाणभट्ट भट्टिनी की सेवा करके अपने को धन्य समझता है – "मैं बड़भागी हूँ जो इन महिमाशालिनी राजबाला की सेवा का अवसर पा सका।" भट्टिनी के स्वभाव में मूल्यांकन एवं विश्लेषण की अपूर्व क्षमता है। बाणभट्ट ने उसके पाप-बोध एवं अपराध-बोध को दूर करते हुए उसके व्यक्तित्व का जो महिमामण्डन किया उससे बड़ी शान्ति मिली। अपने भावों का परिचय देती हुई वह कहती है – "जिस दिन भट्ट ने मुझसे प्रथम वाक्य कहा था, उस दिन मेरा नवीन जन्म हुआ था। मैंने उस दिन अपनी सार्थकता को प्रथम बार अनुभव किया। उनकी कोमल मधुर वाणी में अद्‌भुत मिठास थी। ... मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि मेरे भीतर एक देवता है जो आराधक के अभाव में मुरझाया हुआ छिपा बैठा है।" वह परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को

ढाल लेने में कुशल है। उसके चरित्र में आत्मगौरव, भक्तिभावना, आराध्य के प्रति निष्ठा, हृदय की निष्कपटता जैसे पवित्र भाव विद्यमान हैं। बाणभट्ट से वह मन-ही-मन प्रेम करती है किन्तु इस प्रेम को व्यक्त नहीं कर पाती इसलिए द्विवेदीजी इसे अदृप्त प्रेम कहते हैं।

भट्टिनी के चरित्रांकन के लिए द्विवेदीजी ने दोनों विधियों का उपयोग किया है। कहीं-कहीं वे प्रत्यक्ष विधि से उसके चारित्रिक गुणों को उजागर करते हैं तो कहीं परोक्ष विधि से उसके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। भट्टिनी स्वयं अपने बारे में जो अभिभाषण करती है वह भी उसके चरित्र का उद्‌घाटन करने वाला है। बाणभट्ट तो भट्टिनी से इतना अभिभूत है कि वह उसे पवित्र देवी एवं स्वयं को उनका सेवक ही मानता है। लोरिकदेव से वह स्पष्ट कहता है – "मैं भट्टिनी का विनीत सेवक हूँ। उनकी आज्ञा थी कि मैं किसी को उनका यथार्थ परिचय न बताऊँ। मैंने कान्यकुब्ज नरेश को भी उनका कोई परिचय नहीं दिया। उन्हें कुमार कृष्णवर्द्धन से मालूम हुआ।" भट्टिनी का सौन्दर्य अत्यन्त आकर्षक एवं विस्मय-विमुग्धकारी था। इस सौन्दर्य का वर्णन बाणभट्ट इन शब्दों में करता है – "उस समय उनकी शोभा देखते ही बनती थी। अत्यन्त विस्तृत चिकुर राशि के भीतर वह आर्द्र मुखमण्डल शैवाल-जाल से घिरे हुए सीकर-सिक्त प्रफुल्ल शतदल के समान मनोहर लगता था किन्तु कातरता के कारण शिथिल बनी हुई भूरलताएँ मनोजन्मा देवता के भग्नचाप की भाँति भीषण-मनोहर शोभा विस्तार कर रही थीं।"

बाणभट्ट ने भट्टिनी की स्तुतियाँ अनेक स्थलों पर की हैं। भट्टिनी जब बाण से यह आग्रह करती है कि वह अपने काव्य से मानव की वृत्तियों को उच्चतर कार्य में नियोजित करे – "भट्ट ! मैं तुम्हारी काव्य-सम्पदा पाकर शक्ति पा जाऊँगी। तुम मेरी विनती स्वीकार करो।" बाणभट्ट उसकी इस प्रार्थना को सुनकर ही अभिभूत हो उठता है। वह भट्टिनी को गंगा के समान पवित्र मानता हुआ कहा है– "जिस कुल ने इस देव दुर्लभ सौन्दर्य को, इस ऋषि दुर्गम सत्य को इस कुसुम कमनीय चारुता को उत्पन्न किया है, वह धन्य है। वह कुल पवित्र है, वह जननी कृतार्थ है, वह पिता सफलकाय है। देवि ! तुममें निश्चय ही वह शक्ति है जिससे म्लेच्छ जाति का हृदय संवेदनशील बनेगा, उनमें उच्चतर साधना का संचार होगा, वे सम्मानित भूमि का सम्मान सीखेंगे।" भट्टिनी स्वभाव से गम्भीर और वाणी से कोमल है। उसके चरित्र में गम्भीरता, कोमलता, आत्मसम्मान, मर्यादा, आत्मगौरव, निष्कपटता, उदारता एवं भक्तिनिष्ठता जैसे अनेक गुणविद्यमान हैं। परम रूपवती भट्टिनी का बलात् अपहरण करके उसकी पवित्रता को भंग किया गया है। बाणभट्ट प्रश्न करता है – "क्या संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु इसी प्रकार अपमानित होती रहेगी ?" ऐसा प्रतीत होता है कि भट्टिनी जैसे चरित्र को गढ़कर द्विवेदीजी ने इस उपन्यास में नारी-जीवन से जुड़ी इस समस्या को उठाया है। यदि किसी नारी का बलपूर्वक अपहरण करके उसकी पवित्रता को भंग कर दिया जाए तो इसमें उस नारी का कोई दोष नहीं है। समाज को इस बात पर विचार करके उसके प्रति अपना दृष्टिकोण बदलना चाहिए। पुरुष-प्रधान समाज में नारी का असम्मान बहुत बड़ी समस्या है। द्विवेदीजी का मत है कि जब तक राज्यसत्ता रहेगी, सैन्य संगठन रहेंगे, पौरुष दर्प की प्रचुरता रहेगी, तब तक नारी का अपमान होता रहेगा। नारी दलितद्राक्षा की तरह स्वयं को नष्ट कर दूसरों को सुख प्रदान करती है। भट्टिनी के व्यक्तित्व में भी नारी का यह उत्सर्ग विद्यमान है। अपहृत नारी को अपवित्र एवं कलंकित मान लेना किसी प्रकार उचित नहींहै। इसमें भला उस नारी का क्या दोष ? बाणभट्ट इसीलिए भट्टिनी को अपराध-बोध से मुक्ति दिलाता हुआ उसकी पवित्रता को

अक्षुण्ण बताता है। "स्यारों के स्पर्श से सिंहकिशोरी कलुषित नहीं होती" – भट्ट का यह कथन भट्टिनी में नया आत्मविश्वास उत्पन्न करता है। उसे भट्ट की वाणी में काव्य के माधुर्य का आभास होता है और वह उसे दूसरा कालिदास तक कह देती है।

भट्टिनी बाण से उपकृत हुई है। वह उसकी कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई कहती है – "भट्ट ! तुम्हारी इस पवित्र वाक्-स्रोतस्विनी में स्नान करके ही मैं पवित्र हुई हूँ। इसी से मुझमें आत्मबल आया है। तुम्हारे निष्कलुष हृदय को देखकर ही मुझे सेवा का प्रशस्त पथ दिखा है।"

निपुणिका महाराज हर्ष द्वारा रचित 'रत्नावली नाटिका' में वासवदत्ता की भूमिका में अभिनय करते हुए जब वास्तव में स्वर्ग सिधार गई तब भट्टिनी करुणा विगलित होकर मूर्च्छित हो गई। अन्त में वह भट्ट के साथ म्लेच्छों का हृदय परिवर्तन करने के लिए तत्पर हो गई परन्तु जा नहीं सकी, क्योंकि आचार्य भर्वुपाद ने बाणभट्ट को पुरुषपुर जाने की आज्ञा दे दी और भट्टिनी को तब तक स्थाणीश्वर में रुकने के लिए कहा। निपुणिका के प्रति भट्टिनी का इतना अधिक प्रेम-भाव है कि नारी-सुलभ ईर्ष्या भी उसमें जलकर राख हो गई है। भट्टिनी भली तरह जानती है कि निपुणिका भट्ट से प्रेम करती है किन्तु इसने उसे अपनी प्रतिद्वन्द्विनी कभी नहीं समझा वरन् उसे प्रोत्साहन ही दिया। जब बाण स्थाणीश्वर को जाने के लिए तैयार हुआ तो निपुणिका ने उसके पैर पकड़ लिए। बाण ने जब उससे अपने पैरों को छुड़ाने का प्रयास किया तो भट्टिनी ने बाण को ऐसा करने से मना कर दिया और कहा कि इस बेचारी को अपने पैरों में ही पड़ी रहने दो क्योंकि इससे इसे शान्ति मिलती है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में चित्रित भट्टिनी निश्चय ही एक प्रभावशाली चरित्र है जिसकी संकल्पना आचार्य द्विवेदीजी ने इतिहास और कल्पना के समन्वय से इस भव्य रूप में की है कि वह एक अमर चरित्र बन गई है।

3.3.2.1.2. निपुणिका

निपुणिका 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली स्त्री पात्र है। निपुणिका का जन्म उस वंश में हुआ था जो निम्न श्रेणी का समझा जाता था किन्तु इसके पूर्वजों को गुप्त सम्राटों की सेवाएँ करने का काफी अवसर मिला था इसीलिए इसका वंश अपनी वास्तविकता छोड़कर वैश्य जाति में मिल गया था। निपुणिका विवाह के शीघ्र बाद ही विधवा हो गई थी। इसके वंश में पुनर्विवाह का प्रचलन नहीं था अतः किसी विशेष कारण के वशीभूत होकर इसे अपने घर को छोड़कर भाग जाना पड़ा था। इस कारण इसने जीवन के अनेक प्रबल झंझावातों का सामना किया। इन झंझावातों से इसकाजीवन उज्ज्वल ही बना।

निपुणिका में जीवन के प्रत्येक प्रहार को बुद्धिपूर्वक सहन करने की अद्भुत क्षमता है। पहले तो इसका निजी जीवन अस्थिर था जिसमें इसे अनेक भयंकर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। दूसरे जब यह भट्टिनी के सम्पर्क में आई तो अपनी परिस्थितियों को भूलकर उनकी परिस्थितियों को सुलझाने में लग गई। अतः इसका जीवन प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विकट परिस्थितियों का ही क्रीड़ा-क्षेत्र रहा है जिनमें निपुणिका गली नहीं वरन्

तपाये हुए सोने की भाँति और भी खरी होकर निकली। निपुणिका में अभिनय करने की कुशलता है। बाण से इसका परिचय एक अभिनेत्री के रूप में ही होता है। यह उसकी नाटक-मण्डली में सम्मिलित हो जाती है और अपने सफल अभिनय से दर्शकों को ही नहीं, बाण को भी अभिभूत कर लेती है किन्तु बाण की हँसी इसके घावों को फिर से हरा कर देती है और यह वहाँ से भाग जाती है। इस समय से फिर इसके जीवन का संघर्ष प्रारम्भ होता है। अनेक विपत्तियों को सहन करती हुई, अन्त में छोटे राजा के अन्तःपुर के समीप यह ताम्बूल की दुकान खोल लेती है और जैसे-तैसे अपने जीवन का निर्वाह करने लगती है।

जीवन की विषम परिस्थितियों ने निपुणिका में अधिक आत्मविश्वास जगा दिया है। यह संसार के लोगों की बिल्कुल ही चिन्ता नहीं करती किन्तु उसकी वजह से भट्ट पर किसी प्रकार का लांछन आये, यह वह सहन नहीं कर सकती – "भट्ट ! तुम मेरे गुरु हो, तुमने मुझे स्त्री-धर्म सिखाया है। छह वर्ष के कठोर अनुभवों के बल पर कह सकती हूँ कि तुम्हारी जड़ता ही अच्छी थी – मैं अभागिन थी जो तुम्हारा आश्रय छोड़कर चली गई। मेरे जीवन में जो कुछ घटा है, उसे जानने की क्या ज़रूरत है ? आजकल मैं पान बेचती हूँ और छोटे राजकुल के अन्तःपुर में पान पहुँचाया करती हूँ। सब मिलाकर मैं दुखी नहीं हूँ। तुम मेरी चिन्ता छोड़ो। जहाँ जा रहे हो वहाँ जाओ। यदि इस नगर में रहो तो कभी-कभी दर्शन पाने की आशा मैं अवश्य रखूँगी। पर तुम इस दुकान पर अधिक देर मत ठहरो। यहाँ आने वाले लोग स्त्री-शरीर को देव मन्दिर नहीं मानते।" निपुणिका बड़ी-से-बड़ी विपत्ति के सामने भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं होती वरन् उसका विवेकपूर्वक समाधान खोज निकालती है। प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे दो अवसर आये हैं जब उसकी बुद्धि की विशेष रूप से परीक्षा हुई है। पहला अवसर तो वह था जब जटिल बटु ने अपने गलत अभिनय से बाण के नाटक को भ्रष्ट कर दिया था। उस समय निपुणिका ने अपनी बुद्धि से परिस्थिति को सँभाला – "जटिल बटु मारीच की भूमिका में मंच पर आया। उसने अद्‌भुत चेष्टाएँ शुरू कीं। रह-रहकर वह दर्शकों की ओर ताक लेता था, वह जान लेना चाहता था कि लोग उसका अभिनय पसन्द कर रहे हैं या नहीं। फिर वह पीछे फिर नेपथ्य की ओर भी ताक लेता। एक मुहूर्त भी वह स्थिर न बैठ सका। मेरा सारा किया-कराया चौपट हुआ जा रहा था। सामाजिकों के चेहरे पर विनोद की हँसी मँडराने लगी। मैंने व्याकुल भाव से कहा – "सब चौपट हुआ निउनिया"। निपुणिका ने मुझे देखा तो एक क्षण के लिए चिन्तित हो गई, फिर बोली – "कुछ नहीं बिगड़ा है भट्ट ! तुम मारीच की भूमिका में उतरने की तैयारी करो। मैं इसे सँभालती हूँ, इतना कहकर वह तितली की तरह नाचती हुई रंगमंच पर पहुँच गई। उसने अपनाबायाँ हाथ कटि-देश पर रक्खा और चंचल नारी के साथ उद्धत-नर्तन से रंगमंच को झंकृत कर दिया। मूर्ख जटिल उठकर खड़ा हो गया। निउनिया ने दाहिने हाथ से उसकी दाढ़ी पकड़ी और सप्रश्रम कण्ठ से कहा – "नगर मेरे, नाचोगे नहीं ? क्षणभर में सारा वातावरण हास्यमय हो गया।"

दूसरा अवसर तब आता है जब वह भट्टिनी को अन्तःपुर से निकालती है। वह अन्तःपुर में इतनी निर्भीकता के साथ घुसी चली जाती है कि जैसे उसके मन में कोई बात न हो। उसे यह भी अच्छी तरह ज्ञात था कि तनिक भी चूक होने से न तो भट्टिनी बचेगी और न वह, किन्तु अपनी बुद्धिमत्ता और निर्भीकता से वह अपनी दुष्कर योजना में पूर्णरूपेण सफल हो जाती है। भट्टिनी के प्रति निपुणिका का इतना सहज स्नेह है कि इसने कभी भी इस बात को प्रकट नहीं होने दिया कि इसने भट्टिनी के साथ एक बहुत बड़ा उपकार किया है, अपनी जान की बाजी

लगाकर उसकी पवित्रता की रक्षा की है किन्तु इसके विपरीत जब भी यह भट्टिनी को तनिक भी उदास अथवा खिन्न देखती है तो अत्यन्त व्याकुल हो जाती है। भट्टिनी की व्याकुलता के कारण यह एक बार भट्ट की भी भर्त्सना करने से नहीं चूकती।

निपुणिका का बाण के प्रति प्रगाढ़ आकर्षण है। यह भट्टिनी की भाँति अपना आकर्षण नहीं छिपाती किन्तु जब भी अवसर देखती है, उसे शब्दों में भी व्यक्त कर देती है। वास्तविकता तो यह है कि निपुणिका का यह आकर्षण प्रारम्भ में एकदम दैहिक और वासनात्मक था। वह इसका उद्‌घाटन करती हुई भट्ट से कहती है – "हाँ भट्ट, मेरे भाग आने के कारण तुम्हीं हो परन्तु दोष तुम्हारा नहीं है। दोष मेरा ही है। तुम्हारे ऊपर मुझे मोह था। उस अभिनय की रात को मुझे एक क्षण के लिए ऐसा लगा था कि मेरी जीत होने वाली है परन्तु इसके ही क्षण तुमने मेरी आशा को चूर-चूर कर दिया। निर्दय ! तुमने बहुत बार बताया कि तुम मेरी नारी देह को देव-मन्दिर के समान पवित्र मानते हो परन्तु एक बार जो तुमने समझा होता कि यह मन्दिर हाड़-मांस का है, ईंट चूने का नहीं। जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आशा को धूलिसात् कर दिया। उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़ पाषाण-पिण्ड हो, तुम्हारे भीतर न देवता है न पशु, है एक अडिग जड़ता। मैं इसीलिए वहाँ ठहर न सकी।"

यह स्पष्टवादिता निपुणिका का दोष नहीं, गुण है। निपुणिका के चरित्र की एक विशेषता यह भी है कि वह अपने मन में किसी प्रकार भी ग्रन्थि नहीं बनने देना चाहती किन्तु ज्यों-ज्यों इसका प्रेम उदात्त होता जाता है, इसकी यह विशेषता भी बदलती जाती है अर्थात् जब इसका प्रेम भौतिक धरातल से कुछ ऊपर उठने लगता है तो यह अपने प्रेम का प्रदर्शन न तो हाव-भावों से करती है और न शब्दों से। भट्ट और भट्टिनी को सुखी बनाना इसके जीवन का चरम ध्येय बन गया है। इसीलिए यह इन दोनों के बीच में नहीं आना चाहती। इसके इस प्रेम के औदात्य और परिमाण का तब पता चलता है जब यह अभिनय में ही बाण का हाथ चारुस्मिता के हाथ में देकर अपनी इहलोक की लीला समाप्त कर देती है। सम्भवतः बाण का हाथ किसी अन्य रमणी के हाथ में देना इसके लिए इतना विकट आघात था जिसे विकट आघातों का अभ्यासी इसका मन सहन न कर सका।

निष्कर्ष यह है कि निपुणिका के चरित्र में अनेक ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं जो सामान्य नारी के लिए दुर्लभ हैं। वह जीवन के विकट-से-विकट झंझावातों में भी विवेक और बुद्धि से कार्य करती है, कभी भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं होती। इसमें साहस है जो यत्र-तत्र पुरुष के साहस को चुनौती देता हुआ प्रतीत होता है किन्तु इसकी एक नारी-सुलभ दुर्बलता है – बाण के प्रति गहन आकर्षण, जो अन्त में इसकी मृत्यु का कारण बनता है परन्तु इस आकर्षण में वासना नहीं, त्याग और प्रेरणा की अजस्र धारा प्रवाहित है।

3.3.2.1.3. सुचरिता

सुचरिता ब्राह्मण युवक विरतिवज्र की पत्नी हैजो पति द्वारा संन्यास ग्रहण कर लेने के उपरान्त अनेक कष्ट झेलती है और अपने बिछुड़े पति की खोज में अपनी बूढ़ी सास के साथ स्थाणीश्वर पहुँच जाती है। उसका पति

विरतिवज्र पहले वैराग्य धारण कर बौद्धमत का अनुयायी बना किन्तु वहाँ शान्ति न मिल सकने के कारण मठ के धर्माचार्य ने उसे अवधूत अघोरभैरव के आश्रम में कौल मत में साधना करने को कहा। इस प्रकार वह अघोरभैरव का शिष्य बना। कालान्तर में अपनी पत्नी को भी उसने अपना लिया। सुचरिता भी श्रीनारायण की भक्त बन चुकी थी। वे केवल साधक के रूप में साथ थे किन्तु समाज को इसमें अधर्म की बू लगी और उन दोनों को शासकीय कोप का भाजन बनना पड़ा। उपन्यास में सुचरिता-विरतिवज्र की यह कथा प्रायः मुख्य कथा से हटकर है और केवल तत्कालीन धार्मिक वातावरण की सृष्टि में सहायक हुई है। इस प्रकार मुख्य कथा से इसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह कथा उसका एक अंग मात्र है और घटनाक्रम को दिलचस्प बनाने में सहायक अवश्य हुई है। औपन्यासिक कथा में वह अन्त तक अवश्य उपस्थित रहती है किन्तु एक सहायक पात्र के रूप में। सुचरिता पूरी कहानी तो क्या ! किसी पात्र को भी प्रभावित नहीं करती है। केवल बाण, निपुणिका और भट्टिनी तथा चारुस्मिता के अतिरिक्त अन्य पात्रों से तो उसका संवाद तक नहीं होता। निस्सन्देह सुचरिता मात्र एक सहायक पात्र है और नायिका के प्रसंग में उसकी गणना कदापि नहीं की जा सकती।

3.3.2.1.4. महामाया

महामाया उपन्यास के प्रारम्भ में तन्त्र साधिका भैरवी के रूप में प्रकट होती है। जो अघोर भैरव नामक तांत्रिक की शिष्या है। महामाया कुलत राज्य की पुत्री है। इसका विवाह गृह वर्मा के साथ होता है। राजमहल में पहुँचकर भी इसका मन सदा खिन्न रहता है। रानी होते हुए भी वह पूर्णतः विरागिनी बनकर रहती है और एक दिन वह संन्यासिनी का वेश धारण करके महल से निकल पड़ती है। महामाया के संन्यास लेने के उपरान्त उनके व्यक्तित्व में अपार मानसिक परिवर्तन होता है। बाण कहता है – "उसके एक हाथ में त्रिशूल था और दूसरे में काला-सा कोई पात्र। खुले हुए पिंगल वर्ण के केश गुल्फों तक लटके ऐसे लग रहे थे मानों सायंकालीन अरुण में घनमण्डल में विद्युत की शिखाएँ अचंचल होकर रुक गई हों। उसका सुनहरा मुखमण्डल गैरिक वस्त्रों से इस प्रकार कुण्डलित था मानों धातुमयी अधित्यका में आरावध के झाड़ फूले हों। उसकी आँखें कांचनास्कुसुम के समान लाल-लाल और फटी हुई थीं और उनसे एक मन्द-मन्द रश्मि-सी निकल रही थी। उसकी मूर्ति मनोहर नहीं थी पर वह भयंकर भी नहीं थी। यदि कड़ककर उसने पहले ही मुझे डाँट न दिया होता, तो निस्सन्देह, मैं उसे साक्षाद्विगृहधारिणी चण्डिका ही समझता।"

महामाया के इस रूप में स्त्रीत्व की अपेक्षा पौरुष अधिक परिलक्षित होता है। महामाया अपनी ओजस्वी वाणी से जनसमुदाय को इस प्रकार प्रभावित करती है कि वह विद्रोह करने पर तुल जाती है। महामाया कहती है – "सभा का निर्णय उसी मनोवृत्ति का पोषक है। आप कहते हैं कि उत्तरापथ के ब्राह्मण और श्रवण, वृद्ध और बालक, बेटियाँ और बहुएँ किसी प्रचण्ड नरपति की छाया पाये बिना नहीं बच सकती। आर्य सभासदो ! उत्तरापथ के लाख-लाख नौजवानों ने क्या कंकण-बलम धारण किया है ? क्या वे वृद्धों और बालकों, बेटियों और बहुओं, देवमन्दिरों और विहारों की रक्षा के लिए अपने प्राण नहीं दे सकते ? क्या इस देश के विद्वानों में स्वतन्त्र संघटन-बुद्धि का विलोप हो गया है ? इस उत्तरापथ में लाख-लाख निरही बहुओं और बेटियों के अपहरण और विक्रय का व्यवसाय क्या नहीं चल रहा है ? अगर देवपुत्र तुवरमिलिन्द का हृदय थोड़ा भी संवेदनशील होता तो आज से बहुत

पहले उन्हें मूर्च्छित होकर गिर पड़ना था। क्या निरीह प्रजा की बेटियाँ उनकी नयन-तारा नहीं हुआ करती हैं ? क्या राजा और सेनापति की बेटियों का खो जाना ही संसार की दुर्घटनाएँ हैं ?"

"आप में से किसे नहीं मालूम कि महाराजाधिराज की चामरधारिणियाँ और कंरकवाहिनियाँ इसी प्रकार भगायी हुई और खरीदी हुई कन्याएँ हैं। आर्य सभासदो ! क्या इन अभागिनियों के पिता नहीं थे ? क्या वे अपनी माताओं की नयन-ताराएँ नहीं थी, क्या उनके माँ-बाप के हृदय में अपनी सन्तति के प्रति स्नेह-भावना नहीं थी जो उत्तरापथ के विद्वान् और शीलवान् नागरिक इन राजाओं का मुँह जोह रहे हैं। मैं पूछती हूँ यदि महाराजाधिराज ने अपनी प्रार्थना का प्रत्याख्यान कर दिया तो आप क्या करेंगे, आप लोगों में कौन नहीं जानता कि महाराजाधिराज स्वयं शुद्धशील होकर भी सैकड़ों ऐसे सामन्तों को आश्रय दिये हुए हैं जिनका एक-मात्र प्रताप कन्या-हरण में ही प्रकट होता है। आर्य सभासदों ! यदि मैं असत्य कहती हूँ तो मेरे इस त्रिशूल से मेरा खण्ड-खण्ड कर दो।"

3.3.2.2. हजारीप्रसाद द्विवेदी की उदात्त मूल्य-चेतना

मूल्य शब्द मूलतः अर्थशास्त्र का है जो कालान्तर में दर्शन और साहित्य में प्रतिष्ठित हो गया है। किसी भी वस्तु में 'अर्थ' को अर्थशास्त्रियों ने मूल्य कहा है और दार्शनिकों ने जीवन के निःश्रेयस् की उदात्त स्थिति माना है। साहित्य में यह शब्द उदात्त मानसिक वृत्तियों के लिए व्यवहृत होता है। आई.ए. रिचर्डस ने 'प्रिंसिपल ऑफ लिटरेसी क्रिटिसिज्म' में इस शब्द को 'शिवम्' के अर्थ में स्वीकार किया है। उन्होंने इसे नैतिकता का परिपाक माना है। इस तरह साहित्य में मूल्य की अवधारणा नैतिक मानदण्डों से सम्बद्ध दिखाई पड़ती है।

"सत्यं शिवं सुन्दरम्" औपनिषदिक् पदावली नहीं है। ब्रह्मसमाज ने इसे ईसाई जीवन दर्शन से ग्रहण किया है। "The truth the fol" और "Beautiful" से जुड़कर यह शब्दावली बंगाल में उदात्त जीवन-दृष्टि के लिए मान्य हो गई थी। कई विवेचकों ने रवीन्द्रनाथ ने मूल्यांकन के क्रम में ब्रह्मसमाज की इस अवधारणा को दृष्टि-पथ में रखा है। कुल मिलाकर कल्याणकारी और सुन्दर सत्य को एक समय जीवन और साहित्य के मूल्य में तौर पर ग्रहण किया गया था। बंगाल में यह विचारधारा मनुष्य और उसके साहित्य की उच्चता की दिग्दर्शिका समझी जाती थी।

महाभारत में एक सूक्ति मिलती है कि मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है – "न ही वही मानुषात् श्रेष्ठतां हि मंचित।" किसी भी देवता और ईश्वर के स्थान पर मनुष्य की यह प्रतिष्ठा भारतीय मूल्य चेतना की विशिष्टता है। बंगाल में वैष्णव आदि चण्डीदास ने जब कहा था कि "हे भाइयो ! मेरी बात सुनो कि मनुष्य के ऊपर कोई दूसरा साथ नहीं है।" तब प्रकारान्तर से यहाँ महाभारत का स्वर ही सुनाई पड़ता है – "सवार ऊपर मानुष आय तहार ऊपर नाहि।" यह मूल्य चेतना रवीन्द्रनाथ टैगोर के समग्र साहित्य में परिव्याप्त है। उन्होंने सोगर कवि के कई गीतों और 'गोरा' शीर्षक उपन्यास में मानवीय गरिमा को प्रमुख स्थान दिया है। बांग्ला साहित्य की यह मानवतावादी चेतना हजारीप्रसाद द्विवेदी को सहजता सुलभ हुई थी। उनका पूरा साहित्य मनुष्य की महिमा पर केन्द्रित है। वे स्पष्टतः कहते हैं कि मनुष्य ही साहित्य का केन्द्र है। उनकी दृष्टि में समग्र इतिहास मानवता की जययात्रा का वृत्तान्त

है। उनका 'कुटप' विपरीत परिस्थितियों में भी अपना स्वभाव नहीं खोता है। उनके अशोक की मुस्कान कभी मन्द नहीं पड़ती है। वे 'कालिदास' में जिस लालित्य की पहचान करते हैं वह उनका मूल्यबोध है। उसी तरह वे कबीर की अखण्डता और भक्ति में मानवीय शील के दर्शन करते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र को 'मृत्युंजय' कहना मनुष्य की मूल्य चेतना की अविनश्वर प्रकृति की ओर इंगित करनाहै।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के सोलहवें अध्याय में जिस दैवी सम्पदा का श्रीकृष्ण ने उल्लेख किया है वह भारत की सनातन मूल्यभावना ही है जिसके केन्द्र में श्रद्धा और प्रेम की सक्रियता लक्षित होती है। श्रद्धा भारतीय जीवन का मध्यगुण है जो इसकी प्राप्ति कर लेता है, वस्तुतः वही ज्ञानी है – "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् ।" गीता और रामचरितमानस से लेकर 'गीतांजलि' और 'कामायनी' तक इस श्रद्धावृति को उच्चासन दिया गया है। इसी श्रद्धा का नामान्तर आस्था है। जो जाति अपनी आस्था खो देती है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। भारतीय जीवन आस्था और विश्वास पर टिका है। विषम से विषम से परिस्थिति में इस देश की आस्था अश्रय रही है। इसकी संस्कृति और सभ्यता का यही रहस्य है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' विपरीत स्थितियों में मनुष्यता के प्रति एकनिष्ठता उत्पन्न करती है। इसकी पात्र 'निपुणिका' और 'भट्टिनी' आस्था और श्रद्धा के बल पर ही अपनी दुर्गति को झेल पाती हैं। वे टूटती नहीं, श्रद्धा और प्रेम का सम्बल पाकर जीवन की दीप्ति से जगमगाती है। द्विवेदीजी ने इन नारी पात्रों को साधारणता के बीच असाधारणता प्रदान की है। इनकी मानवीय तेजस्विता और उदात्तता कभी भी क्षीण नहीं पड़ती है। इनके चरित्र मनुष्य की महत्ता को ध्वनित करते हैं।

द्विवेदीजी श्रीमद्‌भागवत के मर्मज्ञ हैं। जब उन्होंने 'सूर साहित्य' नामक पुस्तक लिखी तब से वे प्रेम के परम पुरुषार्थ के उद्योपक थे। वल्लभाचार्य ने भागवत के इस सूत्र को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक याद किया है – "प्रेमापुमर्थो महान् ।" प्रेम लक्षणा या रागानुगाभक्ति की आधार भूमि यही प्रीति है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' प्रेम के उक्त सूत्र को ग्रहण करके लिखी गई है। इसमें चित्रित कथा प्रेम की पवित्रता को प्रकट करती है। निपुणिका और भट्टिनी का बाणभट्ट के प्रति अनुराग नैतिक दृष्टि से ऊर्ध्वगामी है। यह अव्यक्त या अतृप्ति प्रेम किसी भी तरह के स्वैराचार को बढ़ावा नहीं देता है। इसमें उच्छृंखलता नहीं, संयम है। प्रेम का यह संयमित रूप उपन्यासकार की उदात्त मूल्य-चेतना का साक्षात्कार कराता है।

लोंगिनुस ने 'काव्य में उदात्त तत्त्व' पर बहुत बल दिया है। उनकी दृष्टि में कथा और शैली की भव्यता से अधिक चारित्रिक ऊँचाई उदात्तता को मूर्त करती है। मनुष्य में निहित सद्‌गुण उनके शील को उदात्त बनाते हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के अधिकांश पात्र उच्च चारित्रिक गुणों को प्रदर्शित करते हैं। द्विवेदीजी ने क्षुद्र जीवन में अक्षत जीवन-मूल्यों का अन्वेषण किया है। वे योग, तन्त्र, मन्त्र, वेद आदि से ऊपर मनुष्य की चित्रवृत्ति की सहजता और सरलता को महत्त्व देते हैं। वे मनुष्य को स्वतन्त्र देखना चाहते हैं। दैहिक और बौद्धिक बन्धन के विरुद्ध वे अपना स्वर ऊँचा रखते हैं। "किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, मन्त्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं" कहने वाले द्विवेदीजी सनातन भारतीय जीवन मूल्य की उद्‌घोषणा करते हैं जिसे सूत्र रूप में यों कहा गया है – "मोः"। निर्भीक व्यक्ति ही मुक्त हो सकता है और उसे ही नैतिकता का निकष माना जाता है। 'बाणभट्ट की

आत्मकथा' नारी और राष्ट्र की जिस मुक्ति को स्वर देती है वह भारत की परम्परागत मूल्य चेतना के अनुरूप है। यह रचना जिस तरह उपन्यास के बंध को तोड़ती है उसी तरह संस्कृति की जड़ता को भी छिन्न-भिन्न करती है।

रचना-तन्त्र की दृष्टि से उपन्यास के छह तत्त्व कहे गए हैं। कोई भी कृतिकार किसी एक सुनिश्चित प्रयोजन में लिखता है। उसकी रचनाधर्मिता में एक विशिष्ट सन्देश आभार लेता है। मम्मट ने जिसे 'कान्तासम्मितउपदेश' कहा है वह रचनाकार के उद्देश्य की ओर इशारा करता है। 'काव्यप्रकाश' में काव्य के छह प्रयोजनों के अन्तर्गत 'शिवेतर' के लक्ष्य की बात कही गई है। 'शिवेतर' का यह विनाश अमंगल की जगह मंगल का प्रतिष्ठापनहै। यह मंगल ही वह शिवत्व है जिसे कठोपनिषद् ने 'निःश्रेयस्' और रिचर्डस ने 'The Good' कहा है। श्रेय और श्रुण की प्राप्ति का सही अर्थ सम्यक् जीवन-दृष्टि या मूल्य-चेतना से सम्पृक्ति है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इस शिव तत्त्व की प्रभावी उपस्थिति देखी जाती है।

3.3.2.3. हजारीप्रसाद द्विवेदी की नारी-मुक्ति की आकांक्षा

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी-कृत सांस्कृतिक-ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के दो नारी चरित्र निपुणिका (निउनिया) और भट्टिनी (चन्द्रदीधिति) अपने व्यक्तित्व एवं चारित्रिक गुणों से पाठकों को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। निपुणिका का परिचय उपन्यास के प्रारम्भिक पृष्ठों से ही मिल जाता है। वह एक निम्न जाति की कन्या थी जिसका विवाह उस कांदविक वैश्य के साथ हुआ था जो भड़भूँजे से सेठ बना था। विवाह के एक वर्ष के भीतर ही वह विधवा हो गई और ससुराल में मिले दुखों को न झेल पाने के कारण घर छोड़कर भाग आई। बाणभट्ट से उसकी भेंट उज्जयिनी में हुई जहाँ वह एक नाटक-मण्डली का सूत्रधार था। निपुणिका ने उसकी नाटक मण्डली में अभिनेत्री के रूप में भर्ती होने की इच्छा प्रकट की और भट्ट ने स्वीकृति दे दी।

निपुणिका का समस्त जीवन उसके अदम्य साहस एवं जीवट का परिचायक है। सोलह वर्ष की विधवा घर से भागकर जब जीवन-यापन के लिए संघर्ष करती है तो निश्चय ही अपने सतीत्व की रक्षा करना उसके लिए अत्यन्त दुष्कर रहा होगा। उस विलास-प्रधान समाज में जहाँ नारी पर पुरुष भेड़िए की तरह टूटते हों, निपुणिका जैसी साहसी स्त्री ही अपने सतीत्व की रक्षा कर सकती थी। यही नहीं, जब उसे भट्टिनी की विपत्ति का पता चलता है तब उसके उद्धार के लिए प्राण-पण से जुट जाती है।

निपुणिका के सम्पूर्ण चरित्र में उपन्यासकार ने नारी-मुक्ति की आकांक्षा को व्यंजित किया है। नारी के साथ पुरुष द्वारा किया गया अपमानजनक व्यवहार उसे तिलमिला देता है। बाणभट्ट का वह बहुत सम्मान करती है क्योंकि भट्ट नारी सौन्दर्य को संसार की सबसे अधिक प्रभावोत्पादिनी शक्ति मानता है। ... नारी सौन्दर्य पूज्य है, वह देव प्रतिमा है।

निपुणिका कुशल अभिनेत्री है। उसने उज्जयिनी में बाणभट्ट की नाटक-मण्डली में परम भट्टारक की उपस्थिति में ऐसा जीवन्त अभिनय किया कि बाण विस्मय-विमुग्ध हो गया। वस्तुतः निपुणिका के गुणों को देखकर बाण विस्मय-विमुग्ध था। वह सोचता था कि जिस स्त्री में इतने गुण हों वह समाज के लिए पूजनीया है।

निपुणिका हँसमुख, अभिनय-कुशल, साहसी एवं आत्मविश्वासी थी। उसमें त्यागवृत्ति एवं सहनशीलता भी पर्याप्त मात्रा में थी। बाणभट्ट की सहायता से वह भट्टिनी को छोटा राजकुल से मुक्त कराती है। यही नहीं, गंगा में जब वह और भट्टिनी दोनों डूब रही होती हैं तब वह भट्ट से अनुरोध करती है कि "मुझे छोड़ो ! भट्टिनी को सँभालो।" मृत्यु-मुख में पड़े व्यक्ति में ऐसे त्याग की प्रवृत्ति एक विरल अनुभूति है।

निपुणिका अपने मन की व्यथा बाण को तब व्यक्त करती है जब नाटक-मण्डली छोड़ने के छह वर्ष उपरान्त बाण उसे स्थाणीश्वर में पुनः मिलता है। वह बाणभट्ट को अपना गुरु मानती है जिसने उसे स्त्री-धर्म सिखाया है। अब वह बाणभट्ट के प्रति आदर एवं श्रद्धा-भाव भी रखती है। वह यह कदापि सहन नहीं कर सकती कि भट्ट पर कोई लांछन लगाए।

नारी मुक्ति की आकांक्षिणी निपुणिका अपने अदम्य साहस से तुवरमिलिन्द की कन्या चन्द्रदीधीति (भट्टिनी) की विपत्ति-कथा बाणभट्ट को सुनाकर उसे अपना सहायक बनाती है और छोटा राजकुल से उसे मुक्त कराती है। यदि बाण इसमें सहायक न बनता तो भी वह अपने संकल्प से डिगने वाली न थी।

निपुणिका जानती है कि भट्टिनी भी बाण से प्रेम करती है किन्तु उसके मन में भट्टिनी के प्रति कभी ईर्ष्या और असूया जैसे भाव जाग्रत् नहीं हुए।

नृत्य-संगीत में पारंगत निपुणिका ने 'रत्नावली नाटिका' में वासवदत्ता की भूमिका में उन्माद बरसा दिया। उसके हर्ष, शोक और प्रेम के अभिनय में वास्तविकता थी। अन्तिम दृश्य में जब वह रत्नावली का हाथ नायक के हाथ में देने लगी थी तो सचमुच विचलित हो गई। नागर जन जब उसे अभिनय-कुशलता के लिए साधुवाद दे रहे थे तब वह धरती पर लोटकर वास्तव में प्राण-त्याग कर रही थी। निश्चय ही, निपुणिका नारी जाति का शृंगार है, सतीत्व की प्रतिमा है और करुणा की देवी है। अपने अद्‌भुत साहस, त्याग, धैर्य एवं प्रेम से वह पाठकों का मन जीत लेती है।

सामन्ती व्यवस्था के प्रति उसका विरोध कई स्थलों पर व्यक्त हुआ है। सुचरिता उसे 'स्त्रीत्व की मर्यादा' कहती है। निपुणिका में सत्-असत् का विवेक है, वह अनुभवी है। बहत्तर घाट का पानी पी चुकी निउनिया भले-बुरे को अच्छी तरह पहचानती है।

आज 'निउनिया' जैसी साहसी, निडर, त्यागमयी स्त्रियों की आवश्यकता है, जो 'अबलापन' से उबरकर पुरुष-प्रधान समाज में अपनी अस्तित्व-चेतना को जाग्रत् किये हुए सबसे लोहा ले सके तथा नारी-मुक्ति आन्दोलन को शक्ति दे सके।

निपुणिका के व्यक्तित्व में स्पर्धा नहीं, सजगता है। वह शृंखलाबद्ध नारी को दासता से मुक्त देखना चाहती है। समाज से तिरस्कार पाकर भी वह स्त्री की अस्मिता का नाश नहीं होने देती है। उसकी कर्मण्यता परतन्त्रता की बेड़ियों को व्यर्थ कर देती है। द्विवेदीजी ने उसके माध्यम से स्त्री के अस्तित्व की सार्थकता का संस्थापन किया है।

3.3.3. पाठ-सार

'बाणभट्ट की आत्मकथा' इतिहास और कल्पना का विश्वसनीय समन्वय है। इस उपन्यास की कथावस्तु और पात्र-योजना के द्वारा लेखक ने अपनी जीवन-दृष्टि की प्रस्तुति की है। उसका औपन्यासिक दृष्टिकोण मूल्य-चेतना से संचालित है। शिव तत्त्व और मानवीय गरिमा के संस्थापन के लिए द्विवेदीजी ने इस उपन्यास का सृजन किया है। उनके स्त्री पात्र जिस आधारभूत वैचारिकी को मूर्त करते हैं उसके केन्द्र में स्त्री की अस्मिता के दर्शन होते हैं। निपुणिका और भट्टिनी जैसी नारियाँ प्रेम के नए स्वरूप का दिग्दर्शन कराती हैं जिससे उपन्यास में उदात्तता का आविर्भाव होता है। लेखक की नैतिक चेतना उसके मूल्य-विमर्श को धारदार बनाती है।

3.3.4. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भट्टिनी किस उपन्यास की नारी पात्र है ?
   - (क) बाणभट्ट की आत्मकथा
   - (ख) मैला आँचल
   - (ग) गोदान
   - (घ) शेखर : एक जीवनी

सही उत्तर – (क)

2. सुचरिता का विवाह किस पात्र से हुआ था ?
   - (क) विरतिवज्र
   - (ख) अघोर भैरव
   - (ग) तुवरमिलिंद
   - (घ) बाण

सही उत्तर – (क)

3. महामाया किस उपन्यास की नारी पात्र है ?
   - (क) गोदान
   - (ख) मैला आँचल
   - (ग) बाणभट्ट की आत्मकथा
   - (घ) शेखर : एक जीवनी

सही उत्तर – (ग)

4. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' शीर्षक उपन्यास का नायक है –
   - (क) तुवरमिलिंद
   - (ख) अघोर भैरव

(ग) विरतिवज्र

(घ) बाणभट्ट

सही उत्तर – (ख)

5. हजारीप्रसाद द्विवेदी को उनकी किस रचना पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था ?

(क) बाणभट्ट की आत्मकथा

(ख) चारु चन्द्रलेख

(ग) अनाम दास का पोथा

(घ) आलोक पर्व (निबन्ध संग्रह)

सही उत्तर – (क)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आधुनिकता पर विचार कीजिए।
2. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के गौण स्त्री पात्रों पर विचार कीजिए।
3. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के गौण पुरुष पात्रों पर विचार कीजिए।
4. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की मूल्य-चेतना का विश्लेषण कीजिए।
5. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की नारी-चेतना की विशिष्टता पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' शीर्षक उपन्यास की पात्र निपुणिका का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' शीर्षक उपन्यास की पात्र महामाया का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' शीर्षक उपन्यास की पात्र भट्टिनी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
4. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में वर्णित उदात्त मूल्य-चेतना का विवेचन कीजिए।
5. " 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नारी-मुक्ति की आकांक्षा का प्रतिफलन है।" विवेचन कीजिए।

3.3.5 उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. हिन्दी उपन्यास का विकास, डॉ॰ मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद
2. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, डॉ॰ रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. गद्य के प्रतिमान, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. 'आलोचना' पत्रिका, इतिहास विशेषांक
5. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली

❖❖❖

खण्ड – 3 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास

इकाई – 4 : 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निपुणिका और भट्टिनि के चरित्रों के आधार पर प्रेम-दर्शन

इकाई की रूपरेखा

3.4.0. उद्देश्य कथन
3.4.1. प्रस्तावना
3.4.2. विषय-विस्तार
 3.4.2.1. निपुणिका और भट्टिनी के चरित्रों के आधार पर प्रेम-दर्शन
3.4.3. पाठ-सार
3.4.4. बोध प्रश्न
3.4.5. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

3.4.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रेम-दर्शन पर केन्द्रित है। इस पाठ में उपन्यास के प्रमुख नारी पात्रों निपुणिका और भट्टिनि के चरित्रों के आधार पर उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेम-दर्शन का विश्लेषण किया जा रहा है।

3.4.1. प्रस्तावना

'प्रेम' साहित्य का पुराना प्रतिपाद्य विषय रहा है। कालिदास और बाणभट्ट इस मनोभाव के पुराने चितेरे हैं। बाण की 'कादम्बरी' एक विशद् प्रेमकथा है। प्रेम के अनेक रूप वहाँ दिखाई पड़ते हैं। द्विवेदीजी ने प्रेमकथा के इस रचयिता के वैयक्तिक जीवन में प्रेमाभक्ति का अन्वेषण किया है। इसके लिए उन्होंने निपुणिका और भट्टिनी के चरित्रों की प्रस्तुति की है। ये दोनों पात्र लौकिक रूढ़ प्रेम को मानसिक उज्ज्वलता प्रदान करते हैं। यहाँ प्रेमिकाओं के समर्पण से अधिक महत्त्व उनकी मुखरता से युक्त व्यवहार को दिया गया है। दोनों प्रेमिकाओं के व्यक्तित्व में स्वार्थगत संकीर्णता नहीं मिलती है। प्रेम इन्हें गिराता नहीं, ऊपर उठाता है। लेखक ने शारीरिक नैकट्य की अपेक्षा मानसिक सान्निध्य को यहाँ स्थापित किया है। प्रेम अटूट होता है। यदि उसके सूत्र टूटते हैं तब भी उसकी समाप्ति नहीं होती है। विद्यापति ने भग्न मृणाल-दण्ड के सूत्रों के तारतम्य में प्रेम की स्थिति का आकलन किया था, जैसे – कमलनाल जब टूटती है तब भी उसके रेशे जुड़े रहते हैं। निपुणिका और भट्टिनी को प्रेम का लौकिक प्रतिदान नहीं मिलता है किन्तु मृणाल-सूत्र की तरह उनके प्रणय में एक निरन्तरता देखी जाती है। इन दोनों के प्रेम में दैहिक नहीं, मानसिक ऐक्य के दर्शन होते हैं। प्रेम-पात्र के साथ यह सायुज्य या अभेद हजारीप्रसाद द्विवेदी के द्वारा प्रतिपादित वह प्रेम-दर्शन है जो नारी-चरित्रों को एक नए रूप में उपस्थित करता है। प्रेम परम पुरुषार्थ है और यह इस रचना में बार-बार प्रकट हुआ है।

निपुणिका और भट्टिनी 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के केन्द्रीय नारी पात्र है। दोनों की पृष्ठभूमि और परिस्थितियों में अन्तर है किन्तु दुर्गति और प्रताड़ना के सन्दर्भ में इन्हें हम एक ही धरातल पर पाते हैं। अकुलीना निपुणिका परम्परागत नैतिकता की दृष्टि से पतिता कही जा सकती है किन्तु उसके चरित्र में प्रेम की जो अवस्थिति मिलती है उससे वह एक उच्च शील वाली स्त्री सिद्ध होती है। भट्टिनी राजकन्या है किन्तु परिस्थितिवश वह अधोगति को प्राप्त होती है। निपुणिका की तरह ही वह एक अकिंचन नारी हो जाती है। निपुणिका और बाण दोनों के प्रयत्नों से उसका निस्तार होता है। ये दोनों पात्र बाण के साथ प्रणय-सूत्र में आबद्ध हैं किन्तु इनमें आपसी तनाव नहीं, सौमनस्य के दर्शन होते हैं। प्रेम इन्हें गिराता नहीं, ऊपर उठाता है। निपुणिका में प्रणय की प्रगल्भता देखी जाती है किन्तु वह भट्टिनी के हाथों में बाण को सौंप कर धरती से प्रयाण कर जाती है। भट्टिनी में प्रेम की वाचालता नहीं, आत्यन्तिक अनुभूति मिलती है। वह बाण के समक्ष प्रणय-निवेदन नहीं करती है और निपुणिका के प्रति उसके किसी प्रकार की ईर्ष्या नहीं मिलती है। वह आस्थामयी स्त्री है जो महावराह की मूर्ति से संरक्षण पाती है। बाण उसके लिए उद्धारक महावराह ही है किन्तु प्रिय के कथनानुसार वह महावराह की प्रतिमा को जलधारा में विसर्जित कर देती है। मूर्ति को प्रवाहित करने की यह प्रक्रिया बाण से उसके वियोग को व्यंजित करती है।

निपुणिका और भट्टिनी के लिए प्रेम परिचालिका शक्ति है जो उन्हें उदात्तता के स्तर तक ले जाती है। लौकिक उपलब्धियाँ उनके प्रेम को परिसीमित नहीं करती हैं। प्रेम उन्हें बन्धन-मुक्त कर उन्मुक्ति के आकाश में ले जाता है। प्रणय की यह दिव्यता इन दोनों चरित्रों को भास्वरता प्रदान करती है।

3.4.2. विषय-विस्तार

3.4.2.1. निपुणिका और भट्टिनी के चरित्रों के आधार पर प्रेम-दर्शन

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रेम के स्वरूप को लौकिक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। प्रेम के उदात्त रूप को आचार्य द्विवेदीजी ने बाण, निपुणिका तथा भट्टिनी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। बाण और भट्टिनी का प्रेम अदृप्त प्रेम कहा जा सकता है। भट्टिनी के साथ बाण एकान्त में रहकर भी उच्छृंखल नहीं होता है। उसने निपुणिका के समर्पण को अस्वीकार कर दिया है। बाण का प्रेम उदात्त प्रेम का उदाहरण है। द्विवेदीजी ने इन तीनों पात्रों के आधार पर नैतिकता को महत्त्व दिया है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने औपन्यासिक कला का एक अभिनव प्रयोग तो स्थापित किया ही है, साथ ही, नूतन प्रेमदर्शन को भी उपस्थित किया है। उपसंहार में द्विवेदीजी लिखते हैं – "कादम्बरी में प्रेम की अभिव्यक्ति में एक प्रकार की दृप्त भावना है परन्तु इस कथा में सर्वत्र प्रेम की व्यंजना गूढ़ और अदृप्त भाव से प्रकट हुई है। ऐसा जान पड़ता है कि एक स्त्रीजनोचित लज्जा सर्वत्र उस अभिव्यक्ति में बाधा दे रही है। कथा का जिस ढंग से प्रारम्भ हुआ है, उसकी स्वाभाविक परिणति गूढ़ और अदृप्त ही हो सकती है। फिर कादम्बरी में प्रेम के जिन शारीरिक विकारों का, अनुभावों का, हावों का, अयत्नज अलंकारों का प्राचुर्य है, उनके स्थान में कथा में मानस-विकारों का, लज्जा का, अवहित्था का, जड़िमा का अधिक प्राचुर्य है।" प्रेम की यह

अदृप्त व्यंजना हिन्दी उपन्यास के लिए एक नई वस्तु है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्ट, भट्टिनी और निपुणिका का प्रेम त्रिकोण व्यक्त हुआ है। निपुणिका बाण को बताती है – "हाँ भट्ट, मेरे भाग आने का कारण तुम्हीं हो परन्तु दोष तुम्हारा नहीं है। दोष मेरा ही है। तुम्हारे ऊपर मुझे मोह था। उस अभिनय की रात को मुझे एक क्षण के लिए ऐसा लगता था कि मेरी जीत होने वाली है परन्तु दूसरे ही क्षण तुमने मेरी आशा को चूर कर दिया। निर्दय, तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी-देह को देव-मन्दिर के समान पवित्र मानते हो पर एक बार भी तुमने समझा होता कि वह मन्दिर हाड़-मांस का है, ईंट-चूने का नहीं ! जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आशा को भूमिसात् कर दिया। उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़ पाषाण-पिण्ड हो, तुम्हारे भीतर न देवता है, न पशु, है एक अडिग जड़ता।" निपुणिका अभिशप्त वर्ग की नारी है इसलिए बाणभट्ट के सहज मानवीय व्यापार उसमें साहस और विश्वास का संचार करते हैं। वह अपने विकारों को दबा नहीं पाती। वह उन्हीं के सहारे बाण के प्रेम को प्राप्त करना चाहती है। "मैं तुम्हारा करावलम्बन चाहती हूँ। नारी का जन्म पाकर केवल लांछन पाना ही सार नहीं है। तुमने ही मुझे आनन्द की ज्योतिषकनिका दी थी। तुम्हीं मुझे तेज की चिनगारी दो। आर्य !" इस तेज की चिनगारी का एक निहितार्थ है। उसके मन में सामन्ती शोषण और दमन के विरुद्ध लड़ने की शक्ति देगा, ऐसी सम्भावना निपुणिका के उपर्युक्त कथन में झलकती है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में बाण और भट्टिनी के प्रेम को देवोपम बनाने का एक उद्देश्य यह भी है कि द्विवेदीजी नारी के प्रति सामन्ती मानसिकता को बदलना चाहते हैं। सामन्तों को अन्तःपुर में बन्धक की तरह रखी जाने वाली स्त्रियों की पीड़ा भट्टिनी की माध्यम के व्यक्त हुई है। हजारीप्रसाद द्विवेदी स्त्री के इस सामन्ती घुटन को दूर करना चाहते हैं और उसे एक आदर्श भूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं इसलिए उन्होंने भट्टिनी के प्रेम को इतना महनीय एवं गौरवशाली रूप प्रदान किया है। भट्टिनी अपने हृदय के प्रेम को व्यक्त करते हुए कहती है – "तुम नहीं जानते कि तुमने मेरे इस पाप कलंकित शरीर में कैसे प्रफुल्ल शतदल खिला रखा है। तुम मेरे देवता हो, मैं तुम्हारा नाम जपने वाली अधम नारी।" हजारीप्रसाद द्विवेदी की प्रतिभा इसी रागात्मक हृदय को व्यक्त करना चाहती है। उन्होंने स्त्री के प्रति सामन्ती दृष्टि के स्थान पर मानवीय दृष्टि को सन्धान किया है। भट्टिनी के प्रति भट्ट के प्रेम की प्रासंगिकता को इसी रूप में देखा जा सकता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रेम का जो निरूपण किया गया है, वह व्यष्टि-सुख की ओर नहीं वरन् समष्टि सुख की ओर उन्मुख है। पूरे उपन्यास में प्रेम की एक अन्तस्सलिला प्रवाहमान दिखाई देती है जो पवित्र, निर्मल एवं मानव कल्याण से अनुस्यूत है। दृप्तादृत प्रेम का ऐसा समुच्चय हिन्दी उपन्यास साहित्य के लिए नई चीज है।

प्रेम एक लौकिक मनोभाव है जो पार्थिव स्तर से ऊपर उठकर अन्त में दिव्य हो जाता है। दिनकर ने 'उर्वशी' में कहा है कि प्रेम का प्रारम्भ देह से होता है किन्तु अन्ततः वह आकाश के अनन्त विस्तार में समाहित हो जाता है – "प्रणय प्रथम मिट्टी कठोर है, तब वायव्य गगन भी।" इस मनोभाव की प्रकृति 'मृण्मय' से 'चिन्मय' की ओर जाने की है। निपुणिका का चरित्र इस धारणा की पुष्टि करता है।

'प्रेम' प्रीति का पर्याय है जिसमें प्रियता होती है। यह प्रियता तृप्ति और आनन्द से सम्बद्ध है। प्रीति और आनन्द प्रदान करने वाला यह मनोभाव मनुष्य के लिए सदैव जटिल और रहस्यात्मक रहा है। 'नारद भक्ति सूत्र' में इसे अभिव्यक्ति नहीं मौन अनुभव से जोड़ा गया है। इसका उद्भव किसी विषय से होता है किन्तु अन्त में यह भावात्मक कलेवर धारण कर लेता है और अनिर्वचनीय हो जाता है। रूप गोस्वामी ने इस भाव को हृदय की स्निग्धता के रूप में देखा है। उन्होंने इसमें ममता की अतिशयता का अभाव बतलाया है। प्राचीन भारतीय शास्त्रकारों की दृष्टि से यह भाव लौकिकता के आलम्बन से ऊपर उठकर भक्ति की दिशा में मुड़ जाता है। उस स्थिति में इसकी शारीरिकता श्रद्धा में परिणत हो जाती है।

पाश्चात्य दार्शनिक हीगेल ने प्रेम के माध्यम से ही 'अभेद' की प्राप्ति बतलायी है। उनका विचार प्रेम को पारस्परिक तादात्म्य भाव के रूप में निर्दिष्ट करना है। हैवलान एलिस ने प्रेम को वासना से अलग माना है। वे प्रेम-कमल के प्रस्फुटन में वासना को बाधा मानते हैं। ब्लादिमिर सोलोनमेन ने इसे अहंकार के विसर्जन के बाद सम्प्राप्त मुक्ति के रूप में रेखांकित किया है। ये सभी विचार प्रेम और वासना में अन्तर करते हुए मन के परिष्कार और औदात्य को संकेतित करते हैं। अहंकार की समाप्ति के बाद प्रेम एक नये स्वरूप में ढल जाता है और वह दो प्राणियों की चित्तवृतियों को एकाकार कर देता है। यह अद्वैत मूलतः मानसिक होता है। प्रेम की गहन भावना जब लौकिक स्तर से ऊपर उठकर सूक्ष्म रूप से प्रसरणशील हो जाती है तब एक औदात्य का सम्मूर्तन होता है। बाणभट्ट की निपुणिका के चरित्र-संयोजन में लेखक ने इस सत्य की सिद्धि का ध्यान रखा है।

आधुनिक काल में प्रेम को लैंगिक आकर्षण से जोड़ा गया है जिससे यह वासना का समानार्थक हो गया है। द्विवेदीजी ने जिस तरह नये औपन्यासिक रूप और अभिनव कथा-विन्यास को वरीयता दी है उसी तरह उन्होंने प्रेम पर नए ढंग से विचार किया है। उन्होंने अपनी कथा का समापन गूढ़ प्रेम की मानसिकता के साथ किया है। उनकी निपुणिका का प्रेम वासनात्मक आकर्षण से प्रारम्भ होता है किन्तु अन्ततः उसकी परिणति उदात्तता में होती है। वह देह की मलिनता से मन की शुभ्रता की ओर बढ़ती है। बाण के प्रति उसका लगाव प्रारम्भ में वासनात्मक है किन्तु वह नाटक-मण्डली में रहकर शारीरिक मिलन के सुख से दूर रहती है। उसे मालूम है कि बाण नारी-शरीर को देव-मन्दिर की तरह पावन मानता है किन्तु वह याद दिलाती है कि यह पवित्र मन्दिर भी मूलतः हाड़ मांस से निर्मित है। बाण उसकी शारीरिक प्रकार की अवहेलना कर देता है जिससे उसका हृदय क्षत-विक्षत हो जाता है। वह इस घटना को बाण की जड़ता के रूप में देखती है और अपने प्रेमी का साथ छोड़ देती है। वह कई वर्षों तक इधर-उधर भटकती है। इस क्रम में उसकी वासना शमित हो जाती है और उसके चरित्र में उदातत्ता का समावेश हो जाता है। वह अपने क्षोभ को भूल जाती है और उसका दैहिक मोह भक्ति में रूपान्तरित हो जाता है। बाण से पुनः भेंट होने पर वह उसके गुरुत्व के प्रति नतमस्तक होती है। जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरती हुई निपुणिका का प्रेम सघन हो जाता है। वह देह के यथार्थ का अतिक्रमण कर आदर्श के आकाश में विचरण करने लगती है। निपुणिका अपनी हीनता में महत्ता की प्रतीति कराती है और उसे ज्ञात है कि बाण भट्टिनी के प्रति आकृष्ट है किन्तु उसके मन में द्वेष का प्रादुर्भाव नहीं होता है। वह भट्ट से आन्तरिक प्रेम करती है और भट्टिनी को भी अधोगति से उबारना चाहती है। उपन्यास के अन्तिम हिस्से में वह अभिनय करती हुई प्राण दे देती है। इस क्रम में भट्टिनी और

बाण के हाथों वह ईर्ष्या मुक्त होकर उन्हें परस्पर-सम्बद्ध कर देती है। उसके चरित्र की यह उच्चता प्रेमगत दिव्यता की परिचायिका है।

बाण निपुणिका के आकर्षण से अपरिचित नहीं है। वह मन से उसका आराधक है किन्तु शारीरिक दृष्टि से वह कोई ऐसा प्रयत्न नहीं करता है जिससे प्रेमगत क्षुद्रता सामने आए। बाण और निपुणिका का यह प्रणय-सम्बन्ध लौकिकता में अलौकिकता की प्रतीति कराता है। वासना को जीवन-साधना के रूप में परिणत कर देने वाली यह कथा मर्मस्पर्शी है। फ्रायड ने काम-तत्त्व में जिस उदात्तीकरण का उल्लेख किया है यहाँ उसका अनुभव किया जा सकता है। दैहिक आकांक्षा का पर्यवसान जब उदात्त भावनाओं में होता है तब प्रेम का निखरा हुआ स्वरूप सामने आता है। निपुणिका के चरित्र में यह निखार भली-भाँति देखा जा सकता है। बाण, निपुणिका और भट्टिनी के द्वारा उपन्यासकार ने जिस प्रेम-त्रिकोण की रचना की है उसमें निपुणिका अपने बलिदान और असूया मुक्त आचरण से प्रेम की दिव्यता का सन्देश देती है। बाण भट्टिनी के प्रति आसक्ति रखता है और भट्टिनी भी उसके प्रति गहन आकर्षण का अनुभव करती है किन्तु इन दोनों के प्रेम में भी सात्त्विकता है। देह के स्तर पर इनका मिलाप नहीं होता है लेकिन भावना के धरातल पर दोनों में एकात्मकता की स्थिति देखी जाती है।

भट्टिनी निपुणिका और बाणभट्ट के सहयोग से छोटे राजकुल के अवरोध से मुक्त होती है। बाण उसकी सेवा में सदैव तत्पर रहता है किन्तु खुलकर अपने प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं करता। भट्टिनी का प्रेम भी शब्दों में प्रकट नहीं होता है। यह मौन प्रणय हमें एक आदर्श लोक में ले जाता है। यहाँ कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन दिखाई नहीं पड़ता है। बाण नहीं, महामाया के समक्ष भट्टिनी अपने मनोभाव को प्रकट करती है। वह बाण के प्रथम दर्शन के प्रभाव को स्पष्ट रूप से महामाया के समक्ष प्रकट करती है। उसकी स्वीकारोक्ति है कि बाण के प्रथम सम्भाषण ने उसके जीवन को एक नई दिशा देने का काम किया था। वह बाण के सान्निध्य में अपनी सार्थकता को समझ पाई थी। उसका कहना है – "मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि भगवान् ने नारी बनाकर मुझे धन्य किया है, मैं अपनी सार्थकता पहचान गई।" उसकी दृष्टि में भट्ट पृथ्वी का पारिजात, भवसागर का पुण्डरीक और कण्टकों से भरे भुवन का मनोहर कुसुम है।

निपुणिका की तरह ही भट्टिनी में ईर्ष्या का लेशमात्र नहीं है। उसे ज्ञात है कि निपुणिका बाण से प्रेम करती है किन्तु वह निपुणिका के प्रति कोई भी पूर्वाग्रह नहीं रखती है। निपुणिका और भट्टिनी के माध्यम से द्विवेदीजी ने प्रेम की उच्चता का अंकन किया है। इन नारी-पात्रों की लौकिकता को उन्होंने स्वर्गीयता प्रदान की है। वासना तृप्ति खोजती है किन्तु सच्चा प्रेम मिलन की प्रत्याषा नहीं रखता है। निपुणिका निम्नकुल-जन्मा है किन्तु उसमें चारित्रिक भव्यता के दर्शन होते हैं। इसी तरह सब कुछ खोकर राजकन्या भट्टिनी साधारण जीवन जी रही है। ये दोनों निस्व पात्र हैं किन्तु इनमें प्रेम की उदात्तता के कारण स्वत्व की चेत दिखाई पड़ती है। प्रेम इन्हें बल प्रदान करता है। यह बल उन्हें प्राप्ति नहीं, उत्सर्ग से उपलब्ध होता है। इन अकिंचन पात्रों में प्रेम का जो प्रकाश मिलता है उसमें किसी प्रकार की कालिमा नहीं है। ये अपनी शुभ्रता से सबको आलोकित करने में सफल नारियाँ हैं।

3.4.3. पाठ-सार

प्रणय-भावना साहित्य की एक चिराचरित विषय-वस्तु है। इस प्रणय की परिणति संयोग के सुखान्त में देखी जाती है किन्तु शास्त्रकारों ने कहा है कि शृंगार का सर्वोत्कृष्ट रूप विप्रलम्भ में घनीभूत होता है। वियोग संयोग की अपेक्षा अधिक हृदयविदारक कहा जा सकता है। मिलन नायक-नायिका की तृप्ति का विधान करता है और वियोग उनके विच्छेद का। निपुणिका और भट्टिनी बाण से जुड़ी हुई हैं किन्तु अपने प्रिय के साथ उनका मिलन उपन्यास में वर्णित नहीं हुआ है। निपुणिका और भट्टिनी के जीवन में विप्रलम्भ शृंगार की बड़ी भूमिका है। यह प्रेम की पीड़ा को एक उदात्तता प्रदान करने वाली स्थिति है। मिलन एक दैहिक यथार्थ है और विरह एक मानसिक कसक है। निपुणिका और भट्टिनी का आख्यान इस विरह को श्रेयस्कर सिद्ध करता है। निपुणिका की दृष्टि में प्रेम उत्सर्ग है और भट्टिनी के व्यवहार से यह प्रकट होता है कि प्रणय शब्दातीत है। निपुणिका अपने प्रणय को प्रकट करती है किन्तु वह भट्टिनी के लिए मार्ग प्रशस्त कर देती है। वह मिटकर अपने प्रेमी को बाधा-मुक्त करती है। उसमें किसी तरह का ईर्ष्या-द्वेष नहीं है। भट्टिनी में भी स्वार्थगत संकीर्णता नहीं है वह निपुणिका के साथ किसी प्रकार की स्पर्धा नहीं रखती है, किन्तु प्रेम-पात्र बाणभट्ट को पाने के लिए वह किसी तरह की पहल भी नहीं करती है। उसका प्रेम मौन के आवरण में प्रगाढ़ होता है। महादेवी के एक विरह-गीत में एक पंक्ति आती है जो प्रेम के संगोपन और अमुखरित स्वरूप की ओर इंगित करतीहै –

अब सीख ले मौन का मन्त्र नया,
यह पी पी घनों को सुहाता नहीं।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' की भट्टिनी के प्रेम में कही भी कातर पुकार और वाचालता नहीं है। उसके मौन में उसका प्रेम-प्रवण चित्त स्पन्दित है। प्रणय का यह आत्मपरक रूप अपनी निगूढ़ता में अन्यतम है। निपुणिका और भट्टिनी विप्रलम्भ शृंगार की उदात्तता को व्यंजित करती हैं। उनके प्रेम में प्रांजलता है, किसी प्रकार की म्लानता नहीं। वह निष्कलुष स्वर्ग की तरह है। कवि विद्यापति ने कहा था कि सज्जनों का प्रेम हेम अर्थात् अतुलनीय स्वर्ण की तरह होता है जिसमें किसी प्रकार की खोट नहीं देखी जाती है – "सुजनक पेम हेम समतूल।" यह स्वर्ण जितना जलता है उतना ही निर्दोष होता चला जाता है। सोना जब पूर्णतः तप जाता है तब उसे कुन्दन की संज्ञा प्राप्त होती है। निपुणिका और भट्टिनी के प्रेम की स्वर्णाभा कुन्दन की दीप्ति के समकक्ष है।

3.4.4. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भट्टिनी किस देव की उपासिका है ?
   (क) शिव
   (ख) कृष्ण
   (ग) इन्द्र

(घ) महावराह

सही उत्तर – (घ)

2. भट्टिनी के पिता का क्या नाम है ?

(क) विरतिवज्र

(ख) अघोर भैरव

(ग) तुवरमिलिंद

(घ) बाण

सही उत्तर – (ग)

3. निपुणिका का जन्म किस कुल में हुआ था ?

(क) ब्राह्मण

(ख) क्षत्रिय

(ग) कांदविक

(घ) इनमें से कोई नहीं

सही उत्तर – (ग)

4. निपुणिका किस कला के प्रति समर्पित है ?

(क) नाट्यकला

(ख) चित्रकला

(ग) स्थापत्यकला

(घ) मूर्तिकला

सही उत्तर – (क)

5. उपन्यास के समापन क्रम में किस नारी ने प्राण विसर्जन किया है ?

(क) भट्टिनी

(ख) निपुणिका

(ग) सुचरिता

(घ) महामाया

सही उत्तर – (क)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. क्या प्रेम दैहिक होता है ? 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के सन्दर्भ में स्पष्ट कीजिए।
2. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रेम की परिणति किस रूप में हुई है ?
3. "निपुणिका और भट्टिनी के प्रेम में अधूरापन है।" विवेचना कीजिए।
4. क्या 'बाणभट्ट की आत्मकथा' विप्रलम्भमूलक प्रेम का आख्यान है ? विवेचना कीजिए।

5. क्या प्रेम भोगमूलक ही होता है ? 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के सन्दर्भ में विवेचन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निरूपित प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. निपुणिका के चरित्र में प्रेम की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
3. भट्टिनी के चरित्र के सन्दर्भ में प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
4. "संयोग नहीं वियोग शृंगारिक प्रेम की पराकाष्ठा है।" निपुणिका और भट्टिनी के सन्दर्भ में इस धारणा का सम्यक् विश्लेषण कीजिए।
5. प्रेम की उदात्तता को ध्यान में रखते हुए निपुणिका और भट्टिनी के चरित्रों की तुलना कीजिए।

3.4.5. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. विचार और वितर्क, डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी
2. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी
3. हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्री विवेचन, डॉ॰ चण्डीप्रसाद द्विवेदी
4. हिन्दी साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, डॉ॰ मक्खनलाल शर्मा
5. हिन्दी साहित्य और संवेदना, डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : कहानी – 1

इकाई – 1 : उसने कहा था – चन्द्रधर शर्मा ‘गुलेरी’

इकाई की रूपरेखा

4.1.01. भूमिका
4.1.02. कथावस्तु
4.1.03. रचना-प्रक्रिया
4.1.04. प्रस्तुतीकरण
4.1.05. पात्र चरित्र-चित्रण
4.1.06. देशकाल और वातावरण
4.1.07. तत्कालीन समस्याएँ
4.1.08. शीर्षक की सार्थकता
4.1.09. भाषा-शैली
4.1.10. पाठ-सार
4.1.11. सन्दर्भ सूची

4.1.01. भूमिका

चन्द्रधर शर्मा ‘गुलेरी’ द्वारा लिखित कहानी ‘उसने कहा था’ कहानी का प्रकाशन सन् 1915 में ‘सरस्वती’ पत्रिका में हुआ। यह कहानी हिन्दी कहानी साहित्य की महान् उपलब्धि मानी जाती है। इसके पूर्व गुलेरीजी की ‘सुखमय जीवन’ और ‘बुद्धू का काँटा’ नाम से दो और कहानियाँ प्रकशित हो चुकी थीं परन्तु ‘उसने कहा था’ कहानी विषय-वस्तु और शिल्प की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक मौलिक एवं सशक्त कहानी है। राजेन्द्र यादव आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रारम्भ इसी कहानी से मानते हैं। प्रेमचंद तथा जैनेन्द्र के समान गुलेरीजी किसी स्कूल या वाद को जन्म देने वालों में से नहीं थे परन्तु उन्होंने अपनी पूर्ववर्ती कहानी परम्परा से हटकर मानव चरित्र का उद्घाटन पात्रों की वैयक्तिक विशेषताओं के आधार पर किया है। साथ ही, उसका सम्बन्ध समाज के व्यापक पक्ष से भी जोड़ा है। यही उनका अपना महत्त्व है।

प्रत्येक लेखक अपनी रचना किसी विचार, भाव, मत या आदर्श को लेकर लिखता है। प्रेमचंद-युग के कहानीकार चन्द्रधर शर्मा ‘गुलेरी’ भी ऐसे ही कथाकार थे। ‘उसने कहा था’ कहानी एक ऐसा ताजमहल है जिसे जितनी बार देखा-परखा जाए, नया दिखाई देखता है। इसमें कैशोर्यवय की प्रीति का उदात्त और त्यागमय स्वरूप, वीरता, शौर्य, त्याग और प्रेम पर सर्वस्व न्योछावर करने का आदर्श कथानायक लहनासिंह के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

'उसने कहा था' प्रेम की उदात्त मनोभूमि की कहानी है। यद्यपि हिन्दी में ही नहीं भारतीय भाषाओं में तथा विश्व की अन्य भाषाओं में प्रेम की अनेक कहानियाँ हैं किन्तु उनमें से 'उसने कहा था' इस अर्थ में बिल्कुल अलग है कि यहाँ प्रेम अखण्ड विश्वास है एवं प्राणोत्सर्ग कर भी प्रेमी उस विश्वास की रक्षा करता है। इस कहानी में लहनासिंह और सूबेदारनी का उदात्त प्रेम उन सबसे अलग है। बालक और बालिका का प्रेम, प्रेम नहीं कहा जा सकता। वे दोनों जिस अवस्था में हैं उसमें तत्कालीन परिवेश में उनके प्रेम की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

गुलेरीजी प्रेमचंद के ही समकालीन थे। जिस समय यह कहानी लिखी गई वह अंग्रेजों से संघर्ष का समय था। स्वाधीनता आन्दोलन चरम पर था और देश की शक्तियाँ एकत्रित होकर लड़ रही थीं। व्यक्तिगत प्रेम से बढ़कर राष्ट्र प्रेम था परन्तु व्यक्ति प्रेम के साथ राष्ट्र प्रेम का निर्वाह किस तरह हुआ है उसकी पड़ताल इस कहानी के माध्यम से करेंगे।

4.1.02. कथावस्तु

उसने कहा था कहानी का उदेश्य मात्र चमत्कार अथवा मनोरंजन नहीं है। उनमें कला का उपयोग जीवन के लिए हुआ है। कहानी का मूल स्वर प्रेम और कर्त्तव्य ही रहा है। लेखक ने इस युद्ध और प्रेम-प्रधान कहानी द्वारा जीवन के ऊँचे सिद्धान्त तथा आदर्श प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। यहाँ सामान्य नायक-नायिका का स्थूल शारीरिक प्रेम नहीं है वरन प्रशान्त तथा संयमित प्रेम की अभिव्यंजनाहै।

उसने कहा था कहानी का मूल भाव प्रेम है परन्तु यहाँ प्रेम की परिस्थति अन्य कहानियों की अपेक्षा भिन्न है। 'उसने कहा था' कहानी प्रेम और कर्त्तव्य की भूमि पर सुगठित है। इस कहानी में गुलेरीजी की कहानी-कला का चरम रूप मिलता है, साथ ही प्रेम और कर्त्तव्य भावना का भी। इस कहानी के प्रारम्भ में बचपन का सहज आकर्षण वर्णित है। यही आकर्षण अन्त में कर्त्तव्य में परिणत हो जाता है। कहानी का आरम्भ अमृतसर के चौक में होता है जहाँ एक लड़का और लड़की मिलते हैं। अक्सर इसकी भेंट कहीं-न-कहीं हो जाती है और एक दिन लड़का लड़की को ताँगे के नीचे आने से बचाता है। लड़का लड़की की ओर आकर्षित हो बालसुलभ प्रश्न पूछ बैठता है – "तेरी कुड़माई हो गई" और लड़की उत्तर में 'धत्' कहकर भाग जाती है। फिर किसी दिन एक बार वही प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर मिलता है – "हाँ हो गई। देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू"। लड़का यह सुनकर निराश हो जाता है। उस लड़के और लड़की की कथा यहीं समाप्त हो जाती है और तब सैनिक लहनासिंह की कथा आरम्भ होती है जो कि द्वितीय महायुद्ध में भारत की ओर से अंग्रेजों की सहायता के लिए जर्मनी से लड़ने के लिए गया है। वहाँ अपनी प्रखर बुद्धि से वह जर्मन गुप्तचर को पहचान लेता है और उसे अपनी गोली का निशाना बनाता है लेकिन गिरते-गिरते जर्मन लहना की जाँघ में गोली मार देते हैं पर लहनासिंह घाव की परवाह किए बिना उसको गीली मिट्टी से भर शत्रु के आक्रमण का उत्तर देता है और सूबेदार तथा बोधा को सुरक्षित स्थान पर भिजवाने में सफल होता है।

कथा के इस अंश तक भी पाठक लहनासिंह और उस बालक के सम्बन्ध को नहीं समझ पाता है परन्तु लहना की मृत्यु से पहले उसकी स्मृति में सारी कथा स्पष्ट होती जाती है और पाठक को ज्ञात होता है कि वही बालक जमादार लहनासिंह बनता है। उसे वह आठ वर्ष की लड़की याद ही नहीं रहती, लेकिन संयोग से लाम पर जाते समय वह अपनी फ़ौज के सूबेदार के घर जाता है और वहाँ सूबेदारनी के रूप में वह लड़की पच्चीस वर्ष बाद लहनासिंह को फिर से मिलती है। सूबेदारनी ने कहा था – "अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।" और तब अपने प्राणों की भी परवाह न करते हुए भी वह इस कार्य को पूरा करता है और बचपन का वह प्रेम अन्त में कर्त्तव्य में बदल जाता है। आरम्भ बालसुलभ सहज आकर्षण से होता है और वह आकर्षण धीरे-धीरे समय की धूल में कहीं धुँधला जाता है परन्तु कालान्तर में उसका उदय फिर एक बार होता है लेकिन वहाँ यह प्रेम कर्त्तव्य का रूप धारण करता है तथा इसकी चरम परिणति वैवाहिक सम्बन्ध न होकर त्याग और उत्सर्ग के सन्धि-बिन्दु पर होती है। इस कहानी के सम्बन्ध में शुक्लजी का कथन बहुत ही सार्थक है – "घटना के भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है, केवल झाँक रहा, निर्लज्जता के कारण साथ पुकार या कराह नहीं रहा है।"[1]

4.1.03. रचना-प्रक्रिया

गुलेरीजी ने कुल तीन कहानियाँ लिखीं और उनमें से केवल एक ही कहानी 'उसने कहा था' के कारण हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उनकी प्रसिद्धि हो गई। उनकी अन्य दो कहानियाँ 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा' भी उस समय की कहानियों में पिछड़ी हुई नहीं कही जा सकतीं। 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धु का काँटा' में जहाँ अनेक सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है, वहीं 'उसने कहा था' के रचनात्मक उत्साह के पार्श्व में प्रथम विश्वयुद्ध है जो सन् 1914 में प्रारम्भ हो गया था। यह कहानी सन् 1915 ई. में प्रकाशित हुई। इस युद्ध में अंग्रेजों ने भारतीयों से सहायता माँगी और बदले में स्वतन्त्रता देने का वायदा किया। इसी कारण अनेक भारतीय सैनिक युद्ध में लड़ने के लिए भेजे गए। कहानी की कथावस्तु इसी युद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित है।

गुलेरीजी का उद्देश्य चमत्कारपूर्ण विस्मय आदि उपस्थित कर किसी उपदेश विशेष की योजना अथवा किसी रूप में मजेदार किस्से गढ़ कर पाठकों का मनोरंजन करना नहीं था वरन् जीवन अपनी स्थूलता से जिन तथ्यों को उभार कर रखता है, उनसे परे आन्तरिक परिस्थितियाँ और द्वन्द्व भी किस तरह जीवन को नया मोड़ देते रहते हैं, उसे उभारने को लक्ष्य कर इस कहानी की रचना की गई है। बचपन के परिचय के आधार पर ही सूबेदारनी का लहनासिंह पर विश्वास और लहनासिंह का उस विश्वास की रक्षा के लिए मृत्यु को भी वरण कर लेने की दृढ़ता इसी तथ्य का प्रमाण है।

'उसने कहा था' कहानी में मानव मन के सर्वश्रेष्ठ भाव प्रेम को आधार बनाया गया है लेकिन प्रेम का भी स्थूल शारीरिक रूप नहीं है अपितु उसका आदर्श और मर्यादित रूप है। रचना विधान की दृष्टि से 'उसने कहा था'

कहानी आज भी प्रासंगिक और अधुनातन प्रतीत होती है। यह गुलेरीजी की कहानी कला का वैशिष्ट्य ही है कि कहानी की विकास-यात्रा के उस प्रारम्भिक काल में रचित इस कहानी के कथ्य और शिल्प की उदात्तता को आज भी अन्य कोई कहानी स्पर्श नहीं कर पाई है।

4.1.04. प्रस्तुतीकरण

कहानी प्रारम्भ से ही आकर्षण और औत्सुक्य बनाए रखती है। अमृतसर के बाज़ार का वर्णन करके लेखक एक यथार्थ वातावरण की सृष्टि पहले ही कर लेता है और उसमें बालक-बालिका के रूप में कहानी के मुख्य पात्र तथा कहानी की मूल चेतना को उपस्थित करता है।

मध्य भाग का सम्बन्ध कहीं भी अमृतसर के बाज़ार में मिलने वाले लड़के और लड़की से जुड़ता नज़र नहीं आता। अमृतसर से सहसा हम युद्ध के रणक्षेत्र में पहुँच जाते हैं। वहाँ लहनासिंह नामक सिपाही पर ही लेखक की दृष्टि केन्द्रित है और उसके व्यक्तित्व को उभारने में वह पूरी तरह से सफल हुआ है। इसी भाग में कपटी लपटन साहब की कथा आई है जो मनोरंजक होने के साथ-साथ मुख्य कथा को आगे बढाने में भी सहायक है। लहना जब सूबेदार से कहता है – "सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा माथा टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया"।[2] यहाँ पाठक को जिज्ञासा होती है कि सूबेदारनी कौन है? उसका लहना से क्या सम्बन्ध है? उसने लहना को क्या कहने के लिए कहा था? आदि। इस प्रकार मध्य भाग में लेखक कौतुहल और जिज्ञासा की भावना को जगाने में सफल हुआ है।

अन्तिम भाग को पढ़ने के बाद पहले और दूसरे भाग का सम्बन्ध समझ आता है। तब पाठक की जिज्ञासा का शमन हो जाता है। कहानी का समापन अत्यन्त मार्मिक और दु:खात्मक बन गया है। लहनासिंह की मृत्यु के साथ ही कथा का अन्त होता है – "कुछ दिन पहले लोगों ने अखबारों में पढ़ा – फ्रांस और बेल्जियम – 68वीं सूची – मैदान में घावों से मरा – नं. 77 सिख राइफल्स – जमादार लहनासिंह।"

4.1.05. पात्र चरित्र-चित्रण

गुलेरीजी की कहानियों के पात्र देवता, राजा, रानी, भूत-प्रेत, जादूगर आदि नहीं हैं। उन्होंने सामान्य मनुष्य को अपनी कहानी में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इनके कहानी का पात्र वह मनुष्य है जो अपनी भूलों पर पश्चात्ताप करता है, सुख में हँसता है और दु:ख में आठ-आठ आँसू बहाता है। जो जीवन के धूल, धूएँ और धूप में अपने को तपाकर भी अपने मन को शुभ्र चाँदनी की तरह उज्ज्वल और गंगाजल की तरह पवित्र बनाता है। गुलेरीजी की कहानियों के पात्र सामाजिक चेतना से परिपूरित भी है और उसके द्वन्द्वों से आक्रान्त भी ... उनके पात्र मिट्टी की मूर्तियाँ न होकर हाड़-माँस के जीते-जागते नमूने हैं। वे जीवन की सजीव कृतियाँ हैं।

'उसने कहा था' कहानी का कथानायक लहनासिंह है। लहनासिंह सूबेदारनी को दिए गये वचन के कारण बोधा और सूबेदार की रक्षा हेतु अपना आत्मोत्सर्ग करने से भी नहीं चूकता इसी कारण वह मनुष्य होते हुए भी

देवतुल्य हो गया है। किन्तु यहाँ उसका देवत्व आरोपित नहीं लगता है वरन् उसकी निःस्वार्थ एवं उदात्त अनुराग भावना ही त्याग एवं उत्सर्ग का ऐसा अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करती है कि वह पाठक की दृष्टि में देवत्व के पद का भी अतिक्रमण कर जाता है।

सूबेदारनी का व्यक्तित्व प्रभावशाली और आकर्षक है। कैशोर्यवय में हर मेल-मुलाक़ात में उसके मुँह से 'धत्' कहलाकर गुलेरीजी पाठक के कल्पनालोक में उस आठ वर्ष की बाला के अल्हड़ सौन्दर्य का एहसास कराने में सफल हुए हैं। कहानी में सीमित दायरे में ही सूबेदारनी के ममत्व और परिवार की रक्षार्थ सदैव चिन्तित स्त्रियोचित भाव को प्रकट कर दिया गया है। कहानी का यह प्रसंग कि जब सूबेदारनी अपने पति और पुत्र की रक्षा के लिए लहनासिंह से याचना करती है – "मेरे तो भाग फूट गए। ... सरकार ने हम तीमियों की एक घघरिया पल्टन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भरती हुए इसे एक ही बरस हुआ। इसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया। सूबेदारनी रोने लगी, अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।" – सूबेदारनी का अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य और अपने पति के प्रति प्रेमभाव प्रकट होता है। इसी प्रसंग को लक्ष्य कर राजेन्द्र यादव 'उसने कहा था' कहानी को लहनासिंह के प्रेम और त्याग की कहानी के रूप में न देखकर इसे सूबेदारनी के उदात्त एवं गंभीर प्रेम तथा अडिग विश्वास की कहानी के रूप में देखते हैं। सूबेदारनी ने सम्पूर्ण कहानी में अपने संक्षिप्त परिचय के अतिरिक्त केवल दो सार्थक वाक्य बोले हैं – "तेरी कुड़माई हो गई ?" के उत्तर में "देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू"। और फिर पच्चीस वर्ष बाद औपचारिक बातों के साथ – "ऐसे ही इन दोनों को बचना।" सूबेदारनी के ये दो वाक्य लहनासिंह की आत्मा में खुद जाते हैं। दोनों वाक्यों में पच्चीस वर्ष का अन्तराल है तथापि उनके श्रोता लहनासिंह की संग्राहकता में वही तत्परता है।

'उसने कहा था' कहानी में पात्रों की स्वाभाविक सृष्टि की गई है। एक भी पात्र कहीं भी कृत्रिम अथवा अनावश्यक नहीं लगता। पात्रों की स्वाभाविकता के कारण ही पाठक भी घटनाओं से निरन्तर प्रभावित होता रहता है। गोली लगने के बाद मृत्यु के कुछ समय पहले जब लहनासिंह की स्मृति में जीवनभर की घटनाएँ क्रमशः प्रत्यक्ष होती जाती हैं तो शायद ही कोई ऐसा सहृदय पाठक होगा जो प्रत्येक बार कहानी पढ़ते समय वजीरा सिंह के साथ आँसू न बहाता हो।

4.1.06. देशकाल और वातावरण

कहानी का आरम्भ अमृतसर के भीड़ भरे बाजार बंबूकार्ट की बोलीबानी, परस्पर खुलेपन, आत्मीय सम्बन्धों की दुनिया तथा बाजार की जीवन्तता से होता है – "बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जबकि बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले

कभी घोड़े की नानी से अपना निकट यौन सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी उसके गुप्त गुह्य अंगों से डाक्टरों को लजाने वाला परिचय दिखाते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं ... ।" कहानी अमृतसर के भीड़ भरे बाजार से शुरू होकर फ्रांस की धरती पर सिख राइफल्स के जाँबाज जमादार लहनासिंह के बलिदान पर समाप्त होती है । अमृतसर के भीड़ भरे उस बाजार में एक लड़के और लड़की की मुलाक़ात होती है बालसुलभ आकर्षणजनित प्रेम का प्रस्फुटन होता है । उस प्रेम की कड़ी जर्मनी के युद्ध मैदान में जुड़ती दिखती है जहाँ उस लड़के की मुलाक़ात उस लड़की के पति-पुत्र से होती है । कहानी के वातावरण को अगर देखें तो एक तरफ पंजाब की संस्कृति है तो दूसरी तरफ जर्मनी के युद्ध का मैदान । ज्ञातव्य है कि अंग्रेजों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारतीयों से सहयोग माँगा था जिसमें भारतीय सैनिक अंग्रेजों की तरफ से लड़ने गए थे ।

4.1.07. तत्कालीन समस्याएँ

गुलेरीजी की कहानियों में प्रेम की प्रधानता होने के साथ-साथ युगीन समस्याएँ भी उभर कर सामने आई हैं । "गुलेरीजी ने अपने तीनों कहानियों में जो समस्या उठाई है वह समाज के अंचल से ही ली है इसलिए उनमें अनेक सामाजिक समस्याएँ चित्रित की गई हैं । कुछ लेखक सामाजिक वास्तविकता को सम्पूर्ण रूप से कहानी के प्रवाह में स्थापित करने की चेष्टा में उसके सहज विकास से साथ जबरदस्ती करते हैं लेकिन गुलेरीजी उन कथाकारों में से नहीं हैं । उनको सामाजिक समस्याओं को कथा के सहज विकास के साथ जोड़ने में सफलता मिली है । उन्होंने दृष्टि को अपने मन के राग द्वेषों पर ही न गड़ाकर बाहर के जीवन की धूप में विचारने दिया और समाज की सामयिक समस्याओं के प्रति जागरूक रहे ।[3] गुलेरीजी ने 'बुद्धू काकाँटा' तथा 'सुखमय जीवन' में समाज के अन्तराल में फैली हुई कुरीतियों की अवहेलना की । परदे की अस्वस्थ प्रथा, बाल विवाह की समस्या, विवाह से सम्बन्धित दहेज, मुहूर्त आदि प्रथाओं का भी सांकेतिक शैली में चित्रण किया है ।

'उसने कहा था' की लड़की का आठ वर्ष की अवस्था में ही कुड़माई हो जाना और रघुनाथ की पढ़ाई के बीच में ही उन्नीस वर्ष की अवस्था में विवाह होना उस समय की कम उम्र में ही विवाह करने की प्रथा को सामने लाता है । 'बुद्धू का कँटा' में मुहूर्त प्रथा का भी चित्रण हुआ है । "... चिट्ठी आई है, बहुत कुछ बातें लिखी हैं । कहा है कि तुम तो परदेशी हो गए, यहाँ चार महीने के बाद बृहस्पति सिंहस्थ हो जायेगा फिर डेढ़-दो वर्ष बाद तक व्याह नहीं होने इसीलिए छोटी-छोटी बच्चियाँ के व्याह हो रहे हैं, बृहस्पति के सिंह में पहुँचने से पहले कोई चार-पाँच वर्ष की ही लड़की कुँवारी बचेगी । फिर जब बृहस्पति कहीं शेर की दाढ़ में से जीता-जागता निकल आया तो न बराबर का घर मिलेगा न जोड़ की लड़की ।"[4]

4.1.08. शीर्षक की सार्थकता

'उसने कहा था' कहानी के शीर्षक का सम्बन्ध उसकी मूल संवेदना से है । कहानी पढ़ने से पूर्व 'उसने कहा था' शीर्षक सुन कर पाठक के मन में सहसा ये उत्सुकता जगती है कि किसने ? क्या कहा था ? और क्यों कहा था ? कहानी के मध्य भाग में पाठक की उत्सुकता और भी बढ़ती है जब लहना सूबेदार से कहता है –

"सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया।" यहाँ पाठक की एक जिज्ञासा का शमन होता है कि सूबेदारनी ने लहना को कुछ करने के लिए कहा था। तब भी एक प्रश्न बना रहता है कि सूबेदारनी कौन है ? उसका लहना से क्या सम्बन्ध है ? कहानी के अन्तिम भाग में जब पूर्वदीप्ति पद्धति (फ्लैशबैक) के सहारे पाठक लहनासिंह के साथ उसके स्मृति-लोक की यात्रा पर निकल पड़ता है तब क्रमशः उसे ज्ञात होता है कि सूबेदारनी ही वह लड़की है जो बालक लहना को अमृतसर के भीड़ भरे बाज़ार के चौक की एक दुकान पर मिल जाया करती थी। इसी ने अपने पति और पुत्र का भार लहना को सौंपते हुए कहा था कि – "तुम्हें याद है, एक दिन ताँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।" यहाँ कहानी के शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट होती है।

4.1.09. भाषा-शैली

भाषा मनुष्य के मनोभाव की अभिव्यंजना का एक मानसिक साधन है। कहानी में आयोजित पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के साथ कहानी में विचारगत एवं क्रियात्मक तत्त्वों के प्रस्तुतीकरण के लिए भी भाषा ही एकमात्र साधन होती है, क्योंकि कहानी में अभिनयात्मक माध्यमों की भाँति संकेत अथवा प्रदर्शन के द्वारा भावाभिव्यंजना सम्भव नहीं। इसी कारण काव्य, उपन्यास, नाटक आदि की भाषा भिन्न हो जाती है। "कहानी की आदर्श भाषा वह होती है जो पाठक को कहानी के रचनात्मक क्षितिज में प्रवेश कराने में सहायक होती है, बाधा नहीं उपस्थित करती है।"[5] इसी सन्दर्भ में कमलेश्वर का कहना है कि – "कहानीकार के लिए यह बहुत मुश्किल होता है कि वह अपनी भाषा का चुनाव कहाँ से और कैसे करें। ज़िंदगी जो परिदृश्य सामने उपस्थित करती है वह सब भाषा में नहीं होता। कुछ दृश्य है, कुछ मूक क्षण है, कुछ संवेदनाएँ हैं, कुछ अत्याचार और संत्रास है – कहने का मतलब है कि भाषा की खोज करनी पड़ती है।"[6] इसी कारण प्रत्येक कहानीकार की अपनी अलग-अलग भाषा होती है।

यद्यपि 19वीं सदी से ही हिन्दी को गद्य में स्थान मिल गया था लेकिन तब भी अब तक इसका कोई निश्चित रूप नहीं बन पाया था। भारतेन्दु ने गद्य की भाषा को जो स्थिर रूप दिया था, वह केवल गिने-चुने लेखकों तक ही सीमित रहा। महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी को व्यवस्थित करने के लिए प्रयत्नशील थे। उस प्रारम्भिक दौर में गुलेरीजी ने भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' रचना कर समीक्षकों और आलोचकों को हतप्रभ कर दिया। गुलेरीजी द्वारा प्रयुक्त भाषा की रवानी देखते ही बनती है – "हट जा, जीणे जोगिए, हट जा, करमाँ वालिए, हट जा, पुत्ताँ प्यारिए, बच जा, लम्बी वालिए।" इसी बाजार की भीड़ में बारह वर्ष के लहनासिंह और आठ वर्ष की सूबेदारनी की पहली मुलाकात होती है। प्रथम अनायास मिलन का वर्णन देखिए – "ऐसे बंबूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ।" अल्हड़ उम्र के जवान होते किशोर-किशोरी की पहली मुलाक़ात में

अनौपचारिक बातचीत का नमूना देखिए। गुलेरीजी लिखते हैं– "बारह वर्ष के लड़के और आठ वर्ष की लड़की ने एक-दूसरे से जो पूछा वह पहली भेंट में स्वाभाविक ही था। "तेरे घर कहाँ हैं ? मगरे में – और तेरे ? माँझे में – यहाँ कहाँ रहती है ? अतरसिंह की बैठक में, वह मेरे मामा होते हैं। मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाजार में है।" "तेरी कुड़माई हो गई ?" पहली ही भेंट के बाद लड़का पूछता है और लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर "धत्" कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।" एक महीने तक लगातार मिलने तथा वही सवाल बार-बार पूछे जाने पर जब लड़की जवाब देती है "हाँ, हो गई।" "कब ?" "कल, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू" । लड़के के मन में आकर्षणजन्य प्रेम का प्रस्फुटन हो चुका था। अभी तक उसने कहा कुछ नहीं था लेकिन आठ साल की लड़की अपने प्रति उसके आकर्षण को महसूस कर चुकी है इसीलिए तो पच्चीस साल गुजरने के बाद भी सूबेदारनी को भी वो रोज की मुलाकात और वही "तेरी कुड़माई हो गई ?" जस-की-तास याद है और वह जमादार लहनासिंह को लाम पर जाते वक़्त अपने पति-पुत्र की रक्षा की याचना करते हुए उसे दुहराकर याद भी दिलाती है।

बहरहाल, सगाई होने के प्रमाण के रूप में रेशम से कढ़ा हुआ सालू दिखाकर लड़की तो भाग गई लेकिन लड़का इस जवाब को सुनने के लिए तैयार नहीं था इसलिए उसकी मनःस्थिति का चित्रण गुलेरीजी ने इन शब्दों में किया है – "लड़के ने घर की सीध ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते को पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उँड़ेल दिया । सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।" इस विचलन के बाद की मनःस्थिति और उसमें लिए गए निर्णयों पर गुलेरीजी ने कुछ नहीं लिखा। कहानी के लिए यह ज़रूरी भी नहीं था। इस घटना को हुए पच्चीस वर्ष बीत गए, लहनासिंह फौज में जमादार हो गया था कि वह लड़की जो अब सूबेदारनी बन गई है, चमत्कारिक रूप से मिलती है। अब वह उसके सूबेदार की पत्नी है।[7]

'उसने कहा था' नामक कहानी के अधिकांश सारे पात्र पंजाबी हैं इसलिए लेखक ने स्थान-स्थान पर पंजाबी शब्दों का प्रयोग किया है। अमृतसर के इक्केवाले की वचनावली का नमूना निम्न शब्दों में प्रस्तुत है किया गया है। "हट जा, जीणे जोगिए, हट जा, करमाँ वालिए, हट जा, पुत्ताँ प्यारिए, बच जा, लम्बी वालिए।"[8] यदि इक्केवाले की इसी वचनावली को हिन्दी में अनूदित करके लिखा जाता तो इतनी स्वाभाविकता नहीं आ पाती। अपने घर से दूर खंदकों में बैठे हुए सिपाहियों की बातचीत की भाषा भी उनके अनुकूल ही है– "लहनासिंह, और तीन दिन है। चार तो खंदक में ही बिता दिए परसों रिलीफ आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उस फिरंगी मेम के बाग में-मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो। ... लाड़ी हारों को भी यहाँ बुला लोगे। या वही दूध पिलाने वाली फरंगी मेम।"[9]

युद्ध के मैदान में प्रत्युत्पन्नमतिके सहारे शीघ्रता में दिए गए आदेशों में भी गुलेरीजी का कौशल देखते ही बनता है – "अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्र काटे फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ो जाओ। अभी बहुत दूर

न गए होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खंदक की बात झूठ है। चले जाओ खंदक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

युद्ध के मैदान में घायल लहनासिंह के स्वप्न में अतीत साकार हो रहा है, लहनासिंह को युद्ध के मैदान में अपने घर और देश से दूर स्वप्न में सब कुछ याद आ रहा है – "मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।" अपना कर्त्तव्य ईमानदारी से निभाकर अपने अन्तिम समय में लहनासिंह वजीरासिंह की गोदी में सिर रखकर लेटा है। गुलेरीजी का भाव विभोर कर देने वाला शब्द संयोजन देखिए– "मृत्यु के कुछ समय पहिले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुँध बिलकुल उन पर से हट जाती है।" लहनासिंह मानकर चल रहा है कि वह अपने अन्तिम समय में भाई कीरतसिंह की गोदी में सिर रखकर लेटा हुआ है, इसलिए पूछता है "कौन ? कीरतसिंह ? वजीरा ने कुछ समझकर कहा, हाँ। भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। बस पट्ट पर मेरा सिर रख ले। वजीरा ने वैसा ही किया। हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस ! अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने मैंने इसे लगाया था।"

लहनासिंह की मृत्यु की सूचना कहानी के अन्त में जिन शब्दों में मिलती है, वे शब्द पाठक के मन से निकाले नहीं निकलते – "फ्रांस और बेल्जियम – 68वीं सूची – मैदान में घावों से मरा – नं. 77 सिख राइफल्स – जमादार लहनासिंह।"

प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय और परिवेश की अपनी अलग-अलग भाषा होती है। मनोविकास के साथ ही व्यक्ति का भाषा विकास भी होता है। बड़े बालक के समान छोटा नहीं बोल सकता क्योंकि उसका मनोविकास कम होता है। वकील, लेखक, शिक्षक इत्यादि को भाषा का अधिक ज्ञान होता है क्योंकि उसका मनोविकास अधिक हुआ करता है। दूसरी और अशिक्षित व्यक्ति को पग-पग पर अपने भावों को व्यक्त करने में कठिनाई होती है क्योंकि उसका मनोविकास भली-भाँति नहीं हो पाता। इसी कारण प्रत्येक सफल लेखक का गुण है कि वह पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग करें। गुलेरीजी ने अपनी कहानी में सर्वत्र ही पात्रानुकूल और अवसरानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने भाषा में कृत्रिमता का प्रवेश नहीं होने दिया है और वे स्वाभाविकता की रक्षा करने में सफल हुए हैं।

4.1.10. पाठ-सार

हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा को देखते हुए यह पता चलता है कि गुलेरीजी ने अपने समकालीन साहित्यकारों के समान किसी स्कूल या वाद में बँधकर कहानी की रचना नहीं की और न ही किसी प्रकार का कोई वाद छोड़ा लेकिन तब भी परवर्ती समय में उनका महत्त्व ज्यों का त्यों बना हुआ है क्योंकि उन्होंने आख्यायिका

की परम्परा पर लिखने वालों से अलग होकर रचना की शुरुआत की जिसमें कल्पना अथवा चमत्कार की अपेक्षा यथार्थ समाज को महता मिली। गुलेरीजी की रचना-प्रक्रिया और व्यक्तित्व के विश्लेषण से स्पष्ट है कि गुलेरीजी एक प्रकाण्ड पण्डित तथा प्रतिभावान् व्यक्ति थे। उन्होंने बहुत अध्ययन किया था लेकिन तब भी उनकी कहानियों में पुस्तक ज्ञान का बोझिलापन नहीं आ पाया था। गुलेरीजी की कहानियों का उदेश्य मात्र मनोरंजन नहीं था वरन जीवन की वास्तविकता का चित्रण है।

कथावस्तु के रूप में 'उसने कहा था' कहानी का मूल स्वर प्रेम और कर्त्तव्य ही रहा है लेकिन उन्होंने इनके द्वारा जीवन के ऊँचे सिद्धान्त तथा कर्त्तव्य की गहनता को प्रस्तुत करने का प्रयास करने का प्रयास किया है। कहानी के पात्र भी देवत्व के गुणों से आरोपित या इस लोक से अलग किसी अन्य लोक में निवास करने वाले नहीं है वरन वह सब इसी लोक के अपने गुण-दोष से युक्त हैं। उनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। वह लेखक के हाथों की कठपुतली बनकर नहीं आए हैं।

'उसने कहा था' को यदि सफल कहानी की कसौटी पर परखें अथवा नयी कहानी के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखें तो भी दोनों दृष्टियों से यह कहानी सफल प्रतीत होती है। इसमें जिस पूर्व-प्रदीप्ति शैली का प्रयोग किया है वह निश्चय ही अपने समय से बहुत आगे की चीज थी। सन् 1915 ई. में लिखी इस कहानी में नयी कहानी की यथार्थपरकता, प्रामाणिकता, आधुनिकता आदि सन्दर्भ आते हैं। यह सन्दर्भ इस कहानी के महत्त्व को आज और भी अधिक बढ़ा देते हैं।

4.1.11. सन्दर्भ-सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ क्रं. : 463
2. पण्डित चन्द्रधर शर्मा, उसने कहा था, गुलेरीजी की अमर कहानियाँ, सं. : शक्तिधर गुलेरी, पृष्ठ क्रं. : 49
3. विचार और अनुभूति, डॉ॰ नगेन्द्र, पृष्ठ क्रं. : 46
4. पण्डित चन्द्रधर शर्मा, उसने कहा था, गुलेरीजी की अमर कहानियाँ, सं. : शक्तिधर गुलेरी, पृष्ठ क्रं. : 14
5. हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया, डॉ॰ परमानन्द श्रीवास्तव, पृष्ठ क्रं. : 133
6. नयी कहानी की भूमिका, कमलेश्वर, पृष्ठ क्रं. : 199
7. रेशम से कढ़े सालू का स्वप्न और यथार्थ (आलेख), सूरज पालीवाल, हिन्दी समय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा
8. पण्डित चन्द्रधर शर्मा, उसने कहा था, गुलेरीजी की अमर कहानियाँ, सं. : शक्तिधर गुलेरी, पृष्ठ क्रं. : 38
9. वही, पृष्ठ क्रं. : 40
10. हिन्दी कहानी के शिल्पविधि का विकास, डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल
11. हिन्दी कहानी, इन्द्रनाथ मदान
12. मेरी प्रिय कहानियाँ, राजेन्द्र यादव

❖❖❖

खण्ड – 4 : कहानी – 1

इकाई – 2 : कफ़न – प्रेमचंद

इकाई की रूपरेखा

4.2.0. उद्देश्य कथन
4.2.1. प्रस्तावना
4.2.2. घीसू-माधव : शोषणकारी सामाजिक व्यवस्था की देन
4.2.3. मानव के अमानवीयकरण की त्रासदी
4.2.4. सामाजिक सदाशयता से छल
4.2.5. शोषकों के प्रति विद्रोह भाव
4.2.6. कहानी की भाषा-संरचना
4.2.7 पाठ-सार
4.2.8. बोध प्रश्न
4.2.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

4.2.0. उद्देश्य कथन

लेखकीय जीवन के उत्तरार्द्धकाल में प्रेमचंद की यथार्थ-दृष्टि अत्यन्त तीक्ष्ण हो चली थी। उस दौर में आकर वे प्रखरता के साथ सामाजिक-आर्थिक जीवन की निर्मम वास्तविकताओं का उद्घाटन करने लगे थे। प्रेमचंद की लिखी कहानी 'कफ़न' उसी दौर की रचना है जिसमें उन्होंने शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की तह तक पहुँचकर उसके क्रूर और अमानुषिक विधि-विधानों एवं दुरभिसन्धियों का पर्दाफाश किया है। इस पाठ के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि –

i. शोषण पर टिकी सामाजिक व्यवस्था कितनी क्रूर और अमानवीय होती है।
ii. यह व्यवस्था किस प्रकार मनुष्य की तमाम मानवीय संवेदनाओं का गला घोंटकर उसे अमानवीयता की हद तक जड़ बना देती है।
iii. ऐसी व्यवस्था में श्रम की सार्थकता समाप्त हो जाने के कारण किस तरह लोग श्रम से विमुख होते चले जाते हैं।
iv. भूख के आगे कैसे तमाम रिश्ते-नाते, रीति-रिवाज और आचार-विचार बेमाने हो जाते हैं।
v. शोषण का शिकार हो रहे लोगों में किस प्रकार आक्रोश और विद्रोह की चिनगारी सुलगने लगती है।
vi. प्रेमचंद की कथायात्रा में 'कफन' कहानी की क्या अहमियत है।

4.2.1. प्रस्तावना

'कफ़न' प्रेमचंद के लेखकीय जीवन के उपसंहार काल की कहानी है, जब वे सभी तरह के पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर नंगी आँखों से अपने समय और समाज के निर्मम यथार्थ का साक्षात्कार करने लगे थे और उस यथार्थ को मानवीय संवेदनशीलता और कलात्मक वैशिष्ट्य के साथ रचनात्मक अभिव्यक्ति देने में प्रवृत्त हो चुके थे। 'कफ़न' कहानी का प्रकाशन सबसे पहले 'जामिया' (उर्दू) में दिसम्बर, 1935 में हुआ था। हिन्दी में यह मार्च, 1936 में 'चाँद' में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद पहले कथाकार थे जिन्होंने तिलिस्मी और ऐय्यारी दुनिया के जादुई कल्पना लोक में उड़ान भर रहे हिन्दी कथा-साहित्य को जीवन ओर जगत् की वास्तविकताओं के ठोस धरातल पर ला खड़ा किया। अपने पैंतीस वर्षों के सुदीर्घ लेखन-काल में वे उस यथार्थ-बोध को निरन्तर विकसित करते गए। उपन्यासों में 'सेवासदन' से 'मंगलसूत्र' तक तथा कहानियों में 'पंच परमेश्वर' से 'कफन' तक उनके इस वैचारिक और कलात्मक विकास का क्रमिक रूप स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

प्रेमचंद की यथार्थ-दृष्टि पर सन् 1930 तक आदर्शवाद का गाढ़ा रंग चढ़ा रहा। इस आदर्शवाद को प्रतिष्ठापित करने के लिए वे कभी ऐतिहासिक पुनरुत्थानवाद की राह पर आगे बढ़े, कभी सुधारवाद का सहारा लिया तो कभी गाँधीवाद का दामन थामा। इसी के अनुरूप वे समस्याओं का समाधान भी सुझाते रहे। यह समाधान कहीं सदन और आश्रम की स्थापना में, कहीं मानव की सद्प्रवृत्तियों के उभार में, कहीं पश्चात्ताप में तो कहीं शोषकों और अत्याचारियों के हृदय परिवर्तन के रूप में सामने आया लेकिन वास्तविकता से दूर रहने के कारण इस तरह के आदर्शवादी समाधान अधिकांशतः आरोपित प्रतीत होते रहे। इस आदर्शवाद, सुधारवाद और गाँधीवाद के व्यामोह से प्रेमचंद सन् 1930 के बाद मुक्त होते गए। सामाजिक परिदृश्य को देखने-परखने की नजर बदली तो नजरिया भी बदल गया। पहले आदर्श पर जोर था पर अब वे यथार्थ को 'फोकस' करने लगे। सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्ष पद से दिए गए व्याख्यान में उन्होंने कहा – "आधुनिक साहित्य में वस्तु-स्थिति-चित्रण की प्रवृत्ति इतनी बढ़ रही है कि आज की कहानी यथासम्भव प्रत्यक्ष अनुभवों की सीमा के बाहर नहीं जाती। हमें केवल इतना सोचने से ही संतोष नहीं होता कि मनोविज्ञान की दृष्टि से ये सभी पात्र मनुष्यों से मिलते-जुलते हैं बल्कि हम यह इतमीनान चाहते हैं कि वे सचमुच मनुष्य हैं और लेखक ने यथासम्भव उनका जीवन-चरित्र ही लिखा है क्योंकि कल्पना के गढ़े हुए आदमियों में हमारा विश्वास नहीं है, उनके कार्यों और विचारों से हम प्रभावित नहीं होते।" (प्रेमचंद का चिन्तन, सं. : नन्दकिशोर आचार्य, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 179-180) उपन्यासों में 'गोदान' और 'मंगलसूत्र' तथा कहानियों में 'पूस की रात', 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ' और 'कफ़न' में ऐसे ही सचमुच के मनुष्यों को चित्रित किया गया है। इन रचनाओं में प्रेमचंद अपनी ओर से कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करते। वे रचनात्मक विन्यास के साथ दारुण परिस्थितियों का संवेदनशील चित्रण कर चुपचाप अलग हो जाते हैं।

'कफ़न' प्रेमचंद की लिखी अन्तिम कहानी है। इसमें समाज के कठोर यथार्थ के रेशे-रेशे को उघाड़कर उसकी वास्तविकता को बेनकाब करने वाली उनकी यथार्थ-दृष्टि की वेधकता और प्रखरता अपने चरम पर है। पहली बार यह कहानी पढ़ने वाले पाठकों को झटका लगता है। घीसू और माधव का चरित्र उन्हें अविश्वसनीय

प्रतीत होता है लेकिन जब वे इन पात्रों की अन्तर्बाह्य दशा का विश्लेषण करते हुए इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों से अवगत होते हैं तो इनका चरित्र उन्हें सहज, स्वाभविक प्रतीत होने लगता है। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए प्रेमचद ने कहा था – "हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा ... जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।" (प्रेमचंद का चिन्तन, सं. : नन्दकिशोर आचार्य, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 195) 'कफ़न' कहानी पाठकों में गति भी पैदा करती है और बेचैनी भी। इसी में उसकी सार्थकता है।

4.2.2. घीसू-माधव : शोषणकारी सामाजिक व्यवस्था की देन

'कफ़न' कहानी के केन्द्र में घीसू और माधव नामक दो निम्नवर्गीय पात्र हैं। घीसू बाप है और माधव उसका बेटा। दोनों अत्यन्त दीन-हीन हैं। जीवन की अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की कौन कहे, दोनों का शाम को पेट भरना भी उनके लिए सम्भव नहीं हो पाता। दूसरों के खेत से चोरी-छिपे आलू, मटर आदि उखाड़कर वे अपनी क्षुधा शान्त कर लिया करते हैं। भरपेट भोजन उनके जीवन की सबसे बड़ी लालसा बनी हुई है। प्रेमचंद ने उनकी फटेहाली का ब्योरा देते हुए लिखा है – "विचित्र जीवन था इनका ! घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जीये जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त! कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई गम नहीं।" इस बेचारगी से ऊपर उठने के लिए उन्होंने कभी कोई प्रयास नहीं किया। दोनों अव्वल दर्ज के कामचोर थे। कामचोरी का यह हाल था कि "घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना कामचोर था कि आध घण्टे काम करता तो घण्टे भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी भर भी अनाज मौजूद हो तो उनके लिए काम करने की कसम थी।" दोनों ने आकाशवृत्ति को ही जीवन का आधार बना लिया था। एक ओर फटेहाली का आलम और दूसरी ओर कामचोरी की मनोवृत्ति। इन दो स्थितियों को आमने-सामने कर प्रेमचंद ने जो 'कन्ट्रास्ट' उत्पन्न किया है, उससे कई सवाल खड़े हो जाते हैं। सबसे बड़ा सवाल यह कि घीसू और माधव कामचोर क्यों हैं ? मेहनत-मशक्कत कर वे अपनी फटेहाली दूर करने की कोशिश क्यों नहीं करते ? इसका जवाब देने के लिए प्रेमचंद स्वयं आगे आते हैं और कहते हैं – "जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान् था जो किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। ... उसे यह तो तसकीन थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की-सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा तो नहीं उठाते !" यह प्रेमचंद की टिप्पणी-भर नहीं है बल्कि शोषण पर टिकी सामाजिक व्यवस्था का बेबाक विश्लेषण है और इसी से हमें घीसू और माधव की मनोदशा को बारीकी से समझने के सूत्र हाथ लगते हैं। रात-दिन मेहनत करने वाले किसानों की दशा का चित्रण प्रेमचंद 'गोदान' उपन्यास तथा 'सवा सेर गेहूँ' और 'पूस

की रात' जैसी कहानियों में कर चुके थे। अनवरत पसीना बहाने के बावजूद 'गोदान' का होरी और 'सवा सेर गेहूँ' का शंकर किसान से मजदूर बन गया। 'पूस की रात' के हल्कू को भी फसल की रखवाली के लिए ठण्ड की रात में खेत पर सोने की यन्त्रणा झेलने से बेहतर मजदूरी करना ही लगता है। प्रेमचंद इन कथा-कृतियों के माध्यम से शोषणपरक व्यवस्था की उस कड़वी सच्चाई को सामने ला रहे थे जहाँ श्रम की कोई सार्थकता नहीं रह जाती। व्यवस्था की मार श्रमिकों के मन में श्रम के प्रति निराशा और घृणा का भाव उत्पन्न कर देती है। 'सवा सेर गेहूँ' में विप्र के शोषण का शिकार बने शंकर की मनोदशा को व्यक्त करते हुए प्रेमचंद ने लिखाहै – "जब सिर पर ऋण का बोझ ही लदना है तो क्या मन भर का और क्या सवा मन का। उसका उत्साह क्षीण हो गया, मेहनत से घृणा हो गई। ... शंकर आशाहीन होकर उदासीन हो गया।" (प्रेमचंद : प्रतिनिधि कहानियाँ, सं. : भीष्म साहनी, तीसरा संस्करण, 1990, पृ. 60) सन् 1936 में मृत्यु से एक माह पूर्व लिखे गए 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक अन्तिम निबन्ध में प्रेमचंद ने इस शोषणकारी व्यवस्था की भयावहता की ओर इंगित करते हुए लिखा था– "मनुष्य-समाज दो भागों में बँट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किये हुए हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, ज़रा भी रू-रियाअत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाये, खून गिराये और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाये।" (प्रेमचंद का चिन्तन, सं. : नन्दकिशोर आचार्य, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 197) होरी, शंकर और हल्कू मरने-खपने वाले उसी बड़े हिस्से के अंग हैं। हालाँकि उन्हें यह समझ है कि इस बड़े हिस्से को अपने बस में किए रहने वाले कौन लोग हैं, किसानों के श्रम से घर किनका भरता है और मेहनतकश तबके के श्रम का लाभ कौन उठाते हैं। 'गोदान' में होरी भोला से कहता भी है – "सब तरह किफायत करके देख लिया भैया, कुछ नहीं होता। हमारा जन्म इसलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाएँ और बड़ों का घर भरें।" ('गोदान', प्रेमचंद, राजपाल एंड सन्स, संस्करण : 1990, पृ. 23) घीसू और माधव शोषण पर आधारित इसी सामाजिक व्यवस्था की देन हैं। उनकी कामचोरी की प्रवृत्ति को इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है। होरी, शंकर और हल्कू शोषण की सच्चाई को समझने के बावजूद उसका प्रतिकार नहीं करते। लेकिन घीसू और माधव अपने श्रम से दूसरों का घर भरने को तैयार नहीं होते। वे श्रम करना ही छोड़ देते हैं। यह उनका प्रतिकार है। वे भूखे रहते हैं, फटेहाली में ज़िंदगी गुजारते हैं पर इस संतोष के साथ कि कमोबेश उन्हीं जैसी ज़िंदगी गुजारने वाले किसानों की तरह उन्हें रात-दिन मेहनत-मशक्कत तो नहीं करनी पड़ती। उनका यह प्रतिकार शोषणमूलक व्यवस्था के मुँह पर बड़ा तमाचा है और यहीं 'कफ़न' का यथार्थबोध 'गोदान' एवं अन्य कृतियों से आगे निकल जाता है।

4.2.3. मानव के अमानवीकरण की त्रासदी

शोषणमूलक व्यवस्था अभावों की आँच में झुलस रहे लोगों को श्रम से ही विमुख नहीं करती है बल्कि उनकी मानवीय संवेदनाओं का भी गला घोंट देती है। क्रूर व्यवस्था की मार से उनके भीतर की सहृदयता, आत्मीयता, पारिवारिकता, पारस्परिकता, परदुःखकातरता जैसे मनोभावों का लोप हो जाता है। वे मानव तो रहते हैं लेकिन मानवोचित गुणों के कारण नहीं, सिर्फ मानव शरीर धारण करने के कारण। 'कफ़न' कहानी मानव के

अमानवीकरण की इस त्रासदी को विडम्बना के साथ उजागर करती है। प्रेमचंद कथा-प्रसंगों के साथ अमानवीकरण की इस प्रक्रिया को इस कौशल के साथ सामने लाते हैं कि हर मोड़ पर उसकी टीस गहराती चली जाती है। कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता है – "झोंपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए थे और भीतर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव-वेदना से पछाड़ खा रही थी।" चुपचाप बैठे बाप-बेटे और प्रसव-वेदना से तड़प रही बुधिया – कहानी के आरम्भ में ही प्रेमचंद दो परस्पर विरोधी स्थितियों को उभारकर विसंगति सिरज देते हैं। घीसू ओर माधव का चुपचाप बैठे रहना बताताहै कि बुधिया की वेदना से दोनों पूरी तरह निस्संग है। उसके दु:ख से इन दोनों का कोई वास्ता नहीं है, किसी प्रकार की हमदर्दी नहीं है। घीसू के भीतर जाकर देख आने की सलाह पर जब बुधिया का पति माधव कहता है कि "मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती ! देखकर क्या करूँ ?" तो इस विसंगति का तनाव और बढ़ जाता है। यह वही बुधिया थी जिसने मेहनत कर घीसू-माधव के घर को व्यवस्था दी थी। पिसाई करके या घास छीलकर वह "इन दोनों बेगैरतों का दोजख" भरती थी। आज वही बुधिया मर रही थी और ये दोनों इस इंतजार में थे कि वह मर जाए तो आराम से सोएँ। बल्कि उन्होंने उसके मरने का ज्यादा इंतजार भी नहीं किया। बुधिया कराह रही थी और ये दोनों आलू खाकर पानी पी लेने के बाद धोती ओढ़कर अलाव के सामने सो गए मानों "दो बड़े-बड़े अजगर, गेंडुलियाँ मारे पड़े हों।" यहाँ विसंगति, विडम्बना के स्तर को छूने लगती है, मानव के अमानवीय हो जाने का तीखा अहसास कराते हुए। स्थिति की असहजता स्पष्ट करती है कि ये दोनों बुधिया से अलग हैं, उसकी वेदना से अलग हैं, पारिवारिकता से अलग हैं और मानवता से भी अलग हो चुके हैं। यह पूरा परिदृश्य स्तब्धकारी है।

प्रसव-वेदना से तड़पती बुधिया को देखने बाप-बेटे में से कोई नहीं जाता। कारण यह नहीं है कि उनसे बुधिया की वेदना देखी नहीं जाएगी। कारण है उनका यह डर कि एक यदि उसे देखने भीतर गया तो दूसरा आलू का बड़ा हिस्सा चट कर जाएगा। पूरी कहानी में पसरी विडम्बना का केन्द्र बिन्दु यही है। घीसू-माधव के लिए भूने हुए आलुओं की अहमियत मर रही बुधिया से कहीं ज्यादा है। उधर वह तड़प रही थी और इधर ये दोनों गर्म-गर्म आलू निकालकर खाने लगे। दो दिनों से भूखे थे इसलिए इतना भी सब्र नहीं था कि आलू को ठण्डा होने दें। गर्म आलू मुँह के भीतर जाने से कभी जबान छिल जाती थी और कभी तालू जलने लगता था लेकिन उसकी उन्हें कोई परवाह नहीं थी। आलू खाने के क्रम में ही घीसू को बीस साल पहले की ठाकुर की बारात याद आ गई जिसमें उसने तृप्त होकर भोजन किया था। उसके जीवन की वह यादगार घटना थी क्योंकि उसके बाद फिर कभी भरपेट भोजन उसे नसीब नहीं हुआ। माधव के जीवन में सौभाग्य का ऐसा क्षण कभी आया ही नहीं था। इसलिए भोज में परोसे गए पकवानों का ब्योरा सुनने के बाद ललचाई मुद्रा में वह कहता है – "अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।" वस्तुतः पकवानों का ब्योरा उसे मानों स्वप्नलोक में पहुँचा देता है। वह बाप से पूछता है – "तुमने एक बीस पूरियाँ खायी होंगी ?" घीसू कहता है – "बीस से ज्यादा खायी थीं !" और तब माधव की हसरत जबान पर चली आती है। वह कहता है – "मैं पचास खा जाता।" बुधिया की कराह के बीच भोज की यह चर्चा असहज स्थिति उत्पन्न करती है। घीसू और माधव का यह अमानवीय रूप उस व्यवस्था के खौफनाक चेहरे को सामने ले आता है जो एक जीते-जागते इंसान को बीस बरस तक भरपेट भोजन से महरूम किए रहती है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि अपने ही परिवार के एक सदस्य के मरने-जीने से ज्यादा चिन्ता उन्हें पेट भरने की होती है।

अन्ततः बुधिया इस दुनिया से विदा हो गई। उसके मरने के बाद घीसू और माधव का नाटकीय व्यापार मानव के अमानवीकरण की प्रक्रिया को और तीव्र कर देता है। बुधिया के जीते-जी बाप-बेटे में से कोई भी उसे झाँककर एक बार देखने तक नहीं गया बल्कि दोनों उसके मरने का इंतजार करते रहे लेकिन उसके मरने के बाद दोनों छाती पीटकर हाय-हाय करने लगे। छाती पीटना और हाय-हाय करना जैसी क्रियाएँ किसी आत्मीय के सदा के लिए बिछुड़ जाने की मर्मान्तक पीड़ा का वेगपूर्ण प्रकटीकरण होती हैं। घीसू और माधव ने भी ऐसा ही प्रदर्शन किया। खुद को शोकाकुल दिखाने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। तभी लोगों की सहानुभूति मिल सकती थी। वह मिली भी। पड़ोस के लोग दौड़े आए और इन्हें समझाया-बुझाया। फिर 'नर्म दिल स्त्रियाँ' भी पहुँची लेकिन घीसू-माधव को उस समय सहानुभूति से भी ज्यादा पैसे की ज़रूरत थी ताकि बुधिया के अन्तिम संस्कार के लिए लकड़ी और कफ़न का प्रबन्ध किया जा सके। उनके अपने घर से तो "पैसा इस तरह गायब था जैसे चील के घोंसले से मांस!" दोनों पहले गाँव के ज़मींदार के पास गए। वहाँ पहुँचकर स्वयं को शोकाकुल दिखाने के लिए उनका स्वाँग और बढ़ गया। घीसू ने रोते-कलपते हुए ज़मींदार से कहा – "सरकार! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुजर गई। रात भर तड़पती रही सरकार! हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मुदा वह हमें दगा दे गई। अब कोई एक रोटी देनेवाला भी न रहा मालिक! तबाह हो गए। घर उजड़ गया। आपका गुलाम हूँ। अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगाएगा। हमारे हाथ में जो कुछ था, वह सब तो दवा-दारू में उठ गया। सरकार की ही दया होगी, तो उसकी मिट्टी उठेगी।" एक ओर मरणासन्न बुधिया के प्रति बाप-बेटे की घोर संवेदनहीनता और दूसरी ओर घीसू का यह कथन – दोनों स्थितियों का अन्तर्विरोध यहाँ एक बार फिर मानव के अमानवीय होते चले जाने की गहरी टीस छोड़ जाता है। ज़मींदार से ये दोनों दो रुपये पाने में सफल हो गए। गाँववालों ने भी मदद की। इससे उनके पास कफ़न के लिए पाँच रुपये की अच्छी-खासी रकम जमा हो गई।

मानव के अमानवीकरण की प्रक्रिया कहानी के तीसरे और अन्तिम परिच्छेद में चरम पर पहुँच जाती है। इस परिच्छेद में प्रेमचंद ने नाटकीयता और मनोवैज्ञानिकता का मिश्रण कर विडम्बनापूर्ण स्थितियों को उभारने में अपने कथा-कौशल का सधा हुआ इस्तेमाल किया है। यहाँ घटित घटनाएँ पाठकों को हतप्रभ कर देती हैं। पैसा हाथ में आने के बाद घीसू-माधव कफ़न खरीदने के लिए बाजार जाते हैं लेकिन वहाँ पहुँचकर भरपेट भोजन की उनकी अतृप्त लालसा कफ़न पर भारी पड़ने लगती है। इस चाहत को दोनों में से कोई खुलकर व्यक्त नहीं करता लेकिन दोनों एक-दूसरे के मन की बात को ताड़ रहे थे। प्रेमचंद ने अलग से कोई ब्योरा दिए बिना घीसू और माधव की इस मनोदशा को मनोवैज्ञानिक संस्पर्श देकर उनके संवाद के माध्यम से ही व्यक्त कर दिया है। संवाद इस प्रकार है –

"तो चलो, कोई हल्का सा कफ़न ले लें।"

"हाँ और क्या? लाश उठते-उठते रात हो जाएगी। रात को कफ़न कौन देखता है? "

- - - - -

"कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है।"

बाप-बेटे कफ़न के लिए तरह-तरह के कपड़े देखते हैं, सूती से लेकर रेशमी तक, लेकिन कोई भी कपड़ा उन्हें जँचता नहीं है। वस्तुतः कफ़न खरीदने का इरादा रह नहीं गया था इसलिए दोनों उसकी व्यर्थता पर एकमत हो गए। कफ़न से सन्दर्भित घीसू-माधव का यह संवाद हमारी सामाजिक मान्यता, रीति-रिवाज, संस्कार और जीवन मूल्यों के सर्वथा विपरीत है। इसका थोड़ा-बहुत अहसास उन दोनों को भी था इसीलिए कफ़न खरीदने के बजाय मधुशाला में पहुँच जाने के बाद "वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे।" यह असमंजस उनके मानसिक द्वन्द्व को प्रतीकित करता है। एक ओर मृतक के लिए कफ़न की ज़रूरत है तो दूसरी ओर उन दोनों की यानी जीते-जागते इन्सानों की भरपेट भोजन की लालसा है। एक ओर रूढ़िबद्ध संस्कार हैं, धार्मिक-नैतिक मान्यताएँ हैं तो दूसरी ओर भूख मिटाने की चाहत। एक ओर परम्परा है तो दूसरी ओर दारुण वास्तविकता। मधुशाला तक पहुँचने में उन्हें किसी तरह की ग्लानि, पश्चात्ताप या अपराध बोध नहीं हुआ लेकिन वहाँ पहुँचकर इस तरह के द्वन्द्व ने दोनों के पाँव स्थिर कर दिए। हालाँकि द्वन्द्व की यह स्थिति ज्यादा देर नहीं। कुछ ही क्षणों में मन-ही-मन एक निर्णयात्मक बिन्दु पर पहुँच जाने के बाद घीसू बढ़ा और गद्दी के सामने जाकर कहा– "साहजी एक बोतल हमें भी देना।" बोतल माँगने का मतलब है मरे को कफ़न देने की जगह जीवित इंसान के भरपेट भोजन की चाहत का जीत जाना। प्रेमचंद ने विस्तार में गए बिना संवाद परिवेश और परिस्थिति के माध्यम से घटनाक्रम को नाटकीय मोड़ देकर संकेत में ही घीसू-माधव की इस मनोदशा को व्यक्त कर दिया है।

मधुशाला की अलग ही दुनिया है। वह लोगों को व्यर्थता बोध से कुछ देर के लिए ही सही, मुक्त कर देने का उपयुक्त मंच है। वहाँ पहुँच जाने पर बाहरी दुनिया के तमाम दुःख, दर्द, अभाव और कष्ट पीछे छूट जाते हैं और बाधारहित आनन्द किलकारियाँ भरने लगता है। प्रेमचंद के शब्दों में – " वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए वे यहाँ भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं या न जीते हैं, न मरते हैं।" घीसू और माधव का मधुशाला में पहुँचना इस बात का प्रमाण है कि वहाँ वे आन्तरिक और बाह्य, सभी तरह के दबावों से मुक्त हो चुके थे। जीवन की बाधाएँ ही उन्हें वहाँ खींच ले गई थीं। दोनों ने मधुशाला में जी भर खा-पीकर अपनी अतृप्त लालसाओं को तृप्त किया। घीसू को तो एक बार ठाकुर की बारात में तृप्ति योग्य भोजन नसीब हो चुका था लेकिन माधव के लिए वैसा भोजन करने का यह पहला ही अवसर था। खा-पी लेने के बाद उसने इस 'अनपेक्षित सौभाग्य' पर उद्गार व्यक्त करते हुए कहा – "बड़ी अच्छी थी बेचारी ! मरी तो खूब खिला-पिलाकर।" घीसू ने भी इससे सहमति जताई और कहा– "मरते-मरते हमारी ज़िंदगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई।" दोनों की यह तृप्ति मृत बुधिया पर आशीर्वाद बरसाने लगी। घीसू ने कहा – "हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है, तो क्या उसे पुन्न न होगा ?" माधव ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा – "ज़रूर से ज़रूर होगा। भगवान् तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं।" कफ़न न खरीदकर उसके लिए जुटाए गए पैसे से भर पेट भोजन कर लेने में ही वे मर चुकी बुधिया की सद्गति की, उसके बैकुण्ठ जाने

की कल्पना कर लेते हैं। उनके लिए अपनी आत्मा की प्रसन्नता पहले ज़रूरी है। समाज, संसार या भगवान् की प्रसन्नता यदि ज़रूरी है भी तो उसके बाद ही।

भरपेट खाने और जी भर पी लेने के बाद जब नशा का रंग चढ़ा तो बाप-बेटे ने खड़े होकर गाना शुरू किया – "ठगिनी क्यों नैना झमकावै ! ठगिनी !" कबीर के इस पद को गाने के पीछे भी गहरा निहितार्थ है। कबीर ने माया को ठगिनी कहा है। माया लोगों को कई रूपों में भरमाती है। पाप-पुण्य, आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक, – ये सब छलनाएँ हैं जिन्हें माध्यम बनाकर माया लोगों को भरमाती रहती है। घीसू और माधव ऐसे तमाम बन्धनों से स्वयं को अलग कर चुके थे। इसलिए आनन्द के इस क्षण में उन्हें वह 'ठगिनी' याद आ जाती है। हालाँकि डॉ॰ बच्चन सिंह ऐसा नहीं मानते। उनकी समझ है कि "ठगिनी पुराने अर्थ में माया नहीं है। यह उस व्यर्थता बोध की प्रतीति है जो घीसू और माधव की अपनी ज़िंदगी है – 'डी ह्यूमनाइज्ड' और बेमानी से भरी ज़िंदगी, डी ह्यूमनाइजेशन की चरम परिणति, व्यर्थता का चरम बोध वहाँ होता है जहाँ उसका बोध ही नहीं होता।" (दस्तावेज, सं. : विश्वनाथप्रसाद तिवारी, 1980, वर्ष – 2, अंक – 7 / 8, पृ. 199)। और इसके बाद का दृश्य है – "फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बनाए, अभिनय भी किया और आखिर नशे में बदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।" यह दोनों की आनन्दानुभूति की चरम अवस्था है जहाँ पहुँचकर वे दोनों अपने अस्तित्व को भी विस्मृत कर देते हैं। वस्तुतः दोनों का यह नाटकीय क्रिया-व्यापार उनके व्यर्थता बोध को और भी त्रासद बना देता है। कहानी यहीं समाप्त हो जाती है लेकिन समाप्ति के बाद वह पाठकों को प्रशान्तता की मनःस्थिति में नहीं पहुँचाती बल्कि उन्हें उद्विग्न करने वाले सौ-सौ सवालों के बीच छोड़ जाती है। सवाल मानव और मानवता से जुड़े हैं, अमानवीयता से जुड़े हैं और मानव को अमानवीय बना डालने वाली शोषणकारी व्यवस्था से जुड़े हैं। प्रेमचंद ने यहाँ अपनी ओर से कोई समाधान नहीं सुझाया है। उन्होंने कलात्मक विन्यास के साथ बस यथार्थ को सामने रख दिया है और उसके आलोक में निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए पाठकों को उन्मुक्त छोड़ दिया है।

4.2.4. सामाजिक सदाशयता से छल

घीसू और माधव के भीतर की मानवीय संवेदना मर चुकी है। वे अमानवीय हो गए हैं। लेकिन समाज का एक बड़ा तबका है जिसमें मानवता बची हुई है, अपने सारे गुणों के साथ। वह तबका एक-दूसरे के सुख-दुःख में भाग लेता है, गाढ़े वक्त में दूसरों की मदद के लिए खड़ा होता है। वह घीसू और माधव को भी उनके हाल पर नहीं छोड़ता। उनकी ज़रूरत के समय भी वह खड़ा होता है, उन्हें कामचोर, आलसी, बेशर्म और झूठा समझने के बावजूद। इसलिए बुधिया मर जाती है तो पड़ोस के लोग सांत्वना देने के लिए दौड़े आते हैं, नर्म दिल स्त्रियाँ आँसू बहाने पहुँच जाती हैं और गाँव के लोग लकड़ी, कफ़न आदि के प्रबन्ध में सहयोग के लिए तत्पर हो जाते हैं। यह समाज की सामूहिक संवेदनशीलता का प्रमाण है। घीसू और माधव अपने छलपूर्ण व्यवहार से समाज की इस सदाशयता का बेजा लाभ उठाते रहते हैं। इस सामाजिक सदाशयता ने उन्हें जीवन की आत्यन्तिक आवश्यकताओं को लेकर एक तरह से निश्चिन्त कर दिया है। उन दोनों ने आकाशवृत्ति को जिस तरह अपने ज़िंदगी का आधार बना लिया है, उसकी एक बड़ी वजह यह सामाजिक सदाशयता भी है।

समाज से घीसू और माधव के कपटपूर्ण व्यवहार के कई प्रसंग कहानी में आते हैं। बुधिया जब प्रसव वेदना से कराहती रहती है तो घर की माली हालत को देखकर माधव को चिन्ता होती है। वह कहता है – "मैं सोचता हूँ, कोई बाल-बच्चा हो गया तो क्या होगा ? सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं घर में।" लेकिन घीसू को इसकी कोई चिन्ता नहीं है। वह पूरी तरह निश्चिन्त है। इसलिए माधव को वह आश्वस्त करते हुए कहता है – "सब कुछ आ जाएगा। भगवान् दें तो जो लोग अभी तक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था, मगर भगवान् ने किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।" यह परनिर्भरता की प्रवृत्ति है। गाढ़ी ज़रूरत होने पर समाज आगे आ ही जाएगा, यह विश्वास उन्हें अकर्मण्यता की ओर ढकेल देता है। अपनी मुसीबत और ज़रूरत से खुद जुझने के लिए वे हाथ-पाँव मारना भी ज़रूरी नहीं समझते। समाज के साथ उनके छलपूर्ण व्यवहार का सबसे निकृष्ट रूप सामने आता है बुधिया के मर जाने के बाद। उसके अन्तिम संस्कार के लिए सहयोग की याचना करने बाप-बेटे सबसे पहले गाँव के ज़मींदार के पास गए। यह आकस्मिक नहीं था। उन्हें पता था कि ज़मींदार से पैसे मिल जाने पर गाँव वालों से और खासकर बनिये, महाजनों से पैसा वसूलना आसान हो जाएगा। ज़मींदार इन दोनों से नफरत करते थे। कारण था, दोनों का चोरी करना, वादा करके भी काम पर न आना। इसलिए दोनों के रोने-धोने के बाद भी उनके मुँह से सांत्वना का एक शब्द नहीं निकला। परिस्थिति को देखकर उन्होंने कुढ़ते हुए दोनों के सामने दो रुपये फेंक दिए। घीसू-माधव को सांत्वना की ज़रूरत थी भी नहीं। उन्हें रुपये चाहिए थे, सो मिल गए। बल्कि ज़मींदार से मिले दो रुपये ने उनके लिए और रकम हासिल करने की राह सुगम कर दी। वस्तुतः शोषणकारी व्यवस्था को खाद-पानी दे रहे ज़मींदार ने गाँव में भय और आतंक का जो माहौल बना रखा था, उसका घीसू और माधव ने बड़ी चालाकी से फायदा उठा लिया। दोनों ने गाँव वालों से यह नहीं कहा कि ज़मींदार ने अपने सिर से बला उतारने के लिए कुढ़कर उनके आगे दो रुपये फेंक दिए। कहा कि ज़मींदार साहब ने दो रुपये दिए हैं। प्रेमचंद लिखते हैं – "जब ज़मींदार साहब ने दो रुपये दिए तो गाँव के बनिये-महाजनों को इन्कार का साहस कैसे होता ? घीसू ज़मींदार के नाम का ढिंढोरा भी पीटना खूब जानता था। किसी ने दो आने दिए, किसी ने चार आने। एक घण्टे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रकम जमा हो गई।" घीसू ने माधव के मुकाबले दुनिया ज्यादा देखी थी। इसलिए उसमें व्यवहार-बुद्धि ज्यादा थी और छल-बुद्धि भी। अनुभव ने इस कला में उसे निष्णात कर दिया था। ज़मींदार के नाम का ढिंढोरा पीटकर रुपये वसूलने में उसने इसी कौशल का सहारा लिया।

लोगों से मिले रुपये लेकर दोनों बाजार गए लेकिन वहाँ कफ़न न खरीदकर मधुशाला में जाकर बैठ गए और खाने-पीने में सारे रुपये उड़ा दिए। यह समाज के साथ, सामाजिक भावना के साथ विश्वासघात है। माधव को इसका थोड़ा-बहुत अहसास होता है। इसलिए वह घीसू से पूछता है – "लेकिन लोगों को क्या जवाब दोगे ? लोग पूछेंगे नहीं, कफ़न कहाँ है ?" घीसू ने हँसते हुए जवाब दिया – "अबे, कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आएगा लेकिन फिर वही रुपये देंगे।" घीसू का हँसकर ऐसा जवाब देना उसके काइँयापन को दर्शाता है। सामाजिक सदाशयता के साथ वह पहले भी विश्वासघात कर चुका है। यही कारण है कि समाज की नजरों में वह आलसी, झूठा और मक्कार बन चुका है। यह बात घीसू भी जानता है। इसलिए समाज के साथ एक बार और विश्वासघात करने में, कफ़न के लिए मिले पैसे को खाने-पीने में उड़ा देने में

उसे न शर्म होती है, न संकोच । सदाशयता को वह समाज की कमजोरी समझता है । इसलिए उसे विश्वास है कि कफ़न की व्यवस्था लोग कर ही देंगे । प्रेमचंद ने 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक निबन्ध में शासकों और शासितों के बीच के वैषम्य को रेखांकित कर चुकने के बाद लिखा है – "अधिक दुःख की बात तो यह है कि शासक वर्ग के विचार और सिद्धान्त शासित वर्ग के भीतर भी समा गए हैं, जिसका फल यह हुआ है कि हर आदमी अपने को शिकारी समझता है और उसका शिकार है समाज । वह खुद समाज से बिल्कुल अलग है, अगर कोई सम्बन्ध है, तो यह कि किसी चाल या युक्ति से वह समाज को उल्लू बनावे और उससे जितना लाभ उठाया जा सकता हो, उठा ले ।" (प्रेमचंद का चिन्तन, सं. : नन्दकिशोर आचार्य, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 197) घीसू की मानसिकता को प्रेमचंद की इस वैचारिकता के आलोक में बेहतर ढंग से समझा जा सकता है । समाज को उल्लू बनाकर लाभ उठाने की कला में उसने महारत हासिल कर ली है । समग्रतः देखा जाए तो यह भी उसके अमानवीकरण का ही दयनीय उदाहरण है ।

4.2.5. शोषकों के प्रति विद्रोह भाव

'गोदान' और 'कफ़न' दोनों में एक-एक ज़मींदार हैं लेकिन उनके प्रति होरी और घीसू-माधव का नजरिया एक जैसा नहीं है । नजरिया ही नहीं, सोच और व्यवहार भी सर्वथा भिन्न है । 'गोदान' का होरी ज़मींदार के सन्दर्भ में कहता है – "जब दूसरे के पाँवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है ।" ('गोदान', प्रेमचंद, राजपाल एंड सन्स, संस्करण – 2009, पृ. 7) लेकिन 'कफ़न' के घीसू-माधव अपने गाँव के ज़मींदार के पाँवों तले गर्दन दबी होने के बावजूद उन्हें सहलाने में विश्वास नहीं करते । इसलिए होरी की तरह वे ज़मींदार के यहाँ नियमित रूप से हाजिरी बजाने तो नहीं ही जाते हैं, बुलाने पर भी नहीं जाते । वादा कर भी लिया तो काम करके उसे निभा देना ज़रूरी नहीं समझते । यही कारण है कि ज़मींदार 'दोनों की सूरत से नफरत करते थे।' कई बार वे दोनों को पीट भी चुके थे । फिर भी बाप-बेटे की सोच और व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया । गाँव के बनिये, महाजन ज़मींदार से भय खाते थे लेकिन घीसू-माधव को उनकी ज्यादा परवाह नहीं थी । ज़मींदार के प्रति दोनों का यह उपेक्षा भाव वस्तुतः शोषणकारी व्यवस्था के प्रति उनके आक्रोश और विद्रोह की परिणति है । विद्रोह की यह भावना उनके मन की गहराई में एक तरह से अवचेतन के स्तर पर रची-बसी हुई थी इसलिए कहानी में वह प्रत्यक्षतः बहुत मुखर नहीं हो पाती लेकिन जब भी प्रसंग बनता है, वह इन दोनों की जबान से फूट पड़ता है । घीसू जब ठाकुर की बारात के भोज में परोसे गए व्यंजनों का ब्योरा रस ले-लेकर सुनाता है तो माधव लालच के साथ कहता है – "अब हमें ऐसा कोई भोज नहीं खिलाता ।" इस पर घीसू की प्रतिक्रिया शोषकों के प्रति उसकी विद्रोही चेतना को तल्खी के साथ उजागर कर देती है । वह कहता है – "अब कोई क्या खिलाएगा ? वह जमाना दूसरा था । अब तो सबको किफायत सूझती है । शादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो ! पूछो, गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहाँ रखोगे ! बटोरने में तो कमी नहीं है । हाँ, खर्च में किफायत सूझती है ।" एक प्रसंग है – मधुशाला का । वहाँ नशा का सरूर चढ़ने के बाद घीसू मृत बुधिया के बारे में माधव से कहता है – "हाँ बेटा, बैकुण्ठ जाएगी । किसी को सताया नहीं । किसी को दबाया नहीं । मरते-मरते हमारी ज़िंदगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई । वह न बैकुण्ठ जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और

अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं !" स्पष्ट है कि उसे शोषण करने वाले 'मोटे-मोटे' लोगों की मुकम्मल पहचान है। वह उन लोगों के आडम्बर से भी भली-भाँति अवगत है। इसलिए वह शोषण करने वाले लोगों और उनके आडम्बरों से विद्रोह कर देता है। बैकुण्ठ जाने के लिए धर्म ग्रन्थों में बताए गए रास्ते पर उसका विश्वास नहीं रह जाने के पीछे यही विद्रोह भावना सक्रिय है।

घीसू-माधव शोषण करनेवालों के विरोध में सीधे-सीधे तनकर खड़े नहीं होते लेकिन उनकी मानसिकता, हाव-भाव, क्रिया-व्यापार, व्यवहार, भाव-भंगिमा और जीवन-पद्धति से वह विद्रोह और आक्रोश बार-बार प्रतिबिम्बित होता है। वे दोनों कामचोर हैं। यह कामचोरी भी उनकी विद्रोही चेतना की ही अभिव्यक्ति है। उन्होंने रात-दिन मेहनत करने वाले किसानों की खस्ताहाली देखकर समझ लिया था कि समाज में श्रम की कोई सार्थकता नहीं रह गई है। इसलिए श्रम करके 'मोटे-मोटे लोग' का घर भरने की जगह उन्होंने श्रम से स्वयं को विमुख कर लिया जो व्यवस्था शोषण पर टिकी है, उसे सिरे से नकारने में घीसू-माधव कुछ उठा नहीं रखते। उस व्यवस्था की रीति-नीति, आचार-विचार, संस्कार, परम्परा, मान्यता, पद्धति, जीवन-मूल्य – सब पर वे एक तरह से हमला बोल देते हैं। यही कारण है कि मृतक के लिए कफ़न के रिवाज को वे व्यर्थ ठहरा देते हैं और कफ़न के लिए लोगों से माँग कर जुटाए गए पैसे से पेट भर भोजन करने और छककर दारू पीने में संकोच नहीं करते। दोनों मृतक की सद्गति के लिए किए जाने वाले धार्मिक विधि-विधानों को भी नकार देते हैं। बैकुण्ठ, भगवान्, धर्म-कर्म आदि से सम्बन्धित संस्कारगत मान्यताओं में उनकी कोई आस्था नहीं रह जाती। वे भगवान् को प्रसन्न करने से ज्यादा महत्त्व स्वयं को प्रसन्न करने को देते हैं। मधुशाला में बैठकर जीवन की सबसे बड़ी लालसा पूरी करते हुए दोनों का जो संवाद है, वह लोक-परलोक, आत्मा-परमात्मा, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, माया, मुक्ति, बैकुण्ठ आदि से जुड़े मिथकीय अर्थबोध को छिन्न-भिन्न कर देता है। प्रेमचंद की यह प्रखर यथार्थ दृष्टि 'गोदान' के रचनाकाल में ही आकार लेने लगी थी। 'गोदान' के आखिरी परिच्छेद में गोबर होरी से कहता है – "जिस पेट को रोटी मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोंग है।" (गोदान, प्रेमचंद, राजपाल एंड सन्स, संस्करण – 2009, पृ. 324) घीसू और माधव उस ढोंग को ढोए नहीं चलते, उसे ठोकर मार देते हैं। वस्तुतः यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने के बाद प्रेमचंद ने पहली बार 'कफ़न' कहानी में ही घीसू और माधव के माध्यम से समाज के दबे-कुचले लोगों में छिपी विद्रोही चेतना को अभिव्यक्त किया है। यह चेतना उनके अपूर्ण रह गए अन्तिम उपन्यास 'मंगलसूत्र' में और भी मुखर हो जाती है जब उपन्यास का नायक देवकुमार आत्मचिन्तन के क्रम में सोचता है – "दरिन्दों के बीच में उनसे लड़ने के लिए हथियार बाँधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं जड़ता है।" (प्रतिज्ञा एवं मंगलसूत्र, विश्व बुक्स, द्वितीय संस्करण, 2007, पृ. 146)

4.2.6. कहानी की भाषा-संरचना

'कफ़न' प्रेमचंद की अन्य कहानियों से सर्वथा भिन्न है – कथ्य की दृष्टि से ही नहीं, भाषिक संरचना और शिल्प-विधान की दृष्टि से भी। यहाँ तक आते-आते उनकी यथार्थदृष्टि में जो प्रखरता आ गई थी, उसे पैनेपन के साथ अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने भाषा का धारदार औजार के रूप में इस्तेमाल किया है। 'कफ़न' में न तो किस्सागोई की उनकी चिर-परिचित शैली परिलक्षित होती है, न भाषा की सादगी का सौन्दर्य। उसकी जगह

सांकेतिकता, नाटकीयता, लाक्षणिकता और व्यंग्यात्मकता का कलात्मक विन्यास भाषा को रचनात्मक अभिव्यक्ति के नये धरातल पर ले जाता है।

कहानी इस प्रकार शुरू होती है – "झोंपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए थे और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसववेदना से पछाड़ खा रही थी। रह-रहकर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई। सारा गाँव अँधकार में लय हो गया था।" इस आरम्भिक अनुच्छेद में ही गहरे संकेत छिपे हुए हैं और प्रेमचंद इसके माध्यम से शुरू में ही कहानी के गंतव्य की ओर इंगित कर देते हैं। जाड़े की रात में बुझा हुआ अलाव घीसू-माधव के भीतर पारिवारिक ममत्व और अपनत्व की गरमाहट चुक जाने की ओर इशारा करता है। बुधिया की चीख सुनकर भी बाप-बेटे का चुपचाप बैठे रहना परिस्थिति के प्रति उनकी उदासीनता और निस्संगता को प्रतीकित करता है। गाँव का अँधकार में लय हो जाना वस्तुतः शोषणकारी व्यवस्था का ही वह गहराता अँधियारा है जिसमें मानवीय संवेदनाएँ कुन्द होती जा रही हैं।

घीसू और माधव निम्नवर्गीय पात्र हैं। प्रेमचंद ने उनकी वर्गीय चेतना के अनुरूप ही अनगढ़ और ठेठ भाषा में उनके संवाद रचे हैं। संवाद योजना छोटे-छोटे वाक्यों में विन्यस्त है जिससे इनमें स्वाभाविकता के साथ त्वरा भी आ गई है। अनलंकृत और आडम्बरहीन भाषा में रचे गए ये संवाद पाठकों को सहज ही पात्रों की मनोभूमि के करीब ले जाते हैं। 'कफ़न' में प्रेमचंद ने संवादों के माध्यम से ही पात्रों के मनोभाव और जीवनगत यथार्थ को ध्वनित कर दिया है। कफ़न के लिए रुपया हाथ में आने के बाद घीसू और माधव के मनोभाव में आए परिवर्तन के प्रसंग में इस विशेषता को देखा जा सकता है। बाजार में पहुँचने पर दोनों कफ़न खरीदने का इरादा त्याग देते हैं। कफ़न की जगह भूख मिटाने की चाहत जोर मारने लगती है। लेकिन मन की यह बात वे एक-दूसरे से ज़ाहिर नहीं करते। उनकी यह मनोदशा उनके इस संवाद से स्पष्ट होती है – "तो चलो, कोई हल्का सा कफ़न ले लें।"

"हाँ और क्या ? लाश उठते-उठते रात हो जाएगी। रात को कफ़न कौन देखता है।"

- - - - -

"कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है।"

कफ़न की व्यर्थता पर इस तरह दोनों का एकमत हो जाना उनके इरादे में आए बदलाव को अलग से कोई विवरण दिए बिना ही स्पष्ट कर देता है। इसी प्रकार ठाकुर की बारात के भोज में परोसे गए व्यंजनों का घीसू जिस ललक के साथ ब्योरा देता है, उससे बाप-बेटे की भूख, लालच, बेचारगी, फटेहाली, सब सामने आ जाती है।

इस कहानी में प्रेमचंद अन्तर्विरोध और विसंगति को उजागर करने के लिए दो परस्पर विरोधी स्थितियों को आमने-सामने कर देते हैं। बुधिया की कराह सुनकर भी बाप-बेटे का चुपचाप बैठे रहना, दवा-दारू न करवाकर

उसके मरने का इंतजार करना, बुधिया की कराह के बीच ही ठाकुर की बरात के भोज की चर्चा, मरणासन्न बुधिया के प्रति दोनों की अमानुषिक उपेक्षा और उसके मरने के बाद छाती पीटकर शोकाकुल होने का प्रदर्शन ऐसी ही स्थितियाँ हैं। यह अन्तर्विरोध और भी तीखा हो जाता है जब कफ़न खरीदने के लिए बाजार पहुँचने पर घीसू कहता है – "कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने की चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।" इन स्थितियों के अन्तर्विरोध से कहानी के यथार्थ की प्रभवान्विति बढ़ जाती है।

दलितों को केन्द्र में रखकर लिखी गई 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'दूध का दाम' आदि कहानियों में, प्रेमचंद की संवेदना पूरी तरह दलित पात्रों के साथ है। वहाँ कथा का विन्यास और भाषा का कौशल भी उन पात्रों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने वाला है। लेकिन 'कफ़न' कहानी में ऐसा नहीं है। यहाँ दलित वर्ग से आने के बावजदू घीसू और माधव के प्रति प्रेमचंद पूरी तरह तटस्थ बने दिखते हैं और उनकी चारित्रिक कमजोरियों पर निर्ममता के साथ प्रहार करते हैं। कहानी में व्यंग्य का नश्तर यदि उन्होंने शोषणकारी परिस्थितियों पर चलाया है तो इन पात्रों को भी बख्शा नहीं है। घीसू और माधव की कामचोरी का तल्ख भाषा में परिचय दे चुकने के बाद प्रेमचंद की टिप्पणी है – "अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें संतोष और धैर्य के लिए संयम और नियम की बिल्कुल ज़रूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी।" इसी क्रम में आगे वे कहते हैं – "घीसू ने इसी आकाशवृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था।" मधुशाला में कफ़न के पैसे से दावत उड़ाने की तस्वीर इस प्रकार है – "दोनों इस वक्त शान से बैठे हुए पूरियाँ खा रहे थे, जैसे – जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ था, न बदनामी की फिक्र। इन भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले जीत लिया था।" इस 'ट्रीटमेंट' से कहानी में अन्तर्निहित यथार्थ समग्रता में अपना प्रभाव छोड़ पाता है। कहानीकार का मूल आशय कहानी समाप्त हो चुकने के बाद ही स्पष्ट हो पाता है और तब घीसू और माधव के प्रति पाठकों का नजरिया हिकारत भरा न रहकर सहानुभूतिपूर्ण हो जाता है।

सन्दर्भ-विशेष में विवरणात्मकता प्रेमचंद की भाषा की खास विशेषता रही है। इस तरह के विवरण से परिवेशगत यथार्थ सघन हो जाता है और पूरी कहानी को विश्वसनीयता का आधार मिलता है। यह विवरणात्मकता ठाकुर की बारात की भोज के वर्णन में दृष्टिगत होती है। घीसू उस भोज का जैसे भरा-पूरा चित्र खींच देता है – "लड़की वालों ने सबको भरपेट पूरियाँ खिलाई थीं, सबको ! छोटे-बड़े सबने पूरियाँ खायीं और असली घी की ! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई। अब क्या बताऊँ कि उस भोज में क्या स्वाद मिला।" मधुशाला में भी दोनों के खाते समय भोज्य पदार्थों का ऐसा ही विवरण है। भूना हुआ गर्म-गर्म आलू खाने का समय का दृश्य है – "इतना सब्र न था कि उन्हें ठण्डा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें जल गईं। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा तो बहुत ज्यादा गर्म न मालूम होता, लेकिन दाँतों के तले पड़ते ही अन्दर का हिस्सा जबान और हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे को मुँह में रखने से ज्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाए। वहाँ उसे ठण्डा करने के लिए काफी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द-जल्द निगल जाते। हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते।" इसी प्रकार मृत बुधिया

का चित्र है – "सबेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा, तो उसकी स्त्री ठण्डी हो गई थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारी देह धूल से लथपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।" प्रेमचंद ऐसे स्थलों पर सिर्फ सूचना देकर आगे नहीं बढ़ जाते। वे पूरी स्थिति का ऐसा सजीव दृश्यांकन करते हैं कि वह पाठकों की अनुभूति का अंग बन जाती है।

कहानी में विसंगति को प्रभावी ढंग से उभारने के लिए नाटकीय व्यापार का भी प्रयोग किया गया है। बुधिया के मरने पर घीसू और माधव का 'हाय-हाय' करना और छाती पीटना रोना नहीं, रोने का नाटक है। बुधिया के जीते-जी उसके प्रति दोनों की संवेदनहीनता के बरअक्स यह नाटकीय क्रिया-व्यापार मानव के अमानवीकरण की त्रासदी को मूर्त कर देता है। इस नाटकीय व्यापार का विडम्बनात्मक रूप कहानी के अन्त में भी परिलक्षित होता है जहाँ शराब का नशा चढ़ने के बाद दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बनाए, अभिनय भी किये और आखिर नशे में बदमस्त होकर वहीं गिर पड़े। एक ओर घर में मृत पड़ी बहू-बीवी बुधिया और दूसरी ओर नशे में धुत बाप-बेटे का यह नाटकीय व्यापार कहानी की यथार्थगत विडम्बना को गहरा देता है।

'कफ़न' में प्रेमचंद ने लेखकीय हस्तक्षेप ज्यादा नहीं किया है। इसलिए पूरी कहानी में एकतानता बनी रहती है। प्रेमचंद का कलात्मक कौशल यह है कि यहाँ घटना, पात्र, परिवेश और परिस्थिति – सब एक साथ सक्रिय रहते हुए कहानी का समग्र प्रभाव उत्पन्न करते हैं। शम्भुनाथ ने सही कहा कि – " 'कफ़न' भारतीय निम्न वर्ग का औपन्यासिक महाकाव्य है। इसका एक-एक शब्द कविता के समान गहरे संवेदनों, व्यंग्यार्थ तथा कलात्मक सौन्दर्य लेकर चलता है।" (दस्तावेज, सं. : विश्वनाथप्रसाद तिवारी, 1980, वर्ष-2, अंक - 7/8, पृ. 72)

4.2.7. पाठ-सार

'कफ़न' कहानी के इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था से आपका साक्षात्कार हुआ होगा। आपने यह भी समझा होगा कि विषमतामूलक इस व्यवस्था का स्वरूप कैसा है, खाद-पानी देकर इस व्यवस्था को जिलाए रखने वाले लोग कौन हैं, इसके कायम रखने के कारण क्या हैं और इस व्यवस्था का परिणाम कितना घातक होता है। वस्तुतः लेखकीय जीवन के उत्तरार्द्ध में आकर प्रेमचंद की यथार्थ-दृष्टि अत्यन्त तीक्ष्ण और प्रखर हो गई थी। इस दौर की कथा-कृतियों के माध्यम से वे कठोर यथार्थ के निर्मम विधान के रेशे-रेशे को उघारने लगे थे। 'कफ़न' में भी उन्होंने शोषण पर टिकी विषमतामूलक सामाजिक व्यवस्था के भयावह दुष्परिणामों को उजागर किया है। घीसू और माधव जैसे लोग इसी व्यवस्था की देन हैं। व्यवस्था की मार से उन दोनों के भीतर की मानवीय संवेदनाएँ दम तोड़ चुकी हैं। उनके जीवन का सबसे बड़ा सच भूख है। भूख के आगे वे तमाम रिश्ते-नातों को ही नहीं, पारिवारिकता को भी नकार देते हैं। झोंपड़े के भीतर प्रसव वेदना से तड़प रही बुधिया को वे इस डर से देखने नहीं जाते हैं कि एक के भीतर जाने पर दूसरा भुने हुए आलू का बड़ा हिस्सा खा जाएगा। यह आलू भी वे दूसरे के खेत से चोरी-छिपे उखाड़ लाए थे। कभी आलू उखाड़ लाते, कभी मटर तो कभी ईख। उसी से दोनों अपनी क्षुधा शान्त कर लिया करते थे। दम तोड़ने के कगार पर पहुँच चुकी यह वही बुधिया थी

जिसने इन दोनों के घर को व्यवस्था दी थी और अपने श्रम से दोनों का पेट भरती थी लेकिन उसकी ज़िंदगी पर दो दिनों से भूखे घीसू-माधव का आलू भारी पड़ गया। भूख की यही तड़प घीसू-माधव को लोगों से माँगकर जुटाए गए पैसे से मृत बुधिया के लिए कफ़न खरीदने के बजाय मधुशाला में खींच ले जाती है। वहाँ दोनों कफ़न के पैसे से तृप्त होकर भोजन करते हैं और छककर दारू पीते हैं। यही उनके जीवन की सबसे बड़ी लालसा थी जिसके पूरे होने पर वे बुधिया को बैकुण्ठ जाने का आशीर्वाद देते हैं। साठ साल के घीसू के लिए भरपेट भोजन करने का यह दूसरा मौका था। एक बार बीस बरस पहले ठाकुर की बारात में उसने ऐसा ही भोजन किया था। परन्तु माधव के लिए तृप्त होकर भरपेट भोजन करने का यह पहला ही अवसर था। भूख के आगे मृतक के कफ़न को नजरअंदाज करते समय उन्हें न जिम्मेदारी की चिन्ता थी, न बदनामी का डर। जीते-जागते इन्सानों को बीस-बीस वर्ष तक भरपेट भोजन से महरूम रखने वाली व्यवस्था में मानव के अमानवीय हो जाने की इस दारुण दशा का प्रेमचंद ने स्तब्धकारी चित्रण किया है। घटनाक्रम आगे बढ़ता जाता है लेकिन इसके हर मोड़ पर पाठक को झटका लगता है और सब कुछ सामने घटित होता हुआ देखने के बावजूद उसके अन्तर्मन में बार-बार एक ही सवाल कौंधता है – "क्या ऐसा भी हो सकता है ?"

घीसू और माधव का श्रम पर से विश्वास उठ गया है। वे कामचोर हैं लेकिन प्रेमचंद इतना बताकर ही नहीं रुकते। वे दोनों की कामचोरी की मनोवृत्ति के पीछे छिपे कारणों को भी रेखांकित करते हैं और स्पष्ट करते हैं कि जिस समाज में श्रम की सार्थकता नहीं रह जाती, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का जन्म लेना कतई अस्वाभाविक नहीं है। घीसू-माधव फटेहाल हैं, अपनी कामचोरी के कारण। लेकिन दिन-रात मेहनत करनेवाले किसानों की दशा भी अपने से बेहतर न पाकर उन्हें संतोष होता है। वे मानकर चलते हैं कि श्रम करके भी यदि फटेहाल ही रहना है तो उससे बेहतर आकाशवृत्ति ही सही। दिन-रात मेहनत करने वाले किसानों की दयनीय दशा प्रेमचंद 'गोदान' में होरी के माध्यम से दिखा चुके थे। होरी उस शोषणकारी व्यवस्था के आगे एक तरह से समर्पण कर देता है लेकिन घीसू-माघव ऐसा नहीं करते। उन्हें शोषण करने वालों की पहचान है और वैसे लोगों के प्रति उनके मन में गहरा आक्रोश और विद्रोह भी। उनकी यह विद्रोही चेतना कहानी में कई अवसरों पर मुखर हो उठी है। जहाँ भी प्रसंग आता है, वे गरीबों को दोनों हाथों से लूटने वालों की खुलकर भर्त्सना करते हैं। इस क्रम में गाँव के ज़मींदार को भी अँगूठा दिखाने से वे नहीं हिचकते। विद्रोह की इस भावना ने उन्हें सामाजिक व्यवस्था के समस्त विधि-विधानों, जीवन मूल्यों, संस्कारों और परम्पराओं के खिलाफ खड़ा कर दिया है। इसीलिए वे श्रम करने में विश्वास नहीं करते, धर्म-कर्म में आस्था नहीं रखते, मृतक के लिए कफ़न की अनिवार्यता को नकार देते हैं और भगवान्, बैकुण्ठ आदि से जुड़े मिथकों को भी अस्वीकार कर देते हैं। घीसू-माधव की यह विद्रोही चेतना ही 'गोदान' की यथार्थ-दृष्टि से 'कफ़न' को आगे बढ़ा देती है।

कथ्य की दृष्टि से ही नहीं, भाषा-संरचना और शिल्प-विधान की दृष्टि से भी प्रेमचंद की कथा-यात्रा में 'कफ़न' का विशेष महत्त्व है। प्रेमचंद ने यहाँ लेखकीय हस्तक्षेप किए बिना परिवेश, पात्र और सन्दर्भों के साथ कहानी को स्वाभाविक गति से आगे बढ़ने दिया है। फलतः कहानी के साथ पाठक का तादात्म्य गहराता चला जाता है। पात्रों की वर्गीय स्थिति के अनुरूप ठेठ भाषा में गढ़े गए संवाद कहानी को विश्वसनीयता का आधार देते

हैं। संवाद से ही पात्रों की मनोदशा भी स्पष्ट होती चलती है। कथ्य और शिल्प की यह संश्लिष्टता कहानी के रूप-विधान को निखार देती है। 'कफ़न' में प्रेमचंद ने यथार्थ को अभिव्यंजित करने के लिए सांकेतिकता, नाटकीयता और व्यंग्यात्मकता से संवलित जैसी कसी हुई और वेधक भाषा का प्रयोग किया है, उसने हिन्दी कहानी की भावी यात्रा के लिए भी सशक्त आधारभूमि तैयार कर दी। गौरतलब है कि प्रेमचंद के समानान्तर ही जयशंकर प्रसाद भी कथा-रचना कर रहे थे। लेकिन प्रेमचंद जहाँ अपनी कथा-भाषा को लोक जीवन के अधिकाधिक करीब ले जा रहे थे, वहीं प्रसाद अपनी भाषा को आभिजात्य काव्यात्मक शैली में ढाल रहे थे। परवर्ती कथाकारों ने प्रसाद के बजाय प्रेमचंद को अपनाकर अपनी पक्षधरता ही स्पष्ट नहीं की, हिन्दी कथा-साहित्य के भविष्य की दिशा भी निर्धारित कर दी।

4.2.8. बोध प्रश्न

1. "घीसू और माधव शोषणकारी सामाजिक व्यवस्था की उपज हैं।" इस कथ्य की पुष्टि कीजिए।
2. प्रेमचंद की कथा-यात्रा में 'कफ़न' कहानी के महत्त्व का प्रतिपादन कीजिए।
3. 'कफ़न' कहानी में अभिव्यंजित मानव के अमानवीकरण की त्रासदी पर प्रकाश डालिए।
4. 'कफ़न' कहानी का मूल प्रतिपाद्य क्या है? स्पष्ट कीजिए।
5. कफ़न' कहानी की भाषा-संरचना और उसके शिल्प-विधान की समीक्षा कीजिए।

4.2.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. शर्मा, रामविलास (2008), प्रेमचंद और उनका युग, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, ISBN : 978-81-267-0505-4
2. सिंह, नामवर (2010), प्रेमचंद और भारतीय समाज, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, ISBN : 978-81-267-1892-4
3. राय, गोपाल (2014), हिन्दी कहानी का इतिहास, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, ISBN : 978-81-267-1628-9
4. तिवारी, विश्वनाथप्रसाद (सं.) (1980), दस्तावेज (प्रेमचंद की जन्मशती पर विशेष अंक), वर्ष – 2, अंक – 7 / 8, अप्रैल-जुलाई 80, गोरखपुर, दस्तावेज प्रकाशन
5. आचार्य, नन्दकिशोर (सं.) (2006), प्रेमचंद का चिन्तन, बीकानेर, वाग्देवी प्रकाशन, ISBN : 81-87482-60-5

❖❖❖

खण्ड – 4 : कहानी – 1

इकाई – 3 : पुरस्कार – जयशंकर प्रसाद

इकाई की रूपरेखा

4.3.1. उद्देश्य कथन
4.3.2. प्रस्तावना
4.3.3. 'पुरस्कार' कहानी : केन्द्रीय-कथ्य
4.3.4. प्रसाद की कहानी-कला
4.3.5. पाठ-सार
4.3.6. बोध प्रश्न
4.3.7. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

4.3.1. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई सुप्रसिद्ध साहित्यकार जयशंकर 'प्रसाद' की कालजयी कहानी 'पुरस्कार' पर केन्द्रित है। प्रेमचंद के समकालीन जयशंकर 'प्रसाद' हिन्दी-कहानी साहित्य के उल्लेखनीय कहानीकार हैं। 'पुरस्कार' उनकी प्रतिनिधि कहानियों में से एक है। इस कहानी के माध्यम से आप 'प्रसाद' की कहानीकला से परिचित हो सकेंगे। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. जयशंकर 'प्रसाद' की कहानी 'पुरस्कार' में व्यक्त वैयक्तिक प्रेम और देश-प्रेम के द्वन्द्व को समझ सकेंगे।
ii. मधूलिका के अन्तर्द्वन्द्व से परिचित हो सकेंगे।
iii. 'पुरस्कार' कहानी के माध्यम से 'प्रसाद' की कहानी-कला की विशिष्टता को समझ सकेंगे।

4.3.2. प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी-कहानी का आविर्भाव द्विवेदी-युग में हुआ। भारतेन्दु-युग में कहानी के नाम पर जो कुछ लिखा गया उसमें कोई विशेषता नहीं है और न उसे कहानी के नाम से अभिहित किया जा सकता है कहानी का उद्भव द्विवेदी-युग में ही होता है। एक प्रकार से 'सरस्वती' के जन्म (1900) के साथ कहानी के आविर्भाव को जोड़ा जा सकता है। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'इन्दुमती' (1900), माधव प्रसाद मिश्र ने 'मन की चंचलता' (1900), लाला भगवानदीन ने 'प्लेग की चुड़ैल' (1902), रामचन्द्र शुक्ल ने 'ग्यारह वर्षों का समय' (1903), बंग महिला ने 'दुलाईवाली' (1907) आदि जिन कहानियों का प्रणयन किया था उन्हें आरम्भिक कहानियों में परिगणित किया जा सकता है। 'प्रसाद' की 'ग्राम' नामक कहानी 'इन्दु' (1909) में प्रकाशित हुई और उनका पहला कहानी-संग्रह 'छाया' सन् 1912 में प्रकाशित हुआ। सन् 1913 में राधिकारमण सिंह की सुप्रसिद्ध कहानी

'कानों में कँगना' प्रकाश में आई और उसके बाद प्रेमचंद की अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुई जिनमें 'पंच परमेश्वर' (1912) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी समय सन् 1915 में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' सरस्वती में प्रकाशित हुई।

इसी युग में दो प्रमुख कहानीकारों – प्रसाद और प्रेमचंद ने कहानी लिखना प्रारम्भ किया था किन्तु उनके कर्त्तृत्व का विकास परवर्ती युग में ही हुआ, जिसे स्वच्छन्दतावादी युग कहा जाता है। परिणाम और प्रकार दोनों दृष्टियों से प्रेमचंद इस काल के सर्वप्रमुख कहानीकार ठहरते हैं। प्रेमचंद(1880-1936) पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में वे हिन्दी की ओर उन्मुख हुए।

इस काल के दूसरे प्रमुख कहानीकार जयशंकर 'प्रसाद' (1889-1937) हैं जिनकी 'ग्राम' शीर्षक कहानी 1911 में छपी थी। प्रसादजी की कहानियाँ 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इन्द्रजाल' आदि कई संकलनों में प्रकाशित हैं। 'प्रसाद' और प्रेमचंद की कहानियाँ बिल्कुल एक-दूसरे के विपरीत ठहरती हैं। प्रेमचंद की जीवन-दृष्टि यथार्थवादी थी परन्तु प्रसाद मूलतः छायावादी कवि थे। फलतः उनकी कहानियों में स्थूल यथार्थ की अपेक्षा रोमांस, भावुकता, काव्य और कल्पना के दर्शन होते हैं। प्रसाद की कहानियों में उलझनपूर्ण मनःस्थितियों के सुन्दर चित्र मिलते हैं। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' आदि कहानियाँ इसके प्रमाण हैं। शिल्प की दृष्टि से उनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे किसी एक भावना, मानवीय पहलू या घटना पर आधारित होती हैं। मुख्यतः उनमें कथावस्तु का विस्तार नहीं होता – एक प्रकार का भावात्मक वातावरण होता है जो एक भावलोक की सृष्टि करता है। उन्होंने प्रेमचंद की तरह युगीन समस्याओं पर बल नहीं दिया। कई कहानियाँ ऐतिहासिक हैं और उनमें उनका लक्ष्य भारतीय संस्कृति की भव्यता तथा मानव की विभिन्न वृत्तियों का चित्रण करना रहा है। उनकी कहानियों में व्यक्ति-चरित्र ही मुख्य हैं और उनके मानसिक द्वन्द्वों को ही उन्होंने आधार बनाया है। इसके अतिरिक्त वे कहानी के रचना-विधान में नाटकीय तत्त्वों, दृश्यों और वातावरण का भी सुन्दर प्रयोग करते हैं। 'प्रसाद' की कहानियों का अन्त बड़ा प्रभावशाली होता है। एक विशेष प्रकार का समापन उनकी कहानियों का वैशिष्ट्य है।

जयशंकर 'प्रसाद' सर्वतोमुखी प्रतिभा के रचनाकार थे। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन करनेवालों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद जयशंकर 'प्रसाद' का ही नाम महत्त्वपूर्ण है। 'प्रसाद' ने साहित्य की प्रायः सभी श्रेण्य विधाओं में रचनाएँ की हैं। यद्यपि वे मूलतः कवि थे किन्तु कथा-साहित्य में भी उनकी प्रतिभा चमत्कृत करती है। 'चित्राधार', 'कानन कुसुम', 'प्रेमपथिक', 'महाराणा का महत्त्व', 'झरना', 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' आदि उनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। 'कामायनी' आधुनिक युग की अन्यतम कृति के रूप में स्वीकृत है।

'प्रसाद' की कहानियों का प्रथम संग्रह 'छाया' नाम से 1912 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें 'ग्राम', 'चन्दा', 'रसिया बालम', 'मदन-मृणालिनी' एवं 'तानसेन' कुल पाँच कहानियाँ हैं। 'प्रसाद' का दूसरा कहानी-संग्रह 'प्रतिध्वनि' 1926 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 15 कहानियाँ – 'प्रसाद', 'गूदड़साईं', 'गुदड़ी का लाल', 'अघोरी का मोह', 'पाप की पराजय', 'सहयोग', 'पत्थर की पुकार', 'उस पार का योगी', 'करुणा की

विजय', 'खण्डहर की लिपि', 'कलावती की शिक्षा', 'चक्रवर्ती का स्तम्भ', 'दुखिया', 'प्रतिमा' और 'प्रलय' संगृहीत हैं।

'प्रसाद' की कहानियों का तीसरा संकलन 'आकाशदीप' 1929 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल 19 कहानियाँ – 'आकाशदीप', 'ममता', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'सुनहला साँप', 'हिमालय का पथिक', 'भिखारिन', प्रतिध्वनि', 'कला', 'देवदासी', 'समुद्र-संतरण', 'वैरागी', 'बनजारा', 'चूड़ीवाला', 'अपराधी', 'प्रणय-चिह्न', 'रूप की छाया', 'ज्योतिष्मती', 'रमला' और 'बिसाती' संकलित हैं। 'प्रसाद' का चौथा कहानी-संग्रह 'आँधी' 1929 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल ग्यारह कहानियाँ – 'आँधी', 'मधुआ', 'दासी', 'घीसू', 'बेड़ी', 'व्रतभंग', 'ग्राम-गीत', 'विजया', 'अमिट-स्मृति', 'नीरा' और 'पुरस्कार' संगृहीत हैं।

'प्रसाद' का अन्तिम कहानी-संग्रह 'इन्द्रजाल' है जो 1936 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल चौदह कहानियाँ – 'इन्द्रजाल', 'सलीम', 'छोटा जादूगर', 'नूरी', 'परिवर्तन', 'सन्देह', 'भीख में', 'चित्रवाले पत्थर', 'चित्र मन्दिर', 'गुण्डा', 'अनबोला', 'देवरथ', 'विराम चिह्न' और 'सालवती' संकलित हैं। इन कहानियों में 'प्रसाद' का दृष्टिकोण बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी प्रतीत होता है।

कहानी-लेखक के रूप में 'प्रसाद' की प्रकृति प्रेमचंद से बिल्कुल अलग है। जहाँ प्रेमचंद का रुझान जीवन के चारों ओर फैले यथार्थ में था वहाँ 'प्रसाद' रूमानी स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी कहानियों में जीवन के सामान्य यथार्थ को कम और स्वर्णिम अतीत के गौरव, मसृण भावुकता, कल्पना की ऊँची उड़ान तथा काव्यरूपात्मक चित्रण को अधिक महत्त्व मिला है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी जयशंकर 'प्रसाद' की कहानियों की महत्ता इस तथ्य से प्रमाणित है कि आलोचकों ने कहानी के 'प्रसाद स्कूल' की चर्चा की है।

'प्रसाद' के कहानी-संसार से गुजरते हुए साफ लगता है कि उनकी कहानियों का सीधा सम्बन्ध भाव-जगत् से है। उनका यह भाव-जगत् मूलतः प्रेम का जगत् है। 'छाया' में संगृहीत कहानी 'तानसेन' में एक चरित्र का कथन है – "आज से हमारा धर्म प्रेम है।" यह वाक्य 'प्रसाद' की कहानियों की अन्तर्वस्तु में सदैव मौजूद है। उनकी अधिकतर चर्चित कहानियाँ – प्रेम कहानियाँ हैं। दो विपरीत वर्गों के चरित्र मिलते हैं, प्रेम करते हैं, प्रेम करने में टूटते रहते हैं जो कुछ घटता है, मन की सतह पर घटित होता है। डॉ॰ रामदरश मिश्र के अनुसार – "इसलिए प्रायः 'प्रसाद' के पात्रों के प्रेम का संसार एक अव्यक्त थरथराहट, एक असफल मिलन, एक अछोर टीस बनकर रह जाता है।" 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'गुण्डा' जैसी कहानियाँ इस सिलसिले में द्रष्टव्य हैं। 'आकाशदीप' की चम्पा बुधगुप्त से प्रेम करती हुई भी उसे अपनाती नहीं है। उसका प्रेम कालान्तर में 'लोकसेवा' में परिणत हो जाता है। प्रेम-अपने आप में श्रेष्ठ मूल्य है। 'प्रसाद' उसे और उच्चतर स्थिति की ओर ले जाने के पक्ष में लगते हैं। 'पुरस्कार' में 'प्रणय' देशभक्ति के आदर्श से जुड़ा हुआ है। मधूलिका दोनों मूल्यों की रक्षा करना चाहती है।

'प्रसाद' की कहानियों के सारभूत सौन्दर्य का विवेचन करते हुए डॉ॰ जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने कहा है – "उनमें कहानी 'कला' की वस्तु बन गई है – संवेदनशीलता के विचार से भी और रचनात्मक प्रक्रिया के आधार

पर भी। कहानी के जितने भी तत्त्व और अंग है उन सबका पूर्ण परिष्कार 'प्रसाद' में दिखाई पड़ता है। उन्होंने हृदय को झंकृत करने की चेष्टा अधिक की है; मस्तिष्क को उद्‌बुद्ध करने की ओर अधिक नहीं बढ़े और यही इनकी प्रकृति के सर्वथा अनुकूल भी था।"

4.3.3. 'पुरस्कार' कहानी : केन्द्रीय-कथ्य

'पुरस्कार' शीर्षक कहानी प्रसाद के 'आँधी' नामक संग्रह में संकलित है। इसमें किसी विशिष्ट ऐतिहासिक कालखण्ड का चित्रण नहीं हुआ है। यह रचना कोशल राज्य में केन्द्रित है। कोशल और मगध का पारस्परिक संघर्ष इसकी पृष्ठभूमि में है किन्तु यहाँ किसी वंश-विशेष की कथा नहीं कही गई है। कथा-नायिका मधूलिका कोशल राज्य के सिंहमित्र नामक उस योद्धा की पुत्री है जिसने मगध से युद्ध करने के क्रम में अपने राज्य को विजयी बनाया था। कोशल का राजा इस तथ्य से अकस्मात् अवगत होता है और उसके मन में सिंहमित्र की दुहिता के प्रति आदर भाव का उद्रेक होता है।

कहानीकार 'प्रसाद' ने इस कृति में कोशल राज्य की उस परम्परा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार राजा वर्ष में एक दिन किसी की भूमि पर हल चलाता है। प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में कोशल की इस प्रथा की चर्चा नहीं मिलती है लेकिन सम्भवतः मिथिला के 'सीरध्वज जनक' के आख्यान से प्रेरित होकर यहाँ राजा को कृषि-कार्य करते हुए प्रदर्शित किया गया है। कहानी का प्रारम्भ कोशल नरेश के द्वारा मधूलिका के खेत में हल चलाने के वृत्तान्त से सम्बद्ध है। मधूलिका बीज देती है। राजा भूमि का कर्षण करता है। इस अनुष्ठान की परिणति इस रूप में होती है कि राजा भूमि की अधिकारिणी को पुरस्कारस्वरूप चार गुना मूल्य अर्पित करता है। मधूलिका उस राशि को ग्रहण कर राजा पर ही न्योछावर कर देती है। अमात्य इस घटना से क्रुद्ध हो जाता है। वह इसे राजा का अपमान समझता है किन्तु मधूलिका का तर्क है कि पुरखों की भूमि वह मूल्य लेकर किसी को अर्पित नहीं करना चाहती है। उसी समय राजा को यह विदित होता है कि मधूलिका कोशल के यशस्वी सेनानी सिंहमित्र की दुहिता है।

हल चलाने के बाद मधूलिका का भूखण्ड राजा का हो जाता है और अपने स्वप्न को त्यागकर कथानायिका दूसरों के खेतों में मजदूरी करने लगती है। संयोगवश मगध के एक तेजवन्त राजकुमार से उसकी भेंट होती है जिसका नाम अरुण है। दोनों एक-दूसरे के प्रति आकर्षण का अनुभव करते है किन्तु मधूलिका राजरानी बनने का सपना नहीं पालती है। उसके दिन दरिद्रता में ही व्यतीत होने लगते हैं। कुछ वर्षों के बाद एक बरसाती रात में अरुण अपने साथियों के साथ शरण लेने के लिए मधूलिका की कुटिया में आता है। वह अब मगध से निर्वासित हो चुका है और नये राज्य के निर्माण के लिए सन्निद्ध है। मधुलिका का पुराना प्रेम जग जाता है और वह अरुण को अपने यहाँ रख लेती है। मधूलिका ने राजा से कुछ नहीं लिया है किन्तु अरुण उसे कोशल के दुर्ग के दक्षिणी पार्श्व में राजा से भूमि माँगने की प्रेरणा देता है। मधूलिका राजा से वह भूमि पुराने भूखण्ड के शुल्क के रूप में माँगती है। राजा उसे वह भूमि प्रदान कर देता है। अरुण और उसके साथी उस विषम भूखण्ड को समतल बनाते हैं। वहाँ से श्रावस्ती का दुर्ग समीप है। अरुण की योजना है कि इसी दिशा से चढ़ाई कर दुर्ग को हस्तगत कर लिया

जाए। प्रारम्भ में मधूलिका उससे सहमत होती है किन्तु अन्ततः उसका राष्ट्रप्रेम जाग्रत् होता है। वह अँधेरी रात में पथ पर खड़ी होकर श्रावस्ती के सेनानायक से सच्ची बात बता देती है। देश की सेना प्रतिरोध के लिए तत्पर हो जाती है और मधूलिका राजा के समक्ष प्रस्तुत की जाती है। अरुण और उसके सैनिक पराजित होकर बन्दी हो जाते हैं। राजा मधूलिका को प्रसन्न होकर पुरस्कार देना चाहते हैं। अरुण को प्राण-दण्ड देने की राजाज्ञा होती है और मधूलिका राष्ट्र के प्रति दायित्व-निर्वाह के उपरान्त अरुण के निकट आ जाती है और अपने लिए पुरस्कारस्वरूप प्राणदण्ड की याचना करती है। कहानी की यह चरम परिणति है जहाँ वैयक्तिक-प्रेम और देश-प्रेम को एक साथ जोड़ा गया है। कहानी का शीर्षक विरोधाभासमूलक है। यह पुरस्कार और दण्ड में अभेद को व्यंजित करता है जो मधूलिका अपने खेत का शुल्क नहीं लेती है वह प्रेमगत उत्सर्ग के पुरस्कार को प्राप्त करना चाहती है । नारी के हृदय का यह द्वन्द्वग्रस्त स्वरूप 'प्रसाद' में साहित्य का प्रत्यभिज्ञेय वैशिष्ट्य है।

प्रस्तुत कहानी में कथानक का अभाव नहीं है किन्तु मूलतः यह चरित्रमूलक कहानी है। इसमें अतीत के वातावरण को भित्ति की तरह व्यवहृत किया गया है। रचना का प्रारम्भ प्रकृति-वर्णन से होता है और इसकी संस्कृतनिष्ठ भाषा 'प्रसाद' की रचनाधर्मिता के मूल में है। भाषा-शैली और चरित्र-चित्रण की उदात्तता इस कहानी को विशिष्ट बनाती है किन्तु इसमें कामायनीकार के द्वारा कथित 'हृदयसत्ता के सुन्दर सत्य' का निरूपण हुआ है।

'प्रसाद' अपनी वैचारिकता के लिए ख्यात हैं। भाषागत रम्यता उनकी पहचान कही जाती है किन्तु यह रचना उस भाव-सत्य को प्रतिष्ठापित करती है जो छायावाद का सर्वस्व है।

4.3.4. प्रसाद की कहानी-कला

'प्रसाद निकाय' ने कहानी को परिभाषित करते हुए उसे 'सौन्दर्य की एक झलक का रस' कहा है। कई विवेचकों की दृष्टि में कहानी जीवन का एक टुकड़ा (A slice from life) है किन्तु 'प्रसाद' गल्प को जीवन का खण्ड-चित्र नहीं मानते हैं। वे उसमें रस की सर्वांगीणता का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। प्रस्तुत कहानी जीवन में उस सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराती है जो रस से अभिभूत कर देता है। मुक्तकों में प्रायः रस की स्थिति नहीं मानी जाती है किन्तु प्रबन्ध-काव्य में रस का ही आधार लिया जाता है। यह रचना प्रेम के मुक्तकधर्मी शील का परिचय नहीं देती है बल्कि उसके प्रबन्धात्मक विस्तार का बोध कराती है। इस कहानी के मूल रस को शृंगार में गतार्थ करना रूढ़ि का परिपालन मात्र होगा । शृंगार की दैहिकता का अतिक्रमण कर यह कहानी प्रेम की अगाधता और अनिर्वचनीयता का साक्षात्कार कराती है। यहाँ दैहिक शृंगार नहीं, मानसिक कोमलता और दीप्ति दिखाई पड़ती है। मधूलिका के चरित्र का सौन्दर्य प्रेम की लघुता से उच्चता की ओर जाने में प्रतिभासित होता है किन्तु वह आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के द्वारा व्यवहृत 'बूमरैंग' की रणनीति को भी व्यंजित करता है। निजी प्रेम से राष्ट्र-प्रेम की ओर और पुनः राष्ट्र-प्रेम से निजी प्रेम की ओर मधूलिका के भाव का यह प्रत्यावर्तन 'प्रसाद' की कहानी-कला को 'बुमरैंग' के निकट ले आता है। नायिका के शीलगत सौन्दर्य का यह पक्ष रस की द्रुति को प्रवाह में परिणत कर देता है। यहाँ हम सौन्दर्य की एक विशिष्ट झलक में किसी भी प्रबन्धकाव्य की तरह रसगत व्याप्ति का अनुभव कर सकते हैं।

'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' में स्कन्दगुप्त से प्रेम करने वाली देवसेना अन्ततः वेदना की विभूति को ही बटोर पाती है। 'आह वेदना मिली विदाई' यह प्रेम का सारतत्त्व है। प्रणयी युग्म को अन्ततः वेदना ही मिलती है। यही उसके जीवन का पुरस्कार है। यह वेदना 'धुव्रस्वामिनी' की 'कोमा' में भी दिखाई पड़ती है। दुःख को आत्मसात् कर उसे औदात्य के स्तर तक ले जाना छायावाद की रचना-प्रक्रिया है। प्रसाद की 'मधूलिका' वेदना के इसी उदात्तीकरण को मूर्त करती है।

विलियम हेनरी हडसन ने कहानी के वस्तुतत्त्व के एकत्व पर बल दिया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने स्पष्ट लिखा है – "Short story mist contain ne and only one informing idea." विचार-विशेष की यह एकान्विति कहानी के शिल्प को बिखराव से बचाती है। इस विधा में इधर-उधर बहकने की गुँजाइश नहीं होती है। केन्द्रीय विचार को सीधे-सीधे व्यक्त करने में कहानी-कला की सार्थकता समझी जाती है। इसे ही हडसन ने 'Directness of method' कहा है। इसी तथ्य को प्रत्यक्ष पद्धति से निरूपित करने में उद्देश्य की एकता का निर्वाह अपेक्षित होता है। इसे हडसन ने 'Absolute Singleness of aim' कहा है। कहानी में इसके बिना प्रभावान्विति नहीं आती है। प्रत्यक्ष रूप से विशिष्ट प्रभाव के निष्पादन के लिए घटनाओं और पात्रों का संयोजन कहानी को एक नाटकीय स्वरूप प्रदान करता है। यही कारण है कि श्यामसुन्दरदास ने 'साहित्यालोचन' में आख्यायिका को 'नाटकीय आख्यान' कहा है। 'पुरस्कार' शीर्षक कहानी इस कसौटी पर सफल रचना सिद्ध होती है। प्रेम इस कहानी का केन्द्रीय और इकलौता विषय है। यहाँ विशेष परिस्थितियों के संयोजन के द्वारा नाटकीय प्रभाव उत्पन्न किया गया है। मधूलिका का अपनी भूमि, परम्परा और राष्ट्रीयता के प्रति लगाव उसके चरित्र का मूलभूत लक्षण है। कालान्तर में अरुण के प्रति उसका अनुराग प्रेम की एक अन्य दिशा को संकेतित करता है। वैयक्तिक प्रेम और राष्ट्र-प्रेम का यह द्वन्द्व ही कहानी का मूल विषय है जो कथान्त तक आते-आते एक विशेष प्रभाव उत्पन्न करता है। प्रेम से जुड़ी घटनाएँ मधूलिका के चरित्र को एक विशेष साँचे में ढालती हैं।

कहानी कला में चरित्र-चित्रण का बहुत महत्त्व होता है। यहाँ कोसल के राजा, उसके अमात्य और अरुण के चरित्र वर्गगत हैं। इनमें शीलगत विशिष्टता के दर्शन नहीं होते हैं। ये अपनी सीमाओं में बँधे हुए सपाट चरित्र हैं। इनकी तुलना में मधूलिका एक शील-सम्पन्न चरित्र है। 'प्रसाद' ने एक संश्लिष्ट पात्र के रूप में उसका निर्माण किया है। अन्तर्द्वन्द्व के कारण मधूलिका का चरित्र व्यक्तित्व की अपूर्वता का संकेतक है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मधूलिका ही वह धुरी है जो कथानक की गति का नियमन करती है।

इस कहानी का वातावरण अतीत के परिवेश को प्रतिच्छायित करता है किन्तु उसे हम किसी विशेष ऐतिहासिक कालखण्ड का बोधक नहीं कह सकते हैं। कहानी के प्रारम्भ में जिस आर्द्रा नक्षत्र का उल्लेख हुआ है वह प्राकृतिक वातावरण का चित्रण मात्र नहीं है। आर्द्रा का सम्बन्ध आर्द्र मनःस्थिति से है। उसमें तरलता और भिंगोने की व्यंजना पहचानी जा सकती है। मधूलिका का चित्त आर्द्र है। उसमें प्रेम की सरसता और सिंचन-शक्ति है। यहाँ प्रकृति कथा-नायिका के चरित्र को संकेतित करती है।

किसी भी कहानी की सफलता उसकी शैली में दृष्टिगत होती है। 'पुरस्कार' की भाषा उस शैली को मूर्त करती है जो भौतिक जगत् और मानसिक जगत् को एकीकृत करने वाली है। वस्तु-वर्णनों के क्रम में 'प्रसाद' ने यहाँ विशृंखलता को छोड़कर निश्चित लक्ष्य की ओर इतिवृत को मोड़ा है। यहाँ वर्णनों का विस्तार नहीं, उनकी गहनता दिखाई पड़ती है। चुने हुए प्रसंगोंके द्वारा लेखक अपने उद्देश्य को प्रतिच्छायित करना चाह रहा है। वह प्रेम के एकांगी रूप को एक विस्तार देता है। उसकी दृष्टि में प्रेम कोई जड़ पदार्थ नहीं है। वह परिस्थितियों के अनुसार एक व्यापक रूप धारण करता है। प्रेम की जटिलता का निरूपण ही कहानीकार का प्रतिपाद्य है जिसे वह 'पुरस्कार' शीर्षक द्वारा प्रकट करता है। मधूलिका किसी भौतिक उपलब्धि को 'पुरस्कार' नहीं समझती है। प्रेम के लिए मर मिटना ही उसका पारितोषिक है। किसी प्रकार के लाभ और भोग से ऊपर उठकर मधूलिका प्रेम की एक विशिष्ट छवि को दर्शित करती है जिसमें ऐन्द्रियता नहीं, भावनात्मकता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि प्रस्तुत कहानी में प्रेम और उत्सर्ग को ही 'पुरस्कार' के रूप में ध्वनित किया गया है। मधूलिका देश को पराधीन नहीं होने देती है और वह निजी प्रेम को भी लांछित होने से बचाती है।

'पुरस्कार' में ज्ञात इतिहास नहीं है। लेखक ने प्राचीन भारत के राजतन्त्रात्मक गणराज्य को उपस्थित किया है किन्तु यहाँ राष्ट्रभक्ति में आधुनिक स्वर को अनायास ही गुम्फित कर दिया गया है। इस क्रम में मधूलिका का चरित्र राष्ट्रप्रेम के समानान्तर वैयक्तिक प्रेम को भी मुखरित करता है। कहानीकार ने यहाँ राष्ट्रभक्ति और वैयक्तिक प्रीति के संघर्ष को भली-भाँति चित्रित किया है। प्रेम के इन विविध रूपों का सफल संयोजन इस कहानी में एक चमत्कार की सृष्टि करता है।

किसी भी कहानी का शीर्षक उसके मूल कथ्य को प्रकट करता है। यहाँ प्रसाद ने जिस शीर्षक की अवतारणा की है वह बहुत ही व्यापक है। मधूलिका न तो अपनी भूमि के लिए कोई पुरस्कार ग्रहण करती है और न राष्ट्र-रक्षा के लिए किसी प्रतिदान की अपेक्षा रखती है। वह भावना के स्तर पर विभाजित होकर भी अन्ततः राष्ट्र और प्रेमी दोनों के प्रति अनुराग को समानतः संस्थापित करती है। प्रेम का यह व्यापक रूप ही कहानीकार की दृष्टि में वास्तविक पुरस्कार है जिसका कोई भौतिक स्वरूप नहीं है। यह कहानी भौतिकता का अतिक्रमण कर भावना की आर्द्रता की ओर इंगित करती है। प्रेमपूरित नारी-हृदय के रहस्य के उद्‌घाटन में 'प्रसाद' कृतकार्य हुए हैं। उन्होंने मधूलिका के माध्यम से प्रेम की उदात्त भूमि का दिग्दर्शन कराया है। कहानी का यह उद्देश्य इस रचना को प्रभावी बनाता है।

एडगर एलन पो ने जब कहा था कि "कहानी एक ही बैठक में पढ़ ली जाती है।" तब उनका अभिप्राय यहीं था कि इस विधा में संक्षिप्तता होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कहानी किसी उपन्यास का संक्षिप्त रूप होता है। शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास से भिन्न विधा है। प्रेमचंद ने कहा था कि कहानी में जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को चित्रित किया जाता है। यह एकान्विति कहानी को स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करती है। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए प्रेमचंद ने कहा था कि "कहानी एक रमणीय उद्यान है जिसमें भाँति-भाँति के फूल और बेल-बूटे सजाये जाते हैं बल्कि यह एक ऐसा गमला है जिसमें एक ही गमले का माधुर्य अपने समुन्नत

रूप में दृष्टिगोचर है।" निश्चय ही कहानी पूरे जीवन की व्याख्या नहीं है बल्कि खण्ड में सौन्दर्य की सृष्टि है। इसमें भावनागत घनीभूत क्षण का दिग्दर्शन कराया जाता है।

उपन्यास यदि वाद्य-वृन्द या 'आर्केस्ट्रा' की प्रतीति कराता है तो कहानी किसी सितार से झंकृत विशिष्ट स्वर के रूप में देखी जा सकती है। कहानी जीवन के किसी विशेष राग को सम्पुटित करती है। उसका चरम-बिन्दु किसी खास थाप पर पहुँचकर प्रभाव डालता है। उसका अन्त अप्रत्याशित घटनाक्रम को निष्पन्न करता है। इस दृष्टि से 'पुरस्कार' एक सफल गल्प है जिसमें संगीत के ताल-विशेष की प्रतीति होती है। यहाँ विस्तार नहीं, सघन मनोवैज्ञानिक क्षण की कौंध दिखाई पड़ती है। बिजली की छिटकने वाली चमक का चमत्कार यहाँ परिलक्षित होता है।

प्रेमचंद ने उत्कृष्ट कहानी को मनोवैज्ञानिक सत्य से सम्पृक्त बतलाया है। 'पुरस्कार' में मधूलिका का चरित्र एक मनोवैज्ञानिक धुरी पर संचालित दिखाई पड़ता है। किसी भी कहानी में वर्णनों का विस्तार बोझ होता है लेकिन चरित्र की विशिष्टता उसे गतिशील बनाती है। 'पुरस्कार' की मधूलिका का चरित्र पूरी कहानी की गति को बारम्बार नई दिशाओं में नियोजित करता है। राष्ट्र-प्रेम और वैयक्तिक प्रेम की टकराहट इसमें पाठकीय प्रत्याशा को झकझोर देती है। कहानी में द्वन्द्व का जिस तरह समाहार किया गया है वह कथा-शिल्प की उच्चता का द्योतक है।

प्रसिद्ध आंग्ल कवि और आलोचक ड्राइडेन ने कहानी को काव्य एवं चित्रकला का समन्वय बतलाया है। 'पुरस्कार' के वातावरण चित्रण और कथानायिका के शील-निरूपण में काव्य की भावमयता और चित्रकला में निहित रंगों और रेखाओं के तालमेल के दर्शन होते हैं। यह रचना प्रेम के फलक पर अवलम्बित है अतः इसमें स्वभावतः काव्यकला और चित्रकला में सामंजस्य का प्रत्यक्षीकरण होता है।

प्रसिद्ध समीक्षक एलन टेट ने साहित्य के लिए तनाव को अत्यावश्यक माना है। 'पुरस्कार' मनोवैज्ञानिक तनाव को उपस्थापित करने में पूर्णतः सफल रचना है।

जिस तरह 'आकाशदीप' प्रधानतः चरित्र-प्रधान कहानी है उसी तरह 'पुरस्कार' पुरातनता के निर्मोक से युक्त प्रेमप्रवण कहानी है जिसमें आधुनिककाल की राष्ट्रीय भावना व्यंजित हुई है। यह नारी के निगूढ़ चरित्र का दिग्दर्शन कराने वाली एक मनोवैज्ञानिक कहानी है जिसमें कवित्व और चरित्र-चित्रण का एकीकरण लक्षित होता है।

सर ह्यू बालपोल ने कहानी में घटनाओं की उस आकस्मिकता की चर्चा की है जिसके कारण कथानक का अप्रत्याशित विकास होता है। कहानी की यह संरचना कौतूहल को बढ़ाती है तथा पाठक को एक संतोषप्रद अन्त तक ले जाती है। कहानी के रचना-विधान की इस विशेषता को ध्यान में रखकर ही श्यामसुन्दरदास ने आख्यायिका को एक निश्चित लक्ष्य और प्रभाव की ओर उन्मुख नाटकीय आख्यान कहा है। सर ह्यू बालपोल ने इसी नाटकीयता के लिए अपनी परिभाषा में उस 'डिनोमा' (Denouement) का उल्लेख किया है जो नाटक के

संविधान से सम्बद्ध पारिभाषिक शब्द है – "A short story should be a story, a record of things full of incident and accident, swift movement, unexpected development leading through suspense to climax and a satisfying denouennt." हिन्दी में 'डिनोमा' के लिए 'निगति' शब्द का प्रयोग होता है जो दुखान्त नाटक का मूलाधार है। 'पुरस्कार' कहानी एक निगतिमूलक रचना ही है जिसकी संरचना दुखान्त नाटक के रूप विधान के अनुकूल है। प्रसाद एक समर्थ नाटककार है किन्तु डॉ० नगेन्द्र ने उनके नाटकों को न सुखान्त माना है, न दुखान्त, बल्कि उन्हें प्रसादान्त कहा है। 'पुरस्कार' शीर्षक की कहानी की मधूलिका राष्ट्र की रक्षा करते हुए अपने प्रेम के लिए मर मिटना चाहती है। उसके चरित्र का यह औदात्य इस कहानी को दुखान्त नहीं, प्रसादान्त बना देता है। यहाँ हम सुख और दुःख की उस समरसता का दर्शन करते हैं जो 'प्रसाद' के आनन्दवाद के अनुकूल है। यह कहानी उस 'सत्त्वोद्रेक' की प्रतीति कराती है जो आनन्द से सम्बद्ध है। कहानीकार ने मधूलिका को मरण की आकांक्षिणी बतलाते हुए भी उसकी मृत्यु का निरूपण नहीं किया है। उसमें चरित्र की प्रभा मरण से म्लान नहीं है बल्कि उसके उत्सर्ग की वृत्ति के आलोक का प्रत्यक्षीकरण होता है। इस दृष्टि से 'प्रसाद' की इस नाट्यधर्मी कहानी में प्रभंजन से आकुलित समुद्र की उस उद्वेलन का अनुभव होता है जिसके ऊपर मोहक चाँदनी छिटक रही है।

4.3.5. पाठ-सार

ऐसा समझा जाता है कि 'पुरस्कार' एक ऐतिहासिक कहानी है किन्तु यह धारणा भ्रामक है। कहानी कला के अन्तर्गत वातावरण निर्माण पर बल दिया जाता है। इस कहानी में वातावरण प्राचीन है किन्तु इसकी कथा इतिहास-सम्मत नहीं है। यशपाल ने 'दिव्या' की भूमिका में जिस 'ऐतिहासिक कल्पना' की चर्चा की है, प्रस्तुत कहानी उक्त मान्यता के अनुकूल ही है। यहाँ कल्पना की दृष्टि से प्राचीन भारत के जिस वातावरण का निर्माण किया गया है उसे किसी विशिष्ट कालखण्ड से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता है। कथा में आए हुए पात्रों की कोई ऐतिहासिक इयत्ता नहीं है और किसी विशेष युग का भी यहाँ चित्रण नहीं हुआ है। कुल मिलाकर यह रचना गल्प (Fiction) की कोटि में आती है जिसका केन्द्रीय कथ्य प्रेम है।

प्रेम एक मनोमय भाव है जिसका विस्तार अनेक दिशाओं में दृष्टिगत होता है। प्रायः नर-नारी के वैयक्तिक प्रणय को ही 'प्रेम' की परिधि में रखा जाता है, किन्तु देश के प्रति अनुराग भी प्रेम के अन्तर्गत ही है। 'प्रसाद' की यह कहानी वैयक्तिक प्रेम और देशानुराग के द्वन्द्व को दर्शित करती है। मधूलिका प्रेम के इस द्विविध रूप को व्यंजित करती है। वह अरुण के प्रति अपनी आसक्ति को प्रेम के स्वाभाविक रूप की तरह उदाहृत करती है किन्तु देश और राजा के विरुद्ध उसका प्रेमी अरुण जब राज्य के विरुद्ध कुचक्र रचता है तब वह देश के पक्ष में हो जाती है। वह अपने प्रेमी को बन्दी बनवा देती है। उसका राष्ट्र-प्रेम वैयक्तिक प्रेम पर भारी पड़ जाता है किन्तु कहानी की यह चरम परिणति नहीं है। कथान्त का चरम-बिन्दु वहाँ है जहाँ मधूलिका अपने प्रेमी के साथ मृत्यु का वरण करने के लिए तत्पर हो जाती है। वह राजा और राज्य को बचा लेती है किन्तु प्रेमी को अकेले मरने के लिए नहीं छोड़ती है। अरुण के पार्श्व में खड़ी होकर वह राजदण्ड को समवेत रूप से भुगतना चाहती है। यहाँ निजी प्रेम और देश प्रेम में जो संघर्ष लक्षित होता है वह 'प्रसाद' का प्रिय विषय है।

'पुरस्कार' शीर्षक कहानी उस युग में लिखी गई थी जब भारत का स्वाधीनता-संग्राम चल रहा था। निजी प्रेम और देश-प्रेम की टकराहट 'प्रसाद' के 'चन्द्रगुप्त मौर्य' शीर्षक नाटक में भी मिलती है। व्यक्तिगत प्रेम के लिए उत्सर्ग होना और देश के लिए बलिदान होना दोनों प्रेम के ही रूप है। 'प्रसाद' की नारियाँ प्रेम और कर्त्तव्य के बीच सामंजस्य खोजती हैं। यह सामंजस्य ही 'पुरस्कार' की कथावस्तु को अनुभूति से आर्द्र कर देता है। हिन्दी-कहानी-साहित्य में तीन निकायों की प्रसिद्धि रही है। प्रेमचंद, 'प्रसाद' और 'उग्र' के नाम से तीन निकायों की चर्चा होती रही है। 'प्रेमचंद स्कूल' के लेखकों में आदर्श और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की विद्यमानता देखी जा सकती है। 'उग्र' में प्रकृतिवाद की नग्नता मिलती है। इन दोनों निकायों से अलग जाकर 'प्रसाद' और उनके पथ पर चलने वाले कृतिकार भावना और प्रेम की स्वच्छन्दता का निरूपण करते हैं। 'पुरस्कार' ऐतिहासिक वातावरण की प्रतीति कराने वाली कहानी है किन्तु उसका देशकाल अनिर्दिष्ट है। यहाँ केवल प्रेम की पताका लहराती है। किसी भी युग में प्रेम और कर्त्तव्य की भावनाओं में जो संघर्षशीलता देखी जा सकती है वह प्रस्तुत कहानी में बिम्बित हुई है।

प्रेम के लिए राष्ट्र की क्षति मधूलिका को ग्राह्य नहीं है किन्तु वह अपने प्रेमी का साथ भी नहीं छोड़ सकती है। प्रेम की लहरों में भींगकर मधूलिका राष्ट्र के विनाश में सहयोग नहीं करती है। वह राष्ट्र-द्रोही अपने प्रेमी के भेद को खोल देती है किन्तु वह उससे विलग भी नहीं हो पाती है। राष्ट्र के कल्याण के लिए निजी प्रेम की आहुति देने वाली मधूलिका अन्ततः अपने प्रेमी के साथ मर जाना चाहती है। उसे राष्ट्र ही नहीं, प्रेमी भी प्रिय है। यह कहानी प्रेम की इसी भावसंकुलता को उदाहृत करती है।

4.3.6. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्रसादजी का पहला कहानी-संग्रह 'छाया' कब प्रकाशित हुआ ?

(क) 1908 ई.

(ख) 1910 ई.

(ग) 1906 ई.

(घ) 1912 ई.

सही उत्तर (घ) 1912 ई.

2. निम्नलिखित में से कौन-सी कहानी 'प्रसाद' द्वारा रचित नहीं है –

(क) ममता

(ख) सालवती

(ग) प्रतिध्वनि

(घ) सुजान भगत

सही उत्तर (घ) सुजान भगत

3. अरुण एवं मधुलिका किस कहानी के पात्र हैं ?

(क) पल

(ख) पंच परमेश्वर

(ग) ममता

(घ) पुरस्कार

सही उत्तर (घ) पुरस्कार

4. प्रसादजी के कुल कितने कहानी संकलन प्रकाशित हुए हैं ?

(क) चार

(ख) पाँच

(ग) छह

(घ) आठ

सही उत्तर (ख) पाँच

5. जयशंकर 'प्रसाद' ने कुल कितनी कहानियाँ लिखीं हैं ?

(क) 60

(ख) 80

(ग) 69

(घ) 89

सही उत्तर (ग) 69

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'पुरस्कार' कहानी के नारी-पात्र की विशेषताएँ बताइए।
2. 'पुरस्कार' कहानी का क्या वैशिष्ट्य है ?
3. 'पुरस्कार' के कथा-शिल्पी की विशेषताएँ बताइए।
4. मधुलिका के अन्तर्द्वन्द्व पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कहानी-कला की दृष्टि से 'पुरस्कार' कहानी की समीक्षा कीजिए।
2. 'पुरस्कार' कहानी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. मधुलिका का चरित्र-चित्रण कीजिए।
4. कहानीकार 'प्रसाद' का परिचय प्रस्तुत कीजिए।
5. 'पुरस्कार' की भाषा-शैली का विवेचन कीजिए।

4.3.7. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. कहानी : नयी कहानी, नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1982 ई.
2. कहानी : स्वरूप संवेदना, राजेन्द्र यादव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1988 ई.
3. हिन्दी कहानी : अस्मिता की तलाश, मधुरेश, पंचकूला प्रकाशन, हरियाणा
4. हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि का विकास, डॉ॰ लक्ष्मीनारायणलाल, साहित्य भवन, इलाहाबाद, सन् 1960 ई.
5. हिन्दी कहानी : समीक्षा और सन्दर्भ, डॉ॰ विवेकी राय, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् 1985 ई.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : कहानी – 1

इकाई – 4 : पत्नी – जैनेन्द्रकुमार

इकाई की रूपरेखा

4.4.0. उद्देश्य कथन
4.4.1. प्रस्तावना
4.4.2. नीरस दाम्पत्य जीवन की घुटन, ऊब
4.4.3. सुनन्दा का अन्तर्द्वन्द्व
4.4.4. सुनन्दा की जिजीविषा
4.4.5. कालिन्दीचरण का दोहरा चरित्र
4.4.6. कहानी का शिल्प
4.4.7. पाठ-सार
4.4.8. बोध प्रश्न
4.4.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

4.4.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई जैनेन्द्र कुमार की लिखी 'पत्नी' कहानी पर आधारित है। जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों को मनोवैज्ञानिकता का आधार देकर प्रेमचंद के समक्ष ही उनकी कथाधारा के समानान्तर एक नई लकीर खींच दी थी। उनकी कहानियाँ बाह्यजगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत की हलचल को अभिव्यक्त करती हैं इसलिए वहाँ घटनाक्रम का फैलाव देखने को नहीं मिलता। मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से वे पात्रों के अन्तर्मन के घात-प्रतिघात, संवेदनाओं, प्रतिक्रियाओं और दुविधाओं को उकेरने में ज्यादा रुचि लेते हैं। 'पत्नी' कहानी में भी घटना-सूत्र अत्यन्त क्षीण है। इसमें मुख्यतः क्रान्तिकारी कालिन्दीचरण की पत्नी सुनन्दा के यान्त्रिक जीवन और अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित किया गया है। इस कहानी के पाठ का अध्ययन करने के बाद आप –

i. पति-पत्नी के बीच उत्पन होने वाले तनाव और उसके कारणों की पड़ताल कर सकेंगे और यह भी जान सकेंगे कि इस तनाव का पारिवारिक जीवन पर कैसा असर होता है।
ii. पति की उपेक्षा से आहत स्त्री की घुटन भरी ज़िंदगी की वास्तविकताओं और उसकी मनोदशाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
iii. दो भिन्न मनोदशाओं के टकराव से स्त्री के भीतर उपजे अन्तर्द्वन्द्व को समझ सकेंगे।
iv. अभिलाषाओं और आशा-आकांक्षाओं के चकनाचूर हो जाने से स्त्री के मन में उठने वाली हूक और टीस तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच ही जीने की राह तलाशने की उसकी विवशता से अवगत हो सकेंगे।

v. पति के सिद्धान्त और आचरण की भिन्नता को समझकर उसके चारित्रिक दोहरेपन को रेखांकित कर सकेंगे।

vi. जैनेन्द्र की मौलिकता, रचनात्मकता, कल्पनाशीलता और शिल्प-विधान की विशेषता को निरूपित कर सकेंगे।

4.4.1. प्रस्तावना

जैनेन्द्र कुमार सन् 1927 में कहानी-लेखन के क्षेत्र में प्रवृत्त हुए। उनका पहला कहानी-संग्रह 'फाँसी' सन् 1929 में प्रकाशित हुआ। यह वह कालखण्ड था जब हिन्दी कथा-साहित्य के क्षितिज पर प्रेमचंद के आभा-मण्डल का सम्मोहन सिर चढ़कर अपना प्रभाव दिखा रहा था। जैनेन्द्र कुमार व्यक्तिगत रूप से भी प्रेमचंद के अत्यन्त निकट थे और कुछ हद तक उनसे प्रभावित भी। लेकिन कहानी-लेखन के लिए उन्होंने प्रेमचंद के प्रभावृत्त से बाहर निकलकर अपने लिए बिल्कुल नया क्षेत्र आविष्कृत किया। प्रेमचंद अपनी कथा-कृतियों में सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन कर रहे थे, जैनेन्द्र व्यक्तिवादी सोच को लेकर आगे बढ़े। प्रेमचंद भीतर से बाहर की ओर यात्रा कर रहे थे, जैनेन्द्र ने बाहर से भीतर की ओर जाने की राह चुनी। प्रेमचंद यथार्थ पर जोर दे रहे थे, जैनेन्द्र ने उससे परहेज करते हुए विचार और कल्पना को प्रधानता दी। उन्होंने स्थूल से सूक्ष्म, व्यक्त से अव्यक्त और मूर्त्त से अमूर्त्त के धरातल की ओर कदम बढ़ाते हुए सूक्ष्म संवेदनाओं के आकलन पर दृष्टि केन्द्रित की। उस दौर में प्रेमचंद के समानान्तर स्वतन्त्र और मौलिक लकीर खींचना साहस की बात थी लेकिन जैनेन्द्र ने यह कर दिखाया। इस रचनात्मक विवेक और मौलिक दृष्टि के बल पर ही जैनेन्द्र, जैनेन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हो सके। उनकी कहानियों में घटनाओं की बहुलता नहीं मिलती। घटनात्मकता से उन्हें आरम्भ से ही परहेज रहा है। घटना उनके लिए संवेदनाओं को व्यक्त करने का मात्र आधार होती है। उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। जैनेन्द्र वस्तुतः घटना की जगह घटना में आने वाले आत्यन्तिक मोड़ पर दृष्टि स्थिर करते हैं और उस मोड़ के मनोवैज्ञानिक कारणों का सन्धान करते हुए कहानी गढ़ देते हैं। उनके लिए यह सन्धान ही मुख्य है, समाधान नहीं। इसलिए उनकी कहानियाँ संशय सिरजती हैं, उसके बीच से सवाल उठाती हैं और फिर एक तरह की रहस्यात्मकता का आवरण डालकर उन सवालों को अनुत्तरित छोड़ देती हैं।

जैनेन्द्र ने वैयक्तिकता की राह पर बढ़ते हुए अपनी कहानियों में सर्वाधिक महत्त्व स्त्री-पुरुष के पारस्परिक रिश्ते को दिया है। उन्होंने पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक कारणों से इस रिश्ते में उत्पन्न होने वाले तनाव और द्वन्द्व को समग्रता में समझने और फिर उसे पूरे आवेग के साथ व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। स्त्री-पुरुष का यह रिश्ता भावनात्मक स्तर पर प्रेम और संस्थागत एवं सामाजिक स्तर पर विवाह के रूप में सामने आता है। जैनेन्द्र ने प्रेम और विवाह इन दोनों ही स्थितियों की तह तक जाकर मानव-मन की हलचल की थाह लेने का साहसिक प्रयास किया है। इस क्रम में उन्होंने कहीं प्रेम और विवाह से जुड़ी स्थितियों के बीच उत्पन्न होने वाले टकराव और द्वन्द्व को प्रकट किया है तो कहीं दाम्पत्य जीवन में उभरने वाली एकरसता, ऊब, खीझ, कुण्ठा और तनाव को अभिव्यक्ति दी है। समग्रतः देखा जाए तो स्त्री-पुरुष के आपसी सम्बन्ध को लेकर लिखी गई कहानियों में जैनेन्द्र की संवेदना पुरुष की तुलना में स्त्रियों को अधिक मिली है। वे परिवेश परिस्थिति और

मनोदशा का अंकन स्त्रियों की ओर से अधिक करते हैं और ऐसा करते हुए रूढ़िबद्ध मर्यादा और नैतिकता को लेकर गहरे सवाल खड़े करते हैं। सवाल प्रेम से भी जुड़े होते हैं और विवाह से भी। 'एक रात', 'दृष्टिदोष', 'त्रिबेनी', 'कुछ उलझन' आदि कहानियाँ स्पष्ट करती हैं कि पारिवारिक-सामाजिक दबाव में विवाह किसी और से कर लेने के बावजूद विवाह-पूर्व प्रेम की रोमानियत स्त्री के अन्तर्मन में रची-बसी होती है और समय आने पर वह नैतिकता और मर्यादा के तमाम बने-बनाए अवरोधों को परे ढकेलकर फूट पड़ती है। पति और प्रेमी तथा पत्नी और प्रेमिका के इस द्वन्द्व ने जैनेन्द्र की कहानियों को नई पहचान दी है। इससे भिन्न स्थिति 'जाह्नवी' की जाह्नवी सामने लाती है। प्रेम में आकण्ठ डूबी वह नायिका प्रेमी की आतुर प्रतीक्षा में शाश्वत विरहिणी बन जाती है और तय हो चुके विवाह के रिश्ते को नकार देती है। 'रुकैया बुढ़िया' की रुक्मिणी तो विवाह किसी और से तय कर दिए जाने पर सात फेरे लेने से पूर्व ही अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है। 'रत्नप्रभा', 'मास्टरजी' जैसी कहानियाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का एक नया आयाम उद्घाटित करती हैं। इन दोनों कहानियों की नायिकाएँ पति से प्रेम न मिलने पर उसकी चाहत में किसी और की ओर आकृष्ट हो जाती हैं। 'घुँघरू' कहानी में भी ऐसा ही होता परिलक्षित होता है।

इसी प्रकार स्त्री को केन्द्र में रखकर जैनेन्द्र ने नीरस दाम्पत्य जीवन में बढ़ते अलगाव, तनाव, ऊब, घुटन और कुण्ठा को भी अपनी कहानियों का विषय बनाया है। एक ही छत के नीचे रहते हुए भी पति-पत्नी की दुनिया अलग हो जाती है। दोनों के बीच सम्बन्धों की पारस्परिकता से उपजी गरमाहट धीरे-धीरे खत्म होती चली जाती है। पति की उपेक्षा पत्नी के मर्म पर बार-बार चोट करती है। इसके प्रतिक्रियास्वरूप उसमें आक्रोश की चिनगारी भड़क उठती है। लेकिन जैनेन्द्र उस आक्रोश को विद्रोह के मुहाने तक नहीं जाने देते। ऐसी स्थिति में वे पत्नी का दर्जा पा चुकी नायिकाओं से समर्पणजन्य आत्मदान करवाकर उन्हें महिमामण्डित कर देना चाहते हैं। 'पत्नी' कहानी भी इसी कोटि की है। यहाँ कालिन्दीचरण क्रान्तिकारी है। वह देश के उद्धार के लिए हर तरह का बलिदान करने को प्रस्तुत रहता है लेकिन वही कालिन्दीचरण घर में पत्नी सुनन्दा के प्रति बेहद असंवेदनशील है। पति की उपेक्षा से आहत सुनन्दा के जीवन में घुटन, खीझ और तनाव बढ़ता जाता है। पति-पत्नी के बीच छीजते सम्बन्ध को जैनेन्द्र ने यहाँ शारीरिक हाव-भाव, घरेलू दिनचर्या और छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से व्यक्त किया है। बाह्य गतिविधियों के माध्यम से मानसिक उद्वेलन को प्रकट करने की यह जैनेन्द्र की खास कथा-भंगिमा है। पति की उपेक्षा से सुनन्दा का मन बार-बार आहत होता है और इससे उसके भीतर आक्रोश भी उत्पन्न होता है लेकिन यह आक्रोश आन्तरिक घुमड़न बनकर रह जाता है, मुखर नहीं होता। अन्ततः अन्तर्मन का उसका यह आक्रोश विद्रोह की ओर न जाकर आत्मदान का रूप ले लेता है। 'पत्नी' कहानी सन् 1936 में लिखी गई थी और सन् 1938 में प्रकाशित 'नीलम देश की राजकन्या और अन्य कहानियाँ' में संकलित हुई थी।

4.4.2. नीरस दाम्पत्य जीवन की घुटन, ऊब

'पत्नी' कहानी के केन्द्र में सुनन्दा है, कालिन्दीचरण की पत्नी। कालिन्दीचरण क्रान्तिकारी है, सुनन्दा एक सामान्य गृहिणी। एक ही छत के नीचे रहने के बावजूद भावनात्मक स्तर पर इन दोनों के बीच दूरी बढ़ती जाती है। कालिन्दीचरण का सुनन्दा की भावनाओं से, अपेक्षाओं से कोई सरोकार नहीं रह गया है। उसकी अपनी ही

दुनिया है जिसमें क्रान्ति, आतंक, देश, सरकार, राजनीति, व्यवस्था जैसे मुद्दे हैं। पति की उपेक्षा से आहत सुनन्दा का जीवन ऊब, घुटन और खीझ का पर्याय बन गया है। उसके मन से उमंग और उत्साह गायब हो चुका है। जैनेन्द्र कुमार ने पति-पत्नी के बीच बढ़ते अलगाव की ओर आरम्भ में ही संकेत कर दिया है। कहानी का आरम्भिक अंश है – "शहर के एक ओर तिरस्कृत मकान । दूसरा तल्ला, वहाँ चौके में एक स्त्री अँगीठी सामने लिए बैठी है । अँगीठी की आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच रही है।" वह स्त्री और कोई नहीं, सुनन्दा है। ठण्डी होती अँगीठी दोनों के दाम्पत्य जीवन की ऊष्मा चुक जाने की ओर इंगित कर रही है। पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से बदरंग हो चुकी सुनन्दा कीज़िंदगी ही जैसे वह तिरस्कृत मकान है। सुनन्दा का प्रथम परिचय कालिन्दीचरण की पत्नी के रूप में नहीं, 'एक स्त्री' में रूप में कराया गया है। इस तरह का परिचय उसके भीतर पत्नी होने के धूमिल पड़ते अहसास को प्रतीकित करता है। इसके बाद परिवार का विवरण है – "दो प्राणी इस घर में रहते हैं। पति और पत्नी।" कालिन्दीचरण और सुनन्दा के पारस्परिक सम्बन्ध के सूत्र इतने ढीले पड़ चुके हैं कि वे पति-पत्नी होने से पहले 'दो प्राणी' बनकर रह गए हैं। जैनेन्द्र की कथन-भंगिमा की यही विशेषता है। वे अत्यन्त सहज, सामान्य लगने वाले छोटे-छोटे वाक्यों को इस तरह विन्यस्त कर देते हैं कि उससे परिवेश और परिस्थिति की असहजता पूरे तनाव के साथ उभरकर सामने आ जाती है। परिवेश ही नहीं, पात्रों की मानसिक हलचल और उनका अन्तर्द्वन्द्व भी इन वाक्यों से प्रकट हो जाता है। यहाँ भी जैनेन्द्र लिखते हैं – "वह जाने क्या सोच रहे हैं" तो यह सुनन्दा की सोच के प्रति कहानीकार की ही अनभिज्ञता नहीं है, स्वयं सुनन्दा भी नहीं समझ पाती की वह क्या सोच रही है – "वह सुनन्दा सोचती है नहीं, सोचती कहाँ है, अलस-भाव से वह तो वहाँ बैठी ही है। सोचने को है तो यही कि कोयले न बुझ जाएँ।" वस्तुतः यह स्थिति घुटन भरे माहौल में उपजी हताशा की परिणति है। इस हताशा ने मानसिक रूप से उसे इस तरह जड़ बना दिया है कि उसके भीतर सोचने-समझने की क्षमता कुन्द पड़ गई है। यही मानसिक जड़ता उसकी शारीरिक थकान में रूपान्तरित हो जाती है। इसलिए वह कभी 'घुटनों पर बल देकर' उठती है, कभी 'अलस-भाव से' तो कभी 'माथे को उँगलियों पर टिकाकर' बैठी रहती है। ऐसे नीरस, बोझिल और ऊबाऊ माहौल में दिन गुजारना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। यही कारण है कि बारम्बार उसका ध्यान समय की ओर चला जाता है – "समय बारह से ऊपर हो गया है", "एक बज गया है", "देखो, अब दो बजेंगे।"

पति की उपेक्षा और लापरवाही के बीच सुनन्दा को बार-बार अपने गुजर चुके बच्चे की याद आ जाती है। बच्चे से जुड़ी स्मृतियाँ उसके मन-मस्तिष्क में कौंधने लगती हैं। जैनेन्द्र लिखते हैं – "उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले, पर अकेली जब होती है तब भटक-भटका कर वह मन अन्त में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुँचता है। तब उसे बच्चे की वही-वही बातें याद आती हैं। वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी-छोटी उँगलियाँ और नन्हें-नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं। सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है।" पति के उपेक्षाजन्य व्यवहार से उसके आहत मन की टीस को बच्चे की स्मृति और गहरा देती है। जैनेन्द्र ने इस प्रसंग को मनोवैज्ञानिक संस्पर्श देकर सुनन्दा के मनोजगत् के सूक्ष्म संवेदनों को जिस प्रकार रूपायित किया है, उससे कहानी को विश्वसनीयता का आधार मिल गया है।

सबेरे का गया कालिन्दीचरण दोपहर बाद घर लौटता है। साथ में तीन मित्र भी हैं। आते ही वह मित्रों को लेकर अपने कमरे में चला जाता है। वहाँ उनमें पहले से ही जारी बहस और तेज हो जाती है। बहस में बड़ी-बड़ी बातें उठती हैं – भारतमाता की स्वतन्त्रता की, नीति-अनीति और हिंसा-अहिंसा की, आतंक की, आतंकवाद की, ज़ुल्म को मिटा देने की। सुनन्दा कई घण्टे से पति की बाट जोह रही थी लेकिन घर में आ जाने पर भी कालिन्दीचरण उसकी खोज-खबर नहीं लेता। वह बहस में मशगूल है। सहसा उसे ध्यान आता है कि उसने और उसके मित्रों ने अब तक भोजन नहीं किया है और तब भीतर जाकर वह सुनन्दा से मुखातिब होता है। वहाँ कालिन्दीचरण के व्यवहार और उस पर सुनन्दा की प्रतिक्रियाओं से दोनों के बीच का अलगाव और तनाव पूरे तीखेपन के साथ प्रतिबिम्बित हो जाता है। जैनेन्द्र लिखते हैं –

"इतने में कालिन्दीचरण चौके में आए।

सुनन्दा कठोरतापूर्वक शून्य को ही देखती रही। उसने पति की ओर नहीं देखा।

कालिन्दी ने कहा – सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके तो कहो, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।

सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा।"

पति के इस तरह के व्यवहार से उसका मन फिर घायल होता है। उसे कचोट होती है कि "उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी।" इस कचोट से "उसका मन टूटता-सा है। मानों उसका जो तनिक-सा मान था वह भी कुचल गया हो।"

4.4.3. सुनन्दा का अन्तर्द्वन्द्व

सुनन्दा पति से लगाव और अलगाव के दो परस्पर विरोधी मनोभावों के बीच गहरे द्वन्द्व में जीती रहती है। पतिपरायण पत्नी के रूप में वह पति की सेहत की चिन्ता करती है, उसकी भावनाओं का सम्मान करती है और ज़रूरतों का भी ख्याल रखती है लेकिन पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से उसके मन में आक्रोश की चिनगारियाँ भी भड़कती हैं। पति की लापरवाही और अनदेखी से वह घुटन, ऊब और खीझ के बीच दिन गुजारती रहती है। इससे उसके भीतर हताशा और निराशा का भाव घर करता जा रहा है। जैनेन्द्र ने उसके इस अन्तर्द्वन्द्व को मनोविश्लेषणात्मक ढंग से चित्रित किया है। उन्होंने घटनाक्रम को विस्तार न देकर एक छोटे-से कथा-प्रसंग के माध्यम से सुनन्दा के मानसिक घात-प्रतिघात को प्रतिक्रियाओं और आंगिक चेष्टाओं द्वारा अभिव्यक्त किया है।

कहानी के आरम्भ में सुनन्दा चौके में अँगीठी सुलगाए बैठी दिखाई देती है। वह इंतजार कर रही है कि पति आ जाएँ तो खाना बनाना शुरू करे। सुबह में घर से निकला कालिन्दीचरण दोपहर बाद तक नहीं लौटा है। उसके इंतजार में सुनन्दा ने स्वयं भी कुछ नहीं खाया है, इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं है। चिन्ता है पति के उस समय

तक बिना खाए रहने की – "वह जाने कब आ जाएँगे। एक बज गया है। कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए।" पहले वह सोचती है कि "जब वह आएँगे तो रोटी बना देगी।" लेकिन और अधिक विलम्ब होने पर वह खीझ जाती है। तवा को अँगीठी पर 'झल्लाकर' रखना और आटे की थाली को 'खीझकर जोर से' सामने खींचना उसी खीझ की परिणति है। वह रोटी बेलने लगती है। इसी बीच उसे पति की पदचाप सुनाई देती है। जैनेन्द्र लिखते हैं – "थोड़ी देर बाद उसने जीने पर पैरों की आहट सुनी। उसके मुख पर कुछ तल्लीनता आई। क्षण भर वह आभा उसके चेहरे पर रहकर चली गई और फिर वह उसी भाँति काम में लग गई।" वस्तुतः उस आभा का चेहरे पर क्षण भर बना रहना पति के प्रति सुनन्दा के लगाव और तुरन्त उस आभा का तिरोहित हो जाना उपेक्षापूर्ण व्यवहार के चलते पति से उसके अलगाव की दो अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हैं। जैनेन्द्र ने उस 'क्षण' में घटित मानसिक प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति देकर सुनन्दा के गहन अन्तर्द्वन्द्व का आभास करा दिया है। कालिन्दीचरण के घर में आ जाने के बाद सुनन्दा की ये दोनों मनोदशाएँ स्पष्ट होकर सामने आ जाती हैं। घर आने के बाद कालिन्दीचरण मित्रों के साथ बहस में मशगूल हो जाता है। चौके में बैठी सुनन्दा के पास वह तब पहुँचता है जब उसे भोजन का ध्यान आता है। लेकिन बिना कुछ खाये-पीये घण्टों प्रतीक्षा के बाद सामने खड़े पति की ओर वह देखती तक नहीं, 'कठोरतापूर्वक शून्य को ही देखती' रहती है। भोजन के सम्बन्ध में कालिन्दीचरण के सवाल का जवाब देने के बजाय वह खाली बरतनों को उठाकर चल देती है। आंगिक चेष्टाओं से व्यक्त की गई यह प्रतिक्रिया पति के साथ उसके अलगाव को ध्वनित करती है लेकिन उसके ठीक बाद उसकी सर्वथा भिन्न मनोदशा प्रत्यक्ष होती है जब कालिन्दीचरण कहता है – "सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके तो कहो, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।" इस पर वह बोली कुछ नहीं पर "उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा।" वह गुस्सा उसके पहले वाले क्षोभ और आक्रोश का विस्तार नहीं है। इस बार गुस्सा आया है कालिन्दीचरण के 'क्षमाप्रार्थी' जैसी बातें करने पर। इस अंदाज में कही गई बात उसे पति की नजरों में 'गैर' होने का अहसास कराने लगती है। वह 'गैर' होना नहीं चाहती। उसे अपनत्व चाहिए। इसलिए उसे मलाल होता है कि पति हँसकर कुछ और खाना बना देने को क्यों नहीं कहते। कालिन्दीचरण के ऐसा नहीं कहने से उसके मन में तीखी प्रतिक्रिया होती है – "अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना-वाना और चुप रही।" यह सन्दर्भ पति के प्रति उसके आन्तरिक लगाव को व्यंजित करता है। जैनेन्द्र ने यहाँ पति से सुनन्दा के अलगाव और लगाव की दो भिन्न मनोदशाओं को पुनः एक बिन्दु पर संगमित कर उसके अन्तर्द्वन्द्व को समग्रता में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है।

कहानी के उत्तरार्द्ध में सुनन्दा इस मानसिक उथल-पुथल से उबरकर अपना गंतव्य सुनिश्चित करती प्रतीत होती है। इसके लिए वह स्वयं को तोड़ती है और अपने मान, अभिमान, आक्रोश सबको विसर्जन की मुद्रा में ले आती है। भोजन के सवाल पर सुनन्दा की अनवरत चुप्पी से झल्लाकर कालिन्दीचरण उसे 'खाना कोई भी नहीं खाएगा' का फरमान सुना देता है और वापस मित्रों के पास आकर पत्नी के अस्वस्थ होने का बहाना बना खाने के लिए होटल चलने का प्रस्ताव करता है। इसी बीच सुनन्दा एक बड़ी थाली में खाना परोसकर उन सबके सामने रख जाती है और चुपचाप वहाँ से चली जाती है। उसका इस तरह से चुपचाप चला जाना पति-पत्नी के बीच का तनाव मित्रों के समक्ष भी प्रकट कर देता है। इससे कालिन्दीचरण की स्थिति असहज हो जाती है। वह भीतर जाकर

सुनन्दा पर बिफर उठता है और तैश में उसे थाली वापस ले आने को कहता है। सुनन्दा पहले तो चुप्पी साधे रहती है लेकिन पति का गुस्सा और भड़कते देख वह नरम पड़ जाती है और धीरे से कहती है – "खाओगे नहीं, एक तो बज गया।" उसके टूटन की प्रक्रिया यहीं से शुरू होती है। यह सुनन्दा का पति के प्रति लगाव नहीं बल्कि उसके आगे समर्पण है। समर्पण के इस भाव से कालिन्दीचरण का अहम् तुष्ट होता है और गुस्सा छोड़ वह सहज होने लगता है। पत्नी के कहने पर अचार लेकर मित्रों के पास जाना उसकी सहजता को प्रदर्शित करता है। उसके बाद सुनन्दा का बिल्कुल बदला हुआ व्यवहार सामने आता है। वह बर्तन मलना छोड़कर पति के कमरे के पास जाकर खड़ी हो जाती है इसलिए कि भोजन के क्रम में कालिन्दीचरण को कुछ चाहिए तो वह झटपट लाकर दे सके। अचार की फरमाइश हुई तो उसने तुरन्त हाजिर कर दिया। पत्नी की इस तत्परता से पति का अहम् और तुष्ट हुआ तो उसकी वाणी मुलायम हो गई। 'तनिक स्निग्धता से' उसने पानी माँगा। सुनन्दा ने पानी ला दिया और फिर दरवाजे से लगकर ओट में खड़ी हो गई ताकि "कालिन्दीचरण कुछ माँगे तो जल्दी से दे सके।" कहानी के अन्त तक आते-आते सुनन्दा का समर्पण भाव आत्मदान का रूप ले लेता है। इस बिन्दु पर पहुँचकर उसका पति की उपेक्षा से आहत अहंकार, आक्रोश से मन में उठी घुमड़न, मन की टूटन, मान का खण्डन, क्षोभ आदि सब विगलित हो जाता है। इस आत्मदान में ही वह जीवन की सार्थकता ढूँढ़ लेती है।

सुनन्दा के चरित्र में अकस्मात् आया यह परिवर्तन प्रथम दृष्ट्या अस्वाभाविक और अतार्किक प्रतीत होता है। लेकिन समग्रतः देखा जाए तो इसमें मध्यमवर्गीय महिलाओं की विवशता परिलक्षित होती है। घर के भीतर अनुकूल माहौल न पाकर उनमें तीव्र असंतोष उत्पन्न होता है। मनोनुकूल माहौल के लिए वे जूझती हैं, संघर्ष करती हैं लेकिन सफलता नहीं मिलते देख मन को मारकर वे उसी में स्वयं को ढाल लेने को विवश हो जाती हैं। जीवन को सहज बनाने का यही एक विकल्प उनके पास रह जाता है। सुनन्दा की भी यही नियति है। पति की लापरवाही और उपेक्षा उसके भीतर घुटन और ऊब पैदा करती है। इससे उसके भीतर गहरा आक्रोश उत्पन्न होता है लेकिन परिस्थिति को बदल पाने में सफल नहीं होने पर उसे उसी माहौल में रचने-बसने के लिए स्वयं को मानसिक रूप से तैयार कर लेना पड़ता है। सुनन्दा यह मानकर स्वयं को संतुष्ट कर लेना चाहती है कि "उसका काम तो सेवा है" और जब ऐसी सोच बन जाती है तो पति के कार्य-कलाप, आचार-व्यवहार, दिनचर्या आदि को लेकर उसका सारा गिला-शिकवा अपने आप समाप्त हो जाता है। फिर तो जो हो रहा है, उसे ही वह स्वीकार करने लगती है। जैनेन्द्र ने सुनन्दा की इस बदली हुई मनोदशा को रेखांकित करते हुए लिखा है – "वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है और कभी उनकी राह के बीच में आने की नहीं सोचती। वह एक बात जानती है कि उसके पति ने अगर आराम छोड़ दिया है, घर का मकान छोड़ दिया है, जान-बूझकर उखड़े-उखड़े और मारे-मारे जो फिरते हैं, इसमें वे कुछ भला ही सोचते होंगे। इसी बात को पकड़कर वह आपत्तिशून्य भाव से पति के साथ विपदा पर विपदा उठाती रही है।" इस प्रकार 'अनायास भाव से' और 'आपत्तिशून्य भाव से' पति के साथ रहना स्वाभाविक स्थिति नहीं है बल्कि सुनन्दा का एकतरफा 'एडजस्टमेंट' है। स्वयं को आपत्तिशून्य भाव में रखने के लिए मन को मारना पड़ता है तथा इच्छाओं, अपेक्षाओं और लालसाओं को निर्ममतापूर्वक कुचलना होता है, अपने आप को ही धिक्कारने की हद तक जाकर। सुनन्दा ने यह सब किया है। घर में बना सारा भोजन पति और उसके मित्रों के आगे परोस देने के बाद उसे ख्याल आया कि अपने खाने के लिए उसने कुछ भी बचाकर नहीं रखा। इस ख्याल से

"वह अपने से रुष्ट हुई। उसका मन कठोर हुआ। ... मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरह की बात सोचती ही क्यों है ? छिः । यह भी सोचने की बात है ? और उसमें कड़वाहट भी फैली ।" अपने स्व को नकारकर परिस्थिति के साथ समझौता करने की यह एक तस्वीर है। दूसरी तस्वीर और भी विडम्बनात्मक है। सुनन्दा के मन में मलाल उठता है कि उसके पति ने "एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी।" यह एक स्वाभाविक मनःस्थिति है। इससे सुनन्दा का मन टूटता है लेकिन इस बात के लिए भी वह स्वयं को धिक्कारती है – "वह रह-रहकर अपने को स्वयं तिरस्कृत कर लेती हुई कहती है कि छिः छिः सुनन्दा, तुझे ऐसी जरा-सी बात का अब तक ख्याल होता है। तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला।" स्वयं के प्रति तिरस्कार का यह भाव विवशता की वह चरम स्थिति है जहाँ व्यक्ति अपने आत्मसम्मान को ही नहीं, अपने स्वत्व बोध को भी सायास नकारने लगता है। उसकी इस मनोदशा के परिप्रेक्ष्य में उसके बदले हुए चरित्र को विश्लेषित करने पर बदलाव की वास्तविकता तार्किकता के साथ स्पष्ट हो जाती है।

4.4.4. सुनन्दा की जिजीविषा

घर के दमघोंटू माहौल ने सुनन्दा का सुख-चैन छीन लिया है। पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार के चलते उसके जीवन से उत्साह-उमंग दूर होते जा रहे हैं। घुटन, ऊब और खीझ से भरी एकरस ज़िंदगी यन्त्रवत् हो चली है। फिर भी वह जीना चाहती है, जीवन में उत्साह-उमंग के रंग भरना चाहती है, पढ़ना-लिखना चाहती है, देश-दुनिया को समझना चाहती है, आगे बढ़ना चाहती है। अकेले बैठी होने पर जीने की यह ललक उसके मन-मस्तिष्क को झंकृत करने लगती है। कहानी में एक ही स्थल पर उसकी यह उत्कट लालसा प्रकट हुई है। देश की पराधीनता को लेकर कालिन्दीचरण और उसके मित्रों की जोश से भरी सरगर्म बहस वह चौके में बैठी सुन रही है। सुनन्दा उनके जोश का, जोश से भरी बहस का तात्पर्य समझना चाहती है पर कुछ समझ नहीं पाती। जैनेन्द्र लिखते हैं – "उसे जोश का कारण नहीं समझ में आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है, स्पृहणीय मनोरम और हरियाली।" नीरस दाम्पत्य जीवन ने सुनन्दा को किस हद तक कुण्ठित और निस्तेज बना डाला है, उसकी यह झलक है। ऐसे माहौल में जोश और उत्साह उससे दूर जा चुके हैं लेकिन इससे वह हताश नहीं है बल्कि लपककर उस जोश और उत्साह को हासिल कर लेना चाहती है। हासिल करने की इच्छा बनी हुई है इसीलिए वे भाव सुनन्दा के लिए 'स्पृहणीय' बने हुए हैं। जैनेन्द्र आगे इसे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – "जीवन की होंस उसमें बुझती-सी जा रही है, पर वह जीना चाहती है।" यह जिजीविषा उसके आन्तरिक संघर्ष का प्रतिरूप है जिसमें परिस्थिति की प्रतिकूलताओं पर विजय पाकर वह अपनी सार्थकता सिद्ध करना चाहती है। इसके लिए वह पढ़ना-लिखना चाहती है, अपने बुद्धि और विवेक को विस्तार देना चाहती है, देश-दुनिया की हलचल को भी समझना चाहती है। कालिन्दीचरण और उसके मित्र जिस भारतमाता की स्वतन्त्रता को लेकर बहस कर रहे हैं, उसे वह चाहकर भी समझ नहीं पाती। "उसको न भारतमाता समझ में आती है, न स्वतन्त्रता समझ में आती है।" ऐसी बातें समझ में न आना महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण यह है कि सुनन्दा में इन सबको समझने की ललक बनी हुई है – "उसने बहुत चाहा कि पति उससे भी कुछ देश की बातें करें। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, पर फिर धीरे-धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी ? सोचती है – कम पढ़ी हूँ, तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है ? अब तो पढ़ने को मैं तैयार

हूँ ।" लेकिन पति की उपेक्षा अन्ततोगत्वा सुनन्दा की जिजीविषा पर भारी पड़ जाती है और उसके सारे अरमानों पर मानों पत्थर पड़ जाता है। इस हाल में स्वयं को दिलासा देने के लिए वह मान लेती है कि उसका काम सिर्फ सेवा करना है। "बस, यह मानकर उसने कुछ समझने की चाह ही छोड़ दी है।" यह सुनन्दा की पराजय है, परिस्थितियों के आगे उसका विवशताजन्य समर्पण। पुरुष प्रधान समाज में मध्यमवर्गीय महिलाओं की यही विवशता उनके आत्मबल को तोड़ डालती है। पुरुषवादी मानसिकता उनके हौसले को, आशा-आकांक्षा को परवान चढ़ने का अवसर नहीं देती बल्कि उसे कुचलकर अपने अहम् को तुष्ट करना चाहती है। सुनन्दा के साथ भी ऐसा ही हुआ। उसके भीतर सम्भावनाओं के जो अंकुर फूटते दिख रहे थे, वे कालिन्दीचरण के उपेक्षा और लापरवाही भरे व्यवहार के कारण धरातल पर आने से पहले ही नष्ट हो गए।

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर लिखी गई जैनेन्द्र की अन्य कहानियों की तुलना में 'पत्नी' कहानी कुछ अलग नजर आती है। इसी भावबोध पर आधारित 'जाह्नवी', 'ध्रुवयात्रा', 'एक रात', 'दो सहेलियाँ' आदि कहानियों के नारी पात्र पुरुषों के मुकाबले अधिक दृढ़, आत्मनिर्णय में समर्थ और अत्यन्त सशक्त प्रतीत होते हैं। 'जाह्नवी' की जाह्नवी रिश्ता तय हो चुकने के उपरान्त अपने भावी पति ब्रजनन्दन को लिखे पत्र में विनम्रतापूर्वक लेकिन स्पष्टता के साथ रिश्ते से इन्कार कर अपने साहस का परिचय देती है तो 'ध्रुवयात्रा' की उर्मिला प्रेम की पवित्रता और व्यापकता को उद्भासित कर राजा रिपुदमन बहादुर के ढुलमुल व्यक्तित्व के आगे दृढ़ता की नई लकीर खींचने में सफल रहती है। 'एक रात' की सुदर्शना घर से निकलकर रात भर जयराज की गोद में सिर रखकर सोई रहती है और इस प्रकार वर्जनाओं की दीवार लाँघने का आत्मबल प्रदर्शित करती है। 'दो सहेलियाँ' की वसुधा पति को अपने हाल पर छोड़कर रात बिताने सहेली के घर चली जाती है और उसका पति वंशीधर निरीह भाव से आधी रात गए सहेली के घर उसे खोजता फिरता है। लेकिन 'पत्नी' कहानी की सुनन्दा इन नारी पात्रों से सर्वथा भिन्न है। वह पति कालिन्दीचरण के आगे निस्तेज और विवश बनी दिखाई देती है। पति के व्यवहार से उसके मर्म पर चोट पहुँचती है। घुटन और ऊब के माहौल में उसके भीतर पति के प्रति आक्रोश भी उत्पन्न होता है लेकिन यह आक्रोश उसके मन में ही घुमड़ता रह जाता है, कभी मुखर नहीं होता।

4.4.5. कालिन्दीचरण का दोहरा चरित्र

सुनन्दा का पति कालिन्दीचरण दोहरा चरित्र ओढ़े हुए है। घर के भीतर और बाहर उसके चरित्र की अलग-अलग छवियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। घर के बाहर उसकी पहचान देश के उद्धार के लिए कटिबद्ध एक क्रान्तिकारी की है। वह भारतमाता को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त करना चाहता है। उसके दल के क्रान्तिकारी मित्र नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा की बहस को निरर्थक मानकर सीधे-सीधे आतंक की राह पर बढ़ते हुए अपना लक्ष्य हासिल करने को संकल्पित प्रतीत होते हैं। उनकी स्पष्ट धारणा है कि "जुल्म को मिटाने के लिए कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरें, जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं है।" लेकिन कालिन्दीचरण की छवि इन सबसे अलग है। जैनेन्द्र के शब्दों में "कालिन्दीचरण अपने दल में उग्र नहीं समझे जाते, किसी कदर उदार समझे जाते हैं। सदस्य अधिकतर अविवाहित हैं, कालिन्दीचरण विवाहित ही नहीं हैं, वह एक बच्चा खो चुके हैं। उनकी बात का दल में आदर है। कुछ लोग उनके धीमेपन पर रुष्ट भी हैं। वह दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं और उत्ताप पर अंकुश

का काम करते हैं।" आतंक की राह पर बढ़ने को उद्यत संगठन के उत्साही साथियों की सोच से कालिन्दीचरण की सोच अलग है। वह आतंकवाद का पक्षधर नहीं है। उसका मानना है कि "हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक से विवेक कुण्ठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित होते रहता है या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं।"

लेकिन कालिन्दीचरण की यह वैचारिक उदारता और विवेकशीलता घर के भीतर नजर नहीं आती। वहाँ उसका चरित्र एक लापरवाह पति जैसा है। उसे न तो अपनी पत्नी सुनन्दा की भावनाओं का कोई ख्याल है, न उसकी आकांक्षाओं की कोई परवाह। कालिन्दीचरण के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से सुनन्दा का दाम्पत्य जीवन नीरस हो चला है। वह घुटन, ऊब, कुण्ठा और खीझ के बीच दिन गुजारती रहती है। संगठन के भीतर बुद्धि को आतंकित नहीं करने बल्कि उसे चारों ओर से जगाने की हिमायत करने वाला कालिन्दीचरण घर में पत्नी सुनन्दा के चाहने पर भी उसके विवेक, बुद्धि और व्यक्तित्व को विकसित होने का अवसर नहीं देता। सुनन्दा कम पढ़ी-लिखी है। वह पढ़ना चाहती है पर पत्नी को पढ़ाने में कालिन्दीचरण का 'धीरज खो जाता है।' मित्रों के साथ वह देश-हित की जिन बातों की चर्चा करता रहता है, सुनन्दा उसे समझना चाहती है। वह भारतमाता को और भारतमाता की स्वतन्त्रता को भी समझना चाहती है। लेकिन उसे यह सब समझाने-बुझाने में कालिन्दीचरण की कोई दिलचस्पी नहीं है। संगठन के भीतर उदारवादी होने की उसकी पहचान घर में जैसे गायब हो जाती है और वह पत्नी को दबाकर रखने की संकीर्ण मानसिकता से ग्रस्त एक रूढ़िवादी पति के रूप में नजर आता है। दोपहर बाद घर पहुँचने पर उसे अपने और साथ आए तीन मित्रों के भोजन का ध्यान आता है लेकिन बिना कुछ खाये-पीये घण्टों पति की प्रतीक्षा में बैठी सुनन्दा क्या खाएगी, इसकी कोई चिन्ता नहीं होती। भोजन के बारे में पूछने पर सुनन्दा की अनवरत चुप्पी से वह गुस्से में आ जाता है और चौके से 'तैश में पैर पटकते हुए लौटकर' चला जाता है। सुनन्दा जब थाली में खाना परोसकर रख जाती है तो वह आपे से बाहर हो जाता है और भीतर जाकर सुनन्दा पर फट पड़ता है। जैनेन्द्र उसके क्रोध को इस प्रकार दिखाते हैं-

"आकर सुनन्दा से बोला "यह तुमसे किसने कहा था कि खाना वहाँ ले आओ ? मैंने क्या कहा था ? "

सुनन्दा कुछ न बोली।

"चलो, उठा लाओ थाली। हमें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल चले जाएँगे।"

सुनन्दा नहीं बोली। कालिन्दी भी कुछ देर गुम खड़ा रहा। तरह-तरह की बातें उसके मन में और कण्ठ में आती थीं। उसे अपना अपमान मालूम हो रहा था और अपमान असह्य था।

उसने कहा "सुनती नहीं हो कि कोई क्या कह रहा है ?"

"क्यों" सुनन्दा ने मुँह फेर लिया।

"क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ ?"

सुनन्दा भीतर-ही-भीतर घुट गई।

"मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था तब खाना ले जाने की क्या ज़रूरत थी ?"

कालिन्दीचरण के लहजे की कठोरता उस समय की उसकी मनःस्थिति को ध्वनित करती है जो कालिन्दीचरण संगठन के भीतर 'उत्ताप पर अंकुश' का काम करता है, वह घर के भीतर अपने ही उत्ताप पर अंकुश नहीं रख पाता। उसका उत्ताप इस इद तक बढ़ जाता है कि पहली बार सुनन्दा के पास लौटने पर वह आतंक को छोड़कर आगे बढ़ने के अपने पक्ष पर दृढ़ नहीं रह पाता। 'वह सहमत हो सकता है कि हाँ, आतंक ज़रूरी भी है।' पत्नी की खीझ भरी चुप्पी से उत्पन्न उद्वेग उसे आतंक के पक्ष में खड़ा कर देता है। जैनेन्द्र सांकेतिक रूप से बताना चाहते हैं कि इस आतंक का निशाना सुनन्दा ही है। उसे दबाने के लिए कालिन्दीचरण को आतंक ज़रूरी प्रतीत होने लगता है। यह भी उसके चरित्र का दोहरापन है।

जैनेन्द्र कुमार ने क्रान्तिकारियों को केन्द्र में रखकर कई कहानियाँ लिखी हैं परन्तु कहीं भी उनकी सहानुभूति क्रातिकारियों के साथ नहीं रही है। उनके पहले कहानी-संग्रह 'फाँसी' की 'फाँसी' कहानी का केन्द्रीय पात्र शमशेर है। उसे 'डाकू' कहा गया है लेकिन उसका चरित्र क्रान्तिकारियों जैसा है। जैनेन्द्र तय नहीं कर पाते कि शमशेर को डाकू के रूप में प्रस्तुत किया जाए या क्रान्तिकारी के रूप में और इस दुविधा में 'फाँसी' शमशेर और एक पुलिस अधिकारी की पुत्री जुलैका की प्रेम कहानी बनकर रह जाती है। इटली की क्रान्ति की पृष्ठभूमि पर आधारित उसी काल की कहानी 'स्पर्द्धा' में जैनेन्द्र ने क्रान्ति और अहिंसा की बहस को केन्द्र में रखा है और उसके माध्यम से मित्रता और कर्त्तव्य के द्वन्द्व को उभारने की कोशिश की है। 'क्या हो ?' शीर्षक कहानी में फाँसी की प्रतीक्षा कर रहे एक क्रान्तिकारी की मनोदशा का चित्रण किया गया है। उस क्रान्तिकारी की चिन्ता देश या क्रान्ति को लेकर नहीं है बल्कि वह अपनी मृत्यु के बाद अक्षतयौवना पत्नी के भविष्य को लेकर चिन्तित रहता है। 'पत्नी' कहानी में भी उन्होंने क्रान्तिकारी कालिन्दीचरण के चारित्रिक दोहरेपन को ही उजागर किया है। क्रान्तिकारियों से जैनेन्द्र का भावनात्मक लगाव नहीं हो पाने की मुख्य वजह उनका धार्मिक दृष्टि से जैन मतावलम्बी और राजनैतिक दृष्टि से गाँधीवादी होना है। जैन धर्म और गाँधीवाद, दोनों ही अंहिसा पर जोर देते हैं जबकि क्रान्तिकारियों की सोच हिंसावादी रही है। इस वैचारिक अलगाव ने उन्हें क्रान्तिकारियों के प्रति कभी सहानुभूतिशील नहीं होने दिया।

4.4.6. कहानी का शिल्प

जैनेन्द्र कुमार हिन्दी कहानी को प्रेमचंदयुगीन घटनात्मकता और विवरणात्मकता की परिधि से निकालकर उसे मनोवैज्ञानिकता का रचनात्मक संस्पर्श देने वाले पहले कहानीकार हैं। मनोवैज्ञानिक तथ्यों के समावेश से प्रेमचंद और उनके युग के अन्य कहानीकारों ने भी परहेज नहीं किया है लेकिन उनका जोर घटना का विवरण देने पर ही रहा है। जैनेन्द्र कुमार उन कहानीकारों से इस मायने में भिन्न हैं कि उन्होंने घटनाक्रम को विस्तार देने की

जगह घटना-विशेष से उत्पन्न होने वाले मानसिक घात-प्रतिघात और तज्जन्य प्रतिक्रियाओं के अंकन को प्रधानता दी है । उनकी कहानियाँ बाह्य जगत् के यथार्थ की अपेक्षा मनोगत यथार्थ को अभिव्यंजित करती हैं । मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के सहारे उन्होंने पात्रों के अन्तर्मन की हलचल को गहरी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त किया है। ये सभी विशेषताएँ 'पत्नी' कहानी में भी परिलक्षित होती है।

'पत्नी' सुनन्दा को केन्द्र में रखकर लिखी गई एक चरित्र प्रधान कहानी है। इसमें घटनात्मकता का सूत्र अत्यन्त क्षीण है। जैनेन्द्र ने घटनाक्रम को विस्तार न देकर सुनन्दा के मानसिक उद्वेलन के चित्रण को प्रधानता दी है। पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से छीजते दाम्पत्य सम्बन्ध के बीच सुनन्दा घुटन और ऊब के माहौल में जी रही है। इस मनःस्थिति में उसके भीतर उत्पन्न होने वाले क्षोभ, आक्रोश, निराशा, टीस, कसक और अन्तर्द्वन्द्व को मनोविश्लेषणात्मक ढंग से व्यक्त किया गया है। कहानी का फैलाव बाहर की ओर नहीं होता बल्कि यह अन्तर्मन की परतों को उकेरती चलती है। सुनन्दा की आन्तरिक हलचल को व्यक्त करने के लिए जैनेन्द्र ने उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओं और आंगिक चेष्टाओं को अभिव्यंजित करने के साथ ही सूक्ष्म संकेत शैली, सटीक संवाद योजना, अर्थ के कई स्तरों पर ध्वनित होने वाली जीवन्त भाषा और परिस्थिति के अनुरूप परिवेश के अंकन का विधान किया है।

कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता है – "शहर के एक ओर तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला, वहाँ चौके में एक स्त्री अँगीठी सामने लिए बैठी है। अँगीठी की आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच रही है। उसकी अवस्था बीस-बाईस के लगभग होगी। देह से कुछ दुबली और सम्भ्रान्त कुल की मालूम होती है।" पूरी कहानी में सुनन्दा के जिन मनोभावों का प्रकटीकरण हुआ है, उसकी ओर जैनेन्द्र ने इस आरम्भिक अनुच्छेद में ही अर्थपूर्ण संकेत कर दिया है। अँगीठी में राख होती जा रही आग पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध की ऊष्मा ठण्डी पड़ती जाने को प्रतीकित करती है। 'तिरस्कृत मकान' सुनन्दा की ज़िंदगी की वास्तविकता की ओर संकेत है। उसका प्रथम परिचय सुनन्दा या कालिन्दीचरण की पत्नी के रूप में नहीं बल्कि 'एक स्त्री' के रूप में कराया गया है। ऐसा परिचय उसके स्वयं के प्रति निरर्थकता बोध और पत्नीत्व के धूमिल होते अहसास को व्यंजित करता है। बीस-बाईस की अवस्था में 'देह से कुछ दुबली' होना सुनन्दा की सेहत पर उसके मानसिक दबाव और तनाव का असर दिखाता है। 'सम्भ्रान्त कुल' की होने के कारण कुलीनताबोध उसे उन रूढ़िवादी संस्कारों में जकड़े हुए है जो पति की अनुगता होने में ही पत्नी-धर्म की सार्थकता प्रतिपादित करते हैं। यही कारण है कि पति की लापरवाही और उपेक्षा से उसके मन में उत्पन्न होने वाले आक्रोश का पर्यवसान अन्ततः समर्पण की मुद्रा में होता है। ध्यातव्य है कि इस कहानी में अँगीठी की आग प्रेमचंद की कहानी 'कफ़न' के अलाव की भाँति पूरी तरह ठण्डी नहीं हो जाती। राख होती आग में कोयला डालकर सुनन्दा अँगीठी को पुनः दहका देती है। यह दाम्पत्य जीवन की ऊष्मा जगाए रखने की सुनन्दा की एकतरफा कोशिश की ओर अर्थपूर्ण संकेत है। जैनेन्द्र ने कई वक्तव्यों में कहानी के शिल्प के प्रति अपनी अज्ञानता की बात कही है लेकिन वास्तविकता यह है कि शिल्प के प्रति वे अत्यन्त सजग और सचेत रहते हैं। उनकी शिल्पगत सजगता 'पत्नी' कहानी में भी दृष्टिगोचर होती है। वे कहानी में वाक्यों का

गठन और वाक्य में शब्दों का चयन इस कुशलता के साथ करते हैं कि पूरा सन्दर्भ अपने सामान्य अर्थ को भेदकर विशेषार्थ को भी ध्वनित करने लगता है।

जैनेन्द्र ने अपने रचनात्मक कौशल और मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ के बूते पात्रों की आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से उनके मनोभावों का प्रत्यक्षीकरण कराया है। सुनन्दा के 'घुटनों पर हाथ देकर' उठने और 'अलस भाव से' बैठे रहने में उसकी शारीरिक और मानसिक थकान उजागर होती है तो 'माथे को उँगलियों पर टिकाकर' बैठने और 'बैठी-बैठी सूनी-सी' देखने में चिन्ता और उदासी का भाव प्रकट होता है। इसी प्रकार 'झल्लाकर तवा अँगीठी पर' रखने और 'खीझकर जोर से आटे की थाली के सामने खींच' लेने में उसकी झुँझलाहट सामने आ जाती है। गुजर चुके बच्चे की याद आने पर जब वह 'आँखें पोंछती है' तो उसके अन्तर्मन की वेदना और विह्वलता प्रतिबिम्बित हो जाती है। कालिन्दीचरण का भी चौके से 'तैश में पैर पटकते हुए लौट कर' चला जाना उसके आक्रोश को व्यक्त करता है।

कहानी की संक्षिप्त, सटीक और धारदार संवाद-योजना पति-पत्नी के बीच के तनाव, उनके पारस्परिक सम्बन्ध में आई छीजन और एक-दूसरे के प्रति बढ़ती कटुता को समग्रता में अभिव्यंजित कर देती है। संवाद भी दोतरफा नहीं, एकतरफा ही है। कालिन्दीचरण भोजन को लेकर सुनन्दा से एक के बाद एक कई सवाल पूछता है लेकिन सुनन्दा उसका कोई जवाब नहीं देती। वह चुप्पी साधे रहती है लेकिन इस चुप्पी में न तो उसका दम्भ है, न भीरुता। यह चुप्पी सुनन्दा की मानसिक उथल-पुथल से उत्पन्न प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति है। कालिन्दीचरण का हर सवाल उसके मर्म पर हथौड़े की मानिंद चोट करता है जिससे उसके भीतर तीखी प्रतिक्रिया होती है। घण्टों प्रतीक्षा के बाद घर आने पर कालिन्दीचरण जब मित्रों से फुर्सत पाकर चौके में बैठी सुनन्दा के पास पहुँचता है तो वह उसकी ओर देखती तक नहीं, 'कठोरतापूर्वक शून्य को ही देखती' रहती है। खाना तैयार होने के सम्बन्ध में पूछने पर वह कालिन्दीचरण को जवाब दिए बिना ही खाली बरतन उठाकर वहाँ से चल देती है। उसकी बेरुखी से क्षुब्ध कालिन्दीचरण जब डाँटने के अंदाज़ में उसका नाम लेता है तो सुनन्दा के मन में होता है कि "हाथ की बटलोई को खूब जोर से फेंक दे।" कालिन्दीचरण और उसके मित्रों के आगे सुनन्दा के खाना परोसकर चुपचाप चले आने के बाद पति-पत्नी के बीच का तनाव और बढ़ जाता है। वहाँ भी गुस्से से बिफर रहे कालिन्दीचरण के सवाल और सुनन्दा की घुटनभर चुप्पी के जरिये उस तनाव को व्यक्त किया गया है। जैनेन्द्र अपनी कहानियों में बाह्य दृश्यों के बजाय अन्तर्दृश्यों के अंकन को प्रधानता देते हैं और इसमें संवाद-योजना कारगर औजार की तरह काम करती है।

कहानीकार की मौलिकता, रचनात्मकता, कल्पनाशीलता और मनोवैज्ञानिकता की सही परख अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में होती है। जैनेन्द्र इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति दो परस्पर विरोधी सशक्त मनोभावों की टकराहट से उत्पन्न होती है और इस टकराहट से गहराते दबाव और तनाव के बीच ही पात्रों के व्यक्तित्व की आड़ी-तिरछी छवियाँ उभरकर सामने आती हैं। 'पत्नी' कहानी में सुनन्दा के अन्तर्द्वन्द्व को मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से चित्रित किया गया है। जैनेन्द्र ने उसके अन्तर्मन के घात-प्रतिघात, आवेग और प्रतिक्रियाओं का जिस बारीकी से अंकन किया है, उससे उनकी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ और सूक्ष्म पर्यवेक्षण-दृष्टि

का उद्घाटन होता है। सुनन्दा पति से अलगाव और लगाव की दो सर्वथा भिन्न मनःस्थितियों के बीच झूलती रहती है। पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से उसकी ज़िंदगी घुटन, ऊब और खीझ का पर्याय बन गई है। हताशा और निराशा का भाव उस पर हावी होता जाता है। पति के व्यवहार से उसके मन में तीव्र आक्रोश उत्पन्न होता है लेकिन तब भी वह पति को खिलाए बिना खाना नहीं खाती है, उसकी प्रतीक्षा में घण्टों भूखे बैठी रहती है, देर तक बिना खाए रहने से पति के सेहत बिगड़ने की चिन्ता करती है, पति की भावनाओं का सम्मान करती है और उसकी ज़रूरतों का ख्याल भी रखती है। जैनेन्द्र ने उसके इस अन्तर्द्वन्द्व को कई कोणों से उभारा है, कहीं घरेलू परिवेश के चित्रण से, कहीं उसकी बाह्य गतिविधियों से, कहीं आंगिक चेष्टाओं से तो कहीं मानसिक प्रतिक्रियाओं से। कहानी के उत्तरार्द्ध में इस अन्तर्द्वन्द्व का पर्यवसान सुनन्दा के समर्पणजन्य आत्मदान में होता है। ऐसा क्यों हुआ, जैनेन्द्र इसे स्वयं स्पष्ट नहीं करते। इस रहस्य की गुत्थी सुलझाने का जिम्मा वे पाठकों पर छोड़ देते हैं।

जैनेन्द्र कुमार अपनी कहानियों में भाषा को कुशल शिल्पी की भाँति सतर्कतापूर्वक गढ़ते हैं। उनकी कहानियों में बाह्य जगत् का ज्यादा फैलाव नहीं होता। सीमित परिधि की ही विभिन्न स्थितियों और उनसे पात्रों के अन्तर्मन में उठने वाली हलचल को वे भाषा की कारीगरी के जरिये बारीकी से उकेरते चलते हैं। इसलिए सहज-सरल प्रतीत होने वाली उनकी भाषा असहज स्थितियों और जटिल मनोभावों को भी सहजता से प्रकट करने में समर्थ सिद्ध होती है। पात्र, परिवेश और परिस्थिति के अनुरूप उनकी भाषा की अलग-अलग भंगिमाएँ सामने आती है। इस क्रम में कहीं तो वे मौन को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बना लेते हैं, कहीं वाक्य को अधूरा छोड़कर मानसिक द्वन्द्व को ध्वनित करते हैं तो कहीं छोटे-छोटे वाक्यों के प्रयोग से पारस्परिक सम्बन्धों में आए तनाव को मूर्त्त रूप दे देते हैं। उनकी भाषा की ये सभी विशेषताएँ 'पत्नी' कहानी में भी परिलक्षित होती है। इस कहानी में मुख्यतः तीन परिदृश्य हैं – सुनन्दा की घुटन भरी ज़िंदगी, पति-पत्नी के बीच तनाव और क्रान्ति एवं आतंक के सवाल पर मित्रों के साथ कालिन्दीचरण की बहस। इन तीनों स्थितियों को उभारने के लिए भाषा के तीन स्तर दिखाई देते हैं। सुनन्दा की घुटन और ऊब वाली मनःस्थिति के अंकन के लिए परिवेश और आंगिक चेष्टाओं के चित्रण के साथ ही अतीत की कतिपय स्मृतियों को विन्यस्त किया गया है तो पति-पत्नी के बीच के तनाव को मूर्त्त करने के लिए संक्षिप्त किन्तु तीक्ष्ण संवाद रचे गए हैं। इसी प्रकार क्रान्ति और आतंक को लेकर होने वाली बहस की भाषा में वैचारिकता और तार्किकता को प्रधानता दी गई है लेकिन इन तीनों भंगिमाओं में भाषा अपनी सहजता और स्वाभाविकता के वैशिष्ट्य से विरत नहीं होती। मिश्रित वाक्यों से जैनेन्द्र को शुरू से परहेज रहा है। इस कहानी में भी आम जीवन के शब्दों को लेकर छोटे-छोटे सरल वाक्यों का गठन किया गया है। जैनेन्द्र का यह भाषा-संस्कार उनके व्यापक जीवानुभव, गहन अध्ययन और मौलिक चिन्तन का प्रतिफल है।

कहानी का शीर्षक 'पत्नी' अर्थव्यंजक, सार्थक और युक्तिसंगत है। सुनन्दा कालिन्दीचरण की पत्नी है। कहानी का ताना-बाना उसी को केन्द्र में रखकर रचा गया है। वह पत्नी है सिर्फ विवाहिता होने के कारण पर वास्तव में दाम्पत्य जीवन में बढ़ते तनाव के चलते उसके भीतर पत्नी होने का अहसास धूमिल होता जाता है। पति की उपेक्षा और लापरवाही से घुटन और ऊब भरे माहौल में उसकी ज़िंदगी यन्त्रवत् हो चली है। अपने स्तर से वह सारे अरमानों को होम करके भी पत्नी-धर्म को निभाना चाहती है लेकिन कालिन्दीचरण की बेरुखी और गैर

जिम्मेदारी के चलते ऐसा सम्भव नहीं हो पाता और सुनन्दा घुट-घुटकर जीती रहती है। कहानी के अन्त तक आते-आते वह पति के आक्रोश से मन में उठने वाली घुमड़न, आहत मन, खण्डित अभिमान – सबका विसर्जन कर आत्मदान की मुद्रा में आ जाती है। इस प्रकार 'पत्नी' शीर्षक कहानी के पूरे परिदृश्य में पार्श्व संगीत की तरह ध्वनित होता रहता है।

4.4.7. पाठ-सार

हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण और मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के प्रवर्त्तन का श्रेय जैनेन्द्र कुमार को है। उन्होंने सामाजिक-पारिवारिक जीवन पर आधारित प्रेमचंदयुगीन कहानियों की लीक से अलग हटकर घटना की संघटनात्मकता के बजाय अन्तर्मन के निगूढ़ भावों को व्यंजित करने पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की। इसलिए उनकी कहानियों में बाह्य दृश्यों की अपेक्षा अन्तर्दृश्यों को प्रधानता मिली है। जैनेन्द्र के लिए घटना महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है घटना के कारण उत्पन्न होने वाली मानसिक हलचल, घात-प्रतिघात, मनोभाव में आया परिवर्तन, प्रतिक्रियाएँ ओर अन्तर्द्वन्द्व। मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से पात्रों के अन्तर्मन की गहराइयों में उतरकर उन्होंने इन मनोदशाओं को कलात्मक कौशल के साथ अभिव्यक्त किया है। 'पत्नी' कहानी में उनके कथा-विन्यास की ये सभी विशेषताएँ समाविष्ट हैं, इसलिए इसे उनकी प्रतिनिधि कहानी माना जा सकता है।

'पत्नी' कहानी में सुनन्दा नामक स्त्री के अन्तर्द्वन्द्व, घुटन, ऊब, खीझ, आक्रोश, तनाव, निराशा और विवशता का प्रभावी चित्रण किया गया है। सुनन्दा का पति कालिन्दीचरण क्रान्तिकारी है। वह देशोद्धार के लिए कटिबद्ध है और भारतमाता को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाना चाहता है। जैनेन्द्र कुमार ने घर के भीतर और बाहर कालिन्दीचरण के व्यक्तित्व की दो भिन्न छवियों को आमने-सामने कर उसके चारित्रिक दोहरेपन को उजागर किया है। क्रान्तिकारियों के संगठन में वह उदार और विवेक का प्रतिनिधि समझा जाता है लेकिन उसकी वह उदारता और विवेकशीलता घर के भीतर सुनन्दा के प्रति दिखाई नहीं देती। उसे देश और दुनिया की चिन्ता है पर सुनन्दा की कोई चिन्ता नहीं है। सुनन्दा की भावनाओं, इच्छाओं और अरमानों से उसका कोई वास्ता नहीं है। संगठन के भीतर वह आतंक की राह छोड़ने पर बल देता है इसलिए कि बुद्धि को चारों ओर से जगाया जा सके। लेकिन सुनन्दा के व्यक्तित्व के विकास की समस्त सम्भावनाओं के आगे वह अवरोध बनकर खड़ा हो जाता है।

पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार और लापरवाही से सुनन्दा घुटन और ऊब के बीच दिन गुजारती रहती है। उसके भीतर मानसिक जड़ता घर करती जाती है। जैनेन्द्र ने सुनन्दा की इस मनोदशा का चित्रण उसकी सामान्य गतिविधियों और आंगिक चेष्टाओं में निहित सूक्ष्म संकेतों के माध्यम से किया है। अँगीठी में कोयला डालने के लिए उसका घुटनों पर हाथ देकर उठना, फिर अलस-भाव से बैठे रहना, कुछ सोचने के लिए दिमाग पर जोर देना जैसी क्रियाएँ उसकी मानसिक जड़ता और तज्जन्य शारीरिक थकान को रूपायित करती हैं। रोटी बनाने के लिए तवा को अँगीठी पर रखने और आटे की थाली को खींचने में व्यक्त प्रतिक्रियाओं से उसकी खीझ और झल्लाहट प्रकट होती है। पति-पत्नी के बीच बढ़ता फासला सामने आ जाता है जब सुबह में निकला कालिन्दीचरण दोपहर बाद तीन मित्रों के साथ घर पहुँचने पर सीधे अपने कमरे में चला जाता है और क्रान्ति, आतंक जैसे मुद्दों पर बहस

में मशगूल हो जाता है। बिना कुछ खाये-पीये पति की बाट जोह रही सुनन्दा की सुधि लेने की उसे ज़रूरत महसूस नहीं होती। चौके में रोटी बना लेने के बाद सुनन्दा जोश और उत्साह से भरी उनकी बहस सुनती रहती है। लेकिन स्वयं उसके लिए उत्साह अपरिचित हो गया है और जोश एक अबूझ पहेली। परिस्थिति की प्रतिकूलताओं ने उसे तोड़ डाला है जिससे उसके अन्दर हताशा का भाव घनीभूत होता जा रहा है। माथे को उँगलियों पर टिकाकर बैठने और बैठे-बैठे सूनी निगाह से देखने की शारीरिक भंगिमा में उसकी वहीं हताशा प्रत्यक्षीकृत होती है। अकेले बैठे होने पर उसकी दबी-कुचली आकांक्षाएँ एक-एक कर प्रकट होने लगती हैं। देश-दुनिया की बातें वह भी समझना चाहती है पर पति यह सब समझाने को तैयार नहीं हैं। वह पढ़ने को तैयार है लेकिन पढ़ाने में पति का धीरज खो जाता है। कालिन्दीचरण की इस बेरुखी से सुनन्दा के व्यक्तित्व के विकास की समस्त सम्भावनाएँ दफन हो जाती हैं। इस परिस्थिति में सेवा को ही अपना काम मानकर कुछ समझने की चाह छोड़ देने और पति के साथ अनायास और आपत्तिशून्य भाव से रहने में सुनन्दा की विवशता स्पष्टतः परिलक्षित होती है। निराशा, हताशा और विवशता के बीच गुजर चुके बच्चे की याद उसकी टीस को और गहरा देती है।

बहस में उलझा कालिन्दीचरण सुनन्दा के पास तब जाता है जब उसे अपने और मित्रों के भोजन का ध्यान आता है। पति के सामने आने पर सुनन्दा उसकी ओर देखती तक नहीं। भोजन को लेकर कालिन्दीचरण के सवालों के जवाब में सुनन्दा की तीखी प्रतिक्रिया भरी चुप्पी से पति-पत्नी के बीच का तनाव व्यंजित होता है। तैश में वहाँ से लौटकर मित्रों के समक्ष पत्नी के अस्वस्थ होने की बात कह कालिन्दीचरण भोजन के लिए होटल चलने का प्रस्ताव करता है लेकिन इसी बीच जब सुनन्दा उन सबके सामने खाना परोसकर चुपचाप लौट जाती है तो पति-पत्नी के बीच का तनाव मित्रों के समक्ष भी प्रकट हो जाता है। सुनन्दा के इस तरह खाना परोस देने से कालिन्दीचरण की स्थिति असहज हो जाती है। वह भीतर जाकर सुनन्दा पर बिफर उठता है। मना करने के बावजूद सुनन्दा के खाना परोस देने पर तो उसे क्रोध होता है लेकिन सुनन्दा के खाने के लिए कुछ बचा या नहीं, इसकी चिन्ता नहीं होती। पति के इस व्यवहार से सुनन्दा का मन और मान, दोनों आहत होता है लेकिन वह इस स्थिति का प्रतिकार नहीं करती बल्कि कहानी के अन्त तक आते-आते मन को मारकर, स्वयं को धिक्कार कर सहसा अपने मान, अभिमान, क्षोभ आक्रोश आदि सबका विसर्जन करते हुए समर्पण की मुद्रा में आ जाती है और भोजन के दौरान पति को कुछ ज़रूरत होने पर तुरन्त ला देने के लिए तत्पर हो जाती है। सुनन्दा के चरित्र में अकस्मात् यह मोड़ क्यों आया, जैनेन्द्र इस प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ देते हैं।

सुनन्दा पति के व्यवहार से आहत है लेकिन वह उसे चाहती भी है। इन दो परस्पर विरोधी मनोदशाओं की टकराहट से उसके भीतर उत्पन्न होने वाले अन्तर्द्वन्द्व को जैनेन्द्र ने सूक्ष्म संवेदन के साथ चित्रित किया है। वह पति की प्रतीक्षा में भूखे बैठी रहती है, उसकी सेहत को लेकर चिन्ता करती है, उसकी भावनाओं का सम्मान करती है, ज़रूरतों का ध्यान रखती है। पति गैर समझे, यह उसे गवारा नहीं है। इसमें पति से उसका लगाव प्रकट होता है लेकिन पति की उपेक्षा और लापरवाही से आहत मन में घटित होने वाली प्रतिक्रिया और घुमड़न भरी चुप्पी उसके आक्रोश, क्षोभ और तनाव को व्यक्त करती है।

कहानी में घटनाक्रम का फैलाव नहीं है जो कुछ भी घटित होता है, वह मन के अन्दर ही। इसलिए पूरी कहानी में बाह्य दृश्यों की अपेक्षा अन्तर्दृश्यों की प्रधानता परिलक्षित होती है। मानसिक उद्वेगों को व्यक्त करने के लिए जैनेन्द्र ने सहज-सरल शब्दों, छोटे-छोटे वाक्यों और सटीक एवं संक्षिप्त संवादों का ऐसा सधा हुआ विन्यास किया है कि कई स्थलों पर वे अपने सामान्य अर्थ का अतिक्रमण कर विशेषार्थ को ध्वनित करने लगते हैं। कहानी का शीर्षक 'पत्नी' सार्थक एवं युक्तिसंगत है। पूरी कहानी में पत्नी की ही बहुविध छवियाँ अंकित की गई हैं।

4.4.8. बोध प्रश्न

1. 'पत्नी' कहानी के मूल प्रतिपाद्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'पत्नी' कहानी के आधार पर सुनन्दा का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. 'पत्नी' कहानी में निहित जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिक कथा-दृष्टि का उद्घाटन कीजिए।
4. 'पत्नी' कहानी के शिल्प-विधान की समीक्षा कीजिए।
5. हिन्दी कहानी में जैनेन्द्र कुमार के योगदान का मूल्यांकनकीजिए।

4.4.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. मधुरेश (2014), हिन्दी कहानी का विकास, इलाहाबाद, सुमित प्रकाशन
2. राय, गोपाल (2014), हिन्दी कहानी का इतिहास, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, ISBN : 978-81-267-1628-
3. सिंह, नामवर (2006), कहानी : नयी कहानी, इलाहाबाद, लोकभारती, प्रकाशन

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : कहानी – 1

इकाई – 5 : हीली-बोन् की बत्तखें – अज्ञेय

इकाई की रूपरेखा

4.5.1. उद्देश्य कथन
4.5.2. प्रस्तावना
4.5.3. अज्ञेय की कहानियाँ : एक परिचय
4.5.4. हिन्दी-कहानी की परम्परा में अज्ञेय का स्थान एवं महत्त्व
4.5.5. 'हीली-बोन् की बत्तखें' का कथासार एवं कथावस्तु के विविध आयाम
    4.5.5.1. पारिवारिकता की खोज
    4.5.5.2. व्यक्तिगत इयत्ता की खोज
    4.5.5.3. इतिहास और संवेदना का संगुम्फन
        4.5.5.3.1. 'हीली-बोन् की बत्तखें' में खासी जनजाति के सन्दर्भ
        4.5.5.3.2. खासी जनजाति की परम्पराओं के कारण हीली-बोन् के अभिशप्त जीवन का यथार्थ
4.5.6. 'हीली-बोन् की बत्तखें' की मूल संवेदना
4.5.7. 'हीली-बोन् की बत्तखें' का कथा-शिल्प
4.5.8. पाठ-सार
4.5.9. बोध प्रश्न

4.5.1. उद्देश्य कथन

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हम यह जान सकेंगे –

i. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कहानियों का हिन्दी कहानी की परम्परा में स्थान एवं महत्त्व क्या है।
ii. अज्ञेय के कहानी-लेखन का विकास-क्रम क्या व कैसा रहा है। उन्होंने कितनी कहानियाँ लिखीं व उनकी विकास-यात्रा की विशेषताएँ क्या रही हैं।
iii. हिन्दी-कहानी की परम्परा में अज्ञेय की कहानियाँ क्यों विशिष्ट हैं और अज्ञेय का हिन्दी-कहानी की परम्परा में क्या योगदान रहा है।
iv. अज्ञेय की कहानी 'हीली-बोन् की बत्तखें' की विशिष्टता क्या है और इनके कहानियों में 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी का स्थान एवं महत्त्व क्या है।
v. 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी में इतिहास एवं वर्तमान का बहुत ही कलात्मक संगुम्फन पाया जाता है। इस कहानी का एक विशिष्ट ऐतिहासिक-स्थानिक सन्दर्भ है जो खासी जनजाति से सम्बन्धित है।

vi. खासी जनजाति की कुछ विशिष्ट परम्पराओं का निर्वाह किए जाने के कारण हीली को किन-किन स्थितियों से गुज़ारना पड़ा तथा उसकी जीवन-नियति कैसी दुर्वह हो आई !

vii. कहानी की मूल संवेदना और स्त्री-पुरुष / नर-मादा में संवेदनात्मक अन्तर क्या है।

4.5.2. प्रस्तावना

'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी में अज्ञेय की कहानी-कला की अनेकानेक विशेषताएँ समाहित हैं। अज्ञेय इस कहानी में मनुष्य और पशुओं के संवेदना-तन्त्र की समानता और एकतानता की प्रस्थापना करते दिखाई देते हैं। जैसी पारिवारिकता मनुष्य-समुदाय में पाई जाती है, जैसी पारिवारिक संरक्षणशीलता मनुष्यों की संतानों को आवश्यक होती है और जिस प्रकार मनुष्यों की संतानों को अपने माता-पिता का संरक्षण आवश्यक होता है, लगभग वैसी ही स्थिति पशुओं की संततियों की होती है। उन्हें भी अपने माता-पिता का वैसा ही संरक्षण काम्य होता है। यदि किसी कारण इसमें व्यवधान आता है तो वे भी उसी प्रकार दुखी एवं असुरक्षित अनुभव करते हैं, जैसे मनुष्य की संतानें करती हैं। इस आधार पर मनुष्यों और पशुओं में कतई कोई अन्तर नहीं है।

अज्ञेय कहानियों में कविता से भिन्न शिल्प अपनाते हैं। कविता में विचार हो ही, यह आवश्यक नहीं किन्तु कहानी में वे विचार आवश्यक रूप से अपनाते हैं। 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी में एक व्यक्ति के निजी अस्तित्व अथक व्यक्तित्व की खोज अज्ञेय करते हैं। हीली-बोन् के व्यक्तित्व की खोज इस कहानी का सबसे बड़ा अभिप्राय है। अन्य शब्दों में इसे व्यक्ति की व्यक्तिगत इयत्ता की खोज भी कहा जाता है।

अज्ञेय की एक अन्यतम उपलब्धि यह है कि वे इतिहास और संवेदना का अद्भुत मेल कहानी में बुन देते हैं। यह कहानी भी इसका एक अन्यतम उदाहरण है। हीली-बोन् का चरित्र-निरूपण इसी शिल्प-तकनीक से किया गया है।

उक्त संदृष्टियों के सन्दर्भ में इस कहानी का अध्ययन प्रस्तावित है।

4.5.3. अज्ञेय की कहानियाँ : एक परिचय

"अज्ञेय ने अपने जीवन में कुल सड़सठ (67) कहानियाँ लिखीं। ये कहानियाँ सन् '29 से लेकर '59 के तीस सालों में लिखी गई हैं। इनमें शुरू की पन्द्रह-सोलह कहानियाँ दिल्ली और मुल्तान की जेलों में लिखी गईं।" (द्रष्टव्य, गुप्त, शम्भु, कहानी की अंदरूनी सतह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ – 65)। स्वयं अज्ञेय ने अपनी कहानियों को चार खेपों में बाँटा है। जो इस प्रकार हैं –

पहली खेप :

इस खेप की कहानियाँ क्रान्तिकारी जीवन से जुड़ी कहानियाँ हैं। इन कहानियों के विषय में स्वयं अज्ञेय ने लिखा है – "मैं क्रान्तिकारी दल का सदस्य था और जेल में था, और युवक तो था ही – कॉलेज से ही तो सीधा

जेल में आ गया था ! पहली खेप की कहानियाँ क्रान्तिकारी जीवन की हैं, क्रान्ति-समर्थन की हैं और क्रान्तिकारियों की मनोरचना और उनकी कर्म-प्रेरणाओं के बारे में उभरती शंकाओं की हैं।" (अज्ञेय, सम्पूर्ण कहानियाँ , राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ – 19-20)।

इस खेप की प्रमुख कहानियों में 'विपथगा', 'हारिति', 'द्रोही', 'गृहत्याग', 'अंगोरा के पथ पर', 'कड़ियाँ' आदि कहानियाँ गिनी जाती हैं। मोटे तौर पर 1929 से लेकर 1933 तक की कहानियाँ इस खेप की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ दिल्ली और मुल्तान की जेलों में लिखी गई हैं।

इन कहानियों में बन्दी जीवन के अनुभव बहुत ठण्डे तरीके से अंकित हैं। इनमें अनेक विषयानुशासनों के प्रच्छन्न सन्दर्भ अन्तर्निहित हैं। इस खेप की कहानियों में उतावलेपन के स्थान पर धैर्य और विवेकसम्पन्नता दिखाई देती है। स्वयं लेखक इस सम्बन्ध में लिखता है – "बन्दी जीवन ने कैसे कुछ को तपाया, निखारा तो कुछ को तोड़ा भी, इसका बढ़ता हुआ अनुभव उस प्रारम्भिक आदर्शवादी जोश को अनुभव का ठण्डापन और संतुलन न देता यह असम्भव था – और संतुलन वांछित भी क्यों नहीं था ? बन्दी-जीवन जहाँ संचय का काल था, वहाँ कारागार मेरा 'दूसरा विश्वविद्यालय' भी था : पढ़ने की काफी सुविधाएँ थीं और उनका मैंने पूरा लाभ भी उठाया – ... चार-चार वर्ष जेल में और वर्ष भर नज़रबन्दी में बिताकर जब मुक्त हुआ तब यह नहीं कि क्रान्ति का उत्साह ठण्डा पड़ चुका था' पर आतंकवाद और गुप्त आन्दोलन अवश्य पीछे छूट गए और हिंसा की उपयोगिता पर अनेक प्रश्न-चिह्न लग चुके थे। " (वही, पृष्ठ – 20)।

दूसरी खेप :

दूसरी खेप की कहानियाँ वे हैं जो सन् 1933 से लेकर सन् 1936 के बीच लिखी गई हैं। इनमें 'गैंग्रीन', 'ताज की छाया में', 'कैसांड्रा का अभिशाप', कोठरी की बात' आदि कहानियाँ शामिल हैं। इस दौर में व्यंग्य का गहरा पुट अज्ञेय में हम देखते हैं। इस दौर के विषय में अपनी कहानियों के विषय में स्वयं अज्ञेय लिखते हैं – "पुराने गुप्त-कर्मी आतंकवादी का खुले समाज में एक 'जाने हुए' व्यक्ति के रूप में जीने का, समाज से मिलने वाले सम्मान के बीच उस समाज के और उस सम्मान के खोखलेपन का अनुभव करने का यह युग कहानियों की दूसरी खेप का युग है। इसमें भी संख्या की दृष्टि से काफी कहानियाँ रहीं, इन कहानियों का स्वर भी बहुधा काफी तीखा रहा, पर इनका आक्रोश व्यंग्य-मिश्रित है।" (वही)।

तीसरी खेप :

तीसरी खेप की कहानियाँ वे हैं जो सन् 1936 से लेकर सन् 1947 से पहले तक के समय के बीच लिखी गई हैं। इनमें 'सिगनेलर', 'सेब और देव', 'हीली-बोन् की बत्तखें' आदि प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं। इस दौर की कहानियों के विषय में अज्ञेय लिखते हैं – "तीसरी खेप की कहानियाँ सैनिक जीवन से, और उन प्रदेशों के जीवन, समाज अथवा इतिहास से जिनमें सैनिक जीवन बिताया, घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं।" (वही, पृष्ठ – 21)।

चौथी खेप :

चौथी खेप उन कहानियों की है जो सन् 1947 के बाद से लेकर अन्त (सन् 1959) तक की अवधि में लिखी गई हैं। इनमें 'शरणदाता', 'मुस्लिम-मुस्लिम भाई-भाई', 'जयदोल', 'पठार का धीरज', 'साँप', 'देवीसिंह', 'कलाकार की मुक्ति' आदि महत्त्वपूर्ण कहानियाँ शामिल हैं। इस दौर की कहानियों के विषय में अज्ञेय लिखते हैं – "ये कहानियाँ भारत-विभाजन के विभ्राट और उससे जुड़ी हुई मनःस्थितियों की कहानियाँ हैं। एक बार फिर ये कहानियाँ आहत मानवीय संवेदन की और मानव-मूल्यों के आग्रह की कहानियाँ हैं : और मैं अभी तक आश्वस्त हूँ कि जिन मूल्यों पर मैंने बल दिया था, जिनके घर्षण के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करना चाहा था, वे सही मूल्य थे और उनकी प्रतिष्ठा आज भी हमें उन्नततर बना सकती है।" (वही)।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी तीसरे खेप की कहानी है। अज्ञेय की तीसरी खेप की ये कहानियाँ अपेक्षाकृत परिपक्व कथावस्तु और कथ्य की कहानियाँ हैं। 'हीली-बोन् की बत्तखें' भी एक इसी प्रकार की एक परिपक्व कहानी है। अज्ञेय की कहानियों के सम्बन्ध में बनारसीदास चतुर्वेदी का यह अभिमत यहाँ उद्धरणीय है –" अज्ञेयजी की कहानियों में यह खूबी है कि वे पाठक की उत्कण्ठा अन्त समय तक जाग्रत् रखती हैं। बिना इस गुण के कहानी कहानी नहीं, शुष्क निबन्ध बन जाती है।" (विशाल भारत, मार्च, 1933, अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियाँ , राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2000, पृष्ठ – 611 पर उद्धृत)।

4.5.4. हिन्दी-कहानी की परम्परा में अज्ञेय का स्थान एवं महत्त्व

अज्ञेय प्रेमचंदोत्तर हिन्दी-कहानी के प्रमुखतम हस्ताक्षरों में से एक थे। जैनेन्द्र, यशपाल, अमृतलाल नागर, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय प्रेमचंदोत्तर कहानी के प्रमुखतम लेखक माने जाते हैं।

अज्ञेय के कुल 12 कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं जो इस प्रकार हैं – विपथगा (सन् 1936), परम्परा (सन् 1944), कोठरी की बात (सन् 1945), शरणार्थी (सन् 1948), जयदोल (सन् 1951), अमरवल्लरी तथा अन्य कहानियाँ (सन् 1957), अछूते फूल तथा अन्य कहानियाँ (सन् 1960), ये तेरे प्रतिरूप (सन् 1961), जिज्ञासा तथा अन्य कहानियाँ (सन् 1965), छोड़ा हुआ रास्ता (सन् 1975), लौटती पगडंडियाँ (सन् 1975) और मेरी प्रिय कहानियाँ (सन् 1975)।

अज्ञेय के महत्त्व एवं स्थान के सम्बन्ध में निम्नलिखित विद्वानों के विचार द्रष्टव्य हैं। इन उद्धरणों से हिन्दी-कहानी में अज्ञेय का स्थान एवं महत्त्व नितान्त स्पष्ट हो जाता है –

डॉ० नामवर सिंह – "अज्ञेय ने युद्ध के मोर्चे से लौटकर साहित्यिक सक्रियता का परिचय दिया। 'प्रतीक' के सम्पादन के साथ उन्होंने कविता और उपन्यास की तरह कहानी रचना की दिशा में भी उत्साह से कदम आगे बढ़ाया और वह भी युद्धोत्तरकालीन विविध सामाजिक अनुषंगों का आभास देते हुए।" (धनंजय, डॉ०, समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि, पृष्ठ – 45-46 पर उद्धृत)।

डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी – "प्रेमचंद के बाद जिन कहानीकारों ने अपनी प्रतिभा से हिन्दी कहानी-जगत् को सहसा आलोकित कर दिया था उनमें 'अज्ञेय' अग्रणी हैं। 'अज्ञेय' ने सामान्य मध्यमवर्गीय, अभिजात सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों का जीवन, शरणार्थी का जीवन, पर्यटक-जीवन तथा स्त्री-पुरुष के नैतिक सम्बन्धों के विश्लेषण को अपनी कहानियों का उपजीव्य बनाया है। ... प्रेमचंद के बाद के कहानीकारों में 'अज्ञेय' की विशिष्ट देन सहज स्वीकार्य है। जीवन के प्रति बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक, गूढ़ कवित्वमय दृष्टिकोण लेकर बहुविध सन्दर्भों के माध्यम से अनेक सूक्ष्म आभ्यन्तर चारित्रिक विशेषताओं का विश्लेषण करने में 'अज्ञेय' अग्रणी हैं।" (तिवारी, रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1968, पृष्ठ – 559-60)।

डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी – "हिन्दी कथा-साहित्य को वास्तविक अर्थ में आधुनिक बनाने का श्रेय अज्ञेय को दिया जा सकता है। उनके पूर्व हिन्दी के उपन्यास तथा कहानियाँ मुख्यतः वर्णनात्मक शैली में लिखे जाते थे। पात्रों के आन्तरिक मनोविज्ञान की ओर लेखक का ध्यान उतना नहीं रहता था। अज्ञेय ने घटनाओं और पात्रों के बाहरी ढाँचे की उपेक्षा करके आन्तरिक पक्ष को अधिक उभारा। कथा-शिल्प की दृष्टि से भी उनके प्रयोग ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। यह सही है कि अज्ञेय को एक उपन्यासकार के रूप में अधिक जाना जाता है, पर उनकी कहानियाँ भी कम लोकप्रिय नहीं हैं।" (रेडियो-वार्ता, इलाहाबाद, 12.3.1959, अज्ञेय, सम्पूर्ण कहानियाँ, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2000, पृष्ठ – 626 पर उद्धृत)।

डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान – " ... इनका कहानीकार जीवन तथा जगत् का चित्रण एवं मूल्यांकन वैयक्तिक संवेदना के धरातल पर करता है और सामाजिक मान्यताओं को भी इसी कसौटी पर परखता है। इसलिए इनकी कहानी-कला प्रसाद-परम्परा से भिन्न होते हुए भी इसी कोटि में रखी जा सकती है। ... 'अज्ञेय' की कहानी-कला में बौद्धिकता तथा मनोवैज्ञानिकता का गहरा पुट है और मनोवैज्ञानिकता का स्वरूप सुगम संगीत का न होकर शास्त्रीय संगीत का है, मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों पर आश्रित है। बौद्धिकता के विकास में भी पाश्चात्य विज्ञान तथा मनोविज्ञान का स्पष्ट प्रभाव है।" (मदान, डॉ॰ इन्द्रनाथ, कहानी की कहानी, रामचन्द्र एंड कम्पनी, दिल्ली-1966, पृष्ठ – 20)।

डॉ॰ सुरेन्द्र चौधरी – "यशपाल की तरह ही अज्ञेय की कहानियाँ प्रेमचंद के पश्चात् हिन्दी कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। ... अज्ञेय की कहानियों की रचना-प्रक्रिया चाहे जटिल हो, किन्तु उनके प्रतीक सामाजिक सन्दर्भ के अवधान में निश्चित रूप से सहायक हैं।" (चौधरी, सुरेन्द्र, हिन्दी कहानी : प्रक्रिया और पाठ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-1995, ISBN 81-7119-246-0, पृष्ठ – 63-64)।

डॉ॰ ओम प्रभाकर – "... अज्ञेय की कथा-कृतियों – क्या उपन्यास और क्या कहानियाँ – में न तो कहीं दार्शनिकता की अतिव्याप्ति है और न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रति दुराग्रह ही। वह अपने सम्पूर्ण कथा-सृजन के सन्दर्भ में सर्वथा एवं सर्वदा मौलिक हैं। ... अत्यन्त निश्चयात्मक स्वर में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य में अज्ञेय का स्थान एक मौलिक, प्रवर्त्तक तथा सर्वश्रेष्ठ कथाकार के रूप में शीर्षस्थान पर अक्षुण्ण है और रहेगा।" (डॉ॰ प्रभाकर, ओम, अज्ञेय का कथा-साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-1966, पृष्ठ – 161-62)।

डॉ॰ गीतांजलि श्री – "... साहित्य का फलक बहुत बड़ा है और वहाँ प्रेमचंद का सुन्दर, सरल साहित्य हो सकता है तो रेणु का भावभीना सरस साहित्य भी और कृष्णा सोबती का दबंग और मिट्टी-महक में गुँथा साहित्य भी, तो नर्मल वर्मा का एकाकी एकलय सुर भी, और ज़रूर-ज़रूर, 'अज्ञेय' की बहुपर्तीय जटिलता भी ।" (श्री, डॉ॰ गीतांजलि (सं.), अज्ञेय कहानी संचयन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2012, ISBN 978-81-267-2316-4, पृष्ठ –6) ।

4.5.5. 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी का कथासार एवं कथावस्तु के विविध आयाम

'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी की कथावस्तु बहुत संक्षिप्त है। हीली-बोन् कुछ बत्तखें पालती है लेकिन एक लोमड़ चुपके से आकर आए दिन बत्तखों का शिकार करता रहता है। इससे परेशान होकर वह कैप्टेन दयाल का सहयोग लेती है लेकिन कैप्टेन की कार्रवाई उलटी पड़ती है और हीली लोमड़ी की गृहस्थी उजाड़ने के आरोप में उसे उल्टा-सीधा सुनाते हुए अपने घर से भगा देती है। लोमड़ी का घर उजड़ने की बहुत तीखी नकारात्मक प्रतिक्रिया उसकी होती है जो अपनी समस्त बत्तखों को मौत के घाट उतार देने के रूप में सामने आती है।

इस कहानी की कथावस्तु मोटे तौर पर यही है और छोटी-सी है। किन्तु उसमें अतीत और इतिहास के ऐसे अनेकानेक ठोस सन्दर्भ अंदरूनी रूप से कुछ इस प्रकार से अनुस्यूत हैं कि कहानी अपने सम्पूर्ण रूप में बहुत ही विस्तृत एवं बहुआयामी हो जाती है। इस दृष्टि से इस कहानी की कथावस्तु का अध्ययन निम्नलिखित उपबिन्दुओं में किया जा सकता है – 'पारिवारिकता की खोज', 'व्यक्तिगत इयत्ता की खोज' एवं 'इतिहास और संवेदना का संगुम्फन' ।

4.5.5.1. पारिवारिकता की खोज

पारिवारिकता की खोज इस कहानी की कथावस्तु का केन्द्रीय हिस्सा है। इस सम्बन्ध में प्रो॰ शम्भु गुप्त की इस कहानी की यह अभिव्याख्या ध्यान दिए जाने योग्य है – "... हीली-बोन् के अवचेतन में अरसे से यह बात बैठी हुई है कि स्त्री-जीवन की सार्थकता इस बात में है कि उसका एक भरा-पूरा परिवार हो, पति और बच्चे हों और एक हँसती-खेलती गृहस्थी हो ।" (द्रष्टव्य, गुप्त, शम्भु, कहानी की अंदरूनी सतह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ – 77) । कहानी में खोह की देहरी के दृश्य को देखकर जो तीव्र प्रतिक्रिया हीली में होती है जिसके पश्चात् वह एक-एक कर अपनी बत्तखों को काट डालती है, उसका मूल कारण वस्तुतः यही था कि उसे लगा कि इस व्यक्ति (कैप्टेन दयाल) ने एक अच्छी-खासी भरी-पूरी गृहस्थी उजाड़ दी। प्रो॰ शम्भु गुप्त लिखते हैं – "खोह की देहरी पर के उस हृदयद्रावक दृश्य को देखकर कोई भी विचलित हो लेगा । लेकिन हीली जिस तरह की प्रतिक्रिया में आती दिखाई देती है वह सिवाय उसकी इस कुण्ठा के और क्या है कि उसे लगा कि एक अच्छी-खासी गृहस्थी इस व्यक्ति ने उजाड़ दी ! एक ऐसी गृहस्थी जिसका ख़्वाब अरसे से सम्भवतः वह ख़ुद अपने मन में सँजोये थी ! उसे सम्भवतः लगा कि उसकी तो बसी-बसाई दुनिया ही उजड़ गई !" (वही, पृष्ठ – 78)।

इस कहानी में अज्ञेय परिवार, पारिवारिकता की खोज करते हैं। हीली-बोन् अपनी जाति-बिरादरी की कुछ परम्पराओं के चलते अविवाहित रह जाती है और अब अरसे से वह एकाकी जीवन व्यतीत कर रही है किन्तु अपने जीवन के इस सबसे बड़े अभाव के बावज़ूद वह पारिवारिकता की अनिवार्यता की धारणा से आच्छन्न रही आती है। उसका यह भाव इस कहानी में लोमड़ी के परिवार के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। जैसा कि ऊपर कहा गया, लोमड़ी के परिवार के चित्र में जैसे वह अपने ही अधूरे स्वप्न को एकदम छिन्न-भिन्न हो जाता हुआ देखती है। कहानी का यह अंश पारिवारिकता का अन्यतम दृश्य प्रस्तुत करता है, यद्यपि कारुणिक एवं शोकाकुलता से भरा हुआ किन्तु हीली-बोन् की प्रसुप्त-अवचेतन में प्रसुप्त-कामनाएँ अचानक बुरी तरह उद्बुद्ध हो आती हैं और इसी की नकारात्मक प्रतिक्रिया के बतौर वह अपनी सारी बत्तखों को काट डालती है। उसे लगता है, जैसे इन्हीं बत्तखों की वज़ह से लोमड़ी का परिवार इस प्रकार उजड़ा – "करारे में मिट्टी खोद कर बनाई हुई खोह में – या कि खोह की देहरी पर – नर-लोमड़ी का प्राणहीन आकार दुबका पड़ा था – कास के फूल की झाड़ू-सी पूँछ उसकी रानों को ढँक रही थी जहाँ गोली का ज़ख्म होगा। भीतर शिथिल-गात लोमड़ी उस शव पर झुकी खड़ी थी, शव के सिर के पास मुँह किए, मानों उसे चाटना चाहती हो और फिर सहमकर रुक जाती हो। लोमड़ी के पाँवों से उलझते हुए तीन छोटे-छोटे बच्चे कुनमुना रहे थे। उस कुनमुनाने में भूख की आतुरता नहीं थी, न वे बच्चे लोमड़ी के पेट के नीचे घुसड़-पुसड़ करते हुए भी उसके थनों को ही खोज रहे थे। ... माँ और बच्चों में किसी को ध्यान नहीं था कि ग़ैर और दुश्मन की आँखें उस गोपन घरेलू दृश्य को देख रही हैं।" (अज्ञेय, अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियाँ, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2000, पृष्ठ – 541)।

4.5.5.2. व्यक्तिगत इयत्ता की खोज

व्यक्तिगत इयत्ता की खोज इस कहानी की कथावस्तु का दूसरा बड़ा आयाम है। अज्ञेय बहुत प्रारम्भ से अस्तित्ववादी विचारधारा के तहत व्यक्ति की निजी इयत्ता के समर्थक रहे हैं। इस कारण अनेक लोगों ने उन पर व्यक्तिवादी होने का आरोप भी लगाया है। जैसे कि डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है – " 'अज्ञेय' के लिए प्रारम्भ से ही, सन्दर्भ महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है। वह व्यक्ति-चरित्र की गहन संवेदना को व्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। देश-काल और सामाजिक सन्दर्भ उनकी कहानियों का प्राण-तत्त्व नहीं है, वह केवल क्षीण आधार-भूमि प्रस्तुत करता है। उनकी दृष्टि व्यक्ति-वैशिष्ट्य की ओर केन्द्रित रही है।" (तिवारी, रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1968, पृष्ठ – 559)। हालाँकि आगे वे इसका तर्काधार प्रस्तुत करते हुए इसके दूसरे – सकारात्मक पक्ष को भी प्रस्तुत करते हैं। लिखते हैं – "यों व्यक्ति समाज की ही इकाई है। उसे समझने-समझाने के प्रयत्न में समाज स्वतः सन्दर्भित हो जाता है। इसलिए 'अज्ञेय' द्वारा विश्लेषित व्यक्तित्व मात्र मनःकल्पना या प्रतीक नहीं है। उनकी मानसिक रचना समाज के बीच में ही हुई है।" (वही)। स्पष्ट है कि अज्ञेय के व्यक्ति-चरित्र अपने सामाजिक यथार्थ के ही अन्तर्गत हैं। समाज और व्यक्ति के बीच के द्वन्द्व भी अज्ञेय की कहानियों में खूब मिलते हैं। यह द्वन्द्व समाज के प्रति विद्रोह के रूप में भी सामने आता है। रामचन्द्र तिवारी ने लिखा – "इसीलिए सामाजिक वैषम्य और अन्याय के प्रति एक प्रकार के तीक्ष्ण व्यंग्यपूर्ण विद्रोह का भाव भी

उनकी कुछ कहानियों में मिलता है । सब मिलाकर 'अज्ञेय' व्यक्ति-मन के गहनतम स्तरों के सूक्ष्म स्पन्दन को अभिव्यक्ति देने वाले कहानीकार माने जा सकते हैं ।" (वही) ।

'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी इस कसौटी पर नितान्त खरी उतरती है । इस कहानी की कथानायिका हीली समाज के प्रति व्यक्ति के विद्रोह का एक श्रेष्ठ उदाहरण है । हीली अपने समाज – खासी जनजाति की व्यवस्थाओं से संतुष्ट नहीं है । उसे लगता है कि उसके जीवन के इस निचाट एकाकीपन की असल वज़ह उसके अपने समाज की कुछ परम्पराएँ हैं । कहानी में लेखक ने हीली के इस असंतोष को इस प्रकार व्यक्त किया है – "यह कैसे हुआ कि वह 'नांग्क्रेम' की रानी, आज अपने चौंतीसवें वर्ष में इस कुटी के जेरेनियम के गमले सँवारती बैठी है, और अपने जीवन में ही नहीं, अपने सारे गाँव में अकेली है ?"

"अभिमान ? स्त्री का क्या अभिमान ! और अगर करे ही तो कनिष्ठा करे जो उत्तराधिकारिणी होती है – वह तो सबसे बड़ी थी, केवल उत्तरदायिनी ! हीली के होंठ एक विद्रूप की हँसी से कुटिल हो आये । " (अज्ञेय, अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियाँ , राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2000 , पृष्ठ – 539) ।

अज्ञेय कथानायिका हीली की व्यक्तिगत इयत्ता की खोज इस कहानी में करते हैं । अज्ञेय ने इस कहानी के लिए इस चरित्र का चुनाव इसी उद्देश्य से किया है । अपने जनजातीय नियमों और परम्पराओं के कारण उसके व्यक्तिगत जीवन का जो हश्र हुआ, मुख्यतः वह अज्ञेय का विचारणीय बिन्दु रहा है । कारण यहाँ मुख्य नहीं है, उसके परिणाम एवं परिणतियाँ मुख्य हैं । सन्दर्भ यहाँ कोई और भी हो सकता था । प्रो॰ शम्भु गुप्त का यह आकलन नितान्त उचित प्रतीत होता है कि "इस कहानी के साथ एक दिक्कत यह भी है कि खासी जनजाति यहाँ महज एक वस्तु-सन्दर्भ की तरह इस्तेमाल की गई है । यहाँ यदि कथा का वस्तु-सन्दर्भ कुछ और भी होता तो सम्भवतः ज़्यादा फर्क नहीं पड़ता । हीली-बोन् किसी अन्य समुदाय यहाँ तक कि किसी सवर्ण या अभिजात-वर्ग की स्त्री भी हो सकती थी ।" (गुप्त, शम्भु, कहानी की अंदरूनी सतह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ – 78-79) ।

वस्तुतः इस कहानी का अभिप्राय है, एक स्त्री की व्यक्तिगत इयत्ता की खोज । लेखक हीली-बोन् के माध्यम से अपने इस अभिप्राय को यहाँ संरचित करता है । कहानी में हीली-बोन् के माध्यम से एक स्त्री की व्यक्तिगत इयत्ता की खोज का विवरण इस प्रकार है – "लोग कहते थे कि हीली सुन्दर है, पर स्त्री नहीं है । वह बाँबी क्या, जिसमें साँप नहीं बसता? ... बिना साँप की बाँबी – अपरूप, अनर्थक मिट्टी का ढूह !" (अज्ञेय, अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियाँ, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2000, पृष्ठ – 539) । इसी क्रम में कथाकार फ्लैशबैक में हीली के अतीत का स्मरण करता है, जिसमें हीली अपनी तीनों बहनों में सबसे सुन्दर थी और सर्वश्रेष्ठ नृत्य करती थी । सब उसकी नृत्य-भंगिमाओं का ही अनुसरण करते थे – "हीली तीन संतानों में सबसे बड़ी थी, और अपनी दोनों बहनों की अपेक्षा अधिक सुन्दर भी । ... हीली भी मानों नान्थ्लेम की अधिष्ठात्री थी । 'नांग्क्रेम' के नृत्योत्सव में, जब सभी मण्डलों के स्त्री-पुरुष खासिया जाति के अधिदेवता नगाधिपति को बलि देते थे और उसके मर्त्य प्रतिनिधि अपने 'सियेम' का अभिनन्दन करते थे, तब नृत्य-मण्डली में हीली ही मौन सर्वसम्मति से नेत्री हो जाती थी, और स्त्री-समुदाय उसी का अनुसरण करता हुआ झूमता था, इधर और उधर, आगे और दायें और पीछे

... नृत्य में अंग-संचालन की गति न द्रुत थी, न विस्तीर्ण, लेकिन कम्पन ही सही, सिहरन ही सही, वह थी तो उसके पीछे-पीछे, सारा समुद्र उसकी अंग-भंगिमा के साथ लहरें लेता था ।" (वही, पृष्ठ – 538) । ऐसी यह हीली अब नितान्त एकाकी जीवन बिता रही है । उसके जीवन में प्रेम के अवसर भी उपस्थित हुए थे किन्तु वे भी किसी कारण निरर्थक हो गए थे – "किन्तु वह उससे अछूती ही रही थी । यह नहीं कि उसने इसके लिए कुछ उद्योग किया था या कि उसे गुमान था – नहीं, यह जैसे उसके निकट कभी यथार्थ ही नहीं हुआ था ।" (वही, पृष्ठ – 539) । एक बार प्यार उसने किया भी था किन्तु वह भी व्यर्थ गया था – "यद्यपि, वह याद करना चाहती तो याद करने को कुछ था – बहुत-कुछ था – प्यार उसने पाया था और उसने सोचा भी था कि ... ।" (वही, पृष्ठ – 539) ।

4.5.5.3. इतिहास और संवेदना का संगुम्फन

इस कहानी की कथावस्तु का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण आयाम है – इतिहास और संवेदना का संगुम्फन । इस कथा-आयाम का अध्ययन निम्नांकित दो उपबिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है – (i) 'हीली-बोन् की बत्तखें' में खासी जनजाति के सन्दर्भ और (ii) खासी जनजाति की परम्पराओं के कारण हीली-बोन् के अभिशप्त जीवन का यथार्थ ।

4.5.5.3.1. 'हीली-बोन् की बत्तखें' में खासी जनजाति के सन्दर्भ

खासी या खासिया या खासा एक जनजाति है जो भारत के मेघालय, असम तथा बांग्लादेश के कुछ क्षेत्रों में निवास करती है । यह खासी तथा जयंतिया की पहाड़ियों में रहने वाली एक मातृकुलमूलक जनजाति है । इनका रंग काला मिश्रित पीला, नाक चपटी, मुँह चौड़ा तथा सुघड़ होता है ।

खासियों की विशेषता उनका मातृमूलक परिवार है । विवाह होने पर पति ससुराल में रहता है । परम्परानुसार पुरुष की विवाहपूर्व कमाई पर मातृपरिवार का और विवाहोत्तर कमाई पर पत्नी-परिवार का अधिकार होता है । वंशावली स्त्री से चलती है और सम्पत्ति की स्वामिनी भी वही होती है । संयुक्त परिवार की संरक्षिका कनिष्ठ पुत्री होती है । खासिया खेतिहर जाती है । मुख्यतः धान की खेती करते हैं । इसके अतिरिक्त नारंगी, पान, सुपारी का उत्पादन करते हैं । एक कबीले में स्त्री ही सर्वोच्च शासक होती है और वह अपने पुत्र अथवा भांजे को लिंगडोह (मुख्यमंत्री) बनाकर उसके द्वारा शासन करती है ।

'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी में ये ऐतिहासिक सन्दर्भ आते हैं । इनके अतिरिक्त हीली का यह सन्दर्भ आता है कि वह अपने कबीले के राज-परिवार से जुड़ी हुई रही है किन्तु बड़ी पुत्री होने के कारण उत्तराधिकारिणी वह नहीं, उसकी सबसे छोटी बहन बनती है – "हीली के पिता उस छोटे-से मांडलिक राज्य के दीवान रहे थे । हीली तीन संतानों में सबसे बड़ी थी और अपनी दोनों बहनों की अपेक्षा अधिक सुन्दर भी । खासियों का जाति-संगठन स्त्री-प्रधान है, सामाजिक सत्ता स्त्री के हाथ में है और वह अनुशासन में चलती नहीं, अनुशासन को चलाती है । हीली भी मानों नांग-थ्लेम की अधिष्ठात्री थी । ... उसकी दोनों बहिनें ब्याह करके अपने-अपने घर रहती हैं,

पिता नहीं रहे और स्त्री-सत्ता के नियम के अनुसार उनकी सारी सम्पत्ति सबसे छोटी बहिन को मिल गई। " (वही, पृष्ठ – 538)।

4.5.5.3.2. खासी जनजाति की परम्पराओं के कारण हीली-बोन् के अभिशप्त जीवन का यथार्थ

खासी जनजाति की कुछ अनिवार्य परम्पराओं के परिपालन के परिणामस्वरूप हीली का जीवन एक प्रकार से अभिशापग्रस्त हो गया था। वह अपने कबीले की अधिष्ठात्री थी किन्तु अपनी जाति की परम्पराओं के कारण उसका समूचा जीवन ही अभिशापग्रस्त हो आता है। कहानी में कहा गया है कि इन्हीं परम्पराओं के कारण राज्य का शासनाधिकार, सम्पत्ति, महत्त्व इत्यादि सब-कुछ उससे छिन जाता है जबकि अपनी तीनों बहनों में सबसे योग्य और अधिकारी एकमात्र वही थी। राज्याधिकार, सम्पत्ति, महत्त्व इत्यादि के स्थान पर उसे एक उजड़ा हुआ-सा आवास मिलता है जहाँ वह एकाकी जीवन जीने हेतु अभिशप्त है। सम्पत्ति रहित होने के कारण उसका विवाह भी नहीं हो पाता या वह विवाह नहीं करती। अपने जीवन-यापन के लिए वह कुछ बत्तखें पालती है। इस मामले में भी वह अव्वल थी। उसकी ये बत्तखें पूरे खासिया प्रदेश में सबसे बड़ी और सुन्दर थीं किन्तु अब उसका यह आधार भी नेस्तनाबूद हो गया! कहानी में एतत्सम्बन्धी विवरण इस प्रकार हैं – "हीली के पास है यही एक कुटिया और छोटा-सा बगीचा – देखने में आधुनिक साहबी ढंग का बँगला, किन्तु उस काँच और परदों के आडम्बर को सँभालने वाली इमारत वास्तव में क्या है? टीन की चादर से छूता हुआ चीड़ का चौखटा, नरसल की चटाई पर गारे का पलस्तर और चारों ओर जरेनियम, जो गमले में लगा लो तो फूल हैं, नहीं तो निरी जंगली बूटी ...। " (वही, पृष्ठ – 538-39)। हीली अपनी प्रतिभा एवं गुणों के कारण राज्य की उत्तराधिकारिणी बनने के योग्य थी किन्तु जातिगत परम्पराओं के कारण केवल उत्तरदायिनी बनकर रह जाती है – "वह तो सबसे बड़ी थी, केवल उत्तरदायिनी !" (वही, पृष्ठ – 539)।

4.5.6. 'हीली-बोन् की बत्तखें' की मूल संवेदना

'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी की मूल संवेदना स्त्री-जीवन की सफलता एवं सार्थकता है। वस्तुतः जो जिस योग्य है, जो जिसका गुण है, जो जिसकी सामर्थ्य है, उसे तदनुसार अधिकार एवं प्रतिदाय उपलब्ध होना चाहिए। इस सन्दर्भ में देखा जाये तो हीली-बोन् के साथ अन्याय ही होता हुआ यहाँ दृष्टिगत होता है। तीनों बहनों में सबसे अधिक सुन्दर और कला-निपुण होने के बाद भी, जातिगत परम्पराओं के कारण, हीली को कुछ नहीं मिलता, वह नितान्त घाटे में रहती है, यह इस कहानी की मूल समस्या है। अज्ञेय एक स्त्री की संवेदना की संरचना के उद्देश्य से इस कहानी की रचना में प्रवृत्त हुए हैं। हीली के जीवन में प्रेम के क्षण भी आए थे किन्तु वे भी व्यर्थ चले गये। एक स्त्री के बतौर जीवन जीना हीली की महत्वाकांक्षा रही है। उसकी भी एक गृहस्थी होती, उसका जीवन भी प्रेम एवं आत्मीयता से भरा होता। वह भी एक समृद्ध स्त्री-जीवन जी पाती, यही उसकी महदाकांक्षा थी जो किन्हीं कारणों से पूरी नहीं हो सकी। विडम्बना यहाँ यह है कि इस आकांक्षा के अपूर्ण रह जाने के पीछे हीली-बोन् दोषी नहीं है अपितु उसके समाज की परम्पराएँ दोषी थीं। अज्ञेय यहाँ स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति की इयत्ता के विकास एवं सार्थकता एवं सफलता के रास्ते में समाज इस प्रकार बाधा बनता है व रोड़े अटकाताहै।

4.5.7. 'हीली-बोन् की बत्तखें' का कथा-शिल्प

'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी का कथा-शिल्प भी बहुआयामी और बहुरंगी है। यह भिन्न अवसर पर भिन्न रूप लेता चलता है। यह वर्तमान काल में भी दृष्टिगोचर होता है तो अतीत-स्मृति अर्थात् फ़्लैशबैक में भी। कहानी के प्रारम्भ में वर्तमानकालिक शिल्प है, जब कि कैप्टेन दयाल हीली के घर की तरफ़ आता है। कहानी की शुरुआत लोमड़ द्वारा बत्तख के शिकार की घटना से होती है, जहाँ लोमड़ एक बार फिर एक और बत्तख का शिकार करता है। इस घटना के बाद हीली की एक चीख-सी निकलती है जिसे सुनकर कैप्टेन दयाल उस तरफ़ आ जाता है और उसे मदद की पेशकश करता है। हीली कैप्टेन दयाल के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है और इस कार्य हेतु अपने घर का उपयोग भी वह उसे करने देती है। यहाँ तक का अंश वर्तमान काल में है। इसके पश्चात् जहाँ हीली के विगत समय यानी अतीत का चित्रण कथाकार करता है, कहानी फ्लैशबैक में चलना शुरू हो जाती है। फ्लैशबैक में हीली के अतीत के वे समस्त विवरण हैं जिनमें उसके नृत्य-कौशल, सुन्दरता, सुघड़ता और तीनों बहनों में सर्वश्रेष्ठ होना चित्रित किया गया है। इसी कथांश में उसके प्यार होने और उसके व्यर्थ हो जाने, आजीवन अविवाहित रह जाने, एकाकी जीवन का अभ्यस्त हो जाने, बत्तखें पालने इत्यादि के ब्यौरे हैं।

इसके पश्चात् कहानी पुनः वर्तमान काल में आ जाती है, जहाँ कैप्टेन दयाल लोमड़ को गोली मार देता है और हीली और वह दोनों लोमड़ को खोजते-खोजते उस खोह तक पहुँचते हैं, जहाँ लोमड़ मरा पड़ा है और लोमड़ी उस पर झुकी हुई जैसे शोक मना रही है और उसके बच्चे जैसे अपने अनाथ होने के अहसास से व्याकुल हैं। यहाँ कहानी का शिल्प फिर बदलता है और वह जैसे एक अप्रत्याशित पराकल्पना जैसी तकनीक का सहारा लेते हुए एक ऐसा दृश्य उपस्थित करता है जिसकी कल्पना करना ही बहुत कठिन है। इसका पूर्व में विवरण दिया जा चुका है। हीली द्वारा एक-एक कर अपनी सारी बत्तखों को काट डालना एक अतिशय आविष्ट कार्रवाई थी जो एक नकारात्मक प्रतिक्रियावाद के तहत ही सम्भव हो सकती है। हीली का यह क़दम एक प्रकार का आत्मघाती क़दम ही था। हीली कैप्टेन दयाल को हत्यारा आरोपित कर वहाँ से भगा देती है जबकि उसकी स्वीकृति के बाद ही कैप्टेन दयाल लोमड़ पर गोली चलाता है लेकिन खोह के भीतर के हृदयद्रावक दृश्य को देखकर हीली को लगता है जैसे यह अच्छा नहीं हुआ। उसे लगता है, जैसे उसके सपनों की एक दुनिया ही कैप्टेन ने उजाड़ दी हो! यहाँ फैंटेसी जैसा शिल्प प्रयुक्त किया गया है।

4.5.8. पाठ-सार

यह इकाई कुल छह बिन्दुओं एवं उनके अन्तर्गत पाँच उपबिन्दुओं, इस प्रकार कुल ग्यारह बिन्दुओं में विभाजित-उपविभाजित कर अध्ययित की गई है। सबसे पहले इस इकाई के लेखनोद्देश्य की चर्चा की गई है कि इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी के विषय में हम विस्तार से इसकी कथावस्तु, कथावस्तु के विविध आयामों, अंगोपांगों का आकलन कर सकेंगे। अज्ञेय की कहानियाँ : एक परिचय, हिन्दी -कहानी की परम्परा में अज्ञेय का स्थान एवं महत्त्व, 'हीली-बोन् की बत्तखें' की मूल संवेदना, इत्यादि के विषय में जान सकेंगे।

इस कहानी की प्रस्तावना में अज्ञेय की कहानियों में विचार के समावेश पर बात की गई है। अज्ञेय की प्रत्येक कहानी में कोई-न-कोई विचार अवश्य उपस्थित होता है। संवेदनात्मकता के आधार पर मनुष्य एवं पशुओं में कोई भी अन्तर नहीं है, यह इस कहानी का विशिष्ट अभिप्राय माना जा सकता है। पारिवारिकता की भावना के आधार पर भी मनुष्य एवं पशुओं में कोई भीअन्तर नहीं है।

प्रथम विषय-विस्तार के अन्तर्गत अज्ञेय की कहानियों का परिचय दिया गया है। अज्ञेय ने कुल कितनी कहानियाँ लिखीं, उनकी कहानियों को कितनी खेपों में बाँटा जा सकता है, इस पर विस्तार से विचार किया गया है तथा प्रत्येक खेप की कहानियों की भिन्नता को उल्लिखित किया गया है।

द्वितीय विषय-विस्तार के अन्तर्गत हिन्दी-कहानी की परम्परा में अज्ञेय का स्थान एवं महत्त्व पर विचार किया गया है। इस क्रम में हिन्दी की कई पीढ़ियों के लेखकों-आलोचकों के अभिमत उद्धृत किए गए हैं, जैसे – डॉ॰ नामवर सिंह, डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी, डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, डॉ॰ सुरेन्द्र चौधरी, डॉ॰ ओम प्रभाकर तथा डॉ॰ गीतांजलि श्री। ये समस्त विद्वान् एकमत से अज्ञेय के स्थान एवं महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

तृतीय विषय-विस्तार के अन्तर्गत इस कहानी का कथासार एवं कथावस्तु के विविध आयामों पर विस्तार से विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत पारिवारिकता की खोज के साथ-साथ व्यक्ति की व्यक्तिगत इयत्ता की खोज भी की गई है। पारिवारिकता और व्यक्तिगतता दोनों ही इस कहानी की कथावस्तु के मजबूत पक्ष हैं। इतिहास और संवेदना का संगुम्फन इस कहानी की कथावस्तु का एक अन्यमहत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसके अन्तर्गत इस कहानी के ऐतिहासिक व स्थानिक सन्दर्भों पर विचार किया गया है जो कि यहाँ पर्याप्त रूप में हैं। पूर्वोत्तर भारत की खासी जनजाति के अनेक सन्दर्भ इस कहानी में विद्यमान हैं। कहानी में यह स्पष्ट उल्लिखित किया गया है कि जातिगत एवं सामाजिक प्रथाएँ एवं परम्पराएँ किस प्रकार एक व्यक्ति के व्यक्तिगत व्यक्तित्व को कुण्ठित एवं सीमित कर देती हैं। कहानी बताती है कि खासी जनजाति की परम्पराओं के कारण हीली-बोन् का जीवन किस कदर अभिशप्त हो गया था। हीली-बोन् के अभिशप्त जीवन का यथार्थ इस कहानी में मार्मिकता के साथ चित्रित है।

चतुर्थ विषय-विस्तार के अन्तर्गत 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी की मूल संवेदना का आकलन किया गया है। स्त्री-जीवन में प्रेम एवं पारिवारिकता की खोज इस कहानी की मूल संवेदना कही जा सकतीहै। प्रेम एवं पारिवारिकता एक स्त्री के जीवन का सबसे स्वाभाविक स्वरूप है, अज्ञेय इस कहानी में यह प्रतिपादित करते हैं। इकाई के अन्तिम भाग में इस कहानी के कथा-शिल्प पर विचार किया गया है। इस कहानी के शिल्प में वर्तमानकालिकता के साथ-साथ अतीत-स्मृति को भी पर्याप्त स्थान मिला है। अतः वर्तमानकाल एवं फ्लैशबैक दोनों ही प्रकार की शिल्प-विधियाँ यहाँ प्रयुक्त की गई हैं।

4.5.9. बोध प्रश्न

1. अज्ञेय की कहानियों का विस्तार के साथ परिचय देते हुए हिन्दी-कहानी के इतिहास में उनके स्थान एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी की कथावस्तु के विभिन्न आयामों पर विस्तार के साथ प्रकाश डालिए।
3. 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी की मूल संवेदना क्या है ? स्त्री-यथार्थ के किन पक्षों पर इस कहानी में विचार किया गया है, स्पष्ट कीजिए।
4. 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी में निहित ऐतिहासिक एवं स्थानिक सन्दर्भों का उल्लेख करते हुए कथानायिका हीली-बोन् के साथ उनका सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
5. 'हीली-बोन् की बत्तखें' कहानी के कथा-शिल्प की विवेचना करते हुए कथावस्तु के साथ उसकी सहवर्तिता सिद्ध कीजिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : कहानी – 1

इकाई – 6 : रसप्रिया – फणीश्वरनाथ 'रेणु'

इकाई की रूपरेखा

4.6.01. उद्देश्य कथन
4.6.02. प्रस्तावना
4.6.03. रेणु की प्रमुख कहानियाँ : एक परिचय
4.6.04. 'रसप्रिया' कहानी का सारांश
4.6.05. भाषा-संरचना
4.6.06. भाव-संवेदन
4.6.07. कहानी के प्रमुख पात्र / चरित्र
4.6.08. कहानी का शिल्प
4.6.09. आंचलिक परिवेश
4.6.10. संवाद-योजना
4.6.11. पाठ-सार
4.6.12. बोध प्रश्न
4.6.13. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

4.6.01. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई सुप्रसिद्ध साहित्यकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' की बहुचर्चित कहानी रसप्रिया पर केन्द्रित है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. हिन्दी कहानी की परम्परा और उसमें कहानीकार रेणु के महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।
ii. रेणु की कहानियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
iii. कथाकार रेणु की कहानियाँ किस प्रकार अंचल विशेष को रूपायित करती हैं, यह जान सकेंगे।
iv. रेणु की कहानी 'रसप्रिया' किन अर्थों में विशिष्ट है और उसका क्या महत्व है, यह भी जान सकेंगे।
v. कहानी 'रसप्रिया' की मूल संवेदना से परिचित हो सकेंगे।
vi. कहानी 'रसप्रिया' की भाषा-शैली का वैशिष्ट्य जान सकेंगे।
vii. यह भी जान सकेंगें कि 'रसप्रिया' किस प्रकार रेणु की कुछ विशिष्ट कहानियों की शृंखला की एक कड़ी के रूप में सामने आती है।
viii. रेणु परिवेश का सृजन कैसे करते हैं, यह भी जान पाएँगे।

4.6.02. प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी कहानी की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से मानी जाती है। सरस्वती, हिन्दी प्रदीप और सुदर्शन जैसी पत्रिकाओं ने कथा आन्दोलन का न केवल सूत्रपात किया बल्कि एक दिशा भी दी। सन् 1900 ई. में सरस्वती में किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' प्रकाशित हुई जो परम्परागत कहानियों से अलग थी। हिन्दी की पहली मौलिक आधुनिक कहानी बंग महिला-कृत 'दुलाईवाली' को माना जाता है जो सन् 1907 ई. में सरस्वती में प्रकाशित हुई।

दूसरी कहानी है, जयशंकर प्रसाद-कृत 'ग्राम' जो सन् 1911 ई. में इन्दु पत्रिका में प्रकाशित हुई। यद्यपि आरम्भिक कहानियों में रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल' और माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' भी प्रमुख मानी जाती हैं। सन् 1916 ई. में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' प्रकाशित हुई। यह कहानी आधुनिक कहानी में एक नये प्रकार की संवेदना लेकर आई। बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक कहानीकारों में चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचंद, प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, गोपालराम गहमरी, दुर्गाप्रसाद खत्री, वृन्दावनलाल वर्मा, राय कृष्णदास आदि प्रमुख थे। इनके बाद अज्ञेय, जैनेन्द्र, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा आदि प्रमुख कहानीकार हुए।

स्वतन्त्रता के बाद कहानी आन्दोलन तीव्र हुआ। आंचलिक कहानी, नई कहानी, अकहानी, नगर बनाम ग्राम कथा जैसे कितने ही रूप सामने आए। कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, ज्ञानरंजन, मार्कण्डेय, दूधनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, काशीनाथ सिंह से होते हुए आज तक चली आ रही कथा-परम्परा में सैकड़ों नाम जुड़ चुके हैं। इसी कथा-आन्दोलन के बीच स्वतन्त्रता के आसपास आंचलिक कथा लेखन की शुरुआत हुई जिसमें रेणु का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। बिहार के मिथिला क्षेत्र में जन्मे फणीश्वरनाथ रेणु आंचलिक कथाकार के रूप में जाने जाते हैं। रेणु नाम के पीछे एक कथा जुड़ी हुई है। इनके जन्म लेते ही दुर्योग से परिवार कर्ज में डूब गया। इनकी दादी ने प्यार से उन्हें रिनुवा कहना शुरू कर दिया। आगे चलकर इस पुकार के नाम को रेणु ने न केवल स्वीकार किया बल्कि इसे अपने नाम फणीश्वरनाथ से जोड़ दिया। इस तरह उनका नाम हो गया फणीश्वरनाथ रेणु। रेणु का जीवन गाँव में और गरीबी में बीता। अपनी कृतियों में उन्होंने ग्रामीण जीवन की सम्पूर्ण छवियों को उतार कर रख दिया है।

रेणु भोजपुरी और मैथिली भाषाओं के जानकार थे। वे लोकजीवन की संस्कृति, कला, रहन-सहन और बोली से न केवल पूरी तरह परिचित थे बल्कि अपनी कहानियों और उपन्यासों में उन्होंने उसका भरपूर उपयोग भी किया है। ग्रामीण परिवेश और वहाँ के जीवन को चाहे वह बड़े ज़मींदार का हो या छोटे खेतिहर मजदूर का, रेणु ने अत्यन्त अंतरंगता के साथ प्रस्तुत किया है। रेणु स्वयं उस जीवन को जीते थे और पटना शहर में रहते हुए भी वे गाँव से अपने जुड़ाव को बराबर बनाए हुए थे जिसके अनेक उदाहरण उनकी कहानियों और उपन्यासों में, खासकर 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में मिलते हैं। वे जीवन के प्रत्येक पक्ष को उजागर करते हुए उसे अद्भुत

सजीवता प्रदान करते हैं। गाँव के सारे रंग रेणु के शब्दचित्रों में उपस्थित होते हैं। रेणु ने न केवल ग्रामीण जीवन को रूपायित किया बल्कि वे अपने समकालीन बदलावों को भी प्रभावशाली ढंग से चित्रित कर रहे थे। वह समय भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन का समय था। स्वतन्त्रता के बाद भारत में अचानक अनेक परिवर्तन हुए जिनके प्रभाव से गाँव भी अछूते न रहे। स्वतन्त्रता के दौरान देखे गए सपने पूरे न होने के कारण गाँवों में शहर की ओर जाने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई दी और बेहतर जीवन की आकांक्षा में ग्रामीण जन शहर की ओर पलायन करने लगे। शहरों की आपाधापी में गाँव का मन अपने आप को ढाल नहीं पाया और गहरी निराशा और पीड़ा में जीने लगा। रेणु ने इन सारी स्थितियों को अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ महसूस और अभिव्यक्त किया। वे गाँवों के टूटने से, पलायन से और नष्ट हो रही संस्कृति से गहराई तक आहत हुए साथ ही सामन्तवादी व्यवस्था के पैर पसारने और राजनैतिक शक्तियों का पूँजीवाद के प्रति झुकाव देखकर भी अंदर से बहुत दुखी हुए। यह कचोट उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से अभिव्यक्त की। उनके उपन्यास परती परिकथा से एक उदाहरण देखिए – "किन्तु आज गाँव टूट रहे हैं। गाँव के परिवार टूट रहे हैं। व्यक्ति टूट रहा है रोज-रोज, काँच के बर्तनों की तरह। आज भी उस समाज में कोई बदलाव नहीं आया।"

रेणु विकास के नाम पर नष्ट होती संस्कृति, टूटते हुए रिश्तों, भौतिकता के पीछे बेलगाम भागते आमजन, समाज में फैली हुई निराशा और अकेलेपन इन सारी चीजों को एक अभिशाप के रूप में देखते थे इसीलिए वे कहते हैं – "टेक्नोलॉजी के युग में हम लोग जीवन के उपयोग की मूल तकनीकी खो बैठे हैं। हजारों हजार जनता के बीच भी हर एक आदमी विच्छिन्न है, अकेला है। हँसी-खुशी, उत्तेजना, अवसाद, आनन्द, उल्लास सभी यन्त्रचालित से हैं। धरती की पपड़ी टूट गई है, मन की पपड़ी ज्यों की त्यों पड़ी हुई है, वीरान होती जा रही है। लगता है मन को छूने वाला मन्त्र हम भूल गए हैं।"

जहाँ एक ओर रेणु का लोक जीवन से अटूट सम्बन्ध था, वहीं वे राजनीति में भी अत्यन्त सक्रिय थे। गाँधीजी द्वारा बिहार में चलाए गए आन्दोलनों में उन्होंने भाग लिया। परिणामस्वरूप राजनैतिक गतिविधियों के चलते उन्हें सन् 1942 ई. में जेल भी जाना पड़ा। रेणु बाद में जयप्रकाश नारायण द्वारा चलाई जा रही क्रान्ति में भी सक्रिय रहे लेकिन उन्होंने अपना लेखन जारी रखा। स्वार्थपरक राजनीति उन्हें सदैव उद्वेलित करती रही। वे हमेशा माननीय पक्ष के पैरोकार बने रहे। वे एक आदर्श, ईमानदार और संवेदनशील राजनीति के पक्षधर थे। मानव हित उनके लिए सर्वोपरि था और वे इसे टूटता हुआ नहीं देखना चाहते थे।

4.6.03. रेणु की प्रमुख कहानियाँ: एक परिचय

फणीश्वरनाथ रेणु ने कुल 63 कहानियाँ लिखीं। इन कहानियों में मिथिला के माध्यम से तत्कालीन ग्रामीण भारत का विशद् चित्र दिखता है। हालाँकि शहरी जीवन भी इससे अछूता नहीं है। रेणु की संवेदना एक ऐसे स्नेही व्यक्तित्व का दर्शन कराती है जो प्रेम को जीवन में अत्यन्त उच्च स्थान देता है। भारत यायावर ने 'फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ' पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि – "रेणु ने जिन कथाकारों से प्रेरणा ग्रहण की, वे हैं रूसी कथाकार मिखाइल शोलोखोव, बांग्ला कथाकार ताराशंकर बंद्योपाध्याय और सतीनाथ भादुड़ी तथा हिन्दी के

महान् कथाकार प्रेमचंद। रेणु की कहानियों पर इन चारों का मिलाजुला प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसीलिए प्रेमचंद द्वारा निर्मित कथा-भूमि को वे ग्रहण करते हैं, पर उसमें शोलोखोव की तरह सांस्कृतिक गरिमा को मण्डित करते हैं, सतीनाथ भादुड़ी की तरह शिल्प में नवीनता और आधुनिकता तथा ताराशंकर की तरह स्थानीय रंग को विभूषित करते हैं इसीलिए प्रेमचंद के द्वारा रेशे-रेशे को उकेरा गया भारतीय ग्राम-समाज ही रेणु की कलम से इतना रससिक्त, प्राणवन्त और नये आयाम ग्रहण करता हुए दिखाई पड़ता है।"

रेणु की कहानियों में रस का उच्च परिपाक मिलता है। उनकी कहानियाँ चाहे वह 'बटबाबा' हो या 'लाल पान की बेगम', 'तीसरी कसम' हो या 'पंचलाइट', 'एक आदिम रात्रि की महक' हो या 'संवदिया', 'रसूल मिस्त्री' हो या 'भित्तिचित्र की मयूरी', 'नैना जोगिन' हो या 'तबे एकला चलो रे', 'पहलवान की ढोलक' हो या 'ठेस', सब की सब एक अद्‌भुत किस्म के आकर्षण से ओतप्रोत हैं। रेणु के सारे पात्र सजीव हैं। उनमें कोई भी काल्पनिक नहीं लगता। ऐसा इसलिए भी क्योंकि वे काल्पनिक हैं ही नहीं, बल्कि कहीं-कहीं तो रेणु पात्रों में स्वयं को देखते हैं। अनेक कहानियों में मैं के रूप में लेखक स्वयं उपस्थित है। रेणु ने अपनी ठुमरी धर्मा कहानियों के सन्दर्भ में लिखा है – "ये कहानियाँ ठुमरी की टेक की तरह हैं।"

ठुमरी नामक संग्रह में अधिकतर कहानियाँ प्रेम के उच्च धरातल पर अवस्थित हैं और उत्कट प्रेम को रूपायित करती हैं। फणीश्वरनाथ 'रेणु' की एक प्रसिद्ध कहानी है 'बटबाबा'। यह कहानी रेणु की पहली परिपक्व कहानी है जो सन् 1944 ई. में उनके जेल से लौटने के बाद प्रकाशित हुई थी। कहानी एक साधारण सी बात को लेकर आगे बढ़ती है लेकिन यह बात साधारण नहीं है। गाँव के बाहर खड़ा वटवृक्ष गाँव भर का बटबाबा है जो सबकी इच्छाओं की पूर्ति करता है। अचानक वही बटबाबा सूख जाता है और एक दिन जमीदार के कारिंदे आ कर उसे काट देते हैं। इस कहानी में कई परतें हैं। दरअसल यह कहानी एक ओर ग्रामीण जीवन की आस्थाओं से जुड़ती है, दूसरी ओर पर्यावरण से और तीसरी ओर कहीं न कहीं देश के उस स्वतन्त्रता-आन्दोलन से जो आशा और निराशा दोनों से भरा हुआ है। वटवृक्ष का गिरना आस्थाओं का गिरना है, संस्कृति का गिरना है और विश्वास का गिरना है। धीरे-धीरे वह वृक्ष जो सबके लिए पूज्य था, अपना अस्तित्व खोता जा रहा है। पहले उसे हिन्दू-मुसलमान सब पूजते थे, बाद में मौलवी साहब के कहने के बाद मुसलमानों ने उसे पूजना बंद कर दिया। हालाँकि वे उसे बटबाबा कहना नहीं छोड़ पाए। कहानीकार की यह दृष्टि इस ओर भी संकेत करती है कि पहले हिन्दू और मुसलमान जो इस देश की एक धारा में थे अंग्रेजों ने धीरे्धीरे उन्हें हर स्तर पर बाँटने का काम किया।

रेणु की 'संवदिया' कहानी का हरगोविंद बड़ी बहुरिया के कष्ट में होने का संवाद उसके मायके में इस लिए नहीं दे पाता क्योंकि उसे लगता है कि यदि बड़ी बहुरिया के दुःख के बारे में उसके घरवालों को बता देगा तो उसके पूरे गाँव की बदनामी होगी और वह बिना संवाद दिए लौट आता है। बड़ी बहुरिया संवाद भेज तो देती है लेकिन स्वयं नहीं चाहती कि उसके द्वारा भेजा गया संवाद उसके मायके वालों को मिले। बड़ी बहुरिया को बाद में इस बात का एहसास होता है और जब संवदिया कहता है कि मैं आपका संवाद नहीं देपाया तो बड़ी बहुरिया को एक आत्मसंतोष मिलता है। एक अलग तरह के द्वन्द्व में रेणु के पात्र जीते हैं।

'तीसरी कसम' एक ऐसे अधेड़ ग्रामीण व्यक्ति हीरामन की कथा है जो एक नाचनेवाली स्त्री हीराबाई से अनायास प्रेम करने लगता है। इस प्रेम में एक दैवीय भाव है और अन्त में परिस्थितिवश जब हीराबाई उस जगह को छोड़कर चली जाती है तो हीरामन कसम खाता है – तीसरी कसम कि अब किसी नाचने वाली बाई को अपनी गाड़ी पर नहीं बैठाएगा। प्रेम की ऐसी अद्भुत पीड़ा इस कहानी में दिखाई देती है जिसका वर्णन शब्दातीत है। हीरामन अपने बैलों से कहता है कि "बार बार पीछे क्या मुड़कर देखते हो ?" इसी तरह रेणु की 'रसप्रिया' कहानी का पंचकौड़ी मिरदंगिया जब अन्त में चला जाता है तब उसकी प्रेमिका रमपतिया अपने लड़के को जोर से डाँटती है। यह डाँट वस्तुतः उसके अधूरे प्रेम की करक से उपजी हुई पीर है।

रेणु की एक अन्य कहानी 'लाल पान की बेगम' ग्रामीण जीवन की सच्चाइयों का बयान करती है। वहाँ के झगड़े, रार और स्नेह सबकुछ इस कहानी में अभिव्यक्त होते हैं। एक अन्य कहानी है 'भित्तिचित्र की मयूरी'। बाजार ग्रामीण लोककला को कैसे अपनी मुट्ठी में कर लेना चाहता है यह 'भित्तिचित्र की मयूरी' कहानी इस ओर संकेत करती है किन्तु अन्ततः जीत बाजार की ही होती है। इसी तरह गँवई मन और चरित्र को अभिव्यक्त करती एक और कहानी है 'रसूल मिस्त्री'। रसूल मिस्त्री हर ज़रूरतमंद के लिए तैयार खड़ा रहता है। उसके ऊपर बाजार की आधुनिकता की कोई छाप नहीं पड़ी है। वह अपने लिए नहीं बल्कि अपनों के लिए जीता है। वह अपनी कमाई से भरपूर मौज तो करता है लेकिन अपनी कमाई से दूसरों के दुःख को ज्यादा बड़ा मानता है और उनकी ज़रूरतों के लिए अपना काम भी छोड़ देता है। रेणु की एक और कहानी है 'नैना जोगन'। नैना जोगन रेणु का दिया हुआ एक नाम है। वह लड़की जो गाँव भर के लिए झगड़े का सबब है और जिससे सब खौफ खाते हैं। रेणु का नायक उसे अपने साथ शहर ले आता है उसके इलाज के लिए। यह उसका प्रेम ही है।

रेणु की कहानी 'पंचलाइट' जाति व्यवस्था की रूढ़ियों, आधुनिकता से प्रभावित होता समाज और प्रेम की जीत की ओर संकेत करती कहानी है। महतो टोले ने पेट्रोमेक्स यानी पंचलाइट खरीदा है लेकिन जब उसे जलाने की बात आती है तो कोई भी आदमी महतो टोले में ऐसा नहीं मिलता जो उसे जलाना जानता हो। बात इज्जत की है इसलिए पंचलाइट को किसी और टोले के व्यक्ति से जलवाना नहीं है। महतो टोले में एक व्यक्ति है गोधन, जो उसे जलाना जानता तो है लेकिन उस पर जाति की बंदिश लगी है क्योंकि वह दूसरे गाँव से आया है और महतो टोले की मुनरी को देख कर सिनेमा का गीत गाता है। अन्ततः गोधन पर लगी बंदिश हटाई जाती है और वह आकर पेट्रोमेक्स जला देता है। गोधन और मुनरी एक दूसरे से प्रेम करते हैं। अन्ततः उनका प्रेम किसी परिणति पर अवश्य पहुँचेगा, ऐसा अनुमान पाठक लगाते हैं। ग्रामीण समाज की राजनीति और सामाजिक व्यवस्था को उकेरती है यह कहानी पंचलाइट। पंचलाइट आधुनिकता का प्रतीक है और एक सन्देश भी कि बगैर समय के साथ चले प्रकाश बढ़ेगा नहीं।

इसी तरह प्रेम की प्रतीति कराती एक अन्य कहानी है 'एक आदिम रात्रि की महक', जिसका नायक बिना तनख्वाह का सेवक करमा है जो रेलवे के बाबू के यहाँ काम करता है और उनके साथ इधर से उधर आता-जाता रहता है। करमा जिन-जिन साहबों के साथ रहा है सबके स्वभाव और चरित्र अलग-अलग थे और करमा सबके

बारे में सोचता है। अन्त में करमा पास के गाँव में रहने वाली सुरसतिया के अनकहे आकर्षण में बँध जाता है। वह उसी जगह रुक जाता है और अपने साहब के साथ नहीं जाता। यह अनजाने प्रेम में आबद्ध नायक की कथा है।

रेणु कलाओं और कलाकारों का बहुत अधिक सम्मान करते थे। उनकी 'पहलवान की ढोलक', 'ठेस' और 'कलाकार' जैसी कहानियाँ इसका उदाहरण हैं। कला और कलावन्तों का सम्मान करती इन कहानियों से उजागर होता है कि रेणु को कला की बारीकियों की गहरी समझ थी। 'ठेस' कहानी का सिरचन खाने को मोहताज है लेकिन जरा सी बात बर्दाश्त नहीं कर पाता और काम छोड़कर चला आता है। उसी के चरित्र का दूसरा पहलू है कि वह जिस घर से ठेस लगने के कारण काम छोड़ कर आया है उसी की बेटी की विदा के समय शीतलपाटी बना कर देता है। चूँकि यह उसका संकल्प था और बेटी के मान-सम्मान का प्रश्न। वह केवल एक घर की बेटी नहीं है, हर घर की बेटी है। रेणु की कहानी 'तबे एकला चलो रे' भैंस के पाड़े किशन महाराज की कहानी है जो पूरे गाँव के लिए रक्षक का काम करता है। जीव-जगत् के प्रति रेणु की संवेदना को दर्शाती यह कहानी एक मर्मस्पर्शी कथा है।

4.6.04. 'रसप्रिया' कहानी का सारांश

आंचलिक कथाकार रेणु अपने शिल्प और विशिष्ट शैली के कारण अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। आंचलिक साहित्य में एक विशेष अंचल और उसके परिवेश का जीवन्त चित्रण किया जाता है। रेणु रचनावली में फणीश्वरनाथ रेणु की कुल 63 कहानियाँ संकलित हैं। उनकी चर्चित कहानियों में से एक कहानी है 'रसप्रिया'। 'रसप्रिया' कहानी की कथा का केन्द्र मिथिलांचल है।

कथा का मुख्य पात्र है 'पँचकौड़ी', जो मिरदंगिया है। मिरदंगिया अर्थात मृदंग बजाने वाला। पँचकौड़ी मिरदंगिया आरम्भ से ही विदापत मण्डली में मृदंग बजाया करता था। वह मूलगैन भी था और मिरदंगिया भी। रसप्रिया कहानी की शुरुआत कुछ इस तरह होती है कि पँचकौड़ी मिरदंगिया जब एक दिन कमलपुर जाते समय रास्ते में चरवाहा मोहना को देखता है तो उसकी सुन्दरता को देखता ही रह जाता है।

"मोहना ने मुस्करा कर पूछा, 'तुम्हारी उँगली तो रसपिरिया बजाते टेढ़ी हो गई है, है न ?'

'ऐ !' – बूढ़े मिरदंगिया ने चौंकते हुए कहा, 'रसपिरिया ? ... हाँ ... नहीं। तुमने कैसे ... तुमने कहाँ सुना बे ... ?'

'बेटा' कहते-कहते रुक गया। ... परमानपुर में उस बार एक ब्राह्मण के लड़के को उसने प्यार से 'बेटा' कह दिया था। सारे गाँव के लड़कों ने उसे घेर कर मारपीट की तैयारी की थी – 'बहरदार होकर ब्राह्मण के बच्चे को बेटा कहेगा ? मारो साले बुड्ढे को घेर कर ! ... मृदंग फोड़ दो।'

मिरदंगिया ने हँस कर कहा था, 'अच्छा, इस बार माफ कर दो सरकार ! अब से आप लोगों को बाप ही कहूँगा !'

बच्चे खुश हो गये थे। एक दो-ढाई साल के नंगे बालक की ठुड्डी पकड़ कर वह बोला था, 'क्यों, ठीक है न बापजी ?'

बच्चे ठठा कर हँस पड़े थे।

लेकिन, इस घटना के बाद फिर कभी उसने किसी बच्चे को बेटा कहने की हिम्मत नहीं की थी। मोहना को देख कर बार-बार बेटा कहने की इच्छा होती है।

'रसपिरिया की बात किसने बताई तुमसे ? ... बोलो बेटा !' "

पँचकौड़ी को सभी लोग पागल समझते हैं। एक वक्त था जब पँचकौड़ी की उस इलाके में बहुत ख्याति थी। वह बहुत सुन्दर मृदंग बजाया करता था। उस क्षेत्र में पन्द्रह-बीस साल पहले तक विद्यापति के गीत गाने वाली विदापत मण्डलियों की काफी पूछ हुआ करती थी। शादी-ब्याह, यज्ञ-उपनयन, मुण्डन-छेदन आदि सभी कामों में विदापत मण्डलियों को बुलाया जाता और तब वे मण्डलियाँ वहाँ जाकर विद्यापति के गीत गातीं और नाचती थीं। वे रसप्रिया सुनाया करती थीं। रसप्रिया विद्यापति के बारह पदों की पुस्तिका थी जिसे सहरसा के जोगेंदर झा ने छपवाया था। मेले में उसकी खूब बिक्री हुई और विदापत मण्डलियों ने रसप्रिया के पदों को गा-गाकर उसे रसपिरिया के नाम से अत्यधिक लोकप्रिय बना दिया।

जेठ की तपती दोपहर है। मोहन अपने बैलों के पीछे गया है जो हरे-भरे खेतों की ओर बार-बार भागे चले जा रहे हैं। फणीश्वरनाथ रेणु बीच-बीच में स्थानीय परिवेश का अंकन करते चलते हैं, जिसमें मिट्टी की गन्ध, हवा और खेत का हुलास शामिल रहता है और साथ ही साथ गीत-गवनई भी। उधर पँचकौड़ी झरजामुन के नीचे बैठा मोहन का इंतजार कर रहा है कि वह आए और पँचकौड़ी उसे रसप्रिया सुनाए। पँचकौड़ी का जीवन ऐसे सुन्दर लड़कों की खोज में बीता था। उन्हें खोजना आसान काम नहीं था। ऐसे सुन्दर लड़के निम्नतर जाति के हुआ करते थे और विदापत मण्डलियों में स्त्री वेश धारण कर नाचा करते थे। उन्हें नटुआ कहा जाता था। पँचकौड़ी ने तो एक बार ऐसे लड़के की चोरी भी की थी।

"रसपिरिया बजाते समय तुम्हारी उँगली टेढ़ी हुई थी। ठीक है न ?" मोहना ने फिर पूछा। पँचकौड़ी लगातार उसकी और देख रहा था। उसने जान लिया इसके पेट में तिल्ली है दरअसल वह वैद्य भी तो था। कितने ही बच्चों को वह इसकी घरेलू दवा दे चुका है। वह उसे भी बताता है कि उसे हल्दी की बुकनी के साथ गर्म पानी पीना चाहिए क्योंकि उसके पेट में तिल्ली बढ़ गई है। मोहन को इस बात का आश्चर्य होता है कि आखिर पंचकौड़ी को यह बात कैसे पता ? वह कहता है – "माँ, भी कहती है, हल्दी की बुकनी के साथ रोज गरम पानी। तिल्ली गल जाएगी।" पँचकौड़ी कहता है "बड़ी सयानी है तुम्हारी माँ !" वह सूखे पत्तल पर मूढ़ी और आम रखकर उसे प्यार से खिलाना चाहता है लेकिन मोहन भूखा होने के बावजूद मूढ़ी और आम नहीं खाता। वह कहता है कि यह भीख का अन्न है और यदि उसने खाया तो लोग माँ से उसकी शिकायत कर देंगे। यह सुनकर मिरदंगिया के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है और वह नाराज और आहत होकर कहता है कि "किसने कहा तुमसे कि मैं भीख

माँगता हूँ ? मिरदंग बजा कर, पदावली गा कर, लोगों को रिझा कर पेट पालता हूँ।" मोहन डर कर भाग जाता है और भागते-भागते कहता है कि "डायन ने बान मार कर तुम्हारी उँगली टेढ़ी कर दी है। झूठ क्यों कहते हो कि रसपिरिया बजाते समय ...।" मिरदंगिया को एक बार फिर से आश्चर्य होता है कि आखिर इसे कैसे पता क्योंकि यह बात तो उसकी प्रेमिका रमपतिया ने उससे कही थी कि डायन ने बान मार दिया है जिसकी वजह से उसकी उँगली टेढ़ी हो गई है।

कहानी फ्लैशबैक में चली जाती है। पँचकौड़ी अपनी तरुणाई में विदापत मण्डली में शामिल होकर जोधन गुरुजी का चेला बन मूलगैन बनने गया था और वहाँ मृदंग सीखने लगा। वह होनहार था और जोधन गुरुजी का प्रिय भी। जोधन गुरुजी की पुत्री रमपतिया बाल विधवा थी। पँचकोड़ी और रमपतिया दोनों एक दूसरे से प्रेम भी करते थे तभी तो जोधन ने अपनी पुत्री रमपतिया के विवाह की बात पँचकौड़ी से चलाई। लेकिन पँचकौड़ी ने अपनी जात अभी तक गुरुजी से छिपा रखी थी। चुमौना की बात चलते ही पँचकौड़ी मिरदंगिया वहाँ से भाग गया। उसने गाँव आकर अपनी अलग मण्डली बना ली।

जोधन गुरुजी की मृत्यु के बाद एक बार रमपतिया उससे गुलाब बाग मेले में मिलने के लिए आई। पंचकौड़ी ने उसे साफ-साफ जवाब दिया और कहा " 'क्या झूठ-फरेब जोड़ने आई है ? कमलपुर के नंदूबाबू के पास क्यों नहीं जाती, मुझे उल्लू बनाने आई है। नंदूबाबू का घोड़ा बारह बजे रात को ...।' चीख उठी थी रमपतिया – पाँचू ! ...चुप रहो !" रमपतिया ने आकाश की ओर हाथ उठा कर कहा था – "हे दिनकर, साक्षी रहना। मिरदंगिया ने बहला-फुसला कर मेरा सर्वनाश किया है। मेरे मन में कभी चोर नहीं था। इस दसदुआरी कुत्ते का अंग अंग फूट कर ...।" उसी रात रसपिरिया बजाते समय उसकी उँगली टेढ़ी हो जाती है। "उँगली टेढ़ी होने की खबर सुन कर रमपतिया दौड़ी आई थी, घण्टों उँगली को पकड़ कर रोती रही थी – 'हे दिनकर, किसने इतनी बड़ी दुश्मनी की ? उसका बुरा हो।... मेरी बात लौटा दो भगवान् ! गुस्से में कही हुई बातें। नहीं, नहीं। पाँचू, मैंने कुछ भी नहीं किया है। ज़रूर किसी डायन ने बान मार दिया है।' "

पँचकौड़ी की मण्डली टूट जाती है और अन्ततः वह मृदंग बजाकर अपना पेट पालने लगता है। धीरे-धीरे विदापत नाच की मण्डलियाँ समाप्त होती गईं और उसके कलाकार बेरोजगार हो गए।

फ्लैशबैक समाप्त होता है। झरबेरी के जंगल के उस पार कोई सुरीली आवाज में रसप्रिया की पदावली गाता है। मिरदंगिया के सारे शरीर में एक लहर दौड़ जाती है और उसकी उँगलियाँ स्वयं ही मृदंग के पूरे पर थिरकने लगती हैं। मिरदंगिया पागलों की तरह उठ कर यह देखने के लिए दौड़ता है कि झरबेरी की झाड़ी के उस पास कौन शुद्ध रसप्रिया गा रहा है। वह देखता है कि मोहना तन्मय होकर दूसरे पद की तैयारी कर रहा है। मोहना के गले में राधा आ कर बैठ गई है !

"... उफ ! मिरदंगिया धम्म से जमीन पर बैठ गया – 'कमाल ! कमाल ! ... किससे सीखे ? कहाँ सीखी तुमने पदावली ? कौन है तुम्हारा गुरु?' "

"मोहना ने हँस कर जवाब दिया, 'सीखूँगा कहाँ ? माँ तो रोज गाती है । ... प्रातकी मुझे बहुत याद है, लेकिन अभी तो उसका समय नहीं ।' " मिरदंगिया उससे कहता है – " 'हाँ बेटा ! बेताले के साथ कभी मत गाना-बजाना । जो कुछ भी है, सब चला जाएगा । ... समय-कुसमय का भी खयाल रखना ।"

वह मोहन को आम खाने को देता है । मोहना से उसके माता-पिता के बारे में पूछने पर वह बताता है कि उसके पिता नहीं हैं । वह सहरसा का है पर यहाँ उसकी माँ उसे लेकर अपने ममहर आई है ... कमलपुर । मिरदंगिया कुछ देर तक चुपचाप सूर्य की ओर देखता रहता है फिर पूछता है – "डायनवाली बात तुम्हारी माँ कह रही थी ?"

"हाँ ।" मोहना उससे यह भी कहता है कि "एक बार सामदेव झा के यहाँ जनेऊ में तुमने गिरधर-पट्टी मडंलीवालों का मिरदंग छीन लिया था । ... बेताला बजा रहा था । ठीक है न ?"

मिरदंगिया जान जाता है कि मोहन उसकी प्रेमिका रमपतिया का बेटा है । उसके मन में एक सहज वात्सल्य उमड़ पड़ता है । उसके मन में कहीं इस बात को लेकर एक कसक है कि उसकी आँखें नंदूबाबू की आँखों की तरह हैं और आश्वस्ति भी कि यह उसका ही बेटा है । वह उसे चालीस रुपये देते हुए कहता है कि यह उसकी कला की कमाई है इससे अपना इलाज करा लेना । वह मोहन की प्रशंसा करते हुए कहता है कि भला तुम्हारे जैसा रसपिरिया और कौन गा सकता है । मोहन मिरदंगिया से कहता है कि वह उसके साथ चले और उसकी माँ से मिल ले पर मिरदंगिया नहीं जाता और कहता है – "अब से मैं पदावली नहीं, रसपिरिया नहीं, निरगुन गाऊँगा । देखो, मेरी उँगली शायद सीधी हो रही है ।" और चला जाता है । अन्त में मोहन अपनी माँ रमपतिया के पूछने पर कि तुम्हारे साथ मृदंग कौन बजा रहा था वह बताता है कि पंचकौड़ी मिरदंगिया आया था । "मैंने उसके ताल पर रसपिरिया गाया है । कहता था, इतना शुद्ध रसपिरिया कौन गा सकता है आजकल ! ... उसकी उँगली अब ठीक हो जाएगी ।"

उसकी माँ के मन में जैसे हूक सी उठती है । वह बीमार मोहना को आह्लाद से अपनी छाती से सटा लेती है । मोहना उससे पूछता है कि "'लेकिन तू तो हमेशा उसकी टोकरी-भर शिकायत करती थी – बेईमान है, गुरु-दरोही है, झूठा है !"

वह सारी हूक दबाकर कहती है – "है तो ! वैसे लोगों की संगत ठीक नहीं । खबरदार, जो उसके साथ फिर कभी गया ! दसदुआरी जाचकों से हेलमेल करके अपना ही नुकसान होता है । ...चल, उठा बोझ !"

मिरदंगिये की मृदंग की आवाज़ दूर होती जा रही है । मोहना की माँ खेत की ऊबड़खाबड़ मेड़ पर चलते चलते ठोकर खा कर गिरते-गिरते बचती है । घास का बोझ गिर कर खुल जाता है । मोहना की माँ खेत की मेड़ पर बैठ जाती है । जेठ की शाम से पहले की पुरवैया धीरे-धीरे तेज हो गई है ... मिट्टी की सुगन्ध हवा में धीरे-धीरे घुलने लगी है । वह मोहन से फिर पूछती है – "मिरदंगिया और कुछ बोलता था, बेटा ?" मोहना बताता है कि "कहता था, तुम्हारे-जैसा गुणवान् बेटा ..." रमपतिया कहती है – 'झूठा, बेईमान !' मोहना की माँ आँसू पोंछ कर बोली, 'ऐसे लोगों की संगत कभी मत करना ।'

4.6.05. भाषा-संरचना

रेणु भाषा को लेकर अत्यन्त सजग थे। वे ऐसे शब्दों का चयन करते थे जो पूरी तरह परिवेश से जुड़े हुए हों। उनकी जो कहानियाँ आंचलिकता प्रधान हैं उनमें वे पूरी तरह क्षेत्रीय शब्दों का चयन करते हैं। उदाहरण के तौर पर रसपिरिया, विदापत, धुरखेल, आल, खटमिट्ठा, अपरुप, झरजामुन, मूलगैन, परबेस, आखर, धनी आदि। और जहाँ शहरी परिवेश है वहाँ वे उस समाज के लिए उन शब्दों का चयन करते हैं जो उस समाज में प्रचलित हैं।

आधुनिकता के चलते अंग्रेजी के अनेक शब्द गाँवों में भी प्रचलित हो गए हैं लेकिन गाँव में जाकर उनका तद्भवीकरण हो गया है और स्वरूप बदल गया है। अंग्रेजी के शब्दों के परिवर्तित रूप रेणु के पात्र बोलते हैं जैसे उनके यहाँ बाइकाट > बैकट, सिनेमा > सलीमा, स्प्रिट > इसपिरिट और स्टेशन > इसटीसन हो जाता है। इसी तरह मूलगैन शब्द संस्कृत के 'मूलगण' का तद्भव रूप है।

रेणु शब्दों के द्वारा परिवेश और वातावरण का सृजन भी करते हैं। मृदंग के बोल 'धा तिंग, धा तिंग' हों या टिटिहरी की टिहकारी 'टिं ई टिंहिक', 'फोंय-फोंय सोंय-सोंय' हो या 'इस्सो' – इनके माध्यम से रेणु एक जीवन्त चित्र खड़ा कर देते हैं। स्थानीय मुहावरों का प्रयोग रेणु की भाषा को अद्भुत सौन्दर्य प्रदान करता है। रसपिरिया कहानी में रमपतिया द्वारा विश्वास सहित यह कहना कि पंचकौड़ी की उंगलियाँ इसलिए टेढ़ी हो गई हैं कि किसी डायन ने बान मार दिया है, ग्राम्य विश्वास को अभिव्यक्त करता है। अपनी पुस्तक 'फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ' में भारत यायावर लिखते हैं – "रेणु की कथा-भाषा लोकभाषा की नींव पर खड़ी की गई है। यह भाषा मध्यकाल के सन्त-भक्त कवि कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, जायसी आदि की भाषा के सर्वाधिक करीब है। रेणु की भाषा एक पहाड़ी झरने की तरह प्रवाहित होती रहती है, पर उसकी गति, लय प्रवाह और संगीत में लगातार परिवर्तन होता चलता है।"

रेणु अपनी कहानियों में भाषा को लेकर अत्यन्त सजग हैं। वे प्रतीकों और बिम्बों के साथ ही कहावतों, लोकोक्तियों आदि का भरपूर व्यवहार करते हैं। यहाँ तक कि सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए वे अलंकारों का भी भरपूर प्रयोग करते दिखते हैं। रसप्रिया की पहली पंक्ति ही प्रतीकात्मक है – "धूल में पड़े कीमती पत्थर को देख कर जौहरी की आँखों में एक नई झलक झिलमिला गई – अपरूप-रूप !"

रसप्रिया शब्द लोक में जाकर रसपिरिया हो जाता है, चर्चा चरचा में बदल जाती है, उपनयन उपनैन और मृदंगिया मिरदंगिया बन जाता है। लोक की अपनी दुनिया होती है और मुख-सुख के कारण लोक शब्दों को अपने अनुरूप ढाल लेता है। यह हम रेणु की कहानियों में स्पष्ट रूप से देख पाते हैं।

रेणु ने उस लोकभाषा का प्रयोग किया है जो उस क्षेत्र में प्रचलित है। डागडर बाबू, रुसली, थेथरई, हल्दी की बुकनी, परबेस जैसे लोक-व्यवहार में आने वाले शब्द कहानी को प्रामाणिकता प्रदान करते हैं। 'डायन का बान मारना' जैसा लोकप्रचलित विश्वास इस कहानी में गहराई उत्पन्न करता है और 'झूठ फरेब जोड़ना' या 'लावा फरवी फूटना' जैसे मुहावरे यथार्थ चित्र उपस्थित कर देते हैं। जब रेणु कहते हैं कि इस मृदंग को कलेजे से सटाकर

रमपतिया ने न जाने कितनी रातें काटी हैं तो प्रेम की तीव्रता इस पंक्ति मात्र से ही स्पष्ट हो जाती है। यहाँ मृदंग प्रेम का जीवन्त का प्रतीक बन गया है।

4.6.06. भाव-संवेदन

यह कहानी ठुमरी धर्मा कहानी है। ठुमरी संगीत की एक विशिष्ट शैली होती है जो लोक में व्याप्त है। यह संगीत की उपशास्त्रीय शैली के अन्तर्गत आती है। ठुमरी के बोल किसी न किसी रूप में प्रेम या विवाह से सम्बन्धित होते हैं। इसके गायन में जो एक तारतम्यता होती है वह सहज प्रवाह को लेकर तो चलती है किन्तु उसमें बहुत अधिक अवरोध जैसा दिखाई पड़ता है। एक ऐसी आन्तरिक लय जो एक तार नहीं है बल्कि रुककर चल रही है। रेणु की ठुमरी धर्मा कहानियाँ में 'तीसरी कसम', 'रसप्रिया', 'लाल पान की बेगम', 'संवदिया' जैसी कहानियाँ हैं जो मनुष्य के अन्तस्तल को बहुत गहराई से संस्पर्श करती हैं। ये कहानियाँ प्रेम के धरातल पर अवस्थित हैं। बार-बार ये कहानियाँ हमें चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की याद दिलाती हैं। गुलेरीजी ने 'उसने कहा था' में भाव संवेदन का जो परिवेश सृजित किया है, ठीक वही परिवेश उससे भी कहीं अधिक भावुकता के साथ हमें रेणु में दिखाई देता है। रसप्रिया का नायक पंचकौड़ी मिरदंगिया कई स्तरों पर संघर्ष कर रहा है। एक स्तर उसकी जातीयता का है। उसने अपनी जाति अपने गुरु से छुपा रखी है लेकिन जब वह उसकी पुत्री से प्रेम करता है और गुरु के कहने पर वह इसलिए चुमौना से भाग जाता है कि वह स्वजातीय नहीं है। एक बड़ा भेद यहाँ दिखाई देता है। गुरु और पंचकौड़ी दोनों कला के धरातल पर तो एक हैं किन्तु यहाँ भी जाति आड़े आ जाती है। वह इस परिस्थिति को नहीं स्वीकार कर पाता और भाग जाता है। उधर उसकी प्रेमिका रमपतिया है जो अन्ततः अपने पिता की मृत्यु के बाद समझौता करके के लिए विवश है। उसे उन सामन्तों के यहाँ काम करना पड़ता है जिनसे उसका कोई आन्तरिक लगाव नहीं। समाज के ताने भी उसे सुनने पड़ते हैं खासकर अपने ही प्रेमी पंचकौड़ी के जिससे उसने तन-मन से प्रेम किया था भले ही पंचकौड़ी उसे छोड़ कर भाग गया था।

एक दूसरा मार्मिक स्थल हमें कहानी में तब दिखाई देता है जब रमपतिया गुलाब बाग के मेले में फिर से उससे मिलने आती है। उसे लगता है कि शायद पंचकौड़ी और उसके रिश्ते फिर से बन सकते हैं। पिता की मृत्यु हो चुकी है और वह अब तक पंचकौड़ी की प्रतीक्षा कर रही है किन्तु पंचकौड़ी को शक है कि अब उसका सम्बन्ध नंदूबाबू के साथ हो गया है और वह इस शक को जाहिर भी कर देता है। रमपतिया का मन चीत्कार कर उठता है और वह उसे शाप दे देती है कि "तुम्हारा अंग-अंग फूट-फूट कर ..." उसी रात पंचकौड़ी की उंगली टेढ़ी हो जाती है। रमपतिया को जब इस बात का पता चलता है तो उसे पछतावा भी होता है। वह उसकी टेढ़ी उंगली पकड़कर घण्टों रोती रही लेकिन फिर भी पंचकौड़ी का मन नहीं पसीजता। वह उसे अंदर ही अंदर प्रेम तो करता है लेकिन शक की एक दीवार उसके मन में खड़ी है। कुछ समय के बाद वह पाता है कि अब उसे लोग कलाकार की जगह भिखारी समझने लगे हैं। भाव संवेदन का यह पक्ष बहुत ही मार्मिक है। आज का समय इतना निर्मम हो चला है कि वह कहीं न कहीं मनुष्य की मनुष्यता और कलाकार की कला को नष्ट कर रहा है।

बाजारवाद ने सारे प्रतिमान बदल कर रख दिए हैं। आज जिस बाजारवाद की बात हो रही है, वह स्वतन्त्रता के बाद से ही हमारे पूरे परिवेश पर हावी होने लगा था। यहाँ संवेदना का एक और पक्ष साफ-साफ दिखाई देता है। और वह है कमलपुर की ओर कई वर्षों के बाद फिर से पंचकौड़ी का लौटना। एक अप्रत्याशित घटना यह घटती है कि पंचकौड़ी की मुलाकात उस लड़के मोहना से होती है जो रमपतिया का बेटा है। उसे देखकर एक अजाना वात्सल्य और उत्साह उसके मन में उत्पन्न होता है और जब वह उससे पूछता है "तुम रसप्रिया बजाते हो ना" और यह "तुम्हारी उँगली तो रसपिरिया बजाते टेढ़ी हो गई है, है न ?" तो उसे आश्चर्य होता है। धीरे-धीरे रहस्य की परतें खुलती जाती है और वह मोहना अपना होता चला जाता है। कुछ ही घण्टों का पूरा वितान एक लम्बे समय में परिवर्तित होता है। यह रेणु की एक विशेष कला है। पंचकौड़ी के बारे में रमपतिया ने मोहना को बहुत कुछ बताया है। वह पंचकौड़ी की सारी गोपनीय बातें जानता है। पंचकौड़ी को इससे एक आत्मिक सुख भी मिलता है और कहीं न कहीं वह दुविधा में भी है कि यह लड़का रमपतिया का तो है लेकिन नंदू बाबू का भी है। वह यह भी सोचता है कि हो सकता है यह लड़का उसका ही हो क्योंकि रमपतिया उसके प्रति किसी भी हद तक ईमानदार और समर्पित थी और उसके आरोप लगाने पर वह आहत भी हुई थी और नाराज भी। रेणु ने यह बहुत स्पष्ट तो नहीं किया है कि वह मोहना पंचकौड़ी का लड़का है लेकिन इसकी सम्भावना से इनकार भी नहीं किया जा सकता। मोहना को देखकर जो प्यार उसके मन में उपजा है वह उसे सब कुछ समर्पित करने को तत्पर कर देता है। रमपतिया के प्रति उसका जो प्रेम है वही उसे मोहना को पैसे देने के लिए प्रेरित करता है। उसी के कारण मोहना के मना करने के बाद भी वह कहता है कि अपनी माँ को कुछ मत बताना क्योंकि वह जानता है कि अगर कभी रमपतिया को पता चल गया कि पंचकौड़ी ने उसे पैसे दिए हैं तो वह उसे नहीं स्वीकार करेगी लेकिन इसके बावजूद वह अपनी अभी तक की सारी कमाई मोहना को दे देता है।

संवेदनशीलता का चरमोत्कर्ष हम इस कहानी में वहाँ पाते हैं जहाँ रमपतिया को पता चलता है कि पंचकौड़ी मिरदंगिया आया था और उसके बेटे ने उसके मृदंग की ताल पर रसप्रिया गाया है। वह आह्लादित भी है और पंचकौड़ी के प्रति जो उसके मन में प्रेम और जो अलगाव है वह दोनों ही यहाँ चरितार्थ होता है। एक ओर उसके मन में उत्कट अभिलाषा है पंचकौड़ी को देखने की, उससे मिलने की और दूसरी ओर वह अत्यधिक नाराज होकर अपने पुत्र मोहना से कहती है कि ऐसे लोगों की संगत ठीक नहीं। मोहना अचम्भित है कि माँ को क्या हो जाता है। वह कभी जिस चीज को अत्यन्त प्रिय भाव से देखती है दूसरे ही क्षण उसके प्रति उसका भाव बिल्कुल बदल जाता है। वह चलते-चलते ठोकर खाकर गिरती है। यहाँ हमें फिर याद आती है 'उसने कहा था' के लहनासिंह की। लहनासिंह को जब पता चलता है कि उस लड़की की शादी तय हो गई है तो वह रास्ते चलते न जाने कितने लोगों को धक्का देता-टकराता घर पहुँचता है।

"दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, तेरी कुड़माई हो गई ? और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली – 'हाँ हो गई।'

'कब ?'

'कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ीवाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँड़ेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।"

भाव संवेदन के स्तर पर 'रसप्रिया' कहानी परत-दर-परत पाठक को गहराई तक छूती चली जाती है। कहानी समाप्त होते-ना होते संवेदनशील पाठक एक ऐसे संसार मेंपहुँचता है जहाँ प्रेम तो है लेकिन उसकी परिणति प्राप्ति में नहीं है बल्कि उससे अलगाव ही उसकी तीव्रता का एहसास कराता है। भाव संवेदन के स्तर पर रेणु की यह कहानी उत्कट प्रेम की कहानी है।

4.6.07. कहानी के प्रमुख पात्र / चरित्र

कहानी का एक प्रमुख तत्त्व होता है चरित्र। रसप्रिया कहानी में मुख्य रूप से तीन चरित्र हैं – 'पंचकौड़ी मिरदंगिया', उसकी प्रेमिका 'रमपतिया' और रमपतिया का लड़का 'मोहना'। रेणु का मन साहसी, भोले-भाले ग्राम चरित्रों के रेखांकन में लगा है जो आर्थिक अभाव से जूझ रहे हैं पर सांस्कृतिक स्तर पर वे अत्यन्त सम्पन्न हैं। रेणु के सारे चरित्र व्यवस्था, परिस्थिति और समाज के मारे हुए हैं पर प्रेम, मानवीयता, संस्कारों और सहृदयता से भरपूर हैं। प्रेम के जितने स्तर और रूप रेणु के यहाँ मिलते हैं वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। भारत यायावर लिखते हैं – "यही वे आदमी हैं। व्यवस्था के द्वारा सताए हुए, उपेक्षित, दलित पर बेहद मानवीय, जमीन से जुड़े हुए, सांस्कृतिक सम्पदा से सम्पन्न, प्रेम और राग में पगे हुए लोग ! ... जिनके जीवन से एकाकार होकर रेणु ने ये कहानियाँ लिखी हैं। या कहें उनके अपार पात्रों से ही निर्मित है रेणु का कथाकार।"

पंचकौड़ी मिरदंगिया रसप्रिया कहानी का केन्द्रीय चरित्र है, जिसके चारों ओर कथा का ताना-बाना बुना गया है। उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक संवेदनशील और गुणी कलाकार है। वह बहुत अच्छा मृदंग बजाता है। वह जोधन गुरुजी के यहाँ आया तो था मूलगैन बनने पर केवल मिरदंगिया बनकर रह गया। मूलगैन विदापत टोली का मुख्य व्यक्ति होता है। यह शब्द संस्कृत के 'मूलगण' से बना है और उसका तद्भव है। कलावन्त पंचकौड़ी कला के प्रति समर्पित था और यदि कोई कला के साथ अन्याय करता है तो वह उसे बर्दाश्त नहीं कर पाता इसीलिए बेताल बजाने वाले उसे पसंद नहीं। वह उच्च कुलीन नहीं है किन्तु संस्कारी है। उसे जोधन गुरुजी की पुत्री रमपतिया से प्रेम हो जाता है। जोधन गुरुजी भी उसे स्वीकार करने को तैयार हैं किन्तु वह केवल इसलिए वहाँ से भाग जाता है क्योंकि वह निम्न जाति का है और अपने गुरु के साथ धोखा नहीं कर सकता।

उसके गुणी होने का परिचय इस बात से मिलता है कि वह अपने गुणों के बल पर गुरुजी के यहाँ से भागने के बाद नई विदापत मण्डली बना लेता है। सीधा-सरल पंचकौड़ी समय का मारा है। कालान्तर में रसप्रिया सुनने वाले रसिक इक्का-दुक्का ही बच गए हैं और वह किसी तरह अपना जीवनयापन कर रहा है लेकिन उसने मृदंग

बजाना नहीं छोड़ा है। जब उसकी मुलाकात मोहना से होती है और उसे पता चलता है कि मोहना उसकी प्रेमिका रमपतिया की संतान है तो उसके ऊपर वह सारा स्नेह उड़ेल देता है और अपनी बचाई हुई सारी पूँजी उसे देता है ताकि मोहना अपने पेट की तिल्ली का इलाज करवा सके। मोहना के यह कहने पर कि वह उसकी माँ से मिल ले, वह मना कर देता है क्योंकि कहीं न कहीं उसके मन में इस बात का डर भी है और कसक भी कि उसकी रमपतिया का उसके प्रति अब न जाने कैसा व्यवहार होगा। पंचकौड़ी का चरित्र सीधे-सादे गँवई मन वाला है। प्रेम से सराबोर और प्रेम की परिपक्वता का प्रत्यक्ष उदाहरण।

रसप्रिया का दूसरा चरित्र है, 'मोहना', जिसे विरासत में मधुर कण्ठ मिला है। वह सुर और ताल का ज्ञाता है लेकिन गाय-भैंस चराने के लिए अभिशप्त है। यद्यपि उसकी माँ ने उसके गले के सुरों को भरपूर तराशा है पर अब उसके पारखी कहाँ बचे हैं। वह पंचकौड़ी के मृदंग वादन के बारे में जानता है और उसकी कद्र भी करता है लेकिन वह शरारती भी है और पंचकौड़ी को चिढ़ाकर भागता भी है पर जल्दी ही पंचकौड़ी से उसकी दोस्ती हो जाती है। यह सब कुछ मात्र कुछ घण्टों में घटित होता है।

तीसरा और प्रमुख चरित्र है रमपतिया का जो जोधन गुरुजी की बेटी है, पंचकौड़ी की प्रेमिका है और मोहना की माँ है। एक सम्पूर्ण स्त्री जिसका जीवन अधूरेपन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। एक गुणी कलाकार जिसकी कला को कोई जान ही न पाया। एक ऐसी प्रेमिका जो पंचकौड़ी पर अपना सर्वस्व निछावर कर के भी कुछ भी न पा सकी सिवाय दुःख के। पति के नाम पर उसकी शादी बूढ़े अजोधादास के साथ कर दी जाती है जो जल्दी ही दिवंगत हो जाता है। वह मोहना जैसे गुणवान् लड़के की माँ है पर अपने पुत्र के अभावों को दूर करने में असमर्थ है। पिता की मृत्यु और प्रेमी की पलायन ने उसे नंदू बाबू के यहाँ काम करने के लिए विवश कर दिया पर वह अब भी पंचकौड़ी से प्रेम करती है यह कनिष्ठ जिसे पंचकौड़ी समझ नहीं पाता। वह स्त्री संघर्षशील है, परिस्थितियों से लड़ती है लेकिन स्वाभिमानी भी है। शायद इसीलिए अन्त में मोहना से कहती है कि पंचकौड़ी जैसे व्यक्ति की संगत ठीक नहीं। एक अजीब से अन्तर्द्वन्द्व में फँसी हुई स्त्री है रमपतिया। रसप्रिया कहानी के अन्य चरित्र गौण हैं और उनकी चर्चा रेणु ने केवल प्रसंगवश की है।

4.6.08. कहानी का शिल्प

रेणु की कहानी रसप्रिया अपने शिल्प में विशिष्ट है। आधुनिक कहानियों की विशेषता होती है उसका अपना शिल्प और प्रस्तुति। भले ही इस कहानी को आंचलिकता की दृष्टि से आरम्भिक आंचलिक कहानी कहा जाता है लेकिन इसकी व्यापकता और सार्वजनीनता निर्विवाद है। यह कहानी 'निकष' पत्रिका में 1955 में छपी थी और उसके बाद 'ठुमरी' नामक कथा-संकलन में संकलित की गई। इस संग्रह में संकलित सभीकहानियाँ ठुमरी धर्मा थीं जैसे तीसरी कसम, लालपान की बेगम, संवदिया, रसप्रिया आदि। स्वयं रेणु 'ठुमरी' की भूमिका में लिखते हैं कि – "इस संग्रह में ठुमरी नाम की कोई कहानी नहीं, सभी संयोजित कहानियाँ ठुमरी धर्मा हैं। अन्तर्मार्ग एक ही है सभी कथाओं का। (... गीत के अन्तर्भाग में, बीच-बीच में विभिन्न स्वरों के प्रयोग से जो वैचित्र्य और कारु-कार्य सम्पादित होता है, उसको अन्तर्मार्ग कहते हैं।) एक स्वर को लेकर, विभिन्न स्वरों से उसकी क्रमिक

संगति दिखला दिखला कर ही किसी राग के रूप को प्रकाशित किया जाता है। ठुमरी के कथागायक ने ऐसी चेष्टा की है। एकाधिक कथाओं में, एक ही विशेष मुहूर्त को विभिन्न परिवेश में रखकर रूपायित किया गया है। ... पौनःपुनिकता दोष से दूषित नहीं।"

रेणु का यह कथन उनकी कहानियों के शिल्प की ओर संकेत करता है। यह कहानी बार-बार फ्लैशबैक में जाती है और आधुनिकता का पूरी तरह निर्वाह करती दिखाई देती है। दरअसल यह प्रणय सम्बन्धों की जटिल कहानी है। प्रेम के धरातल पर सामाजिक परिप्रेक्ष्य और जटिल परिस्थितियों को गहराई से चित्रित किया गया है। पंचकौड़ी मिरदंगिया जो इस कथा का मुख्य चरित्र है वह हीरामन की तरह हीराबाई से अपने सम्बन्धों को मीता के रूप में देखता है। यह कहानी पाठक से स्वयं को जोड़ती चलती है। रेणु ने इस कहानी में अद्भुत शब्दचित्र खींचे हैं। पंचकौड़ी मिरदंगिया की स्मृतियाँ बार-बार मँडरा रही हैं। ठीक आकाश में उड़ने वाली टिटिहरी की तरह। उसकी चीख और आवाज दरअसल उसके अतीत की स्मृतियों की चीख और आवाज है।

यह कहानी पूरी तरह नई कहानी है। रसप्रिया में एक ओर मिरदंगिया के मन में सन्देह है तो दूसरी ओर मोहना के प्रति एक उत्कट अनुराग। यह प्रेम, वात्सल्य और जिजीविषा की कथा है। स्मृतियों का आन्दोलन, अतीत का बार-बार आना और उसके वर्तमान पर प्रहार करना यह सब कुछ इस कहानी में दिखाई देता है साथ ही संस्कृतियों का क्षरण और बाजार का दबाव भी कहीं न कहीं पार्श्व में ध्वनित होता है। प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय ने रेणु की कहानियों की बारे में लिखा है – "लोकजीवन से गहरी आत्मीयता और लोक संस्कृति में अटूट आस्था ने उनको अस्तित्ववादी प्रभाव से बचाया। यह विचित्र बात है कि कुछ लोग लोक-जीवन और लोक-संस्कृति से प्रेम करने की बात भी करते हैं और रेणु की कहानियों में लोक-संस्कृति की मौजूदगी पर ऐतराज भी करते हैं। वास्तव में ऐसे लोग लोक-संस्कृति का दुरुपयोग करना चाहते हैं या व्यापार। रेणु लोक-संस्कृति से प्रेम करते हैं इसलिए वे लोक-संस्कृति के दुरुपयोग और व्यापार दोनों का विरोध करते हैं। लोक-संस्था से वही प्रेम कर सकता है जो लोक-जीवन से प्रेम करता है क्योंकि लोक-संस्कृति लोक-जीवन में बसती है। लोक-संस्कृति में रेणु की आस्था इतनी गहरी है कि वे अमानवीय समाज को मानवीय बनाने के लिए लोक-संस्कृतिमूलक समाज के गठन की बात करते हैं।"

मानवीय संवेदनाओं को हम जिस रूप में रेणु के यहाँ पाते हैं वह किसी अन्य कथा-शिल्पी के यहाँ नहीं है और इसे अभिव्यक्ति करने में रेणु को महारत हासिल है। सहज सम्प्रेषणीयता रेणु के कथा-शिल्प की विशेषता है। नयी कहानी का शिल्प, भाषा, संवेदना, अभिव्यक्ति और सम्प्रेषणीयता के स्तर पर नयेपन की खोज करता चलता है इसीलिए वह चली आ रही परम्परा और बँधी-बँधाई लीक से हटकर है। रेणु की कहानियाँ अपने शिल्प-विधान में इन सभी तत्त्वों का समावेश करती दिखती हैं। उनकी दृष्टि केवल रोमांटिक नहीं है बल्कि वे रोमांस के साथ-साथ यथार्थ को साथ लेकर बढ़ते हैं। रेणु तत्कालीन समाज के जटिल सम्बन्धों की पड़ताल कर उसे खोलते ही नहीं बल्कि टूटते हुए मूल्यबोध के प्रति चिन्ता व्यक्त करती उनकी कहानियाँ उन्हें जोड़ने का प्रयास भी करती दिखती हैं। वे अपने समय के प्रश्नों से टकराते चलते हैं और प्रश्नों का समाधान देने की कोशिश भी करते हैं। तमाम निराशाओं के बीच आशा की एक किरण भी उनमें दिखाई देती है। उनका शैल्पिक गुँजलक अद्भुत है।

रेणु का कथा-विन्यास संगीत के सुरोंकी तरह आरोही-अवरोही है। यह उनके शिल्प-विधान की विशेषता है। रेणु का दृष्टिबोध सामाजिक सम्बन्धों के तनाव और द्वन्द्व से निर्मित हुआ है। आन्तरिक कसावट की दृष्टि से रेणु का कथा-शिल्प अद्वितीय है।

4.6.09. आंचलिक परिवेश

किसी भी रचना को जीवन्त बनाने में परिवेश का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। परिवेश ही वह तत्त्व है जो किसी रचना को पाठक तक पहुँचाने में सहायता करता है। जब पाठक उस रचना को पढ़ता है तो वह तत्कालीन देशकाल में पहुँच जाता है और उस देशकाल या परिस्थिति का अनुभव करता है जिसमें वह घटना घटित हो रही है और जो रचना का आधार है। प्रत्येक बड़े कथाकार की रचना पढ़ते समय हम यह पाते हैं कि उसने परिवेश का निकटता से अनुभव किया है और उसे यथावत् सृजित करने का प्रयास भी किया है। यही बात हमें रेणु के यहाँ भी मिलती है। फणीश्वरनाथ रेणु परिवेश के मामले में अत्यन्त सजग हैं। उनकी कहानियों में आंचलिक परिवेश अपनी सम्पूर्णता के साथ उपस्थित रहता है। यही कारण है कि रेणु को आंचलिक कथाकार कहा गया। आंचलिकता के समस्त तत्त्व रेणु के यहाँ मिलते हैं। इन तत्त्वों में लोगों का व्यवहार, रहन-सहन, खान-पान, स्थानीय शब्दावली, संगीत, नृत्य, पहनावा, प्रकृति, जलवायु, त्योहार आदि सब कुछ शामिल होता है। रेणु की नजरों से कुछ भी अछूता नहीं है। उनकी कहानी पढ़ते समय हम अनायास ही मिथिलांचल में पहुँच जाते हैं अथवा जिस परिवेश को रेणु ने सृजित किया है चाहे वह नेपाल का हो, कोसी का हो या पटना का, ऐसा लगता है कि हम रेणु के साथ-साथ इन स्थानों पर स्वयं उपस्थित हैं। 'रसप्रिया' कहानी में भी मिथिलांचल पूरे सौन्दर्य के साथ उपस्थित है। सहरसा और दरभंगा की चर्चा कर रेणु ने इसे और अधिक पुष्ट किया है। रेणु की कहानियाँ पढ़ते समय ताल-तलैयों, खेतों, खलिहानों, रसोई में पकते व्यंजनों, त्योहारों, बाग-बगीचों और वनस्पतियों की गन्ध पाठक के नथुनों से लेकर हृदय तक में बैठ जाती है। रेणु के पात्रों की परस्पर टकराहट पूरे परिवेश को चित्रित करती है। अलग-अलग घटनाएँ मिलकर कथा-वितान रचती हैं और शिल्प-विधान का सृजन करती है। ये वास्तविक स्थितियाँ है जिनमें रेणु आकण्ठ डूबे हैं अन्यथा उनके द्वारा इतना जीवन्त चित्रण कर पाना सम्भव न था। वहीं चाँदनी रात में दूर तक खेतों में बिछी चाँदनी, जेठ की तपती दुपहरी में तृषित प्रकृति, आकाश में उड़ते पंछियों की ध्वनियाँ, ढोल-मृदंग, नौटंकी और विद्यापति के गीतों के स्वर एक सजीव लोक का निर्माण करते हैं। रेणु के बारे में निर्मल वर्मा लिखते हैं – "रेणु का स्थान अपने पूर्ववर्ती और समकालीन आंचलिक कथाकारों से विशिष्ट और अलग है तो वह इसमें है कि आंचलिक उनका सिर्फ परिवेश था, उनके भीतर बहती जीवनधारा स्वयं अपने अंचल की सीमाओं का उल्लंघन करती थी। रेणु का महत्त्व उनकी आंचलिकता में नहीं आंचलिकता के अतिक्रमण में निहित है।"

4.6.10. संवाद-योजना

रेणु की कहानियों की संवाद-योजना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके पात्र लगातार संवादों के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। यही कारण है कि रेणु की रचनाओं का नाट्य रूपान्तरण सरलता से किया जा सकता है। वे स्वयं कथावाचक की तरह अपनी कहानियों में उपस्थित नहीं होते। यदि कहीं उनकी उपस्थिति है भी

तो बाकायदा एक पात्र के रूप में। संवादों के माध्यम से ही वे दृश्य परिवर्तन भी करते हैं। 'रसप्रिया' कहानी में भी संवादों की छटा देखते ही बनती है। एक बानगी देखिए –

"मोहना ने मुस्करा कर पूछा, 'तुम्हारी उँगली तो रसपिरिया बजाते टेढ़ी हो गई है, है न ?'

'ऐ !' – बूढ़े मिरदंगिया ने चौंकते हुए कहा, 'रसपिरिया ? ... हाँ ... नहीं। तुमने कैसे ... तुमने कहाँ सुना बे ... ?' "

रस प्रिया के संवाद अत्यन्त चुटीले हैं –

" 'हे-ए-ए-हे-ए ... मोहना, बैल भागे ... !' एक चरवाहा चिल्लाया, 'रे मोहना, पीठ की चमड़ी उधेड़ेगा करमू !' "

*   *   *

" 'मोहना !'

'कोई देख लेगा तो ?'

'तो क्या होगा ?'

'माँ से कह देगा। तुम भीख माँगते हो न ?'

'कौन भीख माँगता है ?' मिरदंगिया के आत्म-सम्मान को इस भोले लड़के ने बेवजह ठेस लगा दी। उसके मन की झाँपी में कुण्डलीकार सोया हुआ साँप फन फैला कर फुफकार उठा, 'ए-स्साला ! मारेंगे वह तमाचा कि ...

'ऐ ! गाली क्यों देते हो !' मोहना ने डरते-डरते प्रतिवाद किया।"

रेणु संवादों में गीत-संगीत का भरपूर इस्तेमाल करते हैं और रसप्रिया तो पूरी तरह सांगीतिक कथा है। कहीं किसान बिरहा चाँचर गा रहे हैं तो कहीं रसप्रिया की धुन है। रह-रह कर रेणु के पात्र अपनी असली ज़िंदगी को संवादों के द्वारा सामने ले आते हैं। 'रसप्रिया' में आरम्भ से लेकर अन्त तक संवाद-योजना देखते ही बनती है। जब रमपतिया मोहन से कहती है – "चौप ! रसपिरिया का नाम मत ले।" तब उसका सारा दर्द सुधी पाठक के समक्ष स्वयं उपस्थित हो जाता है। अन्त में वह मोहना से फिर पूछती है – "मिरदंगिया और कुछ बोलता था, बेटा ?" और मोहना जवाब देता है – "कहता था, तुम्हारे-जैसा गुणवान् बेटा ..." – ये सारे संवाद संवेदना से भरपूर हैं।

4.6.11. पाठ-सार

आंचलिकता की दृष्टि से फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'रसप्रिया' कहानी मील का पत्थर है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने प्रेम के एक नए धरातल का सन्धान किया है। यह कहानी ठुमरी शृंखला की कहानियों में से प्रमुख है, इसीलिए इसमें गीत-संगीत और स्थानीय संस्कृति का विशेष चित्रण हुआ है। एक ओर गँवई परिवेश और दूसरी ओर संस्कृति का क्षरण – दोनों ही इस कहानी में रूपायित होते हैं। रेणु रचनावली की भूमिका में भारत यायावर ने रेणु के बारे में लिखा है – "रेणु के कथाकार ने जो इतने पात्रों से, इतनी जीवन-स्थितियों से परिचित कराया है – दरअसल उसकी पूरी कोशिश आदमी की तलाश के तहत है और इसी में उसके कथाकार होने की सार्थकता है। अपने पात्रों में स्वयं को खोजना अपनी पूर्णता की तलाश है, साथ ही समाज के हर अंग में स्वयं को समाहित करना भी।" पर यहाँ भी देखना यह है कि वह आदमी कौन है जिसमें रेणु अपने आप को तलाश करते हैं या जिसके जीवन के चित्र में अपने जीवन की सार्थकता पाते हैं। रेणु ने स्वयं अपनी कहानियों के सन्दर्भ में लिखा है– "अपनी कहानियों में मैं अपने को ही ढूँढ़ता फिरता हूँ। अपने को अर्थात् आदमी को।" रेणु की तलाश उस आदमी की तलाश है जिसमें आदमीयत पूरी तरह ज़िंदा है। और यह आदमीयत दिखती है सिर्फ और सिर्फ लोकजीवन में ही।

4.6.12. बोध प्रश्न

1. रेणु के कथा-शिल्प का वैशिष्ट्य उद्घाटित कीजिए।
2. "रेणु के यहाँ लोकजीवन अपनी सम्पूर्णता में उपस्थित है।" स्पष्ट कीजिए।
3. "रेणु पूरी तरह आंचलिक कथाकार हैं।" अपने विचार लिखिए।
4. रेणु की प्रमुख कहानियों की चर्चा करते हुए उनका वैशिष्ट्य प्रतिपादित कीजिए।
5. कथा-साहित्य में रेणु का स्थान निर्धारित कीजिए।

4.6.13. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. आत्म-परिचय – फणीश्वरनाथ रेणु
2. स्वातन्त्र्योत्तर कहानी का परिदृश्य और फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ – विद्या सिन्हा
3. फणीश्वरनाथ रेणु का साहित्य – अंजलि तिवारी
4. फणीश्वरनाथ रेणु और उनका कथा-साहित्य – रागिनी वर्मा
5. पक्षधर यथार्थ के कथाकार यशपाल, अमृतपाल नागर, रेणु और अमरकान्त – विष्णुचन्द्र शर्मा
6. फणीश्वरनाथ रेणु – सुरेन्द्र चौधरी
7. रेणु की कहानियों का पुनर्पाठ – विद्याभूषण
8. फणीश्वरनाथ रेणु : सृजन और सन्दर्भ – सं. : अशोक कुमार आलोक

❖❖❖

खण्ड – 4 : कहानी – 1

इकाई – 7 : परिन्दे – निर्मल वर्मा

इकाई की रूपरेखा

4.7.0. उद्देश्य कथन
4.7.1. प्रस्तावना
4.7.2. नयी कहानी आन्दोलन के परिवेश में 'परिन्दे' कहानी और उसका कथ्य
4.7.3. 'परिन्दे' का शिल्प
4.7.4. 'परिन्दे' की पात्र-योजना
4.7.5. 'परिन्दे' की भाषा-योजना
4.7.6. पाठ-सार
4.7.7. बोध प्रश्न
4.7.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

4.7.0. उद्देश्य कथन

इस इकाई का उद्देश्य है –

i. नयी कहानी आन्दोलन में निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' की स्थिति को समझना।
ii. 'परिन्दे' कहानी के कथ्य को जानते हुए कहानी के शिल्प-संरचना को समझना।
iii. 'परिन्दे' कहानी की पात्र-योजना के विन्यास को समझना।
iv. 'परिन्दे' कहानी की भाषा-योजना को समझना।

4.7.1. प्रस्तावना

"कहानी तो एक भूख है जो निरन्तर समाधान पाने की खोज करती रहती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकाएं होती हैं, चिन्ताएँ होती हैं और हम ही उनका उत्तर, उनका समाधान खोजने का, पाने का सतत प्रयास करते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं, उदाहरणों और मिसालों की खोज रहती है। कहानी उसी खोज के प्रयत्न का एक उदाहरण है।" – जैनेन्द्र कुमार

हिन्दी कहानी हिन्दी साहित्य के इतिहास में हमेशा तेजी से परिवर्तित होने वाली विधा रही है। हिन्दी कहानी में एक ही समय एक से ज्यादा पीढ़ी के कहानीकार अपना काम करते रहे हैं। जैनेन्द्र कुमार के उपर्युक्त कथन के सन्दर्भ से और इस सन्दर्भ से इतर भी हम निर्मल वर्मा की कहानी को समझने की कोशिश करेंगे। हिन्दी कहानी के परिवर्तन के दौर में निर्मल वर्मा अपनी कहानी को लेकर साहित्य के पटल पर अवतरित होते हैं। 'परिन्दे' निर्मल वर्मा की प्रसिद्ध कहानी है। 'परिन्दे' नयी कहानी आन्दोलन की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। यह

कहानी सबसे पहले सन् 1957 में 'हंस' के अर्द्धवार्षिकांक संकलन में अमृतराय ने प्रकाशित कीथी। यह कहानी सन् 1960 में 'परिन्दे' नाम के कहानी-संग्रह में प्रकाशित हुई। निर्मल वर्मा सन् 1959 से 1970 तक भारत से बाहर रहे। उन्होंने चेकोस्लोवाकिया सहित यूरोप के कई देशों की यात्राएँ की। विदेशी पृष्ठभूमि को लेकर उन्होंने कई कहानियाँ लिखी हैं। 'जलती झाड़ी' और 'कव्वे और कालापानी' में विदेशी परिवेश की कहानियों को देखा जा सकता है। 'परिन्दे' कहानी के बारे में प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने आकाशवाणी इलाहाबाद और 'कृति' पत्रिका में कहानी की समीक्षा करते हुए काफ़ी प्रशंसा की। आगे चलकर नामवर सिंह ने एक महत्त्वपूर्ण लेख 'नयी कहानी की पहली कृति : परिन्दे' नाम से लिखा। इस लेख की शुरुआत में ही नामवरजी यह स्थापना देते हैं कि – "फ़कत सात कहानियों का संग्रह 'परिन्दे' निर्मल वर्मा की ही पहली कृति नहीं है बल्कि जिसे हम 'नई' कहानी कहना चाहते हैं, उसकी भी पहली कृति है।" नामवरजी के इस वक्तव्य से न केवल हिन्दी कहानी की समझ बल्कि 'परिन्दे' कहानी की समझ को एक नया आयाम मिला। इस नये आयाम पर हिन्दी साहित्य में हिन्दी कहानी और नयी कहानी पर काफ़ी दिनों तक बहस होती रही। नयी कहानी आन्दोलन की बहस में निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' के कथ्य और उसके शिल्प-विन्यास को समझना, उसके पात्रों की बुनावट और उसकी भाषा-शैली को समझना इस इकाई का उद्देश्य है।

4.7.2. नयी कहानी आन्दोलन के परिवेश में 'परिन्दे' कहानी और उसका कथ्य

नयी कहानी आन्दोलन में मोटे तौर पर सन् 1954 से 1963 तक के कालखण्ड को लिया जाता है। हिन्दी साहित्य की दुनिया में प्रथम बार 'नयी कहानी' जैसे पदबंध प्रयोग करने का श्रेय कहीं नामवर सिंह को मिलता है और कहीं दुष्यन्त कुमार को। 'नयी कहानी' जैसे पदबंध को कहे जाने के प्रचलन का सन्दर्भ दरअसल, आजादी के बाद विकसित होते नये मध्यमवर्ग और उसकी बनती, परिवर्तित होती नई आकांक्षाओं से जुड़ता है। यह आकांक्षा बनते हुए भारत के विकास से भी जुड़ता है। अनेक विश्वविद्यालयों की स्थापना के कारण अध्ययन के नये आयाम का विकास, स्त्री शिक्षा का विकास, परिवहन संसाधनों का तेजी से विकास, पंचवर्षीय योजनाओं का ढाँचा आदि अनेक तत्त्व थे जिनसे भारत का मध्यमवर्ग प्रभावित हो रहा था। इस नयेपन ने हिन्दी साहित्य के ढाँचे में भी नयेपन का आगाज किया। हिन्दी कहानी की चर्चा होते-होते उसमें 'नई' जैसे शब्द अनायास जुड़ गए। इसलिए 'नयी कहानी' जैसे पदबंध किसी सोची-समझी योजना या रणनीति का परिणाम नहीं था। हालाँकि, यह सच है कि ज्यों-ज्यों इस पदबंध का प्रयोग होता गया, नई प्रवृत्तियों के वाहक के रूप में यह पदबंध प्रचलित होते हुए हिन्दी साहित्य में एक आन्दोलन के रूप में हमारे सामने आया। नयी कहानी पदबंध के बारे में आलोचक देवीशंकर अवस्थी यह मानते हैं – "दिसंबर सन् 1957 में प्रयाग में होने वाले साहित्यकार सम्मेलन तक नयी कहानी अभिधान लगभग स्वीकृत हो चुका था। शिवप्रसाद सिंह, हरिशंकर परसाई और मोहन राकेश द्वारा पठित आलेखों के पहले वाक्यों में ही 'नयी कहानी' का प्रयोग किया गया है। इसी सम्मेलन में 'नई' को लेकर होने वाले विवाद में ही ग्राम-कथा बनाम नगर-कथा का झगड़ा शुरू हुआ था। सन् 1957 में ही प्रकाशित अपने संग्रहों 'नये बादल' और 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' की भूमिकाओं में क्रमशः मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव 'अपेक्षाकृत ठहरे हुए यथार्थ के बजाय निरन्तर कुलबुलाते हुए यथार्थ' का सवाल उठा चुके थे'। 'निरन्तर कुलबुलाते हुए यथार्थ' ही

नयी कहानी आन्दोलन का केन्द्रीय विषय बना। नयी कहानी यथार्थ और सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को नये सन्दर्भों से देखने की पद्धति के कारण ही स्वयं को पिछली कहानी से अलगाती है।" दरअसल, नयी कहानी के परिवेश में, कहानी के परम्परागत और रूढ़ तत्त्वों का नकार है, कहानी के मूल्यांकन में इन तत्त्वों को वर्जित किया गया। यह कहा गया कि कथाकार व्यक्ति को उसकी समग्रता में, व्यक्ति की सामाजिक बोध के साथ अपनी कहानी में ढालता है और यह नयी कहानी की मूल प्रवृत्ति है। नयी कहानी का समाजशास्त्र नयी कहानी के आन्दोलन के साथ विकसित होता चलता है यानी नयी कहानी का अपना कोई अलग से कोई समाजशास्त्र नहीं है वह कहानी के साथ चलता है। नयी कहानी में हिन्दी कहानी की पहले की परम्परा के प्रति एक निषेध का भाव है। नयी कहानी पर अपने समकालीन सन्दर्भों का दबाव ज्यादा रहा है इसलिए वह अपने को अतीत से हटाकर वर्तमान की प्रवृत्तियों पर केन्द्रित करता है। वर्तमान की प्रवृत्तियों में अपने समय की विसंगतियाँ, रोजगार के लिए किए जाने वाले संघर्ष, हताशा, अपने होने को लेकर उदासीनता दिखलाई देती है। नयी कहानी के दौर में बेरोजगारी की हताशा और मोहभंग को लेकर, पत्नी और प्रेमिका के बीच तनाव को लेकर, कामकाजी महिलाओं की समस्याओं और परिवार में उनकी बढ़ती हैसियत को लेकर, देश की तुलना में विदेश में अधिक सुविधा मिलने की आकांक्षा को लेकर दर्जनों कहानियाँ लिखीं गईं। 'कमजोर लड़की', 'एक खुली हुई साँझ' (राजेन्द्र यादव), 'डिप्टी कलेक्टरी' (अमरकान्त), 'गुलरा के बाबा' (मार्कण्डेय), 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी), 'अपरिचित' (मोहन राकेश), 'कोसी का घटवार', 'परिन्दे' (निर्मल वर्मा) आदि कहानियाँ नयी कहानी आन्दोलन की दिशा और दशा को निर्मित करती हैं।

'परिन्दे' कहानी एक पहाड़ पर बने लड़कियों के एक स्कूल के हॉस्टल के इर्द-गिर्द बुनी गई कहानी है। यह कहानी सर्दियों की छुट्टी होने से एक दिन पहले के घनीभूत वातावरण की कहानी है। इस कहानी में लड़कियों की एक शिक्षिका जिनका नाम लतिका है, जो अकेली रहती है, के मस्तिष्क में अतीत और वर्तमान को लेकर चलने वाले वे घटनाक्रम हैं जिनसे उसका व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। लतिका अपने जीवन को अकेलेपन के भाव से जीती हुई स्त्री है, इस कहानी में उसका अकेलापन पसरा हुआ है। लतिका के अकेलेपन के विन्यास को तोड़ने वाले कुछ और पात्र हैं मसलन, डॉ० मुकर्जी, ह्यूबर्ट, हॉस्टल की लड़कियाँ, करीमुद्दीन, फादर एलमंड, मिसेज वुड, मिस्टर गिरीश नेगी। यह सभी पात्र लतिका के रोजमर्रेपन में साथ होते हैं लेकिन इन सबकी उपस्थिति लतिका के अकेलपन को खत्म नहीं करती बल्कि इस कहानी के विन्यास में कई बार लतिका के अकेलेपन के भाव को और भी अधिक गाढ़ा और सघन कर देती हैं। परिन्दे कहानी में डॉ० मुकर्जी प्राइवेट प्रैक्टिस करने वाले एक डॉक्टर हैं और इसके अलावा खाली समय में एक कान्वेंट स्कूल में पढ़ाने का काम करते हैं। ह्यूबर्ट के मन में लतिका के प्रति एक राग का भाव है, वह लतिका को एक प्रेम पत्र लिखता है। लतिका ह्यूबर्ट से प्रेम नहीं करती है लेकिन वह उसके प्रेम पत्र के लिए ह्यूबर्ट को कुछ नहीं कहती है बल्कि वह अपने होने को लेकर इस बात से आश्वस्त करती है कि लतिका अभी भी प्रसंगिक बनी हुई है और कोई उससे प्रेम कर सकता है। करीमुद्दीन हॉस्टल का नौकर है और लतिका की देख-रेख करता है। फादर एलमंड और मिसेज वुड हॉस्टल के पास बने आवास में रहते हैं। फादर चर्च के पादरी हैं और नैतिक उपदेश देते रहने वाले एक पुरातन व्यक्ति की भूमिका में हैं। मिस्टर गिरीश नेगी से लतिका प्रेम करती है। इस कहानी के शिल्प में सभी पात्र अपने अकेलेपन के शिकार हैं। मसलन, परिन्दे कहानी में जब

यह बात लतिका से पूछी जाती है – "मिस लतिका, आप छुट्टियों में कहीं क्यों नहीं जाती ? सर्दियों में तो यहाँ सब कुछ वीरान हो जाता होगा ।" (एक दुनिया समानान्तर, सं. : राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 181) तब लतिका के लिए यह सामान्य रूप से पूछा जाने वाला प्रश्न नहीं है बल्कि यह प्रश्न लतिका के लिए कहीं दूर से आती हुई एक ध्वनि है जिसमें उसका अकेलापन नितान्त वैयक्तिक होकर उभरता है । सर्दियों के दिनों में बर्फीले स्थान की वीरानी दरअसल, लतिका के अपने जीवन की वीरानी है जिसे वह हॉस्टल की लड़कियों के साथ बाँटना चाहती है लेकिन न बाँट पाने की भी अपनी मज़बूरी है । वह अपने भीतर की वीरानी को मिस्टर ह्यूबर्ट से बात करते हुए कहती है – "हर साल ऐसा ही होता है, मिस्टर ह्यूबर्ट । फिर कुछ दिनों बाद विंटर स्पोर्ट्स के लिए अंग्रेज टूरिस्ट आते हैं, हर साल मैं उनसे परिचित होती हूँ, वापिस लौटते हुए वे हमेशा वायदा करते हैं कि वे अगले साल भी आयेंगे । मैं जानती हूँ कि वे नहीं आयेंगे, वे भी जानते हैं कि वे नहीं आयेंगे, फिर भी हमारी दोस्ती में कोई अन्तर नहीं पड़ता । फिर ... फिर कुछ दिनों बाद पहाड़ों पर बर्फ पिघलने लगती है, छुट्टियाँ खत्म होने लगती है, आप सब लोग अपने अपने घरों से वापिस लौट आते हैं ।" (पृष्ठ 181) लतिका के लिए पहाड़ों पर बर्फ का पिघलना एक उम्मीद की तरह है । लतिका इस कहानी में इसी अकेलेपन और उम्मीद के बीच की एक स्त्री पात्र है । इस कहानी में एक महत्त्वपूर्ण पात्र डॉक्टर है जिसका यह कथन – "ह्यूबर्ट, क्या तुमने कभी महसूस किया है कि एक अजनबी की हैसियत से परायी जमीन पर मर जाना काफ़ी खौफनाक बात है ।" (पृष्ठ 170) कहानी के पूरे समय और उस समय की सघनता को हमारे सामने ला खड़ा कर देता है । विश्व युद्धों में इस प्रकार की मृत्यु काफी खौफनाक रही है । एक पूरी-की-पूरी साहित्यिक पीढ़ी इस प्रकार की मृत्यु से प्रभावित रही है ।

4.7.3. 'परिन्दे' का शिल्प

'परिन्दे' कहानी अपने प्रकाशन वर्ष से ही काफ़ी चर्चित रही । इसकी बड़ी वजह थी, इस कहानी की कथन शैली । नामवरजी ने लिखा, 'व्यक्ति चरित्र वही है, जीवन स्थितियाँ भी रोज की जानी-पहचानी ही हैं, लेकिन निर्मल वर्मा के हाथों वहीं स्थितियाँ इतिहास की विराट् नियति बनकर खड़ी हो जाती हैं और उनके सम्मुख खड़ा व्यक्ति सहसा अपने को असाधारण रूप से अकेला पाता है ।" कहानी के शिल्प के स्तर पर निर्मल वर्मा का यह प्रयोग, हिन्दी साहित्य में शिल्प-निर्माण की एक व्यापक पहल थी । इस कहानी में जो अकेलापन है वह वाकई असाधारण है । जब इस कहानी में लतिका पहाड़ के पीछे से आते हुए पंछियों के झुण्ड को देखती है तो वह सोचती है, क्या वे सब प्रतीक्षा कर रहे हैं ? लेकिन कहाँ के लिए, हम कहाँ जाएँगे ? लतिका का यह प्रश्न 'परिन्दे' कहानी की केन्द्रीय बिन्दु है । यह केन्द्रीय बिन्दु भारतीय वाङ्मय में पहली बार नहीं आया है इससे पहले भी भक्ति साहित्य के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास लिख चुके थे, 'कहाँ जाई का करी' । यह 'कहाँ जाने' का प्रश्नवाचक बोध जो मनुष्य में है, वह कहीं-न-कहीं अकेलेपन से उभरता है । हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मुक्तिबोध ने भी अपनी कविता में इस प्रश्न को दर्ज किया है, 'कहाँ जाऊँ, दिल्ली या उज्जैन' । 'कहाँ जाने' का यह प्रश्न दरअसल किसी लेखक या उस लेखक की रचना के किसी पात्र या प्रसंग तक केन्द्रित नहीं रह जाता बल्कि यह मनुष्य और मनुष्य के उस समाज के लिए एक व्यापक प्रश्न बन जाता है, जिसकी गूँज कई शताब्दी तक हमारे बीच होती है । फौरी तौर पर, इस कहानी के सन्दर्भ में इतना भर कह दिया जाता है कि दो विश्वयुद्धों के प्रभाव से उपजे मनुष्य के नियति बोध से

उपजा हुआ बोध है। इस नियति में 'अकेलापन' सबसे प्रमुख है। इस अकेलपन के कारण इस कहानी के अधिकांश पात्र हताश और निराश दिखलाई देते हैं। कहानी के शिल्प में सर्दी की छुट्टियाँ होने का एक प्रसंग है। इन छुट्टियों में हॉस्टल की लड़कियाँ घर जाने वाली हैं। छुट्टी होने से पहले की रात में सभी लड़कियाँ एक कमरे में इकट्ठे होकर हँसी-ठिठोली कर रही हैं। लतिका जो हॉस्टल की वार्डन है। कमरे में शोर सुनकर रुकती है। कमरे में जाती है, लड़कियाँ कहती हैं – "मैडम, कल से छुट्टियाँ शुरू हो जायेंगी इसलिए आज रात हम सबने मिलकर ...।" लतिका को लगता है कि वह कमरे में आकर इन लड़कियों का मजा खराब कर रही है। लतिका वहाँ अकेलेपन का प्रभाव छोड़ना नहीं चाहती, वह नहीं चाहती कि इन लड़कियों की उन्मुक्त हँसी में वह बाधा बने, लतिका वहाँ से चली जाती है। लतिका सर्दियों की छुट्टियों में कहीं नहीं जाती है, हॉस्टल के वार्डन आवास में अकेली रह जाती है। लतिका के जीवन के लिए यह सबसे कठिन प्रश्न है, जब कोई उससे पूछता है – "मिस लतिका, आप इस साल छुट्टियों में यहीं रहेंगी ?" डॉक्टर मुकर्जी द्वारा पूछा गया यह प्रश्न लतिका को भीतर तक झकझोर देता है। " ... लतिका को लगा, जैसे कहीं बहुत दूर बरफ की चोटियों से परिन्दों के झुण्ड नीचे अनजान देशों की ओर उड़े जा रहे हैं।" इन दिनों अक्सर उसने अपने कमरे की खिड़की से उन्हें देखा है। ... धागे में बँधे चमकीले लट्टुओं की तरह वे एक लम्बी टेढ़ी-मेढ़ी कतार में उड़े जाते हैं। ... पहाड़ों की सुनसान नीरवता से परे, उन विचित्र शहरों की ओर, जहाँ शायद वह कभी जाएगी।" (पृष्ठ 169) लतिका के जीवन में पहाड़ एक विषाद की तरह नहीं आता बल्कि वे परिन्दे आते हैं जो लतिका के जीवन की एकरसता, उसके अकेलेपन और सर्दियों में वीरानी पसर जाने को और ज्यादा सघन कर जाते हैं। लतिका के जीवन में पहाड़ एक प्रतीक के तौर पर है, एक ही जगह पर खड़ा और ठहरा हुआ जीवन। परिन्दे हर साल सर्दियों में पहाड़ को सुनसान करते हुए नीचे अनजान प्रदेश की ओर उड़े चले जाते हैं। लतिका कहीं नहीं जाती है लेकिन लतिका के मन में यह बात है "जहाँ शायद वह कभी जायेगी।" परिन्दे कहानी का पाठक जानता है कि लतिका कहीं नहीं जाती। वह सर्दियों में सुनसान पहाड़ों में अकेली रह जाती है। पहाड़ की तरह अकेली और ठहरी हुई।

'परिन्दे' कहानी में लतिका के मन में एक दबा हुआ राग का भाव है, वह भाव कहानी में कभी भी ठीक से अभिव्यक्त नहीं होता है। "ह्यूबर्ट ही क्यों, वह क्या किसी को भी चाह सकेगी, उसी अनुभूति के संग, जो अब नहीं रही, जो छाया-सी उस पर मँडराती रहती है, न स्वयं मिटती है, न उसे मुक्ति दे पाती है। उसे लगा, जैसे बादलों का झुरमुट फिर उसके मस्तिष्क पर धीरे-धीरे छाने लगा है, उसकी टाँगें फिर निर्जीव शिथिल-सी हो गई है।" (पृष्ठ 169) लतिका के जीवन की एकरसता इस प्रकार इस कहानी से बद्धमूल है। लतिका के व्यक्तित्व पर उसके अपने जीवन के अतीत की स्मृति की एक कोई छाया है जो उसके वर्तमान जीवन को प्रभावित करती रहती है। वह अब किसी को नहीं चाह सकेगी, जैसा उसने अपने जीवन को आरम्भ करते किसी को चाहा था। इस कहानी में शिल्प की खूबसूरती इस वाक्य में लक्षित की जा सकती है – "उसे लगा, जैसे बादलों का झुरमुट फिर उसके मस्तिष्क पर धीरे-धीरे छाने लगा है।" निर्मल वर्मा, अपनी कहानी में 'बादलों का झुरमुट' को स्मृति पर छा जाने की प्रक्रिया के तौर पर इस्तेमाल किया है जो अपने आप में शिल्प के स्तर पर एक नवीन प्रयोग है।

निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' के शिल्प की कुछ और विशेषताओं की तरफ हम आपका ध्यान, कहानी के उदाहरणों के साथ दिलाना चाहते हैं। निर्मल वर्मा की कहानी के विन्यास में कथा के प्रवाह के साथ उसके आस-पास की प्रकृति भी घुलती हुई आती है। कथा के साथ प्रकृति का घुल-मिल कर आना कहानी में एक कोमल लय और धीमी ध्वनि का निर्माण करती है – "फीकी-सी चाँदनी में चीड़ के पेड़ों की छायाएँ लॉन पर गिर रही थीं। कभी-कभी कोई जुगनू अँधेरे में हरा प्रकाश छिड़कता हुआ हवा से गायब हो जाता था।" (पृष्ठ 170) के साथ कहानी के इस सन्दर्भ को मिलकर देखें "... मेघाच्छन्न आकाश में सरकते हुए बादलों के पीछे पहाड़ियों के झुण्ड कभी उभर आते थे, कभी छिप जाते थे, मानों चलती ट्रेन से कोई उन्हें देख रहा हो।" (पृष्ठ 173) निर्मल वर्मा की कहानी की यह विशेषता रही है कि वे अपनी कहानी में पात्रों के साथ परिवेश का सूक्ष्म अवलोकन करते हुए, दर्ज करते हुए चलते हैं। परिवेश का सूक्ष्म अवलोकन नयी कहानी आन्दोलन से पूर्व के दौर में नहीं था बल्कि नयी कहानी आन्दोलन से पूर्व प्रगतिशील दौर में कहानी का विन्यास मोटे तौर पर परिस्थितियों की पड़ताल और उन परिस्थितियों में व्यक्ति के संघर्ष को दर्शाया जाता रहा है। व्यक्ति की चेतना वैयक्तिक न होकर सामाजिक हुआ करती थी। यथार्थ के प्रति आग्रहशीलता प्रभावी ढंग से हुआ करती थी। ऐसा नहीं कि नयी कहानी आन्दोलन में यह सब त्याज्य था बल्कि यह और भी प्रखरता से नये सन्दर्भों के साथ आ रहा था लेकिन निर्मल वर्मा की कहानी में यह यथार्थ परिवेश के सूक्ष्म अवलोकन और उसके चित्रण के साथ आया है। परिन्दे कहानी के इस अंश को देखिये जिसमें परिवेश या प्रकृति किस तरह से पात्रों के साथ हमारे सामने आती है – "हवा तेज हो चली थी, चीड़ के पत्ते हर झोंके के संग टूट-टूटकर पगडंडी पर ढेर लगाते जाते थे। ह्यूबर्ट रास्ता बनाने के लिए अपनी छड़ी से उन्हें बुहारकर दोनों ओर बिखेर देता था। लतिका पीछे खड़ी हुई देखती रहती थी, अल्मोड़ा की ओर से आते हुए छोटे-छोटे बादल रेशमी रुमालों से उड़ते हुए सूरज के मुँह पर लिपटे से जाते थे, फिर हवा में आगे बह निकले थे। इस खेल में धूप कभी फीकी-सी पड़ जाती थी कभी अपना उजला आँचल खोलकर समूचे पहाड़ी शहर को अपने में समेट लेती थी।" (पृष्ठ 179) निर्मल वर्मा की कहानी के शिल्प में "छोटे-छोटे बादल रेशमी रुमालों से उड़ते हुए सूरज के मुँह पर लिपटे से जाते थे" जैसे वाक्य एक काव्यात्मक लय का आनन्द देते हैं। निर्मल वर्मा की कहानी में काव्यात्मक सौन्दर्य का एक और उदाहरण है कि जिसमें कोई सपना पलकों पर सरकता है – "ह्यूबर्ट को लगा, जैसे लतिका की आँखें अधमुँदी-सी खुली रह गई हैं, मानों पलकों पर एक पुराना, भूला-सा सपना सरक आया हो।" (पृष्ठ 180)

परिन्दे कहानी की प्रमुख पात्र लतिका के जीवन की एकरसता, एकाकीपन निरे अभिधात्मक रूप में नहीं आया है बल्कि वह अपने आस-पास के परिवेश के साथ आया है। लतिका का पूरा-का-पूरा परिवेश उसके अकेलेपन को और अधिक सघन और अधिक गाढ़ा कर जाता है। "परिन्दे कहानी के भीतर ... जंगल की ख़ामोशी शायद कभी चुप नहीं रहती। गहरी नींद में डूबी सपनों-सी कुछ आवाजें नीरवता के हलके झीने परदे पर सलवटें बिछा जाती हैं, मूक लहरों-सी तिरती हैं, मानों कोई दबे पाँव झाँककर अदृश्य संकेत कर जाता है, देखो, मैं यहाँ हूँ।" (पृष्ठ 184) और लतिका उसे अकेली देखती रहती है।

4.7.4. परिन्दे की पात्र-योजना

परिन्दे कहानी का कथा-विन्यास कुछ सीमित पात्रों से निर्मित होता है। इस कहानी में जो भी पात्र आए हैं, उनकी उपस्थिति कहानी की सान्द्रता को बढ़ा देती है।

लतिका इस कहानी की मुख्य पात्र है। कहानी में लतिका की निर्मिति को अगर समझने की कोशिश करें तो हमें कहानी के भीतर उसके 'होने' को देखना होगा। लतिका "बचपन में जब भी वह अपने किसी खिलौने को खो दिया करती थी तो वह गुमसुम-सी होकर सोचा करती थी, कहाँ रख दिया मैंने ? जब बहुत दौड़-धूप करने पर खिलौना मिल जाता तो वह बहाना करती कि अभी उसे खोज रही है कि वह अभी मिला नहीं है। जिस स्थान पर खिलौना रखा होता, जान-बूझकर उसे छोड़कर घर के दूसरे कोनों में उसे खोजने का उपक्रम करती। तब खोयी हुई चीज याद रहती, इसलिए भूलने का भय नहीं रहता था।" (पृष्ठ 186) लतिका के मनोविज्ञान में खोई हुई चीजों को पा लेने और उन पाई हुई चीजों को एक आश्वस्ति के साथ छोड़ कर उसे दुबारा ढूँढ़ने के अभिनय से निर्मित हुई है। ज़ाहिर है, चीजों को पा लेने की उत्कण्ठा और पा लेने के बाद उसके प्रति विश्वस्त होकर एक उपेक्षा का भाव, एक मजबूत होते व्यक्तित्व की निशानी है। लतिका के सम्पूर्ण चरित्र में हमें यह खूबी दिखलाई देती है।

परिन्दे कहानी में अपनी उपस्थिति को दर्शाने वाला एक पात्र करीमुद्दीन है। करीमुद्दीन लड़कियों के हॉस्टल में नौकर है और वह लतिका की सेवा भी करता है। करीमुद्दीन मिलिट्री में अर्दली रह चुका है इसलिए उसकी हर हरकत में सेना में होने का अंदाज दिखलाई देता है। वह लतिका के सामने चाय की ट्रे मेज पर रखकर 'अटेंशन' की मुद्रा में खड़ा हो जाता है। लतिका झटके से उठ कर बैठ जाती है। लतिका और करीमुद्दीन के सन्दर्भ से कहानी के भीतर इस संवाद को देखें तो दोनों के बीच के सहज सम्बन्ध का हमें अनुमान लग जाएगा, "सुबह से आलस करके कितनी बार जागकर वह सो चुकी है। अपनी खिसियाहट मिटाने के लिए लतिका ने कहा – "बड़ी सर्दी है आज, बिस्तर छोड़ने को जी नहीं चाहता।" ... "अजी मेम साहब, अभी क्या सरदी आयी है – बड़े दिनों में देखना कैसे दाँत कटकटाते हैं" – और करीमुद्दीन अपने हाथों को बगलों में डाले हुए इस तरह सिकुड़ गया जैसे उन दिनों की कल्पना मात्र से उसे जाड़ा लगना शुरू हो गया हो। गंजे सिर पर दोनों तरफ के उसके बाल खिजाब लगाने से कत्थई रंग के भूरे हो गये थे।" इस पूरे संवाद में करीमुद्दीन एक ऐसे व्यक्ति के रूप में हमारे सामने उभरता है जिसके लिए काम सिर्फ काम के रूप में नहीं बल्कि काम उसके जीवन-पद्धति के रूप में होता है। लतिका के लिए वह अपना काम अपनी दिनचर्या की तरह पूरे उत्साह से निपटाता है।

इस कहानी का एक और पात्र गिरीश नेगी है। गिरीश नेगी का लतिका के जीवन में बहुत महत्त्व है। लतिका अपने जीवन की शुरुआत में गिरीश नेगी से प्यार करती है। कहानी के शिल्प में इस प्यार का कोई विवरण नहीं है। पाठक को इस प्यार की जानकारी लतिका द्वारा अपनी स्मृतियों को याद करने से मिलता है। लतिका अपने एकाकी जीवन में अपने अतीत की स्मृतियों में जाती है। वह स्मृतियों में देखती है – "वह मुड़ी और इससे पहले कि वह कुछ कह पाती, गिरीश ने अपना मिलिटरी का हैट धप से उसके सिर पर रख दिया। वह मन्त्रमुग्ध-सी वैसी ही खड़ी रही। उसके सिर पर गिरीश का हैट है – माथे पर छोटी-सी बिन्दी है। बिन्दी पर उड़ते हुए बाल हैं।

गिरीश ने उस बिन्दी को अपने होंठों से छुआ है, उसने उसके नंगे सिर को अपने दोनों हाथों में समेट लिया है – "लतिका, ... गिरीश ने चिढ़ाते हुए कहा – "मैन ईटर आफ कुमाऊँ (उसका यह नाम गिरीश ने उसे चिढ़ाने के लिए रखा था) । ... वह हँसने लगी ।" लतिका ... सुनो !" ... गिरीश का स्वर कैसा हो गया था ! ... "ना, मैं कुछ भी नहीं सुन रही ।" ... "लतिका ... मैं कुछ महीनों में वापिस लौट आऊँगा" ... "ना ... मैं कुछ भी नहीं सुन रही" ... किन्तु वह सुन रही है– वह नहीं जो गिरीश कह रहा है, किन्तु वह जो नहीं कहा जा रहा है, जो उसके बाद कभी नहीं कहा गया ।" लतिका के जीवन में गिरीश नेगी की उपस्थिति एक रागात्मक उपस्थिति है। यह उपस्थिति कहानी के शिल्प में सीधे तौर पर नहीं बल्कि अतीत की स्मृति के सन्दर्भ से आता है।

परिन्दे कहानी में डॉक्टर मुकर्जी एक भिन्न किस्म का पात्र है। डॉक्टर मुकर्जी का परिचय हमें कहानी में मिलता है कि वे "आधे बर्मी थे जिसके चिह्न उनकी थोड़ी दबी हुई नाक और छोटी-छोटी चंचल आँखों से स्पष्ट थे। बर्मा पर जापानियों का आक्रमण होने के बाद वह इस छोटे से पहाड़ी शहर में आ बसे थे। प्राइवेट प्रैक्टिस के अलावा वे खाली समय में कान्वेंट स्कूल में पढ़ाते भी थे ।" डॉक्टर मुकर्जी इस कहानी के स्वाद को एक भिन्न धरातल पर ले जाते हैं, जहाँ विस्थापन का एक ऐसा दर्द है जिसे व्यक्ति तमाम सुखद परिस्थितियों के बाद भी भूल नहीं पाता है। समय के अन्तराल में यह दर्द भले ही कम होता जाता है लेकिन व्यक्ति की चेतना में यह दर्द मौजूद होता है। डॉक्टर मुकर्जी में यह दर्द है। यह दर्द हम उनके इस कथन में देख सकते हैं – "ह्यूबर्ट, क्या तुमने कभी महसूस किया है कि एक अजनबी की हैसियत से परायी जमीन पर मर जाना काफ़ी खौफनाक बात है ।" (पृष्ठ 170) कहना होगा कि डॉक्टर मुकर्जी में यह अजनबीयत का बोध बराबर बना हुआ है । इस कहानी में डॉक्टर मुकर्जी, लतिका और ह्यूबर्ट के साथ रहते हुए एक दार्शनिक और सलाहकार की भूमिका में होते हैं। लतिका जिस स्मृति से चिपकी हुई है और उससे मुक्त होने का कोई सायास प्रयास नहीं करती है। डॉक्टर मुकर्जी लतिका से लगातार बहस करते हुए उसे स्मृति से बाहर लाकर वर्तमान में जीने को प्रेरित करते रहते हैं। डॉक्टर मुकर्जी, लतिका से कहते हैं – "कभी-कभी मैं सोचता हूँ मिस लतिका, किसी चीज को न जानना यदि गलत है, तो जान-बूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह चिपके रहना, यह भी गलत है ।" (पृष्ठ 191) इस बात पर लतिका की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। एक संवाद में ह्यूबर्ट, डॉक्टर मुकर्जी से पूछता है – "डॉक्टर, सब कुछ होने के बावजूद वह क्या कुछ है, जो चलाए है, हम रुकते हैं तो भी अपने भाव में वह हमें घसीट लिए जाता है ?" (पृष्ठ 191) ज़ाहिर है, ह्यूबर्ट अपने अकेलेपन को जीते हुए अपने उस तत्त्व की पड़ताल करना चाहता है जिसके कारण मनुष्य अकेलेपन में जीने के लिए विवश हो जाता है और उस अकेलेपन में अतीत की उपस्थिति कभी हौसला देती है तो कभी पीड़ा भी। ह्यूबर्ट, इस कहानी में अपने अकेलेपन को बाँटने के लिए लतिका को चुनता है और एक प्रेम-पत्र लिखता है और बाद में ग्लानिबोध का शिकार भी होता है। ह्यूबर्ट लतिका को लिखे प्रेम-पत्र और उसके प्रति रागात्मक भाव के बारे में कुछ संकेतों के साथ डॉक्टर मुकर्जी से बात करता है– 'डॉक्टर, आपको मालूम है, मिस लतिका का व्यवहार पिछले कुछ अर्से से अजीब-सा लगता है ।" ... "ह्यूबर्ट के स्वर में लापरवाही का भाव था। वह नहीं चाहता था कि डॉक्टर को लतिका के प्रति उसकी भावनाओं का आभास-मात्र भी मिल सके। जिस कोमल अनुभूति को वह इतने समय से सँजोता आया है, डॉक्टर उसे हँसी के एक ठहाके में उपहासास्पद बना देगा ।" ह्यूबर्ट इस कहानी में हमेशा इस चिन्ता में दिखलाई देता है। एक बार डॉक्टर मुकर्जी जब यह पूछ लेते हैं –

"क्या तुम नियति में विश्वास करते हो, ह्यूबर्ट ?" तब ह्यूबर्ट थोड़ा घबरा जाता है । "ह्यूबर्ट दम रोके प्रतीक्षा करता रहा । वह जानता था कि कोई भी बात कहने से पहले डॉक्टर को फिलासोफाइज करने की आदत थी ।" डॉक्टर टैरेस के जंगले से सटकर खड़ा हो गया । फीकी-सी चाँदनी में चीड़ के पेड़ों की छायाएँ लॉन पर गिर रही थी। कभी-कभी कोई जुगनू अँधेरे में हरा प्रकाश छिड़कता हवा में गायब हो जाता था ।

परिन्दे कहानी में एक गौण पात्र फादर एलमंड हैं । फादर एलमंड एक पुरातनपंथी और दकियानूसी पादरी हैं। एलमंड का विचार धर्म के समानान्तर चलता है। कहानी के भीतर एलमंड लतिका के बारे में कहता है – "मिस वुड, पता नहीं आप क्या सोचती हैं। मुझे तो मिस लतिका का हॉस्टल में अकेले रहना कुछ समझ में नहीं आता।" दरअसल, फादर के लिए किसी स्त्री का अकेले रहना नागवार लगता है, पितृसत्तात्मक व्यवस्था के भीतर स्त्री का अकेले रहना कई सन्देहों को जन्म देता है । कहानी के भीतर एक स्त्री पात्र मिस वुड जब कहती है – "लेकिन फादर", मिस वुड ने कहा, "यह तो कान्वेंट स्कूल का नियम है कि कोई भी टीचर छुट्टियों में अपने खर्चे पर हॉस्टल में रह सकता हैं।" यह तर्क फादर को समझ में नहीं आता है, वह मिस वुड को टोकता है – "मैं फिलहाल स्कूल के नियमों की बात नहीं कर रहा। मिस लतिका डॉक्टर के संग यहाँ अकेली ही रह जायेंगी और सच पूछिए मिस वुड, डॉक्टर के बारे में मेरी राय कुछ बहुत अच्छी नहीं है।" फादर के मस्तिष्क में पुरातनपंथी विचार उत्पन्न होता है, एक स्त्री का किसी पुरुष के साथ रहना फादर के मन में कई सन्देहों को उत्पन्न करता है। मिस वुड फिर तर्क करती है – "फादर, आप कैसी बात कर रहे हैं ? मिस लतिका बच्चा थोड़े ही है।" मिस वुड को ऐसी आशा नहीं थी कि फादर एलमंड अपने दिल में ऐसी दकियानूसी भावना को स्थान देंगे । यह पूरा का पूरा संवाद दरअसल कहानी के शिल्प में धर्म को मानने वाले पात्र फादर और उसी धर्म को मानने वाली स्त्री पात्र मिस वुड द्वारा व्यक्त किए गए एक स्त्री लतिका के बारे में भिन्न दृष्टिकोण से निर्मित विचार को हमारे सामने लाता है।

4.7.5. 'परिन्दे' की भाषा-योजना

'परिन्दे' कहानी की भाषा-योजना काव्यात्मक है । कहानी अपने आरम्भ से ही एक खास किस्म की शान्त लय का निर्माण करती है । भाषा की काव्यात्मक लय पाठक को कहानी से अलग होने नहीं देती है । यह उल्लेखनीय है कि नामवर सिंह द्वारा 'परिन्दे' को नयी कहानी की पहली कृति मानने का एक बड़ा कारण यह रहा है कि यह कहानी नयी कहानी की विशिष्टता और उसकी नवीन भाषा संरचना को एक स्तर तक सम्पूर्णता में दिखा पाने में समर्थ है। 'परिन्दे' कहानी के नयेपन पर उनकी एक सारगर्भित टिप्पणी है – "पढ़ने पर सहसा विश्वास नहीं होता कि ये कहानियाँ उसी भाषा की हैं, जिसमें अभी तक शहर, गाँव, कस्बा और तिकोने प्रेम को ही लेकर कहानीकार जूझ रहे हैं। 'परिन्दे' से शिकायत दूर हो जाती है कि हिन्दी कथा-साहित्य अभी पुराने सामाजिक संघर्ष के स्थूल धरातल पर ही 'मार्कटाइम' कर रहा है। समकालीनों में निर्मल पहले कहानीकार हैं, जिन्होंने इस दायरे को तोड़ा है – बल्कि छोड़ा है, और आज के मनुष्य की गहन आन्तरिक समस्या को उठाया है।" (कहानी : नयी कहानी, नामवर सिंह, पृष्ठ 52) ज़ाहिर है, नामवरजी इस कहानी की अन्तर्वस्तु और भाषा के टटकेपन को लक्षित कर रहे होते हैं और इस कहानी को नयी कहानी का प्रस्थान बिन्दु बताते हैं। निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' कहानी अपने भाषाई प्रभाव में संगीत का प्रभाव उत्पन्न करती है। इस कहानी में संगीत के सन्दर्भ को देखें जिसे नामवर सिंह भी

अपनी उपर्युक्त सन्दर्भित किताब में भी उद्धृत करते हैं कि – "परिन्दे की नायिका लतिका को चैपल में संगीत सुनकर ऐसा लगा कि जैसे मोमबत्तियों के धूमिल आलोक में कुछ भी ठोस, वास्तविक न रहा हो – चैपल की छत, दीवारें, डेस्क पर रखा हुआ डॉक्टर का सुघड़-सुडौल हाथ और पियानो के सुर अतीत की धुँध को भेदते हुए स्वयं उस धुँध का भाग बनते जा रहे हों ।" निर्मल वर्मा की कहानी की ध्वन्यात्मकता उनकी नवीन भाषा-योजना में निहित है।

4.7.6. पाठ-सार

निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' अतीत की स्मृति से निर्मित कहानी है। लतिका नाम की स्त्री इस स्मृति से घिरी हुई एक मुख्य पात्र है। इस कहानी में एक ठोस स्मृति लेकर डॉक्टर मुकर्जी भी मौजूद हैं। हर वर्ष सर्दियों की स्मृति लेकर करीमुद्दीन है। 'परिन्दे' कहानी के विन्यास में एक अनकही, अनजानी-सी प्रतीक्षा है। लतिका के जीवन में यह अनकही प्रतीक्षा लम्बे समय से है लेकिन वह किसकी प्रतीक्षा कर रही है ठीक-ठीक उसे भी नहीं पता है। 'परिन्दे' कहानी एक स्त्री के अकेलेपन की कहानी है, परिन्दे की उड़ान लतिका के जीवन में नहीं है। परिन्दे हर सर्दियों में जब पहाड़ पर बर्फ जमने लगता है, मैदानी भाग में नीचे उतर आते हैं। लतिका कहीं नहीं जाती। वह वहीं पहाड़ पर पहाड़ जैसी स्थिर है। चरित्र-सृष्टि, शिल्प की नवीनता, भाषा की नवीनता के आधार पर 'परिन्दे' कहानी निर्मल वर्मा की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है और नयी कहानी की प्रवृत्तियों को धारण करने वाली है।

4.7.7. बोध प्रश्न

1. 'परिन्दे' कहानी का मूल कथ्य क्या है? कथ्य के आधार पर यह अपने समय की अन्य कहानियों से कैसे भिन्न है?
2. नयी कहानी आन्दोलन में 'परिन्दे' कहानी की स्थिति को स्पष्ट कीजिए?
3. "निर्मल वर्मा अपनी कहानियों में एक नये किस्म की भाषा संरचना का निर्माण करते हैं।" उदाहरणों से समझाइए।
4. " 'परिन्दे' कहानी एक स्त्री के अकेलेपन की कहानी है।" स्पष्ट कीजिए।
5. "निर्मल वर्मा की कहानियों के शिल्प के निर्माण में कहानी में उपस्थिति अतीत की स्मृति एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।" कथन की समीक्षा कीजिए।

4.7.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. सिंह, नामवर (1982), कहानी : नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन
2. अवस्थी, देवीशंकर (1973), नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन
3. यादव, राजेन्द्र (1968), कहानी : स्वरूप और संवेदना, वाणी प्रकाशन
4. केंगरानी, वन्दना (2007), निर्मल वर्मा के स्त्री विमर्श, वाणी प्रकाशन
5. मधुरेश (1996), हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन

खण्ड – 5 : कहानी – 2

इकाई – 1 : दोपहर का भोजन – अमरकान्त

इकाई की रूपरेखा

5.1.00 उद्देश्य कथन
5.1.01 प्रस्तावना
5.1.02 विषय विस्तार – आधुनिक हिन्दी कहानी : कथा-यात्रा के नये सन्दर्भ
5.1.03 नयी कहानी : यथार्थबोध के विविध आयाम
5.1.04 आलोच्य कहानी का यथार्थबोध
5.1.05 दोपहर का भोजन : यथार्थ की भूमि पर संवेदना का विस्तार
5.1.06 शीर्षक की सार्थकता
5.1.07 अमरकान्त की स्त्री विषयक दृष्टि
5.1.08 पाठ-सार
5.1.09 बोध प्रश्न
5.1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

5.1.00 उद्देश्य कथन

'दोपहर का भोजन' अमरकान्त की महत्त्वपूर्ण कहानियों में से एक है। इस कहानी का मुख्य उद्देश्य जीवन यथार्थ के बाहरी भीतरी स्तरों को कथा में नियोजित कर उन्हें पारिवारिक मूल्य के एक आदर्श बिन्दु तक पहुँचाने का है। माँ और पत्नी के रूप में एक स्त्री का जीवन प्रेम और समर्पण का पर्याय होता है। यह प्रेम और निष्ठा समय के क्रूर प्रहारों से कभी चूर नहीं होता बल्कि अभावों में उसकी निष्ठा और प्रौढ़ होती है। यह कहानी अपनी आदर्शवादी यथार्थ प्रकृति के माध्यम से पारिवारिक रिश्तों के बीच एक पुल बनाती है। इस कहानी में भारतीय परिवार के निम्न मध्यमवर्गीय जीवन की एक पूरी झाँकी जीवन्त स्थितियों के साथ एक पहर में बँधकर रूपायित होती है। दोपहर का भोजन एक निम्न मध्यमवर्ग के लिए कितनी अहमियत रखता है और गृहलक्ष्मी अन्नपूर्णा बनकर किस तरह कमतर भोजन को भी अपने प्रेम और स्नेह से परिपूर्ण कर सबकी थाली में परोसती है और अन्त में आधा पेट खाकर तृप्ति का सुख पाती है – कहानी का मूल उद्देश्य स्त्री चेतना की इस शक्ति को ही दर्शाना है। कहानी यहाँ आदर्श के एक बिन्दु से परिचालित होकर यथार्थ के एक व्यापक विस्तार में फैलती जाती है। लेखक ने पारिवारिक स्थिति और स्त्री की नियति को उसके पारस्परिक एवं जटिल आन्तरिक तनाव के बीच गहन संलिष्ट रूप में देखा और परखा है। अभावपूर्ण पारिवारिक परिवेश में एक स्त्री के पत्नीत्व और मातृत्व के उदात्त रूप की पहचान कराना इस कहानी का मूल उद्देश्य है।

5.1.01. प्रस्तावना

अमरकान्त साठोत्तरी कथा साहित्य के एक महत्त्वपूर्ण कथाकार हैं। वे मध्यमवर्गीय जीवन यथार्थ के कुशल चितेरे हैं। इस जीवन की विसंगतियों और संघर्षपूर्ण स्थितियों को वे बखूबी पहचानते हैं। उनकी कहानियों में गृहीत वस्तु अपेक्षाकृत अधिक रोजमर्रा की ज़िंदगी की वस्तु होती है जिसमें हम एक व्यक्ति, एक परिवार, एक समाज, एक वर्ग की ज़िंदगी के छोटे-छोटे व्यापारों और उससे सम्बद्ध मनःस्थितियों को समन्वित रूप में देखते हैं। अमरकान्त की कहानियों में परिवेशगत यथार्थ और लेखकीय अनुभूति का एक अटूट रिश्ता है। उनकी कहानियाँ चाहे वह 'डिप्टी कलेक्टर' हो, 'ज़िंदगी और जोंक' हो, 'दोपहर का भोजन' हो अथवा अन्य कहानियाँ हों, सबमें जीवन के तनाव और ट्रैजिक स्थितियों का चित्रण हर जगह मिलता है। अमरकान्त की अधिकांश कहानियाँ आर्थिक विवशता में छटपटाते लोगों का निःशब्द हाहाकार है।

'ज़िंदगी और जोंक' में एक भिखारी रजुआ के जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण है। रजुआ की पीड़ा केवल जीवन जीने की पीड़ा नहीं है, वह मानवीय अस्तित्व और व्यक्ति सत्ता के समाजीकरण की पीड़ा है। उसमें जीवन के यथार्थ और पात्रों से लेखक का अद्भुत तादात्म्य है। वह तादात्म्य विषम परिस्थितियों में भी जीवन जीने की लालसा में व्यक्त होता है। लेखक कहता है – "उसके मुँह पर मौत की भीषण छाया नाच रही थी और वह ज़िंदगी में जोंक की तरह चिपका हुआ था। वह जोंक था या ज़िंदगी? वह ज़िंदगी का खून चूस रहा था या ज़िंदगी उसकी? मैं तय नहीं कर पाया।" यहाँ जीवन अस्तित्व बचाने के लिए जो जानलेवा संघर्ष है, उसमें लेखक की संवेदना भी एकाकार है। यहाँ लेखक का 'मैं' मानवीय अस्तित्व और व्यक्तिसत्ता के समाजीकरण का भी पर्याय बन जाता है। ठीक इसी तरह 'दोपहर का भोजन' की स्त्री पात्र सिद्धेश्वरी की पीड़ा भी निम्न मध्यमवर्गीय सभी भारतीय स्त्री की पीड़ा में एकाकार दिखती है। भारतीय परिवार में एक स्त्री का जीवन ज़िंदगी जीने-भोगने के क्रम में खण्ड-खण्ड टूट कर भी, किस तरह साबूत बना रहता है – यह कहानी उस अदम्य जिजीविषा का अभूतपूर्व दृष्टान्त है।

'दोपहर का भोजन' लीक से हट कर एक अछूती भावभूमि पर रची गई कहानी है जिसमें एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के भीतर चौबीस घण्टे के एक छोटे से कालखण्ड में 'दोपहर के भोजन' का दृश्य चित्रित है। दैनिक जीवन की सामान्य दिनचर्या को लेकर गढ़ी गई इस कथा में न कोई विलक्षणता है और न कोई नाटकीय अतिरंजना कि जिससे इसकी स्वाभाविकता कहीं खण्डित हो। लेखक घर के भीतर की त्रासद स्थितियों को एक पहर के भोजन की दिनचर्या में समाहित कर बड़े ही कलात्मक ढंग से कथा में पिरो देता है। यहाँ यथार्थ की प्रस्तुति पारदर्शी होने के कारण एक पारिवारिक अंतरंगता का भी परिचय देती है।

आलोच्य कहानी में परम्परागत भारतीय स्त्री का चरित्र विकसित हुआ है लेकिन कहानी का निर्वाह नयी कहानी की प्रकृति के अनुरूप किया गया है। पुरानी कहानी से नयी कहानी की प्रकृति इस अर्थ में भिन्न है कि वह वास्तविकता जो प्रामाणिक रूप में झेली जा रही है – सम्प्रेषणीयता के चरम तक पहुँचाने के आग्रह से जुड़ी हुई है।

लेखक ने पारम्परिक स्त्री की प्रकृति और मनःस्थिति को कथात्मक बोध में पहचानते हुए उसे एक नई दृष्टि से चित्रित किया है, जो अनुभूति बोध के स्तर पर कथा में उभरती है और संवेदना के नये आयामों में खुलती है।

5.1.02. विषय विस्तार – आधुनिक हिन्दी कहानी : कथा-यात्रा के नये सन्दर्भ

साहित्यिक विधाओं में कहानी सबसे अधिक लोकप्रिय और पाठक सापेक्ष रचनात्मक विधा है। आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रारम्भ द्विवेदी युग में हुआ। द्विवेदी युग पुनरुत्थान का काल है जिसमें एक ओर पश्चिमी साहित्य के सम्पर्क से नई यथार्थवादी चेतना जन्म ले रही थी तो दूसरी ओर अपने गौरवशाली अतीत से जुड़ने और समकालीन जीवन यथार्थ से सम्पृक्त हो राष्ट्रीय चेतना जगाने एवं सामाजिक रूढ़ियों एवं विसंगतियों का समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न जाग्रत् हो रहा था। उस दौर में यथार्थ के बाहरी भीतरी स्तरों को कथा में नियोजित कर उन्हें एक आदर्श बिन्दु तक पहुँचाने की हमारी कथा-परम्परा को पश्चिमी कथा साहित्य ने प्रभावित किया। हिन्दी की साहित्यिक कथा परम्परा का ढाँचा यहीं से बदला। यद्यपि आधुनिक हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक युग में अंग्रेजी, संस्कृत, बांग्ला एवं मराठी से अनूदित कहानियों की भरमार थी किन्तु द्विवेदी युग से इस दिशा में प्रगति के पथ प्रशस्त हुए।

'सरस्वती' के प्रथम प्रकाशन वर्ष सन् 1900 से आधुनिक हिन्दी कहानी की यात्रा आरम्भ हुई। कहानी के प्रथम उत्थान काल सन् 1900 से 1910 तक में तीन कहानियाँ ही साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती हैं – 'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाईवाली'।

हिन्दी कहानी का द्वितीय उत्थान काल सन् 1911 से 1919 तक है। इस काल का महत्त्वपूर्ण मोड़ है – प्रसाद की 'इन्दु' नामक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'ग्राम'। इस युग के प्रतिनिधि लेखक हैं – विश्वम्भरनाथ कौशिक, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', प्रेमचंद, चतुरसेन शास्त्री, ज्वालादत्त शर्मा आदि।

हिन्दी का तृतीय उत्थान काल सन् 1920 से 1935 तक है। इस उत्थान काल में प्रसाद और प्रेमचंद दो प्रतिनिधि लेखकों के अतिरिक्त सुदर्शन, शिवपूजन सहाय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रामकृष्ण दास आदि महत्त्वपूर्ण कथा लेखक हैं। इसी काल में पन्त, निराला, महादेवी, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि ने भी प्रभावशाली कहानियाँ लिखीं।

हिन्दी कहानी का चतुर्थ उत्थान काल सन् 1936 से 1950 तक माना जाता है। इस उत्थान काल में कहानीकारों ने मानव जीवन की असाधारण परिस्थितियों में उसके चरित्रों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आरम्भ किया। कहानी में चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व एवं विरोधाभास को दिखाने के लिए परिस्थितियों का निर्माण हुआ एवं वातावरण को विस्तार देने वाले मानव रूपों की अवतारणा हुई। जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने मानव मन की गुत्थियों के आर-पार देखा तो इसी दौर में यशपाल ने सामाजिक जीवन की विसंगतियों को उकेरा। इसी दौर में रूमानी कहानियों का भी निर्माण हुआ। धर्मवीर भारती, श्रीराम शर्मा, आर.सी. प्रसाद सिंह, शम्भुनाथ सिंह आदि इस धारा के महत्त्वपूर्ण कथा लेखक हैं।

कथा-यात्रा के विकास-क्रम में 1950 का वर्ष नयी कहानी के नाम से अभिहित हुआ । मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव आदि कहानी के इस नये रूप को लेकर आगे आये । नयी कहानी की चेतना स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ की चेतना है । यह जीवन परिवेश के दबाव में बनते-बिगड़ते मानवीय रिश्तों, मूल्यों, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है । नयी कहानी जीये हुए जीवन सत्य पर अधिक बल देती है । व्यक्ति और परिवेश का संघर्ष चेतन तथा अचेतन को जिस सीमा तक प्रभावित करता है, उसका प्रभाव साठोत्तरी कहानी में प्रत्यक्ष दिखता है । इन सभी मानसिक स्तरों को यथार्थ संवेद्य बनाने का प्रयत्न नयी कहानी की रचनात्मक सम्भावनाओं को निःसंदिग्ध रूप से विस्तार देता है ।

5.1.03. नयी कहानी : यथार्थबोध के विविध आयाम

नयी कहानी में व्यक्ति, समाज, यथार्थ और जीवन महज़ एक वस्तु और सत्य है और यह सत्य यथार्थ के दबाब और उसके एहसास से उपजता है । नयी कहानी वर्तमान जीवन की तीखी यथार्थ चेतना है । इसमें जीवन को उसकी सुन्दरता एवं कुरूपता के साथ अखण्डता में स्वीकारने का आग्रह है । आन्तरिक और बाह्य संघर्षों से आक्रान्त मध्यमवर्गीय जीवन का एक बड़ा फलक इन कहानियों में देखा जाता है । नयी कहानी के केन्द्र में व्यक्ति का भोगा हुआ प्रामाणिक सत्य है जिसे लक्ष्य करके ही शिखर आलोचक नामवर सिंह ने कहा है कि – "एक लम्बे समय के बाद हिन्दी कहानी में जीते-जागते आदमी दिखाई पड़े ।" काल के प्रवाह में व्यक्ति की सामाजिकता का बोध एवं स्थिति 'नयी कहानी' का प्रतिपाद्य है । नामचीन लेखक राजेन्द्र यादव ने इस सन्दर्भ में कहा है – "नयी कहानी का कथाकार व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करता है । व्यक्ति को सामाजिक परिवेश, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व तथा व्यावहारिक जीवन के तकाजों और आवश्यकताओं की एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के रूप में पाना चाहता है । इसीलिए नयी कहानी में कोई भी तत्त्व निमित्त या आलम्बन बनकर नहीं, स्वयं आश्रय या विषय वस्तु बनकर आता है ।" (हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, जयकिशन खण्डेवाल, पृ. 579)

नयी कहानी जीवन की प्रत्येक स्थिति और समस्या को अपना वर्ण्य विषय बनाती है । कहानी में हर वर्ग एवं क्षेत्र का चित्रण है । नये युग में नये और पुराने मूल्यों का द्वन्द्व, परिवार और समाज का बदलता स्वरूप, आर्थिक विषमता, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से पीड़ित मानव का संघर्ष, विषम परिस्थितियों से जूझते व्यक्ति की घुटन, कुण्ठा, निर्बलता एवं सबलता – इन सभी स्थितियों का इस दौर की कहानियों में यथार्थवादी चित्रण बखूबी हुआ है । परिवार के विघटन, दाम्पत्य में अहम् का टकराव, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में व्यक्ति स्वातन्त्र्य का प्रश्न – जैसे विविध विषय कथाओं से नहीं, जीवन प्रक्रिया से गुजरते हुए लेखक की संवेदना को विस्तार देते हैं ।नयी कहानी सामाजिक सम्बन्धों की सारी प्रकृति उनके बदलते हुए समीकरण, उनके व्यापक परिवेश और सन्दर्भ तथा बदलती हुई मनःस्थिति की कहानी है ।

नयी कहानी नैरन्तर्य के धरातल पर परम्परा से जुड़ी होकर भी एप्रोच और निर्वाह तथा दृष्टि में नितान्त मौलिक है । यह व्यक्ति की सम्पृक्त चेतना का विस्तार होते हुए भी व्यक्तिनिष्ठ नहीं है । नयी कहानी अपने सही अर्थ में वस्तुबोध के नयेपन के साथ भाषाबोध और प्रेषण के लिए भी शिल्प के नये अंदाज के प्रति आग्रही है । वहाँ

एक फोटोग्राफी शिल्प है जो जीवन यथार्थ की विसंगतियों और विडम्बनाओं को, किसी छोटी घटना या विचार को आकार देता हुआ जीवन का अनदेखा सन्दर्भ भी उकेरता है। बदलते हुए मनुष्य का और उसके परिवेश का अंकन नयी कहानी का मुख्य प्रतिपाद्य है। नयी कहानी कोई प्रवृत्ति विशेष या धारा विशेष नहीं, वह आज की परिस्थितियों से उद्भूत जीवन यथार्थ की अनुभूति का अनिवार्य प्रतिफलन है।

5.1.04 आलोच्य कहानी का यथार्थबोध

साठोत्तरी कहानी की एक धारा ने परिवार को बहुत नजदीक से देखा। वहाँ परिवार के भीतर स्त्री की नियति और उसके दुःख-दर्द और संघर्ष की कई भंगिमाएँहैं। परिस्थितियों से अभिशप्त और क्षुब्ध चरित्रों के अलग-अलग चेहरे भी हैं। साठवें दशक की कहानी का विकास-विस्तार यहीं से है। आलोच्य कहानी में भी पारिवारिक ढाँचा ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। परिवेशगत पारिवारिक यथार्थ का भावपूर्ण चित्रण इस कहानी को अद्वितीय बनाता है।

'दोपहर का भोजन' एक विशेष पहर के दैनिक कर्म का यथार्थपरक एवं भावात्मक कथा-विस्तार है। जीवन का यथार्थ केवल जीवन के संघर्ष क्षणों में ही नहीं सीमित होता, वह समस्त जीवन में निवास करता है अतः यथार्थ एक युग का भी हो सकता है और एक क्षण का भी। अन्ततः क्षण, पहर या दिन – समय के प्रवाह की निरन्तरता का ही अंश है। कोई भी परिस्थिति समय के व्यापक परिदृश्य से रचनाकार के द्वारा चुनी जाती है और उसकी अनुभूति यथार्थता का अंग बन जाती है। इस कहानी में एक पहर के भोजन में एक पूरा जीवन चित्र संकलित है जो कहानी की यथार्थता को अधिक सूक्ष्म और अर्थपूर्ण बना देती है। साधारण जीवन की साधारण दिनचर्या से संवेदना का विस्तार इस कहानी के यथार्थबोध की एक विशिष्ट उपलब्धि है। भाषा और अभिव्यक्ति की प्रभावोत्पादकता इसका अन्य मूल्यवान् सत्य है। इस सत्य के पीछे लेखक के गहन जीवनबोध और पूरे परिवेश के भीतर उसकी दृष्टि की निजता पूरे यथार्थ के साथ रचित है। आज की अधिकांश कहानियों में जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियों के चित्रण में अनुभव की निजता की ऐसी कलात्मक अन्विति नहीं हो पाती।

इस कहानी में लेखक ने पारिवारिक परिवेश के यथार्थबोध को जीवन्त सन्दर्भों में अभिव्यक्त किया है। कथा की मुख्य पात्र सिद्धेश्वरी के माध्यम से परिवेश की व्यापकता उजागर होती है। कथा में व्यक्ति को अपने समय के परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश हुई है। परिवेश चित्रण में किसी प्रकार का लेखकीय आरोपण प्रतीत नहीं होता बल्कि अभावग्रस्त परिवार की सहज स्वाभाविक सच्चाई प्रकट होती है। नयी कहानी से पूर्व की कहानियों में परिवेश की तलाश काल्पनिक एवं कलात्मक थी। नयी कहानी में परिवेश के माध्यम से व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम से परिवेश को नये रूप में आकार दिया। नयी कहानी ने रचनात्मक स्तर पर परिवेश को प्रामाणिकता प्रदान की। नयी कहानी के परिवेश में यथार्थ जीवन की विभिन्न स्थितियों एवं बदलाव की प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों पर प्रकट हुआ है। नयी कहानी के पुरोधा कथाकार मोहन राकेश ने परिवेशगत यथार्थ के विषय में कहा है – "नयी कहानी की दृष्टि अपने सन्दर्भों में रह कर उसके भीतर से अपने समय और परिवेश को आँकने की दृष्टि है, जो हर

बार, हर नये प्रयोगों में यथार्थ को उसकी सजीवता में व्यक्त करने की कोशिश करती है।" (परिवेश, मोहन राकेश, पृष्ठ – 203)

'दोपहर का भोजन' कहानी के सभी पात्र अपने को परिवेशगत यथार्थ की विवशताओं में संत्रस्त पाते हैं और उनका यही संत्रास कहानी के यथार्थबोध एवं त्रासद स्थितियों को सही रूप में व्याख्यायित करता है।

आलोच्य कहानी में दोपहर के भोजन की स्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है। सिद्धेश्वरी सबको खाना खिलाने के बाद जब स्वयं खाना लेकर बैठती है तो उसकी थाली में एक अधजली रोटी ही बचती है परन्तु उसी समय उसका ध्यान अपने सबसे छोटे बीमार पुत्र प्रमोद की तरफ चला जाता है। वह रोटी को दो भागों में बाँट कर आधी रोटी खाकर पानी पी लेती है। इस कहानी में यथार्थ के साथ संवेदना का सीधा संघर्ष है। कहानी में आर्थिक अभावों से संघर्ष करने वाले परिवार की संवेदना को प्रामाणिक अभिव्यक्ति मिली है। अमरकान्त ने आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न विवशताओं एवं दारुण मनःस्थितियों को नई संवेदना दी है। कहानी का परिवेशगत यथार्थ कहानी की अन्तश्चेतना से लय की तरह जुड़ा हुआ है। कथाकार ने सिद्धेश्वरी की आन्तरिक पीड़ा एवं उसके स्नेह और ममता को संवेदना की नई अर्थवत्ता प्रदान की है।

'दोपहर का भोजन' कहानी में निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की अभावग्रस्त स्थिति का शिल्पगत सांकेतिक वर्णन बहुत मार्मिक है। सिद्धेश्वरी के बीमार बेटे का वर्णन करते हुए लेखक कहता है – "लड़का नंग-धड़ंग पड़ा था। उसके गले तथा छाती की हड्डियाँ साफ दिखाई देती थीं। उसके हाथ-पैर बासी ककड़ियों की तरह सूखे तथा बेजान पड़े थे और उसका पेट हंडिया की तरह फूला हुआ था। उसका मुँह खुला हुआ था और उस पर अनगिनत मक्खियाँ भिनभिना रही थीं।"

उक्त वर्णन ने एक पूरा वातावरण निर्मित कर दिया है तथा परिवार के दैन्य को समग्रता में उजागर किया है। शिल्पगत सांकेतिकता के कारण कहानी की अर्थवत्ता, कथ्य की सूक्ष्मता और प्रभाव क्षमता का विकास हुआ है। अमरकान्त की भाषा यथार्थबोध से सीधा साक्षात्कार कराती है। उसमें अनुभव के जीवन्त सन्दर्भों को रूपायित करने की क्षमता है। कहानी में परिवार की दारुण स्थितियों, पात्रों की सूक्ष्म संवेदनाओं एवं मन की जटिल गुत्थियों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त किया गया है। कहानी का यथार्थ अभावग्रस्त परिवार का परिवेश है जिसे लेखक ने गहरी संवेदना के साथ अनुभूति के धरातल पर चित्रित किया है।

5.1.05. दोपहर का भोजन : यथार्थ की भूमि पर संवेदना का विस्तार

'दोपहर का भोजन' प्रतिष्ठित कथाकार अमरकान्त की एक अति विशिष्ट रचना है जिसमें निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के जीवन यथार्थ का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है। स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकारों में अमरकान्त प्रेमचंद के सबसे अधिक निकट हैं। उनके पास प्रेमचंद की तरह ही एक यथार्थपरक जीवन-दृष्टि है जिसमें आधुनिकता का व्यामोह नहीं बल्कि स्वाभाविकता और सहजतता का गाढ़ा आत्मीय रंग है। आलोच्य कहानी 'दोपहर का भोजन' एक काल सीमा में परिवार के सदस्यों के कार्य निर्वाह के माध्यम से व्यक्त एक चलचित्रात्मक

कहानी है जिसमें लेखक एक सधे हुए फोटोग्राफर की तरह अपनी नपी-तुली शैली में तस्वीरें उतारता हुआ एक घरेलू स्त्री के त्यागमय जीवन और कठिन मनःस्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण है। साधारण जीवन की साधारण दिनचर्या से संवेदना का विस्तार इस कहानी की एक विशिष्ट उपलब्धि है।

घर की स्वामिनी सिद्धेश्वरी परम्परागत भारतीय स्त्री का प्रतिरूप है जो 'सर्मपण सो सेवा का सार' में विश्वास रखती है। घर, पति और पुत्रों के लिए उसके भीतर प्रेम और समर्पण की पराकाष्ठा है। मातृत्व उसकी गरिमा और पूर्णता है। पत्नीत्व उसका सौन्दर्य और तरलता है। वह अपने होने के एहसास को अपने पत्नीत्व और मातृत्व की सम्पूर्णता में देखती है। उसका स्त्री मानस परम्परागत भारतीय परिवार द्वारा अनुकूलित और संस्कारित है इसलिए वह अपने लिए नहीं, परिवार के लिए जीती है।

इस कहानी में एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के भीतर चौबीस घण्टे के प्रहर का छोटा-सा कालखण्ड 'दोपहर' का दृश्य चित्रित है। सिद्धेश्वरी काम पर गये हुए अपने परिवार के सदस्यों पति और पुत्रों के लिए भोजन तैयार करने के बाद चूल्हे को बुझा कर कुछ क्षण के लिए घुटनों में सिर देकर सुस्ताती है– फिर वेग से उठ कर प्यास से सूखे कण्ठ को तर करने के लिए गगरे से लोटा भर पानी डाल कर गट-गट पीती हुई दर्द से दोहरी हो जाती है। लेखक को आभास है कि भूखे पेट में पानी के धक्के से कलेजा किस तरह पिरा उठता है। वर्णन के क्रम में घर के भीतर का दैन्य बहुत सहज और स्वाभाविक रूप से उजागर होता जाता है। ओसारे में अधटूटे खटोले पर सिद्धेश्वरी का छह वर्षीय सबसे छोटा बेटा बीमार पड़ा है। उसके गले और छाती की हड्डियाँ साफ दिखाई दे रही हैं। बासी ककड़ियों की तरह सूखे बेजान हाथ पैर, हँड़िया की तरह फूले हुए पेट तथा खूले हुए मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं जिसे देखकर सिद्धेश्वरी उठती है और बच्चे के मुँह पर एक फटा गन्दा ब्लाउज डाल देती है। कुछ क्षण वह सुन्न-सी खड़ी होकर उसे देखती रहती है फिर किवाड़ की आड़ से गली निहारने लगती है।

कहानी का यह पहला मार्मिक दृश्य है जो पाठक को भीतर तक द्रवित कर देता है। भावात्मक संवेदना के संस्पर्श से कहानी का विकास आगे बढ़ता है। घर में दोपहर का भोजन तैयार है और सिद्धेश्वरी की आँखें दरवाजे पर टिकी हैं जिससे होकर सबसे पहले उसका बड़ा पुत्र रामचन्द्र घर में प्रवेश करता है। वह इंटर पास करके किसी स्थानीय दैनिक समाचार पत्र के दफ्तर में प्रूफ रीडरी का काम सिखता है। घर की माली हालत के प्रति वह अत्यधिक संवेदनशील है इसलिए उसके लिए पढ़ाई से अधिक आर्थिक आधार हासिल करने की प्राथमिकता है। सिद्धेश्वरी बेटे के सूखे मुँह को देखती हुई उसके सामने खाने की थाली रख कर पंखा झलने लगती है। थाली में कुल दो रोटियाँ, एक कटोरी पतली दाल और थोड़ी-सी चने की तली तरकारी है। रामचन्द्र उस भोजन को दार्शनिक भाव से देखता है और माँ से मँझले भाई मोहन और छोटे बीमार भाई प्रमोद के बारे में जिज्ञासा करता हुआ कौर निगलने लगता है। सिद्धेश्वरी रामचन्द्र को मँझले भाई मोहन और छोटे भाई प्रमोद के बारे में जो बातें बताती है, उसमें दारुण सच्चाई को छिपाने की एक विवषता है।

सिद्धेश्वरी का मँझला बेटा मोहन हाईस्कूल का प्राइवेट इम्तिहान देने की तैयारी कर रहा है जिसकी पढ़ाई को लेकर रामचन्द्र हमेशा सजग और चिन्तित रहता है। रामचन्द्र उसे घर में नहीं देखकर माँ से उसके बारे में

जिज्ञासा करता है और माँ उसे झूठा आश्वासन देती हुई कहती है कि वह अपने किसी दोस्त के यहाँ पढ़ने गया हुआ है। साथ ही वह अपने बड़े बेटे को यह भी बताती है कि मोहन अपने बड़े भाई का बहुत सम्मान करता है और उसी की तरह पढ़ाई में अव्वल आना चाहता है। बीमार बेटे के लिए भी रामचन्द्र की चिन्ता का निवारण करती हुई वह कहती है कि प्रमोद आज बिल्कुल नहीं रोया है और न ही कल की तरह रेवड़ी खाने की जिद किया है। अभी वह सो रहा है।

घरेलू ये सारी बातें पारिवारिक पारिस्थितिक विडम्बना को उजागर करती है। माँ बेटे के पारिवारिक संवाद से कथा का विस्तार होता है। बातचीत के क्रम में जब रोटी का एक टुकड़ा थाली में शेष रह जाता है तो सिद्धेश्वरी उठने का उपक्रम करती हुई बेटे से मनुहार करती है – "एक रोटी और लाती हूँ" और रामचन्द्र हड़बड़ा कर कहता है – "नहीं नहीं जरा भी नहीं। मेरा पेट पहले ही भर चुका है। मैं इसे भी छोड़ने जा रहा हूँ। बस अब बिल्कुल नहीं।" सिद्धेश्वरी जिद करती है – "अच्छा आधी ही सही।" और बेटा बिगड़ कर कहता है – "अधिक खिला कर बीमार कर डालने की तबियत है क्या ? तुम जरा भी नहीं सोचती हो … "

यह स्नेहिल मान-मनुहार और छद्म गुस्सा अभावग्रस्त परिवार की दयनीय स्थिति का बयान है। कहानी बाहर के वस्तु यथार्थ से गुजरती हुई भीतर की आन्तरिक दुनिया में प्रवेश करती है और पाठक को अपनी संवेदना का अंग बना कर सम्प्रेषित होती है।

बड़े बेटे के जाते ही मँझला बेटा मोहन आता है और हाथ-पैर धोकर पीढ़े पर बैठ जाता है। वह रामचन्द्र की तरह धीर-गम्भीर नहीं है, अन्तर्मुखी है, उसके स्वभाव को लेकर सिद्धेश्वरी हमेशा आतंकित रहती है। बेटे के समक्ष थाली रखकर वह प्यार से पंखा झलती हुई कहती है – "बड़का तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहा था। मोहन बड़ा दिमागी होगा, उसकी तबियत चौबीसों घण्टे पढ़ाई में ही लगी रहती है।"

मोहन फीकी हँसी हँसकर खाने लगता है। एक रोटी खाते हुए ही दाल और तरकारी खत्म होने को हो जाती है। सिद्धेश्वरी पनीली आँखों से दूसरी ओर देखने लगती है और जब मुँह फेरती है तो लड़का लगभग खाना समाप्त कर चुका होता है। वह फिर आग्रह भरा मनुहार करती हुई कहती है – "एक रोटी देती हूँ।" उसे जाना-सुना जबाब मिलता है – "नहीं"। अपनी कसम देकर भी वह बेटे को दूसरी रोटी नहीं दे पाती। माँ का आग्रह भरा मनुहार और बेटे का निषेध यहाँ पारिवारिक बदहाली और त्रासदी को ढँकने का एक ऐसा संवेदनशील उपक्रम है जो पाठक को द्रवीभूत कर देता है।

कहानी में दोपहर के भोजन के छोटे-छोटे दृश्य हैं जिसके माध्यम से लेखक ने आर्थिक विपन्नता सहते हुए एक परिवार का पूरा जीवन-चित्र खींचा है। इस कहानी में पारिवारिक रिश्तों में बँटी एक स्त्री की भूमिका कई रूपों में परिभाषित होती है। सिद्धेश्वरी कथा की धुरी है। वह अभावग्रस्त गृहस्थी में जीवन-राग की तरह घर के हर हिस्से में स्पन्दित होती है। अपने पति मुंशी चन्द्रिकाप्रसाद को दोपहर का भोजन खिलाते हुए उसका पत्नीत्व समाहार की अन्तिम परिणति तक पहुँचता है। छँटनी में कलर्की की नौकरी से निकाल दिये गये पति के प्रति सिद्धेश्वरी का प्रेम

अटूट है। पति को दोपहर का भोजन कराती हुई उसकी आँखें पति के चेहरे के आर-पार बहुत-कुछ देखती हैं। नई नौकरी की तलाश में दर-दर ठोकरें खाते अपने हताश और निराश पति को वह खाते वक्त उदास नहीं देखना चाहती इसलिए रिश्ते-नातों की कई बातें छेड़कर उन्हें मानसिक यातना से उबारना चाहती है ताकि दो रोटी वह खुशी-खुशी खा सकें। घरेलू बातचीत से अभावग्रस्त घर में एक सहज आत्मीय परिवेश बन जाता है और जीवन पर छाये हुए विषाद के बादल छँट जाते हैं। पति को खिलाने के बाद उसके हिस्से एक मोटी, भद्दी और जली हुई रोटी ही बची है जिसे खाने से पहले अचानक उसकी दृष्टि अपने बीमार बच्चे की ओर चली जाती है और रोटी दो टुकड़ों में विभक्त हो जाती है। आधा टुकड़ा अपनी थाली में रख कर एक लोटा पानी के साथ वह भोजन करने बैठती है और उसकी आँखें बरसने लगती हैं। छलकती आँखों से वह बैठक की ओर देखने लग जाती है जहाँ उसके पति दोपहर के भोजन के बाद निश्चिन्तता के साथ सोये हुए हैं। उस बेफिक्री की नींद को देखकर ऐसा लगता है जैसे शाम को उन्हें काम की तलाश में कहीं नहीं जाना हो।

कहानी इस नींद पर आकर ही समाप्त होती है परन्तु इस नींद में एक बेहतर भविष्य का स्वप्न और सम्भावना भी है। यह कहानी एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के भीतर घटित होती है। जहाँ बेहतर भविष्य के लिए संघर्षरत परिवार के हर सदस्य में अदम्य जिजीविषा है। सिद्धेश्वरी कहानी की मुख्य पात्र है जिसके इर्द-गिर्द पूरा कथानक बुना गया है। लीक से हटकर एक अछूती भावभूमि पर रची गई यह एक वातावरण प्रधान कहानी है जो अभाव, दैन्य, करुणा और संघर्ष से निर्मित है।

5.1.06. शीर्षक की सार्थकता

'दोपहर का भोजन' दिन के एक पहर की दिनचर्या को अनुभूति के धरातल पर संवेदनात्मक विस्तार देता है। यह शीर्षक घटनात्मक या चरित्रात्मक न होकर अभावग्रस्त जीवन के एक छोटे से कालखण्ड का अनुभवगत निदर्शन है। नयी कहानी में कथानक की संरचना नहीं होती, वहाँ कथ्य को एक जीवन्त परिवेश के साथ अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिए नयी कहानी में अन्य साहित्यिक विधाओं के तत्त्व भी दिखाई देते हैं, यथा – रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी इत्यादि। नयी कहानी की चेतना इन सारी विधाओं में आकार ग्रहण करती है। उसकी चेतना विभिन्न स्थितियों में जीने वाले व्यक्ति की विवशताओं एवं पीड़ाओं से सम्पृक्त है। वह जीवन जीने की हर स्थिति और यथार्थ के प्रत्येक रूप को स्वीकारती है।

नयी कहानी की रचना-भूमि परिस्थितियों की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं से नई दृष्टि और नई भंगिमा प्राप्त करती है। नयी कहानी का कथानक जीवन की किसी भी अनुभूति, मार्मिक क्षण या प्रसंग अथवा व्यक्ति विशेष की चारित्रिक विशेषताओं से विकसित होता है। आलोच्य कहानी इसका सुन्दर दृष्टान्त है। कहानी एक अभावग्रस्त पारिवारिक परिवेश में जन्म लेती है और छोटे-छोटे दृश्य चित्रों में दोपहर के भोजन का सुन्दर भाष्य रचती है। रचनाकार का अनुभव सत्य यहाँ यथार्थ के धरातल पर बहुत सहज और स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त होता है। इस कहानी में एक मध्यमवर्गीय परिवार के अभावग्रस्त जीवन को एक पहर में चित्रित किया गया है और

उसी के अनुरूप भोजन की कई-कई थालियाँ सजाई गई हैं जिसमें एक आदर्श भारतीय स्त्री का प्रेम और ममत्व परोसा गया है।

सिद्धेश्वरी कथा की धुरी है। वह पारिवारिक रिश्तों को बाँधने वाली डोरी है। अपने पत्नीत्व और मातृत्व के दायित्वों को निभाती हुई वह अपने स्त्रीत्व का सर्वस्व होम करके सुख पाती है। अभावग्रस्त परिवार की त्रासदी ने सिद्धेश्वरी को एक विकल्पहीन परिस्थिति के साथ बाँध दिया है लेकिन वह टूटती नहीं बल्कि टूटे हुए कलेजे को जोड़ने का काम करती है। वह धरती की तरह सहनशील है इसलिए सब पर एक जैसा प्यार लुटाती है और सबके भीतर हौसला भरती है। सिद्धेश्वरी का उदात्त स्त्री रूप दोपहर का भोजन बनाते और परोसते हुए उद्घाटित होता है। कहानी का शीर्षक व्यक्ति और उसके परिवेश की प्रामाणिकता के साथ सार्थक और सजीव है।

5.1.07. अमरकान्त की स्त्री विषयक दृष्टि

'दोपहर का भोजन' बीसवीं सदी के मध्यकालीन भारतीय स्त्री की कथा है। आज की नई कथा चेतना में ऐसी भारतीय स्त्री का चरित्र नहीं दिखाई देता। वह परम्परागत परिवार की धुरी बनकर नहीं जीना चाहती। वह खुद को समग्र रूप में पुरुष के समानान्तर पहचानने का आग्रह करती है इसलिए दोपहर का भोजन बनाने और परिवार के सभी सदस्यों को बारी-बारी से खिलाने का धैर्य उसके भीतर नहीं होता। परिस्थिति और परिवेश के बदलाव ने आज की स्त्री के मन-मिजाज को बहुत दूर तक बदला है। घरेलू हो या कामकाजी आज प्रायः हर स्त्री घर के कामों में भी पुरुष से सहयोग की अपेक्षा रखती है। दोपहर और शाम का भोजन स्त्री की नियति से आज भी जुड़ा है परन्तु उस भूमिका में प्रेम और समर्पण का वैसा रंग विरले ही देखने को मिलता है। आज की स्त्री माँ, बेटी, बहन, पत्नी की भूमिकाओं के आदर्श का मिथक तोड़कर जीना चाहती है। इसलिए सिद्धेश्वरी जैसी स्त्री पात्र आज की कहानियों में नहीं दिखाई देती।

अमरकान्त ने सिद्धेश्वरी जैसी स्त्री पात्र को अपने यथार्थ परिवेश में अदम्य जिजीविषा के साथ चित्रित किया है। नयी कहानी की यह एक नई जीवन-दृष्टि थी कि उसने प्रामाणिक परिवेश के आधार पर कहानी की रचना-प्रक्रिया को बदला था और उस एप्रोच के कारण ही कहानी में परिवेश और परिवेश में व्यक्ति एक रूप होकर आए। सुप्रसिद्ध कथा समीक्षक पर्सील्युबक कथा रचना विधि के लिए 'दृष्टि बिन्दु' को स्वीकारते हैं जिसके कारण रचना का पूरा ढाँचा बदल जाता है। (क्राफ्ट ऑफ फिक्सन, पर्सील्युबक, पृ. 251) इस कहानी में भी लेखक की वह दृष्टि ही महत्त्वपूर्ण है।

आलोच्य कहानी में अमरकान्त की स्त्री विषयक दृष्टि परिवार या समाज पर कोई बड़ा प्रश्न नहीं उठाती। वह व्यक्ति सम्केन्द्रित होकर एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार का वातावरण सृजित करती है। सिद्धेश्वरी के प्रेम और कर्त्तव्य का निर्वाह इतना मार्मिक और मनोवैज्ञानिक है कि उसकी परिणति पाठक को भीतर से हिला देता है।

5.1.08 पाठ-सार

अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन' कहानी कई कारणों से एक महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय कहानी है। कथा के पाठ-बोध में उन कारणों की सूक्ष्म पड़ताल के लिए कई बिन्दुओं पर विचार किया गया है। यह कहानी एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की गरीबी, बेकारी और भुखमरी से गुजरने की मार्मिक प्रस्तुति है। पाठ प्रक्रिया के सहारे कहानी से गुजरते हुए कई बार ऐसा लगता है जैसे लेखक की पूरी संवेदना सिद्धेश्वरी के आदर्शमय रूप को व्यापक आयाम देने के पक्ष में है लेकिन कहानी के भीतर कथोपकथन एवं संवाद के सहारेमध्यमवर्गीय परिवार के और भी कई सन्दर्भ खुलते हैं जिससे कथा का विस्तार व्यष्टि से समष्टि तब होता है।

कहानी में परिवार का हर सदस्य विषम परिस्थिति में एक-दूसरे को पतवार की तरह थामता है। दोपहर के भोजन में कम पड़ गई रोटियाँ केवल सिद्धेश्वरी के कारण पूरी नहीं हो जातीं बल्कि पुत्र और पति द्वारा आधा पेट खाकर पेट भरने का स्वाँग रचा जाता है ताकि गृहस्वामिनी की रसोई की लाज बची रह सके। सिद्धेश्वरी जब देखती है कि पति का खाना समाप्त हो चुका है और वे बचे-खुचे दानों को बन्दर की तरह बीन रहे हैं तो विह्वल होकर आग्रह करती है – "बड़का की कसम, एक रोटी देती हूँ, अभी बहुत-सी हैं।"

कथाकार आगे लिखता है – "मुंशीजी ने पत्नी की ओर अपराधी के समान तथा रसोई की ओर कनखी से देखा, तत्पश्चात किसी घुटे उस्ताद की भाँति बोले – रोटी ... रहने दो पेट काफी भर चुका है। अन्न और नमकीन चीजों से तबीयत ऊब भी गई है। तुमने व्यर्थ में कसम धरा दी। खैर कसम रखने के लिए ले रहा हूँ। गुड़ होगा क्या ? थोड़े ठण्डे गुड़ का रस बना दो। तुम्हारी कसम भी रह जायेगी और जायका भी बदल जायेगा। रोटी खाते-खाते नाक में दम आ गया है।" यह कहकर वे ठहाका मारकर हँस पड़े। कहानी में यह दृश्य और संवाद अभावग्रस्त परिवार की नग्न सच्चाई पर रेशमी पर्दा डालने जैसा है।

यह कहानी व्यष्टि और समष्टि की संवेदना को कई रूपों में जोड़ती है। दोपहर का भोजन करते हुए मुंशीजी अपनी पत्नी से घरेलू बातचीत करते हुए गंगाशरण बाबू की बेटी की शादी एम.ए. पास लड़के से तय हो जाने की बात बहुत हुलस कर बताते हैं। खाने के क्रम में ही सिद्धेश्वरी उनसे फूफाजी की बीमारी का हाल पूछती है। इस संवाद में एक ओर उनके सामाजिक सरोकार प्रकट होते हैं तो दूसरी ओर अपने जीवन के दुःख, दर्द, हताशा और कुण्ठा से उबरने का उपक्रम भी।

यह कहानी कथा के स्थूल ढाँचे का अतिक्रमण करती हुई संश्लिष्ट जीवनानुभवों के आन्तरिक समवाय का प्रतिफलन है। इस कहानी में कथानक का अभाव है। यहाँ परिवेश, संवेदना और मनःस्थिति को ही चित्रित किया गया है फिर भी कहानीपन इस कथा की शिराओं में रक्त की लय बनकर दौड़ रहा है। प्रखर आलोचक डॉ॰ नामवर सिंह ने कहा है – "कविता में जो स्थान लय का है, कहानी में वही स्थान कहानीपन का है।" (कहानी : नयी कहानी – डॉ॰ नामवर सिंह, पृष्ठ – 28)

अमरकान्त की कहानियों में कहानीपन अनुभूति खण्डों के रूप में बहुत सहज और स्वभाविक रूप से अभिव्यक्त होता है। अमरकान्त शिल्प के माध्यम से कोई जटिलता या दुरूहता उत्पन्न नहीं करते और न ही कथानक में तोड़-फोड़ ही मचाते हैं। रोज़मर्रा की भाषा का सर्जनात्मक रूप उनकी कहानियों को एक निश्छल सौन्दर्य देता है। उनकी कहानियाँ अपने परिवेश में सहज रूप से विकसित होती हैं।

परिवार के बदलते मानकों के सन्दर्भ में यह कहानी पारिवारिक मूल्यों के पक्ष में खड़ी होती है। आलोच्य कहानी में कथानक के परम्परागत रूप को तोड़ा गया है परन्तु पारिवारिक मूल्यों को सहेजा गया है जो इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। एक पहर की यह कहानी आत्मीय राग और अदम्य जिजीविषा का अभूतपूर्व दृष्टान्त है। पारिवारिक पृष्ठभूमि पर रचित इस कहानी में सिद्धेश्वरी का चरित्र परम्परागत भारतीय स्त्री का गौरवमय पृष्ठ है जिसे लेखक ने ध्वस्त होते पारिवारिक मूल्यों के बीच नई भावभूमि पर सिरजा है।

5.1.09. बोध प्रश्न

1. साठोत्तरी कहानी के विकास में अमरकान्त के योगदान की समीक्षा कीजिए।
2. कहानी कला की दृष्टि से 'दोपहर का भोजन' कहानी की विशेषताओं को उद्घाटित कीजिए।
3. 'दोपहर का भोजन' कहानी में कहानीकार ने सिद्धेश्वरी की अन्तःस्थिति और बाह्य स्थिति का वर्णन किस रूप में किया है ?
4. 'दोपहर का भोजन' कहानी की प्रकृति और दृष्टि पर प्रकाश डालिए।
5. निम्न मध्यमवर्गीय परिवार एवं समाज के यथार्थ की प्रासंगिकता के सन्दर्भ में 'दोपहर का भोजन' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

5.1.10. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, सं. : देवीशंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि, डॉ॰ धनंजय
3. हिन्दी कहानी : प्रक्रिया और पाठ, डॉ॰ सुरेन्द्र चौधरी
4. नयी कहानी : पुनर्विचार, मधुरेश
5. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, जयकिशन खण्डेलवाल

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/

❖❖❖

खण्ड – 5 : कहानी – 2

इकाई – 2 : टूटना – राजेन्द्र यादव

इकाई की रूपरेखा

5.2.0. उद्देश्य कथन
5.2.1. प्रस्तावना
5.2.2. नयी कहानी आन्दोलन और राजेन्द्र यादव
5.2.3. राजेन्द्र यादव की कहानियों में बदलते मूल्य और मध्यमवर्गीय यथार्थ
5.2.4. टूटना कहानी में अभिव्यक्त स्त्री-पुरुष सम्बन्ध
5.2.5. टूटना : मनोजगत् का द्वन्द्व और अस्तित्व की तलाश
5.2.6. पाठ-सार
5.2.7. बोध प्रश्न
5.2.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची
5.2.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

5.2.0 उद्देश्य कथन

इस इकाई में आप 'नयी कहानी' के प्रवर्त्तक-त्रय में से एक राजेन्द्र यादव द्वारा रचित चर्चित कहानी 'टूटना' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

i. नयी कहानी आन्दोलन की सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि को जान सकेंगे।
ii. नयी कहानी आन्दोलन में राजेन्द्र यादव की भूमिका से परिचित हो सकेंगे।
iii. राजेन्द्र यादव के समूचे कथा साहित्य की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
iv. 'टूटना' कहानी के माध्यम से पुरा-मूल्यों से मुक्ति की बेचैनी और नये मूल्यों के निर्धारण के संघर्ष को समझ सकेंगे।
v. नयी कहानी के भावबोध तथा बदलते परिवेश एवं पति-पत्नी के सम्बन्धों में आने वाले बदलावों को समझ सकेंगे।
vi. मध्यमवर्गीय एवं आभिजात्य समाज की चुनौतियाँ, उनके यथार्थ और उनकी वैचारिकी को समझ सकेंगे।
vii. व्यक्ति के मनोजगत् की गुत्थियों, हीनता-ग्रन्थि और अस्तित्व की रक्षा की बेचैनी को समझ सकेंगे।

5.2.1. प्रस्तावना

'टूटना' कहानी किसी व्यक्ति के मनोजगत् के टूटते-बिखरते चले जाने की त्रासद यात्रा है। मनोजगत् की इस उठा-पटक की पृष्ठभूमि में दो बातें हैं – पहली, मध्यमवर्गीय संस्कारों, समस्याओं और सीमाओं का दबाव तथा

दूसरी, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का बदलता स्वरूप । एक बात और कि व्यक्ति के मनोजगत् की निर्मिति में अभावों और संघर्षों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भारतीय समाज का मध्यमवर्ग एक ओर अपनी परम्पराओं और संस्कारों से जुड़ा हुआ है तो दूसरी ओर खूबसूरत भविष्य के सपने उसकी आँखों में तैरते रहते हैं और वह उनकी तरफ ललचाई निगाहों से भागता रहता है । वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में बाजार की चकाचौंध और अभिजात जीवन-शैली मध्यमवर्ग को निरन्तर अपनी ओर आकर्षित करती है लेकिन आर्थिक कमजोरी उसके रास्ते का बार-बार अवरोध बनती है । इस तरह वर्तमान दौर में मध्यमवर्ग एक द्वन्द्व में जी रहा है । यह कहानी मध्यमवर्गीय समाज के इस द्वन्द्वात्मक यथार्थ को बखूबी अभिव्यक्त करती है।

व्यक्ति के मन का द्वैत और हीनता-ग्रन्थि उसे बार-बार अपने अस्तित्व की तलाश के लिए बेचैन करते हैं। वह हर छोटी-बड़ी घटना में अपनी उपस्थिति खोजने लगता है। इस तरह उसका जीवन बेहद अस्थिर, बेचैन और असुरक्षित हो जाता है। वह उन तमाम चीजों के पीछे आँख मूँदकर भागने लगता है जिनके अभाव के कारण उसमें हीनता-ग्रन्थि पैदा हुई। उसका जीवन त्रासदी और विडम्बना से ग्रस्त हो जाता है। 'टूटना' कहानी का किशोर एक ऐसा ही निम्न मध्यमवर्गीय युवा है जो अपने आर्थिक अभाव और 'गँवारू' जीवन शैली के कारण हीनता-बोध से ग्रस्त हो जाता है । इस कारण उसके जीवन का केन्द्र 'अर्थ' हो जाता है और वह अपने प्रत्येक क्रिया-कलाप से स्वयं को आधुनिक और शहरी जीवन शैली का सिद्ध करने की कोशिश करता है । आधुनिक जीवन में पसरते बनावटीपन को इस कहानी में अभिव्यक्ति मिली है।

आधुनिक जीवन-शैली ने पारम्परिक सामाजिक मूल्यों और सम्बन्धों को पुनर्परिभाषित करने के लिए हमें विवश किया। सामाजिक मूल्यों में होने वाला विघटन और टूटते-बिखरते सम्बन्धों को नये नज़रिये से समझने की आवश्यकता पड़ी । पिता-पुत्र, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि बेहद नजदीकी सम्बन्धों में भी तनाव, बिखराव और अजनबीपन आ गया। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों तथा प्रेम, विवाह और सेक्स जैसे विषयों में पारम्परिक धारणाओं से पृथक् एक नई विचार पद्धति विकसित हुई। 'टूटना' कहानी में किशोर और लीना दोनों के मध्य प्रेम और विवाह का सम्बन्ध गैर-पारम्परिक है। यह कहानी जीवन मूल्यों और सम्बन्धों के विघटन के कटु यथार्थ का अंकन करती है।

किशोर एक निम्न मध्यमवर्गीय ग्रामीण युवा है और लीना आभिजात्य परिवार एवं आधुनिक सोच की लड़की। दोनों के मध्य प्रेम होता है और फिर परिवार से विद्रोह करके शादी भी होती है। यह कहानी लीना और किशोर की अलग-अलग जीवन शैली के टकराव से उपजे तनाव, अकेलेपन और अजनबीपन को उद्घाटित करती है। यह तनाव, अकेलापन और अजनबीपन इस सम्बन्ध को एक ऐसी त्रासद स्थिति में ले जाते हैं जहाँ तलाक तो नहीं है लेकिन रिश्ते में पसरा अनन्त सन्नाटा, उसकी सच्चाई को बयाँ करता है । समग्रतः 'टूटना' कहानी केवल सम्बन्धों के टूटने-बिखरने की कहानी नहीं है, प्रेम और विवाह सम्बन्धी मूल्यों के बदल जाने की कहानी मात्र भी नहीं है, यह कहानी है व्यक्ति के समग्र चिन्तन और उसके टूटते-बिखरते मनोजगत् के फलस्वरूप उसके आत्म-निर्वासन की स्थिति तक पहुँच जाने की।

5.2.2. नयी कहानी आन्दोलन और राजेन्द्र यादव

'नयी कहानी' स्वाधीनता के बाद की नई परिस्थितियों की देन है। "जब नूतन युगबोध और उसकी नई कला सम्चेतना पुराने रचना-तन्त्र में नहीं बँध पाती तो प्रयोगधर्मी कलाकार अपने कथ्य के अनुरूप नये शिल्प का अन्वेषण करते हैं।"[1] ध्यातव्य है कि सन् 1940 से 50 के दौर की कहानियाँ, कहानी लेखन की दृष्टि से उतनी उर्वर नहीं रहीं। इस कारण किसी ऐसे कहानी आन्दोलन की आवश्यकता थी जो युग-बोध की अभिव्यक्ति कर सके। इस पृष्ठभूमि में 'नयी कहानी' आन्दोलन का उद्‌भव हुआ जिसके दो प्रमुख कारण हैं – युगीन परिस्थितियाँ और पूर्ववर्ती कहानी की प्रतिक्रिया।

'नयी कहानी' की पूर्वापर समय-सीमा क्या है, इसे यह नाम किसने दिया आदि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कमलेश्वर ने दुष्यन्त कुमार के 'कल्पना' में प्रकाशित लेख का उल्लेख करते हुए उन्हें 'नयी कहानी' शब्द का प्रथम प्रयोक्ता माना।[2] नामवर सिंह ने 'नयी कहानी' शब्द के प्रयोग और औचित्य पर बेहद गहनता और गम्भीरता से विचार किया जिसके कारण अनेक विद्वान् 'नयी कहानी' शब्द के प्रयोग का श्रेय उन्हें ही देते हैं। देवीशंकर अवस्थी ने सन् 1957 में प्रयाग में होने वाले 'साहित्यकार सम्मेलन' में शिवप्रसाद सिंह, हरिशंकर परसाई और मोहन राकेश द्वारा पढ़े गए निबन्धों के पहले ही वाक्य में 'नयी कहानी' शब्द का प्रयोग का उल्लेख करते हुए इस अभिधन की स्वीकृति की बात की है।[3] 'नयी कहानी' नाम के सन्दर्भ में इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है – "चयन सम्पादक का, मूल्यांकन नामवर सिंह का, रचनाएँ मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, भीष्म साहनी आदि अनेक कहानीकारों की।"[4] नयी कहानी की समयावधि को अनेक विद्वानों ने सन् 1954 से 1963 तक माना है लेकिन शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर, बच्चन सिंह, परमानन्द श्रीवास्तव जैसे कथाकारों और आलोचकों ने नयी कहानी की आरम्भिक सीमा सन् 1950 स्वीकार की है। स्वयं राजेन्द्र यादव ने इसे सन् 1950 से 1960 तक विकसित हुई कहा है।[5]

नयी कहानी आन्दोलन की आरम्भिक सीमा यदि सन् 1950 के स्वीकार कर लें तो वह पृष्ठभूमि स्पष्ट हो जाएगी जिसने इस आन्दोलन को जन्म दिया। दो विश्वयुद्ध, भारत की स्वाधीनता और देश-विभाजन तीन बड़ी घटनाएँ हैं जिन्होंने परिस्थितियों, मूल्यों और जीवन-दृष्टियों को पूरी तरह से बदल दिया। यह बदलाव सन् 1951 के बाद की कहानियों में अन्तर्वस्तु और शिल्प दोनों ही आधारों पर देखा जा सकता है। दरअसल, पूर्ववर्ती कहानीकारों की कहानियाँ युगीन परिस्थितियों और सन्दर्भों से टकराने और जूझ पाने में अक्षम हो गई थीं क्योंकि उनकी कहानियाँ अब भी कहानी के पारम्परिक मानदण्डों और पूर्व निर्धरित विचार को तोड़ने की बजाय बनाए रखने की पक्षधर थीं। इस समस्या को नयी कहानी आन्दोलन के कहानीकारों ने प्रमुखता से लिया और नई उभरती प्रवृत्तियों के आधार पर हिन्दी कहानी के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। राजेन्द्र यादव ने इस सन्दर्भ में लिखा है – "विधा की परम्परा की दृष्टि से 40 से 50 का पिछला दशक आज की कहानी को कुछ नहीं दे पाया, उसने जो कुछ दिया वह सारे साहित्य को दिया। दोष उस दशक का नहीं है, देशी-विदेशी परिस्थितियों की अस्थिरता में चतुर्दिक् परिवर्तन और व्यापक उद्वेलन की गति इतनी तीव्र और तूफानी थी कि समाज की बनावट का कोई रूप निश्चित नहीं हो पाया था, तत्कालीन कथाकार इस चकाचौंध में कहीं भी आँख टिकाने में अपने को असमर्थ पाता था।

बयालीस का विप्लव, बंगाल का अकाल, नाविक विद्रोह, स्वतन्त्रता-आन्दोलन, दंगे, शरणार्थियों के काफिले, सरकारी भ्रष्टाचार और राजनैतिक पार्टियों की आपाधापी सब कुछ एक के बाद एक इस तरह आता चला गया कि व्यक्ति मन के धरातल पर उस सबका समाहार कथाकार के लिए असम्भव हो गया।"[6]

स्पष्ट है कि वह दौर बेहद अनिश्चय, अस्थिरता और तेजी से बदलते घटनाक्रम का था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति और गणतन्त्र घोषित होने तथा उसके ठीक बाद के घटनाक्रम ने जनता में उम्मीद, उत्साह, समानता, स्वावलम्बन और लोकतान्त्रिक मूल्यों में भरोसा पैदा किया। लेकिन दो-दो विश्वयुद्ध की विभीषिका से उपजा अस्तित्ववादी चिन्तन अभी जनता के मनोजगत् में ज़िंदा था। भारत-पाकिस्तान के विभाजन के दौरान दंगे, हत्याकाण्ड और निर्वासन की घटनाएँ बहुत बढ़ गईं। दिगन्तव्यापी विघटन, विशृंखलन और अपनी जड़-जमीन से उखड़े हुए शरणार्थियों की भयानक वेदना ने जनमानस में हताशा, निराशा, कुण्ठा, पराजय और घुटन का बोध पैदा किया। इस तरह जन-चेतना में द्वैध की स्थिति उत्पन्न हुई। इस स्थिति ने हिन्दी-कहानीकारों को नये मूल्यों के अन्वेषण की दिशा में उन्मुख किया।

आजादी के ठीक बाद के भाव-बोध और बेहतर की उम्मीद तथा धीरे-धीरे उम्मीद के छीजते चले जाने की प्रक्रिया को नामवर सिंह ने इस कहानी आन्दोलन का मूल स्वर माना। "... आजादी के शुरू के दिनों में निश्चय ही सन्दर्भ कुछ ऐसा था, जिसमें कुछ आश्वासन कुछ उत्सुकता, कुछ आशंका और कुछ आशा के मिले-जुले भाव थे। साम्प्रदायिक दंगे शान्त हुए। शरणार्थी किसी प्रकार बसने लगे। ... संविधान बनकर सामने आया। जनता को जनतान्त्रिक अधिकार मिले। बालिग मताधिकार के आधार पर पहला आम चुनाव हुआ। ... अपनी उपहासास्पद स्थिति का एहसास होते हुए भी लोग प्रतीक्षा करने को प्रस्तुत थे। धीरज का बाँध एकदम न टूटा था। पीड़ा-भरी प्रतीक्षा इस काल की कहानियों का मुख्य स्वर ... इसमें जीवन का गहरा पीड़ा-बोध है। ... यह मनःस्थिति तभी पैदा होती है, जब जीवन की जटिलता का बोध होता है। जब ऐसा लगे कि ज़िंदगी साफ-साफ चौखटों में बँटी हुई नहीं है तो बेखटके अच्छा और बुरा, सही और गलत के रूप में दो टूक निर्णय देना कठिन हो जाता है। अनुभूति की बुनियादी ईमानदारी अन्ततः इस पीढ़ी के कहानीकार को एक 'उभय सम्भव' की मन स्थिति की ओर ले गई। इस द्वैध मनःस्थिति के साथ हिन्दी-कहानी में एक नये 'नैतिक-बोध' का उदय हुआ ...।"[7]

'नयी कहानी' के लेखकों में 'अनुभूति की बुनियादी ईमानदारी' है इसी कारण इनकी कहानियों में सामाजिक यथार्थ और जीवन की वास्तविकता का प्रामाणिक अंकन हो पाया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ती गई जिसका जिक्र नामवर सिंह ने 'पीड़ा भरी प्रतीक्षा' के रूप में किया है। निराशा, कुण्ठा, मोहभंग और अस्वीकार जैसी वृत्तियाँ बढ़ती गई। 'नयी कहानी' में इसकी प्रतिकृति देखी जा सकती है।

आधुनिक बोध ने पारम्परिक समाज-व्यवस्था में बड़ा बदलाव किया। वर्ण-व्यवस्था की जकड़न धीरे-धीरे टूटने लगी। जीवन मूल्यों और जीवन व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन आया। संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा। पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि अनेक सम्बन्धों में दरार आने लगी। तलाक को कानूनी स्वीकृति मिली और विवाह की परम्परागत संस्था प्रश्नों के घेरे में थी। स्त्री की आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति मजबूत हुई। इन तमाम

कारणों से स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में बड़ा बदलाव आया और इसे पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस हुई। इस सम्बन्ध में सविता जैन ने लिखा है – "एक ओर परम्परा से चले आ रहे संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा था और दूसरी ओर सामाजिक-पारिवारिक सम्बन्धों के परम्परागत रूप में परिवर्तन आ रहा था। परम्परा से विच्छिन्न होकर तथा सभी प्राचीन मानव सम्बन्धों के मोहपाश से मुक्त होकर आज का व्यक्ति अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। यहाँ तक कि पिता-पुत्र, माँ-बेटी, पति-पत्नी या भाई-बहन जैसे निकटतम सम्बन्धों में भी जैसे एक अजनबीपन समाता जा रहा है जो एक-दूसरे को पास रहते हुए भी बहुत दूर कर देता है। स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज का यह एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था और इसने समसामयिक कहानीकारों को बहुत अधिक आकर्षित किया।"[8] मध्यमवर्गीय समाज के यथार्थ और बदलते जीवन-मूल्यों एवं सम्बन्धों को नयी कहानीकार ने सजगता से अनुभव किया और अभिव्यक्त किया।

इन परिस्थितियों ने 'नयी कहानी' के भाव बोध और नये शैल्पिक विधान के निमार्ण में अपना योग दिया। 'नयी कहानी' के भाव-बोध, विचार-चिन्तन और प्रकृति के विविध पहलुओं पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि इसमें यथार्थपरकता, सहज सामाजिकता, गहन अनुभूति और सघन परिवेश-बोध की विकसित चेतना, प्रगतिशील मूल्यों के प्रति आग्रह, नयापन की अभिव्यक्ति का सहज साहस, प्रयोगशीलता की नैसर्गिक वृत्ति, परम्परा से विद्रोह की भावना, बौद्धिकता की प्रवृत्ति और आधुनिकता को नये सन्दर्भों में विश्लेषित करने की तीव्र उत्कण्ठा है।

नयी कहानी की अन्तर्वस्तु, विचार और शिल्प तीनों से सम्बन्धित विशिष्टताओं को जान लेना आवश्यक है क्योंकि नयी कहानी इन तीनों ही आधार पर पूर्ववर्ती कहानी से अलग है। आनुभूतिक प्रामाणिकता नयी कहानी की एक प्रमुख विशेषता है। नयी कहानी का कथाकार भोगे हुए सच को अभिव्यक्त करने का पक्षधर है। पूर्ववर्ती कहानी में लेखक विचार का निर्धारण पहले करता था और फिर घटनाओं और पत्रों के माध्यम से उसे सम्पादित करता था। "कोई भी 'विचार', 'सत्य' या 'आइडिया' उसके सामने कौंधता था और वह कुछ पात्रों, कुछ स्थितियों, कुछ घटनाओं के संयोग, संयोजन से उसे घटित या उद्घाटित कर देता था।"[9] नयी कहानी ने इसे नकार दिया। "समकालीन कहानी के यह पात्र किसी आदर्श लोक या कल्पना जगत् के पात्र नहीं हैं जो लेखकीय विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर आए हों अपितु सामान्य ज़िंदगी से लिए गए वे पात्र हैं जो अपने जीवन की सभी विसंगतियों के साथ हमारे सामने आते हैं।"[10]

नयी कहानी की दूसरी विशेषता है – 'बदली परिस्थितियों में सम्बन्धों में आए बदलाव का चित्रण।' नयी कहानी में पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों के विघटन से सम्बन्धित कहानियाँ भी लिखी गईं और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आए बदलाव, प्रेम, विवाह एवं सेक्स सम्बन्धी धारणाओं के बदलने से सम्बन्धित कहानियाँ भी लिखी गईं। पति-पत्नी के बदलते सम्बन्धों पर आत्मपरक और सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से कहानियाँ लिखी गईं।

सम्बन्धों के टूटने से अकेलापन, अजनबीपन, अविश्वास, अनिश्चय और आत्मनिर्वासन की स्थितियाँ पैदा होती हैं। सम्बन्धों के विघटन से निरर्थकता का बोध पैदा होता है। "आधुनिक मानव का अकेलापन ही उसकी

ट्रेजडी और विडम्बना है।"[11] यही अकेलापन और अजनबीपन अनेक बार व्यक्ति को निरर्थकता के बोध से ग्रस्त कर देना है। नयी कहानी ने इन समस्त स्थितियों को बेहद गम्भीरता से अभिव्यक्त किया है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'टूटना' में इसी भाव-बोध का चित्रण है।

नयी कहानी की एक बड़ी विशेषता है – प्रेम के प्रामाणिक अनुभव का चित्रण और नये मूल्यों का निर्धारण-निरूपण। नयी कहानी के कथाकार के प्रेम निरूपण के सन्दर्भ में राजेन्द्र यादव का मत है – "अगर उसका दोष स्खलन या अपराध है तो इनता ही कि उसने श्लील-अश्लील, नैतिक-अनैतिक, शुभ-अशुभ, उदात्त-निगर्हणीय से उठकर साहस से इस सच्चाई को अपनी कहानियों में उभारा है।"[12] स्पष्ट है कि नयी कहानी में दैहिक पवित्रता और सामाजिक नैतिकता अनिवार्य शर्त नहीं है।

पुरानी-नई पीढ़ियों के मूल्यों और जीवन-दृष्टियों के मध्य संघर्ष स्वातन्त्र्योत्तर काल की प्रमुख समस्या रही है। नयी कहानी ने इस समस्या को उठाया है। कमलेश्वर की 'ऊपर उठता हुआ मकान', धर्मवीर भारती की 'यह मेरी नहीं', मोहन राकेश की 'जंगला', राजेन्द्र यादव की 'पास फेल' तथा ज्ञानरंजन की 'पिता' जैसी कहानियों में दो पीढ़ियों के बीच उभरते संघर्ष को अभिव्यक्ति मिली है। नयी कहानी में यह संघर्ष केवल दो पीढ़ियों के बीच नहीं अपितु आत्मसंघर्ष के रूप में भी दिखाई देता है। कमलेश्वर की 'नागमणि', निर्मल वर्मा की 'कुत्ते की मौत' और ज्ञानरंजन की 'शेष होते हुए' जैसी कहानियों में यह आत्मसंघर्ष परिलक्षित होता है।

नयी कहानी के कथाकार में बौद्धिकता की प्रधानता है और इस कारण विचारों में प्रतीकात्मकता आना स्वाभाविक है। राजेन्द्र यादव की 'ऐक्टर', शिवप्रसाद सिंह की 'शाखामृग' जैसी कहानियों के पात्रों के विचारों में इस प्रतीकात्मकता को देखा जा सकता है। दरअसल, प्रतीकात्मकता कहानी के भावबोध को मूर्त से अमूर्त, बाह्य से अन्दर और स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाती है।

नयी कहानी की एक प्रमुख विशेषता है – 'रूढ़ियों को तोड़ना।' नयी कहानी अन्तर्वस्तु और शिल्प दोनों से सम्बन्धित रूढ़ियों का विरोध करती है। पुरानी दृष्टियों, मान्यताओं, संस्कारों, मूल्यों और सम्बन्ध व्यवस्थाओं के प्रति विद्रोह का भाव जन-मानस की नई चेतना का प्रतिफलन है। नयी कहानी केवल पुरातन व्यवस्था और मान्यताओं के विरोध की बात नहीं करती अपितु समूची राजनैतिक-सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक तन्त्र की समीक्षा करती है। व्यवस्था की विसंगतियों और विकृतियों के प्रति उसमें गहरा असंतोष है जिसे व्यंग्य और आक्रोश के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है। हरिशंकर परसाई और शरद जोशी की कहानियों में इसकी अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। नयी कहानी ने प्रेम, विवाह, सेक्स, समाज, नैतिकता और धर्म सम्बन्धी अनेक पुरातन मान्यताओं को अस्वीकार कर दिया। राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा' दूधनाथ सिंह की 'रीछ' और ज्ञानरंजन की 'दाम्पत्य' जैसी कहानियाँ यौन सम्बन्धी पुरातन मान्यताओं के अस्वीकार की सशक्त अभिव्यक्ति हैं।

'नयी कहानी' में अस्तित्ववादी चिन्तन की छवि भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। अपने अस्तित्व की पहचान, पुराने मूल्यों का अस्वीकार, संत्रास और मूल्य-बोध जैसे विषयों को नयी कहानी ने उठाया है। ध्यातव्य है कि नयी

कहानी का अस्तित्ववादी चिन्तन सार्त्र या कामू से प्रभावित भले ही है लेकिन उसे भारतीय सन्दर्भ में देखने और समझने की कोशिश इसकी निजी उपलब्धि है। अमरकान्त की 'ज़िंदगी और जोंक', राजेन्द्र यादव की 'टूटना' और मोहन राकेश की 'जख्म' जैसी कहानियों में अपने अस्तित्व को बचाने की जद्दोजहद दृष्टिगत है। संत्रास परिस्थितिजन्य हताशा, निराशा, अजनबीपन, असुरक्षा और एकाकीपन की परिणति है। आजादी के बाद की सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों में भारतीय जनमानस में संत्रास की भावना घर कर गई थी। श्रीकान्त वर्मा की 'उसका क्रास' हृदय के आच्छन्न संत्रास की कहानी है। संत्रास का ही एक हिस्सा है मृत्युबोध या मृत्यु से साक्षात्कार। नयी कहानी में मृत्युबोध की झलक द्रष्टव्य है। कृष्ण बलदेव वैद की कहानी 'रात', भीष्म साहनी की 'यादें' और मन्नू भंडारी की 'क्षय' में मृत्युबोध का विचारगत प्रयोग किया गया है।

कहना न होगा कि नयी कहानी का भावगत और विचारगत वितान बेहद विस्तृत और यथार्थपरक है। 'नयी कहानी' पर यह आरोप लगता है कि इसकी कुण्ठा, पराजय और घुटन जैसी वृत्तियाँ पूर्ववर्ती कहानी से नकल की गई हैं। राजेन्द्र यादव ने इस आरोप से नयी कहानी का बचाव करते हुए लिखा है – "सतही दृष्टि से देखने वालों ने अक्सर ही इस दशक की कुछ कहानियों पर जैनेन्द्र और अज्ञेय की कुण्ठा, पराजय और घुटन के पुनर्प्रस्तुतीकरण का आरोप लगाया है। हो सकता है हममें से कुछ ने उन्हीं स्थितियों और चरित्रों को दुहराया हो लेकिन जरा गहराई से देखने पर साफ हो जाएगा कि जिस कुण्ठा, पराजय और घुटन को सत्य मानकर जैनेन्द्र और अज्ञेय ने अपनी कहानियों का ताना-बाना बुना था, उसी सब को आज के कहानीकार ने अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में, अधिक तटस्थ और निर्वैयक्तिक दृष्टि के साथ चित्रित किया है।"[13] दरअसल, परम्परा के नकार को नयी कहानी की एक प्रवृत्ति माना जा सकता है। बकौल मैनेजर पाण्डेय "राजेन्द्र यादव जिस नयी कहानी आन्दोलन के एक नेता और लेखक थे उसकी एक प्रवृत्ति थी – हिन्दी कथा लेखन की पूर्ववर्ती परम्परा का लगभग निषेध। नयी कहानी के नेताओं ने अपने पूर्ववर्ती कहानीकारों – जैनेन्द्र, अज्ञेय और यशपाल की कहानी-कला की देन को अस्वीकार किया।"[14]

नयी कहानी का नयापन, अन्तर्वस्तु और शिल्प-विधान दोनों के वैशिष्ट्य के कारण हैं। इसके कथाकारों में पूर्ववर्ती परम्परा का अस्वीकार और नवीन प्रयोग पर बल जिस तरह अन्तर्वस्तु में दिखाई देता है उसी तरह शिल्प में भी यह मौजूद है। सूक्ष्मता, सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता, आंचलिकता, बिम्बात्मकता, कथानक के भीतर कथा और फैंटेसी जैसी अनेक विशेषताएँ नयी कहानी के शिल्प को समृद्ध करती हैं।

संकेतों के माध्यम से बात कह देने की कला नयी कहानी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। पूर्ववर्ती कहानियों में भी सांकेतिकता का प्रयोग यदा-कदा मिलता है लेकिन नयी कहानी में इसका प्रयोग व्यवस्थित और विविध स्तरीय होने लगा। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा', निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'सूटकेस' जैसी कहानियों में सांकेतिक शिल्प-विधान द्रष्टव्य है।

नयी कहानी की सांकेतिकता अनेक बार प्रतीकात्मकता में परिणत हो जाती है। ऐसा बोध होता है कि समूचा कथानक किसी प्रतीकात्मक विधान की अभिव्यक्ति है। राजेन्द्र यादव की 'प्रश्नवाचक पेड़' मार्कण्डेय की

'तारों का गुच्छा' और दूधनाथ सिंह की 'रीछ' कहानी में प्रतीकात्मकता परिलक्षित होती है। कहना न होगा कि नयी कहानी 'सन्दर्भों' और 'संकेतों' के सहगमन की कहानी है। "ये रूपक हैं, बिम्ब हैं, प्रतीक हैं, संवेदन हैं, प्रभावन हैं। ... ये संकेत शिल्प की बड़ी बारीक संवेदनशील और अनिर्वचनीय भाषा प्रक्रिया को उद्घाटित करते हैं। नयी कहानी इनके अन्तर्सूत्रों से गुँथी-पुटी प्रतीत होती है।"[15]

'नयी कहानी' का एक भाग आंचलिक कहानियों का है। इनका शिल्प आंचलिक शब्दों, आंचलिक मुहावरों और आंचलिक दृश्यों से निर्मित है। फणीश्वरनाथ 'रेणु', शैलेश मटियानी की कहानियों में आंचलिक शिल्प का प्रयोग बहुतायत में किया गया है।

बिम्ब-विधान की अद्भुत क्षमता नयी कहानी को पूर्ववर्ती कहानी से अलगाती है। इसमें ताजे, अछूते और विविध स्तरीय बिम्बों का प्रयोग एक कठिन रचनात्मक संकल्प के रूप में दिखाई पड़ता है। इसमें जीवन की जटिलतम अनुभूतियों को बिम्बात्मक अभिव्यक्तियों के माध्यम से सहज ग्राह्य बना दिया है। इसके बिम्ब केवल चाक्षुष बिम्ब नहीं हैं। ध्वनि बिम्बों का समायोजन भी बहुत बुद्धिमतापूर्वक किया गया है। निर्मल वर्मा और राजेन्द्र यादव की कहानियों में बिम्बात्मक शिल्प का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है।

इस भाँति नवीन अन्तर्वस्तु और नूतन शैल्पिक विधान को लेकर युग के जटिल अनुभवों को यथार्थ के आलोक में पुनर्सृजित करने का कार्य नयी कहानी ने किया है। "नये कथ्य, नये प्रयोग और नव-नव जीवन मूल्यों द्वारा नयी कहानी ने हिन्दी कथा साहित्य को नई अर्थवत्ता तथा कला-सम्चेतना प्रदान की है जो नितान्त नई उपलब्धि है।"[16] इस आन्दोलन को खड़ा करने का श्रेय किसे दिया जाए? यह प्रश्न भी निर्विवाद नहीं है। दरअसल "किसी भी साहित्यिक विधा का आविष्कार किसी निश्चित तिथि और व्यक्ति द्वारा नहीं होता है, बल्कि उसमें कई समानधर्मी साहित्यकारों की सृजन परम्परा का भी योग रहता है, फिर भी ऐतिहासिक सन्दर्भ में उसके प्रथम प्रयोक्ता को प्रवर्त्तक का श्रेय दिया जाता है। ... एक ओर डॉ॰ नामवर सिंह 'निर्मल वर्मा' और उनकी 'परिन्दे' कहानी को यह श्रेय प्रदान करते हैं, तो दूसरी ओर सुरेन्द्र सिन्हा 'राजेन्द्र यादव' को। निस्संग भाव से देखा जाए तो कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव तीनों इस श्रेय के अधिकारी हैं।"[17]

'नयी कहानी' आन्दोलन को कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश ने खड़ा किया लेकिन इस दौर के लगभग 50 लेखकों ने इस आन्दोलन को मजबूत किया, इसे सजाया-सँवारा। इस आन्दोलन की वैचारिकी की निमित्ति में राजेन्द्र यादव का योग अविस्मरणीय है। इन्हें इस आन्दोलन का नायक भी कह सकते हैं। प्रेम भारद्वाज के शब्दों में – "राजेन्द्रजी नयी कहानी आन्दोलन के नायक बने – कमलेश्वर और मोहन राकेश के साथ। उस आन्दोलन के वैचारिक पक्ष को सबसे ज्यादा मजबूती प्रदान की। एक ऐसा आभा मण्डल रचा जिसकी चकाचौंध में कुछ महत्त्वपूर्ण लेखक हाशिये पर खड़े नायकों का नायकत्व देखते रहे।"[18]

5.2.3. राजेन्द्र यादव की कहानियों में बदलते मूल्य और मध्यमवर्गीय यथार्थ

साहित्यकार के रूप में राजेन्द्र यादव का व्यक्तित्व बहुआयामी है। 'नयी कहानी' आन्दोलन का प्रवर्त्तन और कहानी को केन्द्रीय विधा के रूप में स्थापित करने का श्रेय तो इन्हें है ही, साहित्य की अन्य विधाओं में भी इनके योग की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इन्होंने 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग', 'कुलटा', 'शह और मात', 'अनदेखे अनजाने पुल', 'एक इंच मुस्काएं', 'मन्त्रविद्ध' और 'एक था शैलेन्द्र' जैसे आठ उपन्यास लिखे। हंस के सम्पादक के रूप में राजेन्द्र यादव की भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण है कि अनेक बार आलोचक उनके सम्पादक रूप को उनके साहित्यकार रूप से भी अधिक सशक्त मानते हैं। इन्होंने कविता-संग्रह भी लिखे, आलोचनात्मक लेख लिखे, कई किताबों का सम्पादन किया, बाल-साहित्य लिखा और अनेक रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया।

कहानीकार राजेन्द्र यादव के कुल ग्यारह कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं – देवताओं की मूर्तियाँ (सन् 1951), खेल खिलौने (सन् 1953), जहाँ लक्ष्मी कैद है (सन् 1957), अभिमन्यु की आत्महत्या (सन् 1959), छोटे-छोटे ताजमहल (सन् 1961), किनारे से किनारे तक (सन् 1962), टूटना (सन् 1966), ढोल और अपने पार (सन् 1986), चौखटे तोड़ते त्रिकोण (सन् 1987), वहाँ तक पहुँचने की दौड़ और हासिल तथा अन्य कहानियाँ (सन् 2006)।

इनकी कहानियों में पुराने संस्कारों से मुक्त होने का संघर्ष मध्यमवर्गीय समाज की समस्याएँ और चुनौतियाँ, सम्बन्धों का विघटन, विशेषतः स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का बदलता स्वरूप, स्त्री अधिकारों की चिन्ता, व्यक्ति के मनोजगत् की द्वन्द्वात्मक स्थिति और व्यक्तिपरक समाजवाद जैसे विषयों को उठाया गया है।

राजेन्द्र यादव की कहानियाँ पुराने संस्कारों को अस्वीकार करने और नए संस्कारों को गढ़ने के लिए संघर्ष करने की कहानियाँ हैं। अजनबी, असम्पृक्त, निर्वासित, निर्भाव और एलियनेशन जैसी सूक्तियों और दकियानूसी शब्दावली के सहारे कहानी नहीं लिखी जा सकती उसके लिए हमें साहित्य सम्बन्धी अपनी सम्पूर्ण धारणा को परिशोधित करना होगा।[19]

राजेन्द्र यादव की कहानियों में मध्यमवर्गीय समाज का यथार्थ चित्रण है। उन्होंने उन सामाजिक रूढ़ियों और मान्यताओं का विरोध किया जो व्यक्ति के विकास में बाधक बनती हैं। इनकी कहानियों के पात्र आदर्शलोक या कल्पना जगत् के पात्र नहीं है बल्कि मध्यमवर्गीय समाज की सच्चाइयों से जूझने वाले ऐसे पात्र हैं जो अपनी सामान्य ज़िंदगी और जीवन की सभी विसंगतियों के साथ हमारे समक्ष आते हैं।

'नयी कहानी' बदली हुई परिस्थितियों और बदले हुए जीवन-मूल्यों को अभिव्यक्त करने वाली कहानी है। नई परिस्थितियों में समाज, परिवार, धर्म, दाम्पत्य और यौन-सम्बन्धी पुरा-मूल्यों में व्यापक बदलाव आया। राजेन्द्र यादव की कहानियों में नये-पुराने जीवन मूल्यों का संघर्ष भी है और नई पीढ़ी की चिन्ता भी। पुरानी पीढ़ी की नई पीढ़ी के सन्दर्भ में सोच के विषय में राजेन्द्र यादव का मत है कि "हम सबकी ट्रेजेडी यह है कि नई जेनेरेशन

ग्रो करे और हमारे ब्लू प्रिंट किये हुए नक्शे पर करे जो हमने उन पर चिपकाया है।"[20] स्पष्ट है कि राजेन्द्र यादव पुराने मूल्यों को नये सन्दर्भों में गैर ज़रूरी मानते हैं।

इनकी कहानियों में सम्बन्धों के विघटन का मूल कारण आर्थिक विषमता है। इनकी कहानियाँ सम्बन्धों के तिरस्कार की नहीं, अस्वीकार की कहानियाँ हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बदलते स्वरूप और स्त्री-मुक्ति एवं स्त्री अस्मिता को लेकर राजेन्द्र यादव ने अनेक कहानियाँ लिखीं। "राजेन्द्र यादव की स्त्री-दृष्टि कमोबेश 'सीमोन द बउवार' से प्रभावित है और वे सीमोन द्वारा दी गई स्त्री-मुक्ति की इस परिभाषा को स्वीकार भी करते हैं कि स्त्री-मुक्ति एक गहरा दायित्व-बोध है। स्त्री और पुरुष दोनों के कन्धे पर समान रूप से पड़ा गहरा दायित्वबोध, जो दोनों के सम्बन्धों के पारम्परिक स्वरूप को निरस्त कर अपनी-अपनी स्वायत्तता में दूसरे की अनन्यता को देखने का आग्रह करता है।"[21]

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बदलते स्वरूप को 'खेल खिलौने', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'छोटे-छोटे ताजमहल' और 'हासिल' जैसी कहानियों में देखा जा सकता है। राजेन्द्र यादव की कहानियाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बदलते स्वरूप के चित्रण से आगे बढ़ कर स्त्री-अस्मिता के संघर्ष की बात करती हैं। "स्त्री की अस्मिता का संघर्ष राजेन्द्र यादव की कहानियों का केन्द्रीय विषय है जिसके माध्यम से वे भारतीय समाज (विशेष रूप से मध्यमवर्ग) पर चोट ही नहीं करते हैं बल्कि उसकी गतिशीलता को भरपूर रेखांकित करते हैं। समाज को देखने की यह दृष्टि स्त्री-विमर्श के इस गैर मामूली दौर में पहले से कहीं ज्यादा प्रासंगिक और ज़रूरी है। इन्हें महज स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की कहानियाँ नहीं माना जाना चाहिए।"[22]

राजेन्द्र यादव की कहानियाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के पुरा-मूल्यों को तो अस्वीकार करती ही हैं, साथ ही, प्रेम, विवाह और यौन मूल्यों को भी पुनर्परिभाषित करने की कोशिश करती हैं। इनकी 'प्रतीक्षा' कहानी में गीता और नन्दा का समयौनाचार पुरा यौन मूल्यों को ध्वस्त कर देता है।

राजेन्द्र यादव की कहानियों का मूल स्वर है – 'सामाजिकता'। लेकिन यह सामूहिक सामाजिकता न होकर व्यक्तिगत सामाजिकता है। व्यक्तिगत सामाजिकता यानी व्यक्ति का व्यक्तित्व बचाये रखना और उसे इतनी ईमानदारी, आत्मीयता और संवेदनशीलता के साथ चित्रित करना कि वह अधिक-से-अधिक व्यापक, कन्विंसिंग और कॉम्प्रिहैंसिव (Comprehensive) बना रहे। इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि व्यक्ति को उसके सामाजिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक परिवेश से अलग किए बिना कथाकार व्यक्ति और उसके परिवेश से तादात्म्य स्थापित कर ले।[23] दरअसल, राजेन्द्र यादव की कहानियाँ 'व्यक्ति' और 'समाज' की दो अलग-अलग धाराओं को मिलाकर जीवन को उसकी समग्रता और संश्लिष्टता में प्रस्तुत करती हैं।

राजेन्द्र यादव की कहानियाँ पुराने मूल्यों के अस्वीकार और नवीन मूल्यों के स्थापन के संघर्ष की कहानियाँ हैं। स्वीकार-अस्वीकार से टकराती इनकी कहानियाँ सामाजिक चिन्ता की कहानियाँ हैं। "राजेन्द्र यादव

की सामाजिक चिन्ता केवल स्त्री की मुक्ति, दलितों की स्वाधीनता और सम्प्रदायवाद के अन्त तक सीमित नहीं है। इन सबके साथ ही वे शोषण और दमन से मुक्त समाज व्यवस्था के लिए संघर्ष की भी चिन्ता करते हैं।"[24]

5.2.4. 'टूटना' कहानी में अभिव्यक्त स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

'टूटना' कहानी पति-पत्नी के सम्बन्धों में आए अजनबीपन, अकेलापन, घुटन, टूटन और विघटन को उजागर करती है। यह कहानी दो वर्गों की जीवन-शैली, संस्कार और मूल्यों के अन्तर्विरोध और संघर्ष की गाथा है जिसकी चरम परिणति सम्बन्ध-शून्यता में होती है। 'किशोर' एक निम्न मध्यमवर्गीय युवक है जबकि 'लीना' की रग-रग में आभिजात्य वर्ग की नफ़ासत और गरिमा समाई हुई है। दोनों प्रेम-विवाह तो कर लेते हैं लेकिन दोनों के मध्य आर्थिक वैषम्य की इतनी गहरी खाई पैदा हो जाती है जिसे पाटना मुश्किल हो जाता है। दोनों के सामंजस्य में वर्गीय संस्कार बाधक बनते हैं। किशोर धीरे-धीरे स्वयं को अकिंचन और छोटा महसूस करने लगता है और उसमें हीन-ग्रन्थि पैदा हो जाती है। हीन-ग्रन्थि उसके मन में आभिजात्य वर्ग के प्रति आक्रोश और प्रतिशोध का भाव भर देती है। दरअसल, उसका विरोध लीना से नहीं, दीक्षित साहब से है। "उसका और लीना का संघर्ष मात्र पति-पत्नी के व्यक्तिगत जीवन का संघर्ष नहीं है अपितु समाज के दो विभिन्न परिवेशों का संघर्ष है, आभिजात्य वर्ग और निम्न मध्यमवर्ग के मूल्यों का संघर्ष है।"[25] यह संघर्ष और वर्गीय अन्तर पारिवारिक विघटन की स्थिति पैदा करते हैं। किशोर और लीना के सम्बन्धों में आया दरार, अजनबीपन अन्ततः दोनों को अलग-अलग रहने को मजबूर कर देते हैं।

दरअसल, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में पुराने मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं। पुरुष का वर्चस्ववादी स्वभाव अब स्त्री को पराधीन नहीं रख सकता। स्त्री स्वावलम्बी हुई है इस कारण पति-पत्नी के सम्बन्धों में एक-दूसरे पर एकाधिकार का परम्परागत मूल्य भी कमजोर हुआ है। बदलती परिस्थितियों में रिश्तों में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थितियों ने मध्यमवर्गीय व्यक्ति को बहुत अकेला किया है। राजेन्द्र यादव का मत है कि "चूँकि अपने आस-पास वातावरण कन्वेनिएंट नहीं था, सम्बन्ध बहुत साफ-सुथरे नहीं थे, टेंशन बना हुआ था, इसलिए यह व्यक्ति (मध्यमवर्गीय) बहुत एकाकी, अकेला और नासमझा हुआ महसूस करता था ...।"[26]

किशोर का पीछा दीक्षित की अभिजात बोध के दर्प और सभ्य होने के अहंकार से भरी आँखें तथा उनके दरवाजे पर लिखा 'कुत्ते से सावधान' हमेशा करते रहते। उसे बार-बार तुच्छ, असहाय, गरीब, असभ्य और गँवार होने का अहसास कराते रहते हैं। वह स्वयं को विश्वास दिलाता – "वर्ग की दीवारें मनुष्य की भावनाओं को कब तक कुचलेंगी ? आदमी ही तो है जो इतिहास को बनाता और बदलता है। प्रतिष्ठा धन की, जाति की, पोजीशन की हम लोगों के भाग्य का निर्णायक क्यों हो ?"[27] लेकिन ये वाक्य उसके अपमान के दंश को कम नहीं कर पाते। इस कारण वह दीक्षित से प्रतिशोध और प्रतिस्पर्धा भाव से भर गया। कहानी में त्रासद स्थिति का सबसे बड़ा कारण है – लीना और किशोर के मध्य सामंजस्य का अभाव। दोनों एक-दूसरे की बातों को सलाह या परामर्श के रूप में न लेकर व्यंग्य और अपमान के रूप में लेते हैं। इनके रिश्ते में विश्वास और संतुलन का अभाव है, एक-दूसरे की समझ का अभाव है और अपनी-अपनी बातों पर अड़े रहने की जिद है। प्रश्न-प्रतिप्रश्न का दौर तब तक चलता

रहता है जब तक दोनों के बीच तनाव न हो जाए। इस मानसिक अन्तराल ने ही उनके रिश्ते में थकान, ऊर्जाहीनता और दीर्घकालिक शून्य को पैदा किया है।

इनके वर्गीय संस्कार और स्वभाव इसके लिए जिम्मेदार हैं। लीना का दृढ़ और जिद्दी स्वभाव उसे बार-बार अपनी बात मनवाने के लिए उकसाता है तो किशोर के मन का हीनता-बोध बार-बार उसे अपने स्वाभिमान के आहत होने का अहसास कराता, उसे अपने बचाव में अड़े रहने, न झुकने के लिए मजबूर कर देता। ऐसी स्थिति में तनाव, असंतुलन, अजनबीपन और अकेलापन आना स्वाभाविक है। इन समस्त स्थितियों का कारण है – दोनों के वर्गीय संस्कार और जीवन मूल्यों का अन्तराल। जिसके कारण न तो लीना किशोर को उसके मूल रूप में स्वीकार कर पाती है न किशोर लीना को। दोनों एक-दूसरे को अपने अनुरूप बदलने की कोशिश करते रहते हैं। परिणामस्वरूप दोनों में मतभेद बढ़ता गया और सम्बन्धों का अन्तराल धीरे-धीरे शून्यता में परिणत हो गया।

राजेन्द्र यादव ने पति-पत्नी के रिश्तों के विघटन के इस यथार्थ को बिम्बों और संकेतों के माध्यम से बेहद प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया है। छुरी और काँटे के क्रॉस का प्रतीक रिश्ते के टकराव का द्योतक है। सौहार्द, प्रेम और सामंजस्य तो समानान्तर रहने में है। क्रॉस में वर्चस्व है, सामंजस्य नहीं। कहानी में दृश्य बिम्बों के साथ-साथ ध्वनि बिम्बों की योजना भी अद्‌भुत है।

" 'टूटना' कहानी सम्बन्धों और मूल्यों के टूटते-बिखरते जाने की कलात्मक अभिव्यक्ति है। स्त्री-पुरुष के स्टीरियोटाइप्ड सम्बन्धों की स्वीकृति यहाँ नहीं है। यह कहानी विघटित सम्बन्धों की किरचों के बीच वर्तमान और भविष्य की कटी-फटी लाश ही देखती है, सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध की कोई वैकल्पिक रूपरेखा नहीं।"[28]

उपर्युक्त विवेचन के आधार यह कहा जा सकता है कि 'टूटना' कहानी वर्ग-संघर्ष की कहानी नहीं, वर्गीय संस्कारों, जीवन-शैली और मूल्यों के संघर्ष की कहानी है। विघटित होते सम्बन्धों की विकल्पहीन व्यवस्था है जहाँ तनाव है, अकेलापन है, अजनबीपन है, विघटन है, घुटन है और टूटन है लेकिन भविष्य की कोई रूपरेखा नहीं। एक अन्तहीन यात्रा है, 'टूटना'।

5.2.5. 'टूटना' : मनोजगत् का द्वन्द्व और अस्तित्व की तलाश

'नयी कहानी' ने व्यक्ति और समाज के विविध आयामों के निरूपण हेतु मनोविश्लेषण का आश्रय लिया है। फ्रायड-एडलर-युंग का अन्तर्प्रभाव और दमित वृत्ति, मातृरति, हीनता-ग्रन्थि, अन्तर्मुखी चेतना का अन्तर्घटन इसी का परिणाम है। इसमें मानव-मन के दुर्भेद्य मनःस्तरों का सूक्ष्म आकलन किया गया है। व्यक्ति मन के दुःस्वप्न, टूटन और घुटन यहाँ बड़ी अन्तर्लीनता के साथ अंकित हुए हैं। नर-नारी के सम्बन्धों में इससे और स्वाभाविकता समाविष्ट हुई है। पुरुष कथाकार नर पात्रों को और नारी कथाकार नारी पात्रों को अपने अन्तर्साक्ष्य के सहारे परिकल्पित कर रहे हैं। वे आन्तरिक और बाह्य अनुभव खण्डों को, जीवन की अपरिवर्तनीय आत्म-ग्रन्थियों को तथा विभिन्न मनःस्थितियों को बड़ी पच्चीकारी के साथ अंकित कर रहे हैं। 'टूटना' का पात्र 'किशोर' हीनता-ग्रन्थि से मनःरुग्ण होकर जो अतिचार करता है – वह सब मनोविज्ञान का विषय है।[29] इस कहानी

का केन्द्रीय तत्त्व 'किशोर' ही हीनता-ग्रन्थि है। तमाम घटनाएँ, परिघटनाएँ और क्रिया-प्रतिक्रियाएँ 'किशोर' की इस मनःरुग्ण स्थिति के इर्द-गिर्द ही गुनी-बुनी गई हैं।

हीनता-ग्रन्थि व्यक्ति की ऐसी मनोदशा की उपज है जिसमें उसे यह बार-बार अनुभव होता या कराया जाता है कि वह तुच्छ है, कमजोर है, दूसरा व्यक्ति उससे श्रेष्ठ है, बेहतर है। यह अपमान व्यक्ति के मनोजगत् में कुण्ठा का रूप ले लेता है। यही कुण्ठा हीनता-ग्रन्थि को जन्म देती है। किशोर हीनता-ग्रन्थि का शिकार है। इसके कई कारण हैं – पहला, लीना का गैर-जिम्मेदार व्यवहार और गैर ज़रूरी क्रियाकलाप, जिनके कारण जाने-अनजाने किशोर का स्वाभिमान बार-बार आहत होता है और उसे यह अहसास होता है कि वह गरीब, असभ्य, तुच्छ और कमजोर है। इस कारण उसमें 'इनफीरियॉरिटी काम्प्लेक्स' आ जाता है। दूसरा कारण है दीक्षित का स्वभाव, अभिमान, अभिजात बोध और किशोर को 'गँवार' कहने की आदत। दमन, अपमान और अहम् पर निरन्तर होने वाला प्रहार कुण्ठा और हीनता-ग्रन्थि में बदल जाता है। इस कारण दीक्षित के प्रति उसके मन में विद्वेष भरी प्रतिस्पर्धा इस तरह भर जाती है कि वह कल्पना में भी दीक्षित से पंजा लड़ाने और जीतने का स्वप्न देखता रहता है। यह भय का मनोविज्ञान है। दीक्षित का भय जो किशोर के मन में गहरा बैठ गया है। "उनकी अफसरी दबदबा, बाहर का रौब और घर का लीना तक का, भय कुछ इस तरह उसकी चेतना पर छा गया था कि वह मजबूर हो उठता था।"[30] किशोर की हीनता-ग्रन्थि और प्रतिशोध एवं प्रतिस्पर्धा की भावना इसी मानसिक स्थिति की प्रतिक्रिया है।

हीनता-ग्रन्थि और कुण्ठा का शिकार व्यक्ति अक्सर अपने अस्तित्व पर संकट महसूस करता है। उसे बार-बार यह आभास होता है कि कोई उसके अस्तित्व और अस्मिता को मिटा देना चाहता है। किशोर भी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निरन्तर संघर्षरत रहता है। उसके अस्तित्व के रेशे-रेशे में एक अनवरत, अघोषित युद्ध चलता रहता है, जैसे उसकी उपस्थिति ही उसकी जीवनी शक्ति का पर्याय बन गई है। वह अपने अस्तित्व का आभास हर हाल में करा देना चाहता है।

अभाव व्यक्ति के मनोजगत् को संचालित करता है। जिस व्यक्ति के पास जो संसाधन नहीं रहता है और जिसके कारण उसे किसी समस्या का सामना करना पड़ता है, वह वस्तु उसके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बन जाती है। यह मनोविज्ञान है। अभाव का यह मनोविज्ञान किशोर में भी दिखाई देता है। वह अपनी सीमाओं से, गरीबी से, अपने तथाकथित गँवारूपन से जीतने की बार-बार कोशिश करता है। धन उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन जाता है। वह किसी भी कीमत पर अधिकाधिक पैसा कमा लेना चाहता है। यथार्थ में दीक्षित से प्रतिस्पर्धा न कर पाने के कारण वह कल्पना में ही निरन्तर प्रतिस्पर्धा करता रहता है। यह घटना राजेन्द्र यादव के जीवन के यथार्थ की याद दिलाती है। स्वयं राजेन्द्र यादव ने स्वीकार किया है – "हैंडीकैप्ड होना सीमा में बँध जाना है, यह मुझे स्वीकार नहीं हुआ। मेरे भीतर अपनी सीमाओं से ऊपर उठने की तीव्र आकांक्षा जागी। कल्पना की दुनिया में ही मैं उस अपंगता से उद्धार पा सकता था। मेरे लेखन की वही शुरुआत थी। वहीं मुझे लगा कि जो सीमाएँ मुझे मिली हैं उनका अतिक्रमण करना है, इसके लिए मैंने दुर्गम यात्राएँ की, एक्सप्लोरेशन किए, पहाड़ों पर चढ़ा। वो सब कुछ

किया जो मन से डर और सीमाओं को हटाने के लिए किया जा सकता था।"[31] डर और सीमाओं से जीतने की ऐसी ही तीव्र उत्कण्ठा किशोर में भी परिलक्षित है।

अहम् की तुष्टि, आत्मनिर्वासन और द्वैध व्यक्तित्व किशोर के मन के कई-कई स्तरों की देन है। ऐसा लगता है जैसे वह अपनी ही चेतना के कई-कई स्तरों से खुद ही जूझ रहा हो, उन शत्रुओं से जूझ रहा हो जिन्हें उसी ने अपनी कल्पना से निर्मित कर छोड़ा है – लड़ने के लिए, प्रतिस्पर्धा करने के लिए, जीतने के लिए और अहम् को तुष्ट करने के लिए। उन्हें हराकर उसे आत्मतोष मिलता है, उसके विद्वेष, घृणा और प्रतिस्पर्धा के भाव कुछ शान्त होते हैं। हीनता-बोध की ग्रन्थि कुछ ढीली पड़ती है। श्रेष्ठता बोध की अनुभूति उसे सुख देती है। वह अपनी सीमाओं को जीत चुका है। वह कोई दूसरा किशोर है या कि किशोर की चेतना का दूसरा स्तर । उसे पुराने किशोर से इस तरह की घृणा है कि वह उसे देखना नहीं चाहता। इसलिए ऐसे लोगों के साथ जिनमें उसे पुराने किशोर की छवि दिखती है, वह बेहद क्रूर व्यवहार करता है और इसमें आत्मतोष महसूस करता है। इसे अहम् की तुष्टि कहना अधिक उचित है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'टूटना' कहानी मन और चेतना की विभिन्न परतों को विश्लेषित करने वाली कहानी है। व्यक्ति में हीनता-ग्रन्थि आ जाने, उसके मनोरुग्ण हो जाने और ऐसी मनःस्थिति में अस्तित्व के तलाश की बेचैनी, व्यक्ति में अनेक अनाचारों और प्रतिशोधात्मक भावों को जन्म देती है। एक व्यक्ति के अपने मूल्यों, मान्यताओं और चिन्तन से टूटते-बिखरते जाने की यातना की कहानी है, 'टूटना'।

5.2.6. पाठ-सार

'टूटना' कहानी पूर्वदीप्ति शैली में लिखी गई है। कहानी का नायक किशोर एक निम्न मध्यमवर्गीय युवक है और नायिका लीना एक आभिजात्य वर्ग की लड़की। दोनों प्रेम-विवाह करते हैं लेकिन कुछ समय बाद वर्ग का प्रश्न पति-पत्नी के बीच आ जाता है और दोनों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। लेखक ने इस घटना के माध्यम से बदलते दौर में टूटते-बिखरते रिश्तों और मूल्यों को अभिव्यक्त किया है। मेहता और लीना के बीच होने वाले वार्तालाप किशोर को बार-बार तुच्छता का अहसास कराते हैं। वह अपमानित महसूस करता है। ये घटनाएँ उसके मन में हीनता-ग्रन्थि पैदा करती हैं। दीक्षित साहब का अभिजात संस्कार और किशोर को 'गँवार' समझना उसकी हीनता-ग्रन्थि को इतना मजबूत कर देते हैं कि अभिजात वर्ग के प्रति उसके मन में प्रतिशोध और प्रतिस्पर्धा का भाव भर उठता है। लीना और उसके मध्य संघर्ष बढ़ जाता है। कहानी किशोर के माध्यम से व्यक्ति के मन के द्वन्द्व और जटिल ग्रन्थि प्रक्रियाओं को उजागर करती है। किशोर की हीनता-ग्रन्थि, अपमान बोध और लीना का जिद्दी स्वभाव उनके सम्बन्धों को कमजोर कर देते हैं। दोनों अलग हो जाते हैं। किशोर की हीनता-ग्रन्थि और कुण्ठा भाव उसके मनोजगत् को इस तरह आच्छादित कर देते हैं कि वह कल्पना में भी निरन्तर दीक्षित से प्रतिस्पर्धा करता रहता है। वह अपनी अस्मिता की तलाश में कभी स्वयं से तो कभी दीक्षित की आभासी छवि से जूझता रहता है। इस तरह यह कहानी एक ओर दो अलग-अलग वर्गों के तनाव और जीवन मूल्यों के अन्तर के कारण पति-पत्नी के रिश्तों में आए बिखराव को उजागर करती है तो दूसरी ओर आधुनिक मनुष्य के मानसिक द्वन्द्व,

अस्मिता की तलाश और मनोजगत् की विभिन्न परतों का विश्लेषण करती है। लीना के पत्रों की पंक्तियाँ 'काण्ट वी फॉरगेट द पास्ट' उधार लें तो यह कहानी पति-पत्नी के रिश्ते के टूटन-घुटन की ऐसी कहानी है जिसमें अतीत के न भूल पाने की बेचैनी है और भविष्य का कोई अता-पता नहीं। यह अस्तित्व के रेशे-रेशे में चल रहा अनवरत अघोषित युद्ध है।

5.2.7. बोध प्रश्न

1. नयी कहानी की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. " 'टूटना' कहानी की त्रासदी 'हीनता-ग्रन्थि' की देन है।" इस कथन पर विचार व्यक्त कीजिए।
3. " 'टूटना' कहानी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के विघटन की गाथा है।" इस कथन के आलोक में कहानी में अभिव्यक्त सम्बन्धों का विश्लेषण कीजिए।

5.2.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. हमारे युग का खलनायक राजेन्द्र यादव, सं. : भारत भारद्वाज, साधना अग्रवाल, शिल्पायन, दिल्ली
2. 23 लेखिकाएँ और राजेन्द्र यादव, सं. : गीताश्री, किताबघर, नई दिल्ली

5.2.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची :

01. सूर्यप्रसाद दीक्षित, 'नयी कहानी', 'अकहानी' और 'सचेतन कहानी', हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा, सं. : रामदरश मिश्र, पृष्ठ 187
02. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका (शुरू की बात), पृष्ठ 6
03. देवीशंकर अवस्थी, नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, पृष्ठ 15
04. इन्द्रनाथ मदान, हिन्दी कहानी : अपनी जबानी, पृष्ठ 5
05. राजेन्द्र यादव, आज की कहानी : परिभाषा के नये सूत्र, नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, सं. : देवीशंकर अवस्थी, पृष्ठ 98
06. वही, पृष्ठ 98-99
07. नामवर सिंह, नयी कहानी और एक शुरुआत, नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, सं. : देवीशंकर अवस्थी, पृष्ठ 240
08. सविता जैन, समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा, हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा, सं. : रामदरश मिश्र, पृष्ठ 120-121
09. राजेन्द्र यादव, आज की कहानी : परिभाषा के नये सूत्र, नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति, सं. : देवीशंकर अवस्थी, पृष्ठ 100
10. सविता जैन, समकालीन हिन्दी -कहानी और मूल्य-संघर्ष की दिशा, हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा, सं. : रामदरश मिश्र, पृष्ठ 121

11. देवीशंकर अवस्थी, नयी कहानी, सन्दर्भ और प्रकृति, पृष्ठ 161
12. राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानान्तर, पृष्ठ 36
13. राजेन्द्र यादव, आज की कहानी : परिभाषा के नये सूत्र, नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, सं. : देवीशंकर अवस्थी, पृष्ठ 99
14. मैनेजर पाण्डेय, राजेन्द्र यादव का 'हंस' विवेक, पाखी, सितंबर 2011, पृष्ठ 43
15. रमेश कुन्तल मेघ, आधुनिकता के सन्दर्भ और नयी कहानी के प्रतिबिम्ब, हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा, सं. : रामदरश मिश्र, पृष्ठ 69
16. सूर्यप्रसाद दीक्षित, 'नयी कहानी', 'अकहानी' और 'सचेतन कहानी', हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा, सं. : रामदरश मिश्र, पृष्ठ 203
17. वही, पृष्ठ 189
18. प्रेम भारद्वाज, हूँ मैं जैसा तुमने कर डाला, पाखी, सितंबर 2011, पृष्ठ 6
19. राजेन्द्र यादव, टूटना, यह संग्रह, पृष्ठ 6
20. राजेन्द्र राव, गुनाहों के देवता (राजेन्द्र यादव से संवाद),पाखी, सितंबर 2011, पृष्ठ 23
21. रोहिणी अग्रवाल, कथा साहित्य में स्त्री दृष्टि, पाखी, सितंबर, 2011, पृष्ठ 94
22. मदन कश्यप, स्त्री वजूद की खोज की महागाथा, पाखी, सितंबर, 2011, पृष्ठ 73
23. राजेन्द्र यादव, आज की कहानी : परिभाषा के नये सूत्र, नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, सं. : देवीशंकर अवस्थी, पृष्ठ 102
24. मैनेजर पाण्डेय, राजेन्द्र यादव का 'हंस' विवेक, पाखी, सितंबर, 2011, पृष्ठ 45
25. सविता जैन, समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा, हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा, सं. : रामदरश मिश्र, पृष्ठ 126
26. अर्चना वर्मा, पुराने मूल्यों से टूटना मध्यमवर्ग (राजेन्द्र यादव से संवाद), पाखी, सितंबर, 2011, पृष्ठ 28
27. राजेन्द्र यादव, टूटना, पृष्ठ 139
28. रोहिणी अग्रवाल, कथा साहित्य में स्त्री-दृष्टि, पाखी, सितंबर 2011, पृष्ठ 89
29. सूर्यप्रसाद दीक्षित, 'नयी कहानी', 'अकहानी', और 'सचेतन कहानी', हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा, सं. : रामदरश मिश्र, पृष्ठ 196-197
30. राजेन्द्र यादव, टूटना, पृष्ठ 160
31. राजेन्द्र राव, गुनाहों का देवता (राजेन्द्र यादव से संवाद), पाखी, सितंबर 2011, पृष्ठ 21

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/

❖❖❖

खण्ड – 5 : कहानी – 2

इकाई – 3 : यही सच है – मन्नू भण्डारी

इकाई की रूपरेखा

5.3.0. उद्देश्य कथन
5.3.1. प्रस्तावना
5.3.2. 'यही सच है' कहानी का समय और परिवेश
5.3.3. 'यही सच है' का कथ्य और शिल्प
5.3.4. 'यही सच है' की पात्र-योजना
5.3.4.1. दीपा
5.3.4.2. संजय
5.3.4.3. निशीथ
5.3.4.4. इरा
5.3.5. पाठ-सार
5.3.6. बोध प्रश्न
5.3.7. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

5.3.0. उद्देश्य कथन

इस इकाई का उद्देश्य है –

i. हिन्दी कहानी के विकास में मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' की स्थिति को समझना।
ii. 'यही सच है' कहानी के कथ्य को जानते हुए कहानी के शिल्प-संरचना को समझना।
iii. 'यही सच है' कहानी की पात्र-योजना के विन्यास को समझना।
iv. 'यही सच है' कहानी की भाषा-योजना को समझना।

5.3.1. प्रस्तावना

मन्नू भंडारी की प्रसिद्ध कहानी 'यही सच है' के विभिन्न पहलू को आपके सामने प्रस्तुत करने से पूर्व हम आपके सामने कहानी के बारे में कहे गए तीन सन्दर्भ को सबसे पहले रखते हैं। ये सन्दर्भ आपको कहानी के विन्यास को समझने के रास्ते को आसान करेगी –

"यदि हमें एक कौम की तरह ज़िंदा रहना है तो हमें अपने दुखान्तों का वाजिब अर्थ समझना होगा – हमारी कहानी सबसे पहले हमारी कहानी होनी चाहिए।"

– नाइजीरिया के सुप्रसिद्ध कवि, कथाकार और चिन्तक चिनुआ अचिबी

“कहानी रूपरेखा में पूर्णत स्पष्ट, संतुलित, उद्देश्य के लिए पर्याप्त विस्तृत किन्तु भीड़भाड़ के तनिक भी संकेत से रहित और अपने ताने-बाने से पूर्ण होनी चाहिए।”

– पाश्चात्य आलोचक विलियम हेनरी हडसन

“नदी जैसे जलस्रोत की धारा है, मनुष्य वैसे ही कहानी का प्रवाह है।”

– रवीन्द्रनाथ ठाकुर

‘यही सच है’ मन्नू भंडारी की महत्त्वपूर्ण कहानी है। यह कहानी पहली बार सन् 1960 में मोहन राकेश के सम्पादन में निकलने वाली पत्रिका ‘नई कहानियाँ’ के जून अंक में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी दीपा नामक एक ऐसी स्त्री के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी है जिसके जीवन में दो पुरुष निशीथ और संजय बारी-बारी से आते हैं और दीपा की जीवन सरणी को प्रभावित करते हैं। इससे पहले हिन्दी कहानी में एक पुरुष का सम्बन्ध दो स्त्रियों से ज़रूर देखा गया था लेकिन कहानी में एक स्त्री का दो पुरुषों से सम्बन्ध हिन्दी कहानी के लिए एक नई घटना थी। दीपा अपने पहले प्रेम (निशीथ) में निराश होकर परिस्थितिवश एक नये व्यक्ति (संजय) से प्रेम कर रही है। वह इस प्रेम में अपनी पूरी सार्थकता खोज लेना चाहती है, अपने को उसकी तन्मयता में खो देना चाहती है परन्तु ऐसा नहीं कर पाती, क्योंकि पहले प्रेम की स्मृतियाँ रह-रहकर उसके मन को विचलित कर जाती हैं। संजय के प्रति उसके प्रेम में कहीं कोई न्यूनता नहीं है। न्यूनता है तो यही कि वह प्रेम निशीथ के प्रेम से भिन्न है, वह इस प्रेम को अपने जीवन का आधार मानना चाहती है परन्तु जब उसे इंटरव्यू के सिलसिले में कलकत्ता जाना पड़ता है और उसका मन फिर निशीथ को पाने के लिए व्याकुल हो उठता है। निशीथ उसके लिए बहुत कुछ करता है, उसे नौकरी भी दिला देता है परन्तु उसके प्रेम को वह नहीं लौटा पाता और कानपुर लौटने पर दीपा को एक बार फिर निशीथ की उपेक्षा का आभास मिलता है। दीपा अपने को रजनीगन्धा के फूल लेकर आए हुए संजय की बाँहों में पूरी तरह समर्पित कर देती है, जैसे कि अपने होने को दीपा जीवन के यथार्थ के प्रति समर्पित कर रही हो।

मन्नू भंडारी की कहानी ‘यही सच है’, आदर्श से यथार्थ में उतरकर उसे ही सच घोषित करने की कहानी है। यह कहानी जिस समय लिखी गई थी, उस समय तो यह एक क्रान्तिकारी और निर्णायक उद्घोष की तरह था। दो पुरुषों के प्रेम के बीच स्थित एक स्त्री का द्वन्द्व, उस दौर में एक नई बात थी।

‘यही सच है’ कहानी मन के भीतरी तहों में चलने वाले द्वन्द्व को दर्शाने वाली कहानी है जिस पर आठवें दशक में प्रख्यात कला फिल्म निर्देशक बासु चटर्जी ने एक फिल्म ‘रजनीगन्धा’ नाम से बनाई। इस फिल्म ने रजत जयन्ती मनाई और सर्वश्रेष्ठ कला फिल्म तथा सर्वश्रेष्ठ व्यावसायिक फिल्म पुरस्कार जीते। इस कहानी पर फिल्म बनाने के सन्दर्भ से बासु चटर्जी ने कहा – “ ‘यही सच है’ नाम की मन्नूजी की कहानी पढ़ी तो उनसे कहा कि ‘मैं इस पर फिल्म बनाना चाहता हूँ’। हालाँकि छोटी-सी कहानी में पत्रों का आदान-प्रदान भर है। उस पर किस तरह

फिल्म बनेगी, यह कई लोगों का विचार था, मगर मन्नूजी ने मेरे साथ मिलकर उसकी पटकथा लिखी पहली बार, और फिल्म ने उस वर्ष के दो प्रमुख अवार्ड जीते।"

5.3.2. 'यही सच है' कहानी का समय और परिवेश

'यही सच है' कहानी का समय, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की पारम्परिक धारणा के टूटने और परिवर्तित होते हुए समय में नए किस्म के सम्बन्ध बनने का है। साठ का दशक, एक ओर आजादी के बाद सपनों के पूरा न होने से उपजी निराशा का दौर था तो दूसरी तरफ भारतीय राजनीति में सोवियत रूस की राजनीति और उसकी योजनाओं के प्रभाव से भारत में विकसित होता हुआ नया समाज था। आर्थिक सम्बन्धों ने व्यक्ति के रिश्तों को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया। इस दौर में नए किस्म का सम्बन्ध निर्मित होता है। इस कहानी में एक स्त्री और दो पुरुष के बीच घटित होते हुए सम्बन्धों को हमें साठ के दशक में होने वाले परिवर्तन के सन्दर्भ में देखना चाहिए। कहानी का परिवेश नितान्त वैयक्तिक है। इस कहानी के तीन पात्र अपने निजी ज़िंदगी के राग-रंग से बँधे हैं। 'यही सच है' कहानी के परिवेश में कोई राजनैतिक, सांस्कृतिक या सामाजिक उपक्रम नहीं है। तीनों पात्रों के जीवन में घटित घटनाओं तथा उनके जीवन के राग-रंग को सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक विन्यास प्रभावित नहीं करते हैं। कहानी के पाठ से कभी-कभी यह लगता है कि कोई भी कहानी क्या अपने समय में प्रचलित राजनीति या सामाजिक घटनाओं से बाहर रहकर अपने चरित्र का निर्माण कर सकती है। कहानी के तीनों पात्रों के चरित्र के पाठ से हमें कोई भी विचार उभरता हुआ दिखलाई नहीं देता है। हालाँकि, यह भी कहा जाना चाहिए कि किसी भी कहानी या उसके पात्रों के विन्यास में कोई भी विचार उभरने का आग्रह क्यों रखा जाना चाहिए। पात्र अपने निजी ज़िंदगी में परिवर्तित होती हुई घटनाओं से प्रभावित होता हुआ ही अपने सपने, अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने की जद्दोजहद करता है। इस कहानी में विन्यस्त समय और परिवेश के सन्दर्भ को प्रेम प्रभावित करता है। कहानी के समय और परिवेश में घटित प्रेम से कुछ प्रश्न भी खड़े होते हैं। कहानी को पढ़ते हुए हमें इन सन्दर्भों को ध्यान में रखना चाहिए।

'यही सच है' कहानी प्रेम के पारम्परिक मिथक तोड़ती है। सामाजिक ताने-बाने को इस कहानी का प्रेम बड़ी ही सहजता और मासूमियत से, बिना किसी क्रान्तिकारी तेवर और आमूल-चूल परिवर्तन जैसे आन्दोलन के बिना ही ध्वस्त करता है। यह अपने समय में सम्पूर्ण हिन्दी कहानी के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस कहानी के रूप पर अगर हम गौर करें तो यह कह सकते हैं कि बाह्य परिस्थितियों की तुलना में पात्र की मनःस्थितियाँ ज्यादा प्रभावी होकर हमारे सामने आती हैं। अपने भीतर एक द्वन्द्व में उलझी स्त्री दीपा की कहानी, अपने मन को टटोलना, ईमानदारी से भावों के आधार पर प्रेम में चुनाव के संकट से जूझना, अपने भविष्य के लिए सामाजिक विन्यास में जोखिम उठाना, इस कहानी में एक स्त्री की अभूतपूर्व रचना है। इस आधार पर कहानी में कई सवाल उठते हैं। जैसे कि क्या प्रेम कोई स्थिर धारणा है ? क्या एकनिष्ठता ही प्रेम का चरित्र है ? क्या अतीत की स्मृति महज अतीत ही रह जाता है ? क्या अतीत अपने नए कलेवर में हमारे सामने फिर उपस्थित होता है ? क्या वर्तमान शीघ्रता से अतीत बन सकता है ? प्रेम एक मादक कल्पना है या सहज-स्वाभाविक मैत्रीपूर्ण सहज विकास ? ऐसे ही अनेक सवाल है जो इस कहानी को पढ़ते हुए दीपा, निशीथ, संजय के त्रिकोणात्मक सन्दर्भ से उपजते हैं।

5.3.3. 'यही सच है' का कथ्य और शिल्प

'यही सच है' ऊपरी तौर पर प्रेम के गहरे द्वन्द्व की कहानी प्रतीत होती है जहाँ एक युवती अपने दो प्रेमियों के बीच 'चुनाव' न कर पाने की यातना से जूझ रही है किन्तु सूक्ष्म स्तर पर यदि देखा जाए तो यह कहानी एक स्त्री की उस आदिम मानसिकता की कहानी है जिसका सच यह है कि वह उसी पुरुष का वरण करती है जिसमें यह साहस या दुस्साहस हो कि जो आगे बढ़कर उसका वरण कर सके । अतः कहानी में द्वन्द्व ही नहीं, मनुष्य की मूल प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति भी है। कहानी के भीतर धीरे-धीरे बहता हुआ एक गहरा उत्ताप है जो कहानी की नायिका दीपा में परिलक्षित है । उसमें एक सुलगती हुई आकांक्षा है कि जो उसे परितृप्त और उसके मर्म को सिंचित कर सकता है वह उसी की अंकशायिनी होगी। कहानी अपने कथ्य में इसी 'सच' को सामने लाती है। यह कहानी इस 'सच' को एक कथ्य में सामने लाने के लिए एक सर्वथा नूतन शिल्प को आविष्कृत करती है।

'यही सच है' के बारे में एक धारणा है कि इस कहानी का वैचारिक आधार अपेक्षाकृत कमजोर है। यहाँ दीपा का अन्तर्द्वन्द्व ही प्रमुख है जो अलग-अलग क्षणों में निशीथ और संजय दोनों को ही सच के अतिरिक्त कुछ और मानने से इंकार कर देती है। दीपा संजय के सम्पर्क में आकार निशीथ को एक तरह से भूल जाती है। यानी यह कि दीपा का कोई अपना ठोस वैचारिक आधार नहीं है। कहानी को किसी सिद्धान्त की कसौटी पर अगर देखा जाए तो यह लगता है कि दीपा अपने 'होने' को लेकर ठीक-ठीक आश्वस्त नहीं है, जो सामने होता है वह उसी को लेकर अपने भविष्य का रंग भरना चाहती है। यह कहानी अपनी ऊपरी सतह पर अपने भविष्य में रंग भरे जाने के दृश्य देखती हुई एक स्त्री की दास्तान कहती हुई-सी लगती है।

निशीथ से जब दीपा का दुबारा सम्पर्क कलकता में होता है तब निशीथ के इस नये सम्पर्क से वह यह सोचे बिना नहीं रहती है कि जीवन का पहला प्यार ही वस्तुतः सच्चा है, वास्तविक है। संजय के प्रति प्यार से अधिक वह कृतज्ञता-बोध से बँधी है क्योंकि उसने उसे ऐसे समय में सहारा दिया था जब निशीथ की ओर से बेहद निराश होकर वह टूट जाने की स्थिति में आ चुकी थी। निशीथ से जब वह दुबारा कलकता में मिलती है तो उससे मिलने के बाद कल्पना में संजय को सम्बोधित करके वह कहती है। ... "पर प्यार की बेसुध घड़ियाँ, वे विभोर क्षण, तन्मयता के वे पल जहाँ शब्द चुक जाते हैं। ... हमारे जीवन में कभी नहीं आए। तुम्हीं बताओ, आए कभी ? तुम्हारे असंख्य आलिंगनों और चुम्बनों के बीच भी, एक क्षण के लिए भी तो मैंने कभी तन-मन की सुध बिसर देने वाली पुलक या मादकता का अनुभव नहीं किया। ... आज यह बात जान गई हूँ कि प्रथम प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है। बाद में किया हुआ प्रेम तो अपने को भूलने का, भरमाने का प्रयास मात्र होता है।" लेकिन जब कलकता से वह कानपुर लौटती है और वहाँ जब संजय से मिलती है, वह एक बार फिर बदली हुई-सी लगती है, वह फिर एक बार अपने को परिभाषित करती है। दीपा संजय के साथ अपने साझेपन को खुद से संवाद करती हुई दर्ज करती है – "रजनीगन्धा की महक धीरे-धीरे मेरे तन-मन पर छा जाती है। तभी मैं अपने भाल पर संजय के अधरों का स्पर्श महसूस करती हूँ, और मुझे लगता है यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सच है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था। ... हम दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में बँधे रहते हैं – चुम्बित-प्रतिचुम्बित !" दरअसल, इस कहानी में दीपा नाम की इस स्त्री के उपर्युक्त दोनों उद्धरणों को एक साथ देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि यह प्रवृत्ति

वर्तमान को पकड़ और भोग लेने वाला एक क्षणवादी दर्शन है जिसे अस्तित्वादी दर्शन के तहत देखा जा सकता है। अतीत और भविष्य से कटकर दीपा पूरी तरह से इस वर्तमान के लिए ही समर्पित है इसलिए जो भी उसके सामने होता है, वह उसके सामने ही अपनी अभिव्यक्ति को सम्पूर्ण मान लेती है। चाहे वह निशीथ हो या संजय। भौतिक रूप से जो दृश्य है वही एकमात्र सच लगता है।

'यही सच है' कहानी के कथ्य और शिल्प को उपर्युक्त तर्कों के आधार पर कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। मसलन, क्या यह कहा जा सकता है कि विचार के स्तर पर दीपा एक कमजोर स्त्री चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है ! या, क्या यह कहा जा सकता है कि दीपा आपने चयन / वरण को लेकर एक स्वतन्त्र स्त्री है, उसके चयन और वरण की स्वतन्त्रता को पितृसत्तात्मक समाज की व्यवस्था बाधित नहीं करती है ! या क्या यह कहा जा सकता है कि दीपा इस व्यवस्था का एक प्रतिकार रचती है ! एक यह भी दृष्टि हो सकती है कि क्या इस कहानी को बदलते हुए नैतिक मूल्यों की कसौटी पर देखा जा सकता है ! यह कहानी अपनी संरचना में ऐसे ही कई सवाल को जन्म देती हुई हमें अपनी बनावट और बुनावट में शामिल कर लेती है।

मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' के कथ्य और शिल्प में प्यार अपरिवर्तनीय भावना न बनाकर उसमें आए परिवर्तन और उस परिवर्तन से उत्पन्न तनाव को सूक्ष्मता से रेखांकित करता है। प्रेम की इस बुनावट में नैतिकता का कोई स्थापित परम्परागत मूल्य नहीं है और न ही उसका कोई आग्रह है। दरअसल, मन्नू भंडारी की कहानी की स्त्री परम्परा से संघर्ष की स्थिति में है, मगर वह परम्परा के केंचुल को समूल खत्म नहीं कर पाती है और न ही परिवर्तनशील सन्दर्भ में कोई प्रतिरोधी परिवेश निर्मित कर पाती है। यह ज़रूर कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी की कहानी में स्त्री परम्परा के चौखट को लाँघने और आधुनिकता में प्रवेश करने के लिए प्रयत्नशील ज़रूर दिखलाई देती है। यानी यह कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी की कहानी में स्त्री आधुनिकता और परम्परा की सीमा रेखा पर खड़ी है, वह आगे बढ़ना चाहती हैं लेकिन जड़ों को छोड़कर नहीं।

मन्नू भंडारी की रचनाओं की स्त्री पात्र अपने-अपने तरीके से अपनी-अपनी मनःस्थिति से संघर्ष करती हुई आगे बढ़ती हैं। मन्नू भंडारी की कहानी मोटे तौर पर स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में पैदा होने वाले तनावों और दबावों की यथार्थपरक अभिव्यक्ति है। 'यही सच है' कहानी में स्त्री पात्र एक स्तर पर अपने अकेलेपन से लड़ती हुई दिखलाई देती है। यह लड़ाई वह गहरे असमंजस और द्वन्द्व को झेलते हुए लड़ती है। दरअसल मन्नू भंडारी की कहानियों में स्त्री अपने जीवन में अनेक स्तरों पर बहुआयामी संघर्ष का सामना करती है। उसके सामने एक पितृसत्तात्मक संरचना संस्थागत रूप में उपस्थित रहतीहै। वह स्त्री अपने मन के भीतर, परिवार के भीतर और समाज के भीतर के पितृसत्तात्मक विन्यास से विभिन्न तरह के युद्ध लड़ती है। स्त्री अपने सामने उपस्थित दुनिया में अपनी पहचान, अपने उत्पीड़न और अपने आहत स्वाभिमान की रक्षा के लिए तमाम संस्थागत पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियों से टकराती तो ज़रूर है लेकिन उसके विरुद्ध एक ठोस प्रतिरोध की सरणी विकसित करती हुई दिखलाई नहीं देती है। दरअसल, स्त्री का अपने समय और परिवेश में पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियों से टकराना ही एक बड़ी उपलब्धि है। इस टकराव को ही उनका प्रतिरोध माना जाना चाहिए। मन्नू भंडारी की स्त्री का निषेध और उसके अस्वीकार की मुद्रा भी बेहद संयत और मुलायमियत से भरी हुईहै।

मन्नू भंडारी की अधिकांश कहानियों में स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक ढाँचे में अपनी अस्मिता की तलाश का उपक्रम करती हुई लगती है। मन्नू भंडारी की कहानियों की सतह पर अन्य सन्दर्भों के साथ एक बात को लक्षित किया जा सकता है कि स्त्री एक पुरुष प्रेम और एक अदद पति के विचार को अपने अस्तित्व से जोड़ कर देखने की दृष्टि से बाहर नहीं निकल पाती है। इसलिए इस विचार के कारण स्त्री की स्वतन्त्रता इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था की सीमाओं के भीतर ही रह जाती है। 'यही सच है 'कहानी में दीपा दो पुरुषों, निशीथ और संजय से अलग अपने जीवन के बारे में कुछ सोच ही नहीं पाती है। दीपा की मनःस्थिति की जटिल द्वन्द्वात्मकता का कारण भी यह दो पुरुष के बीच के चयन का है। दीपा को खुद ही यह नहीं मालूम कि वह संजय और निशीथ दोनों में से किसको ज्यादा प्यार करती है। यदि इसे रूपात्मक रूप से कहा जाए तो हम कह सकते हैं कि दीपा की चेतना में पानी की तरह का आवेग है जिसके कारण वह इच्छित व्यक्तित्व के प्रभाव में आते ही अनुकूल पात्र में ढल जाती है।

'यही सच है' कहानी में आधुनिकता के तत्त्व को भी परिलक्षित किया जा सकता है। आधुनिकता का एक लक्षण है द्वन्द्व। इस कहानी में यह द्वन्द्व हमें दीपा के चरित्र में दिखलाई देता है। दीपा की चेतना में यह द्वन्द्व एक आधुनिक मूल्यबोध है। दीपा अपने प्यार को लेकर स्वतन्त्र चिन्तन करती है, प्यार का एक आजाद ख्याल दीपा में हमेशा करवटें लेता रहता है। दीपा के भीतर चलने वाले द्वन्द्व और उसकी काट-छाँट की जिम्मेदार खुद दीपा होती है। यह कहानी कहीं भी चमत्कृत नहीं करती बल्कि यह किसी व्यक्तित्व के सहज विकास-क्रम को हमारे सामने लाती है। पात्र की विश्वसीनयता इस कहानी की विशेषता है।

'यही सच है' कहानी में दीपा के भीतर के द्वन्द्व का एक प्रमुख और प्रभावी कारण 'प्रेम' है। 'प्रेम' का तत्त्व दीपा के होने को बार-बार प्रभावित करता है और उसके वजूद को एकाग्र नहीं होने देता। 'यही सच है' कहानी के शिल्प में यह 'प्रेम' दीपा के भीतर कई अर्थ छवियों के साथ अपना आकार ग्रहण करती है। इन अर्थ छवियों को हम कहानी के भीतर के कुछ उदाहरणों से समझ सकते हैं –

दीपा को रजनीगन्धा के फूल बहुत पसन्द है, इस पसन्द को वह याद करती हुई खुद से कहती है – "एक बार मैंने यों ही कह दिया था कि मुझे रजनीगन्धा के फूल बड़े पसन्द हैं, ... ये फूल जैसे संजय की उपस्थिति का आभास देते रहते हैं।" (एक दुनिया समानान्तर, पृष्ठ – 232) दीपा के जीवन में या यूँ कहें कि उसके अस्तित्व में रजनीगन्धा के फूल, महज फूल नहीं रह जाते हैं, फूल का रूप मानवीय हो जाता है, फूल एक प्रतीक के रूप में उसके जीवन में संजय की उपस्थिति है। यह उपस्थिति निशीथ के छोड़े जाने के अवकाश से उत्पन्न हुई है। दीपा इस अवकाश में संजय का रंग भरती है। वह कहती है – "रात में सोती हूँ तो देर तक मेरी आँखें मेज पर लगे रजनीगन्धा के फूलों को ही निहारती रहती हैं। जाने क्यों, अक्सर मुझे भरम हो जाता है कि ये फूल नहीं हैं, मानों संजय की अनेकानेक आँखें हैं, जो मुझे देख रही हैं, सहला रही हैं, दुलार रहीं हैं। और अपने को यों असंख्य आँखों से निरन्तर देखे जाने की कल्पना से ही मैं लजा जाती हूँ।" (पृष्ठ – 234) इस कहानी की संरचना में प्रेम की गतिशीलता विरचित हुई है। जब दीपा का सम्बन्ध निशीथ के साथ खत्म हो जाता है, मन्नू भंडारी लिखतीं हैं – "जैसे ही जीवन को दूसरा आधार मिल जाता है, उस सबको भूलने में एक दिन भी नहीं लगता।" (पृष्ठ – 234) दीपा का जीवन में दूसरा आधार संजय है, जिसके बारे में उसके स्पष्ट मत हैं – "मेरी कोमल भावनाओं का, भविष्य

की मेरी अनेकानेक योजनाओं का एकमात्र केन्द्र संजय ही है !" (पृष्ठ – 234) दीपा की कोमल भावनाएँ क्या हैं ? भविष्य की योजनाएँ क्या हैं ? – जैसे सवालों का कहानी के पाठ से कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता सिवाय इसके कि दीपा को एक पुरुष का सम्बल चाहिए और यह सम्बल वह प्राथमिक तौर पर नहीं चुनती है बल्कि निशीथ से सम्बन्ध टूट जाने और उससे उत्पन्न रिक्तता के कारण चुनती है। इस चयन की पृष्ठभूमि में दीपा के भीतर अपने पूर्व प्रेमी निशीथ के प्रति नकार का भाव है। इस नकार के भाव की सतह पर वह अपना वर्तमान और फिर उस वर्तमान के साथ भविष्य की योजनाएँ देखती हैं, गोया यह कि बिना अतीत से मुक्त हुए वर्तमान और भविष्य बन ही नहीं सकता। दीपा निशीथ के बारे में कहती है – 'मैं उससे (निशीथ से) नफरत करती हूँ ! और सच पूछो तो अपने को भाग्यशालिनी समझती हूँ कि मैं एक ऐसे व्यक्ति के चंगुल में फँसने से बच गई, जिसके लिए प्रेम महज एक खिलवाड़ है। ... निशीथ का प्यार तो मात्र छल था, भरम था, झूठ था !" (पृष्ठ – 234) दीपा जिस निशीथ के प्यार को खिलवाड़, छल, भरम, झूठ कह रही है, उसी निशीथ से जब दुबारा कलकता में मिलती है, तब वही दीपा निशीथ के बारे में कहती है – "कितना दुबला हो गया है निशीथ ! ... लगता है, जैसे मन में कहीं कोई गहरी पीड़ा छिपाए बैठा है।" (पृष्ठ – 237) निशीथ के प्रति अपने अतीत के लगाव को वह दरअसल कभी भूल ही नहीं पाई थी। एक दूसरे विकल्प के आ जाने के प्रभाव में वह ज़रूर आती है लेकिन इस प्रभाव के कारण वह निशीथ को एकदम से भूल नहीं पाती है।

इस कहानी की संरचना में दीपा एक ऐसे स्त्री चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है जो पुरुष के साथ ही अपने जीवन का उत्कर्ष देखती है। निशीथ और संजय के बीच दीपा अन्ततः संजय को चुनती है और अपने भविष्य के लिए उसके साथ सपने देखती है।

5.3.4. 'यही सच है' की पात्र-योजना

'यही सच है' कहानी में तीन प्रमुख पात्र हैं। एक स्त्री पात्र दीपा है, और दो पुरुष पात्र क्रमशः निशीथ तथा संजय हैं। एक और स्त्री पात्र जो इस कहानी में गौण है, वह है, इरा। दीपा, कभी निशीथ के साथ रहती है कभी संजय के साथ। पुरुष के साथ रहकर स्वतन्त्र चिन्तन करती एक स्त्री की कहानी है, 'यही सच है।' हम यहाँ तीनों पात्र के बारे में संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

5.3.4.1. दीपा

दीपा एक ऐसी स्त्री पात्र है जो अपने कॉलेज के दिनों में निशीथ से प्यार करती है और कॉलेज के किसी मुद्दे पर (कक्षा बहिष्कार के मुद्दे पर) निशीथ की बात नहीं मानती है, दोनों में तकरार होता है और फिर दोनों अलग हो जाते हैं। दीपा कानपुर में रिसर्च करती हुई संजय के सम्पर्क में आती है और उससे प्यार करने लगती है। दीपा जब कलकता जाती है और वहाँ निशीथ से दुबारा मिलती है। दीपा कई बार निशीथ से संजय के बारे में बताना चाहती है पर बता नहीं पाती है। नहीं बताने के कारण क्या है, इस पर गौर किया जाना चाहिए। स्वयं दीपा कहती है – "मैंने कई बार चाहा कि संजय की बात बता दूँ, पर बता नहीं सकी। सोचा, कहीं यह सब सुनकर वह

दिलचस्पी लेना कम न कर दे।" यानी, दीपा संजय से प्यार करती हुई यह चाहती है कि निशीथ उसमें दिलचस्पी लेता रहे। दीपा दोनों पुरुषों से अपने प्रति लगाव चाहती है। दीपा जब कानपुर में होती है तो उसकी इंतजार करती आँखें संजय के लिए होती है और जब कलकता जाती है तब अपने प्रति निशीथ की दिलचस्पी चाहती है।

एक स्तर पर यह कहा जा सकता है कि निशीथ और संजय में से किसी एक को चुने जाने में जो दीपा के निर्णय का द्वन्द्व है, वह कोई दुर्बलता का परिचायक नहीं, हालाँकि कई आलोचकों ने इसे दुर्बलता के रूप में रेखांकित किया है। दरअसल यह निर्णय का द्वन्द्व दीपा की दुर्बलता नहीं बल्कि उसके व्यक्तित्व की चारित्रिक विशेषता है। अगर थोड़ा ठहर कर इस कहानी का पाठ किया जाए तो क्या पाठक ठीक-ठीक बता सकता है कि दीपा को किसे चुनना चाहिए, निशीथ को या संजय को। हम जानते हैं इसका उत्तर आसान नहीं है। यह उनके लिए तो बिल्कुल आसान नहीं होता जिन्हें इस तरह के निर्णय या चयन से प्रभावित होना है। क्या पाठक के लिए यह कहा जाना आसान है कि दीपा के प्रति निशीथ ज्यादा निष्ठावान् है या संजय। पाठक ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि दीपा को निशीथ का वरण करना चाहिए अथवा संजय का। इस आधार पर दीपा के चरित्र को एक स्वाभाविक विकास के तौर पर देखा जाना चाहिए।

5.3.4.2. संजय

संजय दीपा के जीवन में निशीथ के बाद आया है। संजय की चारित्रिकविशेषता है कि वह हमेशा प्रसन्न, सक्रिय रहता है। वह दीपा का कोई आक्रामक प्रेमी नहीं है बल्कि अपनी सकर्मक संवेदना के साथ वह दीपा के साथ होता है। यह गौरतलब है कि वह दीपा के पास कभी समय से नहीं पहुँचता है। उसके देर से आने के कारण दीपा के मन में खीज पैदा होती है लेकिन जब संजय उसके पास पहुँचता है और उसे ढेर सारा प्यार देता है तो वह अपनी खीज भूलकर संजय के प्रति पुनः आकर्षित होती चली जाती है। दीपा कहती है – "मैं उस पर नाराज नहीं हो पाती हूँ, बल्कि एक पुलकमय सिहरन महसूस करती हूँ।" दीपा के मन में संजय अपनी जगह बनाए हुए है जबकि दीपा का एक अतीत है और उस अतीत में एक और पुरुष निशीथ भी है।

5.3.4.3. निशीथ

निशीथ इस कहानी में एक भिन्न किस्म का पात्र है। निशीथ दीपा का पहला प्रेमी है, कॉलेज के समय का। निशीथ एक मौन और गम्भीर रहने वाला प्रेमी है। निशीथ संजय की तरह वाचाल नहीं है। वह अपनी भावनाओं को बिना व्यक्त किए, प्रेम का बिना नाम लिए दीपा के लिए सब कुछ कर देने वाला चरित्र है। निशीथ जब दीपा से अलग होता है तो वह फिर कभी विवाह नहीं करता है और न कोई नई प्रेमिका बनाता है जबकि दीपा निशीथ से अलग होती है तब उसे निशीथ के बाद संजय मिल जाता है। निशीथ कभी किसी चीज का स्पष्टीकरण नहीं देता है और न ही दीपा से कोई स्पष्टीकरण माँगता है। निशीथ दीपा का स्पर्श तक नहीं करता जबकि दीपा और संजय के बीच चुम्बन का आदान-प्रदान होता है। संजय के साथ रहते हुए भी वह निशीथ के साथ की स्मृति में खोती है। जब दीपा कलकता जाती है और वहाँ निशीथ से मुलाकात होती है और फिर दूसरे दिन साक्षात्कार के

लिए तैयार होती है, तब वह निशीथ को याद करती हुई तैयार होती है – "मुझे याद आता है, निशीथ को नीला रंग बहुत पसन्द था, मैं नीली साड़ी ही पहनती हूँ, बड़े चाव और सतर्कता से अपना प्रसाधन करती हूँ और बार-बार अपने को टोकती भी जाती हूँ – किसको रिझाने के लिए यह सब हो रहा है ?" ज़ाहिर है, दीपा संजय से मिलने के बाद भी लाख चाहने पर भी निशीथ को भुला नहीं पाती है, हालाँकि वह अन्ततः संजय का ही वरण करती है । जबकि कहानी की संरचना का गौर से पाठ किया जाए तो सामान्यतः संजय और निशीथ में से एक प्रेमी के तौर पर निशीथ ज्यादा प्रभावित करता हुआ दिखलाई देता है।

5.3.4.4. इरा

इरा, दीपा की दोस्त है। वह कलकता में अपने पति के साथ रहती है। जब कभी दीपा कलकता जाती है तब वह इरा के घर में ही रहती है। इरा उसकी मदद करती है। इरा जानती है कि दीपा के जीवन में कभी निशीथ आया था, निशीथ जो आजकल कलकता में ही है। इरा, दीपा और निशीथ के सम्पर्क को कलकता में आसान बनाती है। तात्पर्य यह कि इरा एक ऐसी स्त्री पात्र है जो कहानी के दूसरे स्त्री पात्र दीपा की अस्मिता को उभारने का काम करती है।

5.3.5. पाठ-सार

'यही सच है' कहानी के धरातल पर मन्नू भंडारी ने एक स्त्री पात्र के माध्यम से स्त्री के जीवन में आए प्रथम प्रेम की उत्कटता और उससे निर्मित आवेग-संकुलता को रेखांकित किया है। प्रेम की उत्कटता में स्त्री अपने भविष्य को किसी पुरुष के साथ बाँध लेती है / बाँध लेना चाहती है। वह अपने भविष्य की कोई योजना मोटे तौर पर स्वतन्त्र रूप से निर्मित नहीं करती है । अपने चयन को लेकर वह बहुत सावधान नहीं है बल्कि चयन की स्वतन्त्रता उसके लिए परिस्थितिजन्य है। मन्नू भंडारी की यह कहानी नैतिक-अनैतिक के सवाल से उतना नहीं टकराती जितना प्रेम से उपजे परिस्थिति विशेष के अन्तर्द्वन्द्व से टकराती है। ज़ाहिर है, इस अन्तर्द्वन्द्व को अंकित करने में मन्नू भंडारी सफल रही हैं। 'यही सच है' कहानी में दीपा का अन्तर्द्वन्द्व ही प्रमुख है जो अलग-अलग क्षणों में निशीथ और संजय दोनों को ही सच के अतिरिक्त कुछ और मानने से इंकार कर देती है। दीपा जब संजय के सम्पर्क में आती है तो वह निशीथ को भूलती जाती है। वह निशीथ के प्रति काफ़ी कटु होती जाती है। कटु होते जाने का कोई स्पष्ट और ठोस कारण नहीं है। कानपुर में रहकर शोध करती हुई वह संजय के सम्पर्क में आती है और उसके साथ शीघ्र ही नए जीवन की शुरुआत को लेकर विचारशील है। नौकरी के एक इंटरव्यू के सिलसिले में दीपा कलकत्ता जाती है, वहाँ जाने पर उसकी इच्छा के विरुद्ध निशीथ से उसकी अचानक ही भेंट हो जाती है। यह अनचाही मुलाक़ात दीपा की स्मृति को झकझोर देती है। नए सम्पर्क और इंटरव्यू के सिलसिले में निशीथ से मिली सहायता के क्रम में अपने प्रति निशीथ के गहरे लगाव को देखकर दीपा अपने अतीत में निशीथ के साथ गुजरे पलों को याद करती है। कलकता में निशीथ के साथ हुई इस नई मुलाक़ात से दीपा कल्पना में बहुत कुछ देखती-सोचती रहती है और निशीथ के कोई पहल न करने पर थोड़ी परेशानी भी होती है। निशीथ उसे भूला नहीं है, यह इसी से स्पष्ट है कि तीन साल बाद भी वह अकेला है और दीपा के कलकत्ता आ जाने की सम्भावना उसे नए उत्साह और

उमंगों से भर देती है। निशीथ के इस नए सम्पर्क से वह यह सोचे बिना नहीं रहती है कि जीवन का पहला प्यार ही वस्तुतः सच्चा होता है, वास्तविक होता है। निशीथ से उसका प्यार नैसर्गिक है। संजय के प्रति दीपा का प्यार एक कृतज्ञता-बोध से बँधा है क्योंकि उसने उसे ऐसे समय में सहारा दिया था जब निशीथ की ओर से हताश होकर दीपा टूट जाने की स्थिति में होती है। निशीथ से मिलने के बाद कल्पना में संजय को सम्बोधित करके दीपा संजय के प्रति के प्रेम को प्रश्नांकित करती है – "पर प्यार की बेसुध घड़ियाँ, वे विभोर क्षण, तन्मयता के वह पल जहाँ शब्द चुक जाते हैं। ... हमारे जीवन में कभी नहीं आए। तुम्हीं बताओ, आए कभी ? तुम्हारे असंख्य आलिंगनों और चुम्बनों के बीच भी, एक क्षण के लिए भी तो मैंने कभी तन-मन की सुध बिसरा देने वाली पुलक या मादकता का अनुभव नहीं किया ... आज यह बात जान गई हूँ कि प्रथम प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है। बाद में किया हुआ प्रेम तो अपने को भूलने का, भरमाने का प्रयास मात्र होता है।" कानपुर लौटकर संजय के बाहर होने की खबर से उसे राहत मिलती है कि इस बीच वह अपने को सँभाल सकेगी, निशीथ के प्रति उमड़ी भावना को नियन्त्रित कर सकेगी। लेकिन घर के कोने में रखे फूलदान में संजय के लाए रजनीगन्धा फूलों के बिना सूना फूलदान उसके मन के सूनेपन को और भी बढ़ा देता है, और गाढ़ा कर देता है। संजय की अनुपस्थिति का लाभ लेकर वह अपने को सहेज पाए, इसके पहले ही निशीथ का एक पत्र उसे मिलता है – नियुक्ति और मेहनत की सफलता पर बधाई का पत्र – जिसकी सूचना इरा के तार से वह पहले ही भिजवा चुका है। अपनी इस सफलता पर दीपा अभी ठीक से सोच ही नहीं पाती है कि संजय आ जाता है। संजय जब घर आता है तो वह दीपा को देखकर सोचता है कि शायद कलकत्ता वाली नौकरी न मिल पाने के कारण ही इसकी ऐसी हालत है। संजय को सामने देखकर वह उसे यों अचानक चले जाने का उलाहना देती है और अनायास ही उसकी आँखों के आँसू बह चलते हैं। "पर मुझसे कुछ बोला नहीं जाता। बस मेरी बाँहों की जकड़ कसती जाती है, कसती जाती है। रजनीगन्धा की महक धीरे-धीरे तन-मन पर छा जाती है। तभी मैं अपने भाल पर संजय के अधरों का स्पर्श महसूस करती हूँ और मुझे लगता है कि स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सच है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था ... हम दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में बँधे रहते हैं – चुम्बित-प्रतिचुम्बित !" नैतिक-अनैतिक से परे वह वस्तुतः वर्तमान को पकड़ और भोग लेने वाला वह क्षणवादी दर्शन है, अस्तित्ववाद के अन्तर्गत जिसके महत्त्व को खूब बढ़ा-चढ़ाकर प्रचारित किया गया है। अतीत और भविष्य से कटकर दीपा पूरी तरह से इस वर्तमान को ही समर्पित है इसलिए जो भी उसके सामने होता है, वह निशीथ हो या संजय, वह ही एकमात्र सच लगता है। लेकिन जीवन को इस निर्णयहीनता और अन्तर्द्वन्द्व के सहारे ही तो नहीं बिताया जा सकता। दीपा संजय को स्वीकार कर अपने अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त होती है। वर्तमान में जो सामने है, वही सच है। इस कहानी का यही सच है।

5.3.6. बोध प्रश्न

1. 'यही सच है' कहानी का मूल कथ्य क्या है ?
2. 'यही सच है' कहानी में स्त्री की उपस्थिति के स्वरूप का मूल्यांकनकीजिए ?
3. 'यही सच है' कहानी में स्त्री के लिए चयन की स्वतन्त्रता का सन्दर्भ बताते हुए उससे उपजे द्वन्द्व को रेखांकित कीजिए।

4. मन्नू भंडारी की कहानियों के शिल्प की क्या विशेषता है ? अपने समकालीन कथाकारों से वे कैसे अलग हैं ? स्पष्ट कीजिए।
5. " 'यही सच है' कहानी प्रेम के त्रिकोणात्मक संघर्ष की कहानी है।" स्पष्ट कीजिए।

5.3.7. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. एक दुनिया : समानान्तर, सं. : राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1993
02. सिंह, नामवर (1982), कहानी : नयी कहानी , लोकभारती प्रकाशन
03. अवस्थी, देवीशंकर (1973), नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन
04. यादव, राजेन्द्र (1968), कहानी स्वरूप और संवेदना, वाणी प्रकाशन
05. मन्नू भंडारी सृजन के शिखर, सं. : सुधा अरोड़ा, किताबघर प्रकाशन, 2010
06. मधुरेश (1996), हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन
07. बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य, सं. : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2005
08. हिन्दी कहानी का पहला दशक, भवदेव पाण्डेय, माधव पब्लिकेशन, संस्करण 2006
09. हिन्दी की आरम्भिक कहानियाँ, चयन और भूमिका : गंगा प्रसाद विमल, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2012
10. पाखी, सं. : प्रेम भारद्वाज, जनवरी 2016, मन्नू भंडारी पर केन्द्रित अंक

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : कहानी – 2

इकाई – 4 : वापसी – उषा प्रियंवदा

इकाई की रूपरेखा

5.4.0. उद्देश्य कथन
5.4.1. प्रस्तावना
5.4.2. केन्द्र से विकेन्द्रित होने की यातना
5.4.3. आधुनिकता का दबाव और अप्रासंगिक होती पुरानी पीढ़ी
5.4.4.'वापसी की आकांक्षा' और 'वापसी के यथार्थ'के बीच की 'आयरनी'
5.4.5. कलागत विशेषताएँ
5.4.6. पाठ-सार
5.4.7. बोध प्रश्न
5.4.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

5.4.0. उद्देश्य कथन

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

i. 'वापसी' कहानी की कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे।
ii. 'वापसी' कहानी के महत्त्व को समझ सकेंगे।
iii. एक कहानीकार के रूप में उषा प्रियंवदा के वैशिष्ट्य को रेखांकित कर पाएँगे।
iv. 'वापसी' कहानी के माध्यम से परिवार में वृद्धों की स्थिति तथा उनके अकेलेपन की पीड़ा को समझ पाएँगे।
v. 'वापसी' कहानी के कलागत वैशिष्ट्य से परिचित हो सकेंगे।

5.4.1. प्रस्तावना

'वापसी' उषा प्रियंवदा की सर्वाधिक चर्चित और प्रशंसित कहानी है। उषा प्रियंवदा 'नयी कहानी' आन्दोलन की उपलब्धि हैं। उषा ने कहानी लेखन की शुरुआत 1952 से ही कर दी थी लेकिन उन्हें एक सशक्त कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय 1961 में प्रकाशित उनकी कहानी 'वापसी' को जाता है। 'वापसी' का प्रकाशन पहली बार अगस्त, 1961 में 'नई कहानियाँ' पत्रिका में हुआ और उसके बाद यह कहानी उषाजी के उसी वर्ष प्रकाशित कहानी-संग्रह 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल' में प्रकाशित हुई।

'वापसी' एक ऐसे वृद्ध रिटायर्ड व्यक्ति की कहानी है जिसने रेलवे की नौकरी के कारण अपने जीवन के पिछले पैंतीस वर्ष अपने परिवार से दूर रहते हुए बिताये हैं। वह बड़ी आशाएँ और उम्मीद लेकर उत्साह से भरा

हुआ अपने परिवार के बीच लौटता है लेकिन कुछ ही दिनों में अपने को परिवार में उपेक्षित-सा महसूस करने लगता है और वापस एक चीनी मिल में नौकरी करने परिवार से दूर चला जाता है। इसी वृद्ध व्यक्ति जिनका नाम कहानी में गजाधर बाबू है, के नौकरी से सेवानिवृत्त होकर घर लौटने और फिर परिवार के बीच उपेक्षित महसूस करने पर दोबारा नौकरी के लिए वापसी करने की दो घटनाओं के बीच कहानी का पूरा वितान रचा गया है।

कोई भी कहानीकार प्रायः अपने समाज से ही अपनी कहानी के विषय और पात्रों का चुनाव करता है और फिर अपनी कल्पना तथा अपने और अपने समाज के अनुभवों से सम्पृक्त करता हुआ उसे एक कहानी की शक्ल में ढाल देता है। उषा प्रियंवदा 'वापसी' की रचना-प्रक्रिया पर बात करते हुए इस बात का उल्लेख करती हैं – "मेरे एक निकट के सम्बन्धी पत्नी और बच्चों से दूर, पूर्व उत्तर प्रान्त में चीनी मिल में इंजीनियर थे, उनकी पत्नी और चार बच्चे दूसरे शहर में रहकर पढ़ते थे, उनका जीवन अलग था, उनके लिए पिता केवल धनार्जन के साधन थे। ... 'वापसी' के पीछे इन्हीं सम्बन्धी की ठोस छवि और जीवन था। ... कहानी लिखते समय मेरे मन में एक प्राणी का अकेलापन और परिवार में अपनी उचित जगह न पाने की पीड़ा ही थी। ... मेरी कल्पना और सृजनशीलता ने एक परिचित व्यक्ति की छाया का आभास मात्र लेकर 'वापसी' के गजाधर बाबू को जन्म दिया।"

'वापसी' 'नयी कहानी' के दौर की एक अत्यन्त सशक्त कहानी है। इस कहानी ने अपने प्रकाशन के साथ ही हिन्दी के पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट किया। अगस्त, 1961 की 'नई कहानियाँ' पत्रिका में इस कहानी का प्रकाशन हुआ और मार्च, 1962 में उसी 'नई कहानियाँ' पत्रिका में हिन्दी के सुविख्यात आलोचक नामवर सिंह का एक लेख 'कहानी : अच्छी और नई' प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की 'एक शिल्पहीन कहानी' से 'वापसी' कहानी की तुलना करते हुए 'वापसी' को नए भावबोध की कहानी माना है। नामवरजी ने अपने उस लेख में विस्तार से दोनों कहानियों की तुलना करते हुए कहानी सम्बन्धी भावबोध तथा जीवन और समाज सम्बन्धी भावबोध के नयेपन को भी स्पष्ट किया है।

'वापसी' कहानी आधुनिक शहरी जीवन की परिस्थितियों के बीच एक वृद्ध सेवानिवृत्त व्यक्ति की पारिवारिक स्थिति, उसकी अपेक्षाओं, उसके अलगाव-बोध आदि के माध्यम से हमें आधुनिक जीवन की जटिलताओं से रू-ब-रू कराती है। इस पाठ में हम 'वापसी' कहानी के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

5.4.2. केन्द्र से विकेन्द्रित होने की यातना

समाज, परिवार या किसी भी छोटी-बड़ी संस्था में हाशिये पर होना हमेशा ही यातनादायक होता है और यदि व्यक्ति केन्द्र में होने का सुख भोग चुका हो तब तो हाशिये पर धकेल दिया जाना और भी ज़्यादा पीड़ादायक हो उठता है। गजाधर बाबू या उनके जैसे अन्य बुजुर्गों की पीड़ा भी इसी तरह केन्द्र से हाशिये पर धकेल दिए जाने की पीड़ा है। रेलवे की नौकरी से सेवानिवृत्त होकर घर लौटने से पहले तक का गजाधर बाबू का जीवन एक ऐसे व्यक्ति का जीवन है जिसे इस बात का एहसास या भ्रम (!) है कि वह अपने परिवार की धुरी है। पत्नी, बेटे-बेटियाँ सब इनसे दूर हैं लेकिन उन सबसे इनका केन्द्रीय जुड़ाव है। गजाधर बाबू के ऐसा सोचने के पीछे उनकी स्मृतियों

का ठोस आधार है – "जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौटकर बच्चों से हँसते-बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते ... उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद रहतीं। ... उनके स्टेशन से वापस आने पर गर्म-गर्म रोटियाँ सेंकती। उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा-सा कुछ और थाली में परोस देती, और बड़े प्यार से आग्रह करती।" (सम्पूर्ण कहानियाँ, उषा प्रियंवदा, पृष्ठ – 143) जिस व्यक्ति ने ऐसी मधुर स्मृतियों के सहारे जीवन के पैंतीस वर्ष काटे हों, उसे अपने परिवार का केन्द्र होने का गुमान हो तो इसमें गलत क्या है !

गजाधर बाबू परिवार का केन्द्र होने का एहसास और भरोसा लिए घर लौटते हैं। अतीत की मधुर स्मृतियों को दुबारा अपने आस-पास घटित होता हुआ देखने की लालसा गजाधर बाबू के मन में है लेकिन उन्हें इस बात का भान नहीं है कि पैंतीस वर्षों के लम्बे समयान्तराल में काफी कुछ बदल गया है। कहानी में पहली बार इस बदलाव को गजाधर बाबू तब महसूस करते हैं जब इतवार के दिन उनके सब बच्चे इकट्ठे होकर नाश्ता और मौजमस्ती कर रहे थे और गजाधर बाबू भी उनके बीच बैठकर उस मनोविनोद में हिस्सा लेना चाहते थे। गजाधर बाबू ने सोचा होगा कि जैसे पहले ड्यूटी से लौटकर वे अपने बच्चों सेहँसते-बोलते थे वैसे ही अब भी उनके साथ हँसेंगे लेकिन उन्होंने स्थिति को बहुत बदला हुआ पाया। जैसे ही वे कमरे में दाखिल हुए, वहाँ चुप्पी छा गई और सब लोग धीरे-धीरे वहाँ से खिसक गए। बच्चों ने यह गजाधर बाबू के लिहाज में किया या संकोच में या चाहे जो भी कारण रहे हों किन्तु गजाधर बाबू के "मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आई।" (पृष्ठ – 143) परिवार के लोगों के बीच अपनी स्थिति के यथार्थ का आभास गजाधर बाबू को पहली बार तभी होता है और तभी "गजाधर बाबू के मन में फाँस-सी करक उठी।" (पृष्ठ – 143)

गजाधर बाबू के जीवन की 'ट्रेजेडी' यह है कि स्मृतियाँ ही उनके जीवन का आधार रह गई हैं। जब परिवार से दूर रेलवे के क्वार्टर में एकाकी जीवन गुजार रहे थे तब परिवार के साथ की मधुर स्मृतियाँ उभर आती थीं। अब जब परिवार के बीच अपने को अवांछित-सा महसूस करते हैं तब उन्हें अपने रेलवे क्वार्टर के दिनों की याद हो आती है। कहानी के एक हिस्से में गजाधर बाबू अपने भरे-पूरे घर में नाश्ते के इंतज़ार में बैठे हैं मगर कोई नाश्ता देने वाला नहीं है। ऐसे में उन्हें अपने रेलवे क्वार्टर के नौकर गनेशी की याद आ जाती है – "गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियाँ और चाय लाकर रख देता था। ... पैसेंजर भले ही लेट पहुँचे, गनेशी ने चाय पहुँचाने में कभी देर नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े।" (पृष्ठ – 144) गजाधर बाबू को गनेशी की याद आना परिवार में उनके अवांछित होने के बोध और उसकी पीड़ा को और भी अधिक उभार देता है।

रेलवे की साधारण-सी नौकरी करते हुए बहुत जोड़-तोड़ करके एक छोटा-सा मकान गजाधर बाबू ने बनवाया था। सोचा होगा कि सेवानिवृत्ति के बाद बाकी का जीवन उसी मकान में गुजार देंगे लेकिन जब गजाधर बाबू घर लौटे तो उन्होंने पाया कि घर में "ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था"। (पृष्ठ – 144) अपने ही बनाए मकान में अपने लिए एक कोना भी नहीं पा सकने वाले गजाधर बाबू की मनःस्थिति का अंदाज़ा लगाना कठिन नहीं है लेकिन विडम्बना यह है कि इन सब से उनके परिवार-बाल-बच्चों को कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। वे सब अपने जीवन में मस्त थे। कहानी में और कई छोटी-

छोटी घटनाएँ घटती हैं और उन्हीं के साथ-साथ गजाधर बाबू का यह भाव भी प्रबल होता जाता है कि उनकी स्थिति इस घर में अवांछित है। आखिरकार गजाधर बाबू इस कड़वे यथार्थ को स्वीकार करते हैं कि वे "उनके (अपने परिवार वालों के) जीवन के केन्द्र नहीं हो सकते ..."। (पृष्ठ – 147) पारिवारिक वृत्त के केन्द्र का, जो खुद वृत्त के वजूद का कारण हो, वृत्त के दायरे से बाहर फेंक दिया जाना कितना पीड़ादायक हो सकता है, इसका एहसास सहृदय पाठक को 'वापसी' कहानी पढ़कर निश्चय ही होगा।

5.4.3. आधुनिकता का दबाव और अप्रासंगिक होती पुरानी पीढ़ी

'वापसी' के गजाधर बाबू का दर्द अकेले उनका ही दर्द नहीं है। यह उन जैसे लगभग सभी बुजुर्गों का दर्द है जो अपने जीवन में ही अपने को अप्रासंगिक होता हुआ पाते हैं। लम्बे सक्रिय, आत्मनिर्भर और स्वतन्त्र जीवन के बाद एकाएक परिवार पर निर्भर और बहुत हद तक निष्क्रिय, खाली जीवन की ऊब से जीवन की निरर्थकता का बोध पैदा होना कोई अस्वाभाविक भी नहीं है। काशीनाथ सिंह की कहानी 'सुख' के भोला बाबू की पीड़ा भी ठीक ऐसी ही है। उन्हें भी लगता है कि उन्हें कोई समझ नहीं पाता। पत्नी, बच्चे, परिवार, समाज सब अपने में मस्त हैं और वह अकेले पड़ गए हैं। इसी तरह राजेन्द्र यादव की कहानी 'बिरादरी बाहर' के पारस बाबू को भी लगता है कि "वे दुनिया में अकेले और फालतू हैं और किसी दूसरे के सुख को अनधिकारी की तरह भोग रहे हैं।" इस पूरी स्थिति को केवल व्यक्ति की समस्या के तौर पर समझना गलत होगा। दरअसल यह आधुनिक समाज की परिस्थितियों से पैदा हुई समस्या है।

आधुनिकता ने बहुत सारी सहूलियतें दीं तो साथ ही कई दुश्वारियाँ भी पैदा कीं। यन्त्रों के बीच रहते-रहते मानवीय व्यवहार भी यान्त्रिक होते गए। आधुनिक औद्योगिक समाज ने कृषि-समाज के गृहस्थ जीवन की संरचना को भी प्रभावित किया। नौकरी के लिए परिवार से दूर रह रहा व्यक्ति धीरे-धीरे अपने परिवार से कटता जाता है। परिवार के लोगों के बीच तथा पिता और बच्चों के बीच सहज भावनात्मक सम्बन्ध की कड़ियाँ भी ढीली पड़ती जाती हैं। ऐसे में पिता की उपयोगिता केवल परिवार की आर्थिक ज़रूरतें पूरी करने तक सिमटती चली जाती है। गजाधर बाबू इसी आधुनिक समाज की परिस्थितियों के बीच अपने परिवार से धीरे-धीरे कटते चले गए और जब पैंतीस वर्षों के बाद लौटकर अपने घर आए तो "उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं।" (पृष्ठ – 147)

आधुनिकता का एक संस्करण सम्पूर्ण प्राचीन के नकार के रूप में भी सामने आया। खासकर नई पीढ़ी ने पुराने के नकार को एक फैशन की तरह लिया। इस नकार का कोई तार्किक या विचारधारात्मक आधार नहीं है, बस पुराने ज़माने का है इसलिए 'आउटडेटेड' है। विडम्बना यह है कि नई पीढ़ी ने आधुनिकता के बाहरी दिखावे और फैशन का कुछ ऐसा दबाव अपने ऊपर लाद लिया है कि वह उस दिखावे को निभाने में ही अपनी आधुनिकता समझती है। 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू का छोटा बेटा नरेन्द्र आधुनिकता के इसी फैशन में माँ से पिता पर अपनी नाराजगी ज़ाहिर करता है – "अम्मा, तुम बाबूजी से कहती क्यों नहीं ? बैठे-बिठाए कुछ नहीं तो

नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझें कि मैं साइकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊँगा तो मुझसे यह नहीं होगा।" (पृष्ठ – 148)

गजाधर बाबू के लिए एक चारपाई किसी तरह से बैठक में ही अँटा दी गई थी। "गजाधर बाबू के आने से पहले उसमें अमर की ससुराल से आया बेंत की तीन कुर्सियों का सेट पड़ा था, कुर्सियों पर नीली गद्दियाँ और बहू के हाथों के कढ़े कुशन थे।" (पृष्ठ – 144) इतने करीने से सजी बैठक में बाबूजी (गजाधर बाबू) की चारपाई खटक रही थी इसलिए एक दिन वह चारपाई वहाँ से हटाकर माँ के कमरे में ठूँस दी गई। माँ का कमरा दरअसल सोने का कमरा नहीं, घर का भंडार था जिसमें "एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्तर और घी के डिब्बों से घिरा था – दूसरी ओर पुरानी रजाइयाँ दरियों में लिपटी और रस्सी से बँधी रखी थीं, उसके पास एक बड़े से टीन के बक्स में घर-भर के गरम कपड़े थे।" (पृष्ठ – 144) अनायास ध्यान जाता है कि यह कमरा घर का वह हिस्सा है जहाँ घर की पुरानी चीज़ें पड़ी रहती हैं और घर की नई पीढ़ी चाहती है कि आने वाले मेहमानों की नज़र उस पर न पड़े। (मेहमानों-मित्रों के लिए तो करीने से सजी हुई बैठक है !) इसलिए गजाधर बाबू और उनकी पत्नी दोनों की चारपाई का उसी कमरे में होना बहुत ही व्यंजक और अर्थगर्भित है। एक और बात पर ध्यान देना चाहिए कि उस कमरे में रखी हुई चीज़ें भले बाहर वालों को दिखाने लायक न हों मगर सभी चीज़ें अत्यन्त उपयोगी और जीवन के लिए अनिवार्य हैं जिनका समय-समय पर उपयोग किया जाता रहता है। लेखिका द्वारा गजाधर बाबू और उनकी पत्नी का स्थान उसी पुराने मगर अत्यन्त उपयोगी सामानों वाले कमरे में रखना क्या महज एक संयोग है ? भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' में मिस्टर शामनाथ की माँ और 'वापसी' के गजाधर बाबू की स्थिति क्या एक-दूसरे से बहुत अलग है ?

आधुनिक जीवन-शैली के अपने कुछ मानक हैं। स्वतन्त्रता उनमें से एक है। आधुनिक मनुष्य स्वतन्त्र जीवन का आकांक्षी है। नई पीढ़ी को आधुनिकता का यह मन्त्र सर्वाधिक प्रिय है। यह पीढ़ी अपनी ज़िंदगी अपनी शर्तों पर जीना पसन्द करती है और इसमें किसी का भी हस्तक्षेप उसे बर्दाश्त नहीं होता। यहाँ तक कि अपने ही परिवार के बड़े-बुज़ुर्गों का भी नहीं। कई बार परिवार का हस्तक्षेप नाज़ायज होता है और तब ऐसे हस्तक्षेपों के 'अस्वीकार का साहस' व्यक्ति में होना ही चाहिए लेकिन इस 'अस्वीकार के साहस' के साथ 'असहमति का विवेक' भी ज़रूरी है। समस्या यह है कि नई पीढ़ी ने स्वतन्त्रता की छूट अराजक होने तक ले ली। नतीजा, अच्छे-बुरे का फर्क किए बिना वह किसी भी तरह के हस्तक्षेप को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है। 'वापसी' कहानी के गजाधर बाबू अपनी छोटी बेटी बसंती को रोज़-रोज़ पड़ोस में शीला के घर जाने से रोककर पढ़ाई करने को कहते हैं तो वह इस बात पर इतना नाराज हो जाती है कि पिता से बात करना ही बन्द कर देती है। लिहाजा गजाधर बाबू ने भी टोकना बन्द कर दिया – "बसंती काफी अँधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में ही रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा।" (पृष्ठ – 147) गजाधर बाबू उस घर में अपनी स्थिति को धीरे-धीरे समझ चुके थे और इसलिए उन्होंने घर के मामलों में कुछ भी कहना लगभग बन्द कर दिया था फिर भी जीवित मनुष्य कब तक कठपुतली बन कर रहेगा ! घर की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी। नौकर का खर्च बेकार था क्योंकि उसकी बहुत ज़रूरत नहीं थी। इन्हीं बातों का ख्याल करके गजाधर बाबू ने नौकर को हटा दिया। घर में सबको यह बात बुरी लगी और

सबने अपने-अपने तरीके से प्रतिवाद किया। बड़े बेटे अमर ने जो बात कही, वह एक मध्यमवर्गीय परिवार में बुजुर्ग व्यक्ति की स्थिति को स्पष्ट करती है। अमर ने भुनभुनाते हुए कहा – "बूढ़े आदमी हैं, चुपचाप पड़े रहें। हर चीज़ में दखल क्यों देते हैं।" (पृष्ठ – 148) आधुनिक भारतीय समाज में बुजुर्गों का यही यथार्थ है। वे जीते-जी पूरी तरह से अप्रासंगिक बना दिए जाते हैं। नयी कहानी के दौर में अन्य कहानीकारों ने भी परिवार में बुजुर्गों के अप्रासंगिक होते जाने के यथार्थ को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'बिरादरी बाहर' भी इसी थीम को लेकर लिखी गई कहानी है। निर्मला जैन ने नयी कहानी के सन्दर्भ में ठीक लिखा है कि नया कहानीकार "आधुनिक भारत के संयुक्त परिवारों की खुशहाली और पारस्परिक स्नेह-सौहार्दपूर्ण अवस्थिति के भरम को तोड़कर वास्तविकता को उजागर करता है। परिवारों के बीच वृद्धों की सम्माननीयता के मिथ को तोड़ता है।"

5.4.4. 'वापसी की आकांक्षा' और 'वापसी के यथार्थ' के बीच की 'आयरनी'

'वापसी' कहानी में वापसी की प्रक्रिया दो बार घटित होती है। जहाँ पहली वापसी नौकरी और अकेलेपन से परिवार और स्नेह-आदर की उम्मीद की ओर है वहीं दूसरी वापसी परिवार के बीच के अकेलेपन, निरर्थकता और उदासीनता से ऊबकर पुनः अपनी सार्थकता और उपयोगिता की तलाश में नौकरी की ओर है। नौकरी से परिवार और फिर परिवार से नौकरी की ओर घटित होने वाली वापसी की इन दोनों प्रक्रियाओं में बुनियादी अन्तर है। कहानी के प्रारम्भिक हिस्से में जब गजाधर बाबू रिटायरमेंट के बाद अपनी घर वापसी की तैयारी में जुटे हैं तो उनके पूरे व्यक्तित्व में एक ऊर्जा है, उत्साह है। पैंतीस वर्षों की नौकरी के दौरान छोटे-छोटे स्टेशनों पर एकाकी जीवन बिताते हुए "उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे।" (पृष्ठ – 142) गजाधर बाबू को अपना सरकारी क्वार्टर और वहाँ के अपने परिचितों-मित्रों को छोड़ते हुए भी दुःख हो रहा था लेकिन "पत्नी, बाल-बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।" (पृष्ठ – 142) अपने परिवार और बाल-बच्चों को लेकर न जाने कितने सपने गजाधर बाबू ने बुन रखे थे। पिछले पैंतीस वर्षों से जिस ममत्व और स्नेह को परिवार के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी के कठोर आवरण में दबाए रखा था आज वह हलका पड़ रहा था। और यह कोई अस्वाभाविक भी नहीं था। आखिर "कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।" (पृष्ठ – 143) ज़ाहिर है, गजाधर बाबू की यह घर वापसी उम्मीद और मंसूबों से लबरेज उत्साहपूर्ण वापसी है।

गजाधर बाबू जिन कोमल भावनाओं और आकांक्षाओं के साथ अपने परिवार के बीच वापस आए, परिवार का माहौल और वहाँ की परिस्थिति उन कोमल भावनाओं के अनुकूल नहीं मिलीं। कुछ ही दिन बीते और गजाधर बाबू को वास्तविकता की कठोरता का एहसास होने लगा। पत्नी और बाल-बच्चों के बीच रहकर सम्मान और स्नेह पाने की जो उम्मीद गजाधर बाबू लेकर आए थे वो सब जैसे एक-एक कर चूर होते गए और अन्ततः एक तीव्र यथार्थ-बोध, पीड़ादायक मगर यथार्थ, "कि वह ज़िंदगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूँद भी न मिली"। (पृष्ठ – 147) यथार्थ का ऐसा तीखा और तीव्र बोध ही व्यक्ति को 'एलियनेशन' (अलगाव बोध / विरक्ति) की ओर ले जाता है। इसी अलगाव-बोध की स्थिति में गजाधर बाबू घर की किसी बात में

हस्तक्षेप न करने का संकल्प लेते हैं। अलगाव-बोध और गहरा होता है और गजाधर बाबू चीनी मिल में नौकरी करने के लिए पुनः परिवार से दूर अकेलेपन की ओर वापसी करने का निश्चय करते हैं। 'बुझी हुई आग में एक चिनगारी' भर उम्मीद लिए पत्नी से अपने साथ चलने को पूछते हैं। पत्नी का जवाब है – "मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा ? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की ... ।" (पृष्ठ –148) परिवार से गजाधर बाबू के लगाव की अन्तिम कड़ी यहीं चटक कर टूट जाती है। आग में कोई चिनगारी भी शेष नहीं रहती। और इस तरह गजाधर बाबू के जीवन में दूसरी बार वापसी की प्रक्रिया घटित होती है।

कहानी में गजाधर बाबू की पहली वापसी एक कल्पित यथार्थ की ओर है। लिहाजा उसमें उत्साह है, अपने घर-परिवार के प्रति एक गहरी आसक्ति है लेकिन दूसरी वापसी की पृष्ठभूमि में है – ठोस कड़वे यथार्थ की अनुभूति। इसलिए इसमें एक हताशा है, भारीपन है और है एक गहरा, बहुत गहरा अलगाव-बोध। कहानी में ध्यान देने लायक बात है कि जिन गजाधर बाबू को नौकरी के अकेलेपन से घर वापसी करते हुए अपना जीवन बहुत हद तक सफल मालूम पड़ता है, उन्हें बाद में ज़िंदगी द्वारा ठगे जाने का कड़वा यथार्थ-बोध होता है। कल्पित और घटित यथार्थ के बीच गजाधर बाबू की अकेलेपन से परिवार और परिवार से फिर अकेलेपन की ओर वापसी इस कहानी में एक ज़बर्दस्त 'आयरनी' (विडम्बना) की सृष्टि करता है। यह 'आयरनी' ही असल में इस कहानी की जान है।

5.4.5. कलागत विशेषताएँ

एक कहानीकार के तौर पर उषा प्रियंवदा को स्थापित करने वाली कहानी है, 'वापसी'। तब सवाल है कि 'वापसी' कहानी में ऐसी क्या विशिष्टता है ? क्या यह विशिष्टता कहानी के विषय में है ? गजाधर बाबू जैसे बुजुर्ग पुरुष या महिला पर प्रेमचंद के जमाने से कहानियाँ लिखी जा रही हैं। खुद प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' परिवार में एक वृद्ध महिला की दयनीय स्थिति का मार्मिक उद्‌घाटन करने वाली कहानी है। उसके बाद भी इस तरह की कहानियाँ लिखी जाती रही हैं। जिस वर्ष वापसी कहानी का प्रकाशन हुआ (सन् 1961 में), उसी वर्ष द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानी 'एक शिल्पहीन कहानी' भी प्रकाशित हुई। यह कहानी भी एक सेवानिवृत्त बुजुर्ग व्यक्ति की पारिवारिक उपेक्षा की कहानी है। मतलब वृद्धावस्था और पारिवारिक उपेक्षा का विषय कोई नया विषय नहीं है, इस पर ढेरों कहानियाँ लिखी जाती रही हैं। ऐसे में 'वापसी' की विशिष्टता कहाँ है ? दरअसल इस कहानी और कहानीकार की विशिष्टता इस विषय के 'ट्रीटमेंट' में है। उषा प्रियंवदा ने जिस परिपक्व 'अप्रोच' से इस कहानी को 'ट्रीट' किया है, वह इसे पहले की अन्य कहानियों से अलग और विशिष्ट बनाता है।

नये कहानीकार जीवन को उसकी पूरी जटिलता और संश्लिष्टता में पकड़ना चाहते हैं। यथार्थवाद और प्रामाणिकता का आग्रह भी नये कहानीकार को इस ओर प्रवृत्त करता है। हिन्दी कहानी का एक दौर रहा, जहाँ नायकत्व और खलनायकत्व की अवधारणा बहुत साफ रही। कहानी के भीतर नायक के साथ खलनायक की पहचान बहुत स्पष्ट रही। लेकिन जैसे-जैसे हिन्दी कहानी में यथार्थवादी रुझान बढ़ता है वैसे-वैसे नायकत्व और खलनायकत्व की पहचान धुँधली होती जाती है। चरित्र सरल से जटिल होते जाते हैं। पाठक के लिए एक झटके

में यह तय करना आसान नहीं रह जाता कि अमुक पात्र गलत है और अमुक पात्र सही। आधुनिक मूल्यबोध और जीवन-प्रसंगों का यथार्थ भी दरअसल ऐसा ही है। 'वापसी' कहानी में उषा प्रियंवदा ने गजाधर बाबू को नायक बनाकर उनके परिवार के अन्य लोगों को खलनायक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया। गजाधर बाबू के साथ घर का कोई सदस्य सीधे-सीधे कोई अति अमानवीय व्यवहार भी नहीं करता। उनके बीच जो दूरी है उसे नायकत्व और खलनायकत्व के खाँचे में डालकर समझा भी नहीं जा सकता। नये कहानीकार मानव व्यक्तित्व को उसके पूरे पेंच-ओ-ख़म के साथ पकड़ना चाहते हैं और इसलिए उनकी कहानियों में नायक और खलनायक का 'कांट्रास्ट' नहीं मिलता। निर्गुण की 'एक शिल्पहीन कहानी' से 'वापसी' की जो तुलना डॉ॰ नामवर सिंह ने की है, उसमें उन्होंने 'वापसी' को 'एक शिल्पहीन कहानी' की तुलना में नयी कहानी माना है जो सही भी है। 'निर्गुण' कहानी को गतकालिक संवेदना के अनुसार गढ़ते हैं और इसलिए वहाँ हरिकृष्ण बाबू एक सरल, उदार व्यक्ति के रूप में नायकत्व ग्रहण करते हैं और उनकी बहू विमला एक दुष्ट, ससुर की इज्जत न करने वाली कर्कशा स्त्री के रूप में खलनायक बना दी जाती है। इससे कथानक बहुत सपाट हो जाता है। यहाँ व्यक्ति चरित्र या तो अतिमानव है या अमानवीय। लेकिन नये कहानीकार इस बात को खूब अच्छी तरह समझते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व को पूरी तरह स्याह या सफ़ेद मानना एक व्यावहारिक भूल है। मानव व्यक्तित्व तमाम जटिलताओं का पुंज है जिसे नया कहानीकार उसी जटिलता और संश्लिष्टता के साथ उद्घाटित करना चाहता है। दरअसल यह जटिलता ही सहजता है और शायद इसलिए ज्यादा 'अपीलिंग' भी। यही कारण है कि निर्गुण की 'एक शिल्पहीन कहानी' जहाँ एक प्रकार के सरलीकरण की ओर मुड़ जाती है, वहीं उषा प्रियंवदा की 'वापसी' और काशीनाथ सिंह की 'सुख' जैसी कहानियाँ परिवार, समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों को उसकी पूरी सूक्ष्मता और संश्लिष्टता के साथ पकड़ती हैं। 'वापसी' अपने कथानक की इसी संश्लिष्टता से पाठक को अधिक प्रभावित करती है।

'वापसी' के कथानक की विशिष्टता इस बात में भी है कि वहाँ संयोग घटित नहीं होते। 'एक शिल्पहीन कहानी' की कथा संयोगों के सहारे ही आगे बढ़ती है। पाठक को हमेशा लगता है कि रचनाकार प्रयासपूर्वक घटनाओं को समायोजित कर रहा है। वहाँ कल्पना का पूरा इस्तेमाल घटनाओं के समायोजन के जरिये कथा को गढ़ने में किया गया है। जबकि नये कहानीकार पर जीवन की वास्तविकता और यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति का दबाव इस कदर है कि वह कल्पना का इस्तेमाल कथा को गढ़ने में नहीं बल्कि यथार्थ को और अधिक संश्लिष्ट, प्रामाणिक और प्रभावशाली बनाने के लिए करते हैं। यही कारण है कि नयी कहानी में कथा का विकास संयोग आधारित नहीं है। 'वापसी' कहानी में भी संयोग घटित नहीं होते, बल्कि घटनाओं के सहज प्रवाह में धीरे-धीरे उस तनाव की सृष्टि होती है जो गजाधर बाबू के साथ-साथ पाठक को भी एक गहरे अवसाद की स्थिति में पहुँचा देता है। ध्यान रहे कि अवसाद और भावुकता में अन्तर है। यह कहानी पाठक को भावुक नहीं करती बल्कि एक निर्णयहीनता की स्थिति में पहुँचा देती है जिसमें पाठक के लिए यह तय कर पाना मुश्किल हो जाता है कि गजाधर बाबू की स्थिति के लिए कौन जिम्मेदार है – परिवार के लोग, स्वयं गजाधर बाबू या कि परिस्थिति।

एक कहानीकार के रूप में उषा प्रियंवदा की परिपक्वता कहानी में और भी कई स्थलों पर दिखाई पड़ती है। कहानी को बेहतर और प्रभावशाली बनाने के लिए कुछ तकनीकों का बड़ी ही सहजता के साथ उषा प्रियंवदा

ने इस्तेमाल किया है। ऐसी ही एक तकनीक है, 'पेशबन्दी' अर्थात् भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्व संकेत। 'वापसी' कहानी के सजक पाठकों का ध्यान इस बात की तरफ ज़रूर जाएगा कि गजाधर बाबू के घर लौटने के पहले, रेलवे क्वार्टर में रहते हुए, पत्नी और बच्चों के साथ बिताए गए सुखद दिनों की याद का प्रसंग कथा लेखिका ने रचा है। असल में पत्नी और बच्चों के साथ पुराने सुखद दिनों की याद का प्रसंग रचना एक तरह की 'पेशबन्दी' है जो भविष्य में घटने वाली 'ट्रेजेडी' का संकेत कर देती है। साथ ही, गजाधर बाबू के अकेलेपन और सुखद अतीत के 'कांट्रास्ट' से कहानी की प्रभावोत्पादकता भी बढ़ जाती है।

5.4.6. पाठ-सार

'वापसी' की मूल कथावस्तु एक सेवानिवृत्त वृद्ध व्यक्ति की पारिवारिक उपेक्षा और इससे उसके भीतर पैदा हुआ अलगाव-बोध है। एक हँसने-बोलने वाला खुशमिजाज व्यक्ति कैसे धीरे-धीरे पारिवारिक माहौल में खामोश और अकेला होता चला जाता है – इसे इस कहानी के माध्यम से देखा जा सकता है। कहानी के नायक गजाधर बाबू की पीड़ा आन्तरिक है जो उनकी अपनी जीवन परिस्थितियों और पारिवारिक स्थिति से पैदा हुई है। परिवार से दूर रहते हुए पत्नी और बच्चों के लिए हर तरह की सुविधाओं को जुटाते रहने वाले गजाधर बाबू पत्नी और बच्चों से प्रेम-स्नेह और सम्मान की उम्मीद लिए वापस आते हैं लेकिन पारिवारिक परिस्थितियाँ उनके मनोनुकूल नहीं हैं। गजाधर बाबू स्वयं को परिवार का केन्द्र समझते रहे थे लेकिन उन्होंने महसूस किया कि वह तो हाशिए पर कहीं डाल दिए गए हैं। 'वापसी' कहानी गजाधर बाबू की इस मानसिक दशा और पीड़ा-बोध को बारीकी से पकड़ती है। कहानी में घटनाओं की बहुलता नहीं है और न ही कोई घटना ऊपर से आरोपित है। एक मध्यमवर्गीय सामान्य पारिवारिक संरचना के भीतर घटनाएँ बहुत ही सहज ढंग से घटित होती हैं और इसी में धीरे-धीरे कहानी के तनाव की दृष्टि होती है। कहानी में कहीं भी घटनाओं के संयोजन की सायासता दिखाई नहीं पड़ती। यह एक लेखिका के तौर पर उषा प्रियंवदा की बड़ी उपलब्धि है। 'वापसी' अपनी 'थीम' तथा कथा-शिल्प दोनों ही लिहाज से एक सशक्त कहानी है। निश्चय ही यह हिन्दी की कालजयी कहानियों में स्थान पाने की हकदार है।

5.4.7. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'वापसी' कहानी की मूल कथावस्तु बताइए।
2. 'वापसी' कहानी के शिल्पगत विशेषता बताइए।
3. उषा प्रियंवदा का साहित्यिक परिचय दीजिए।
4. 'वापसी' कहानी के शीर्षक को स्पष्ट कीजिए।
5. 'नयी कहानी' की कुछ विशेषताएँ बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'वापसी' कहानी की समीक्षा कीजिए।
2. 'नयी कहानी' के रूप में 'वापसी' की समीक्षा करते हुए इसके नयेपन को रेखांकित कीजिए।
3. परिवार में वृद्धों की स्थिति को केन्द्र में रखकर लिखी गई अन्य कहानियों से 'वापसी'की तुलना कीजिए।
4. 'वापसी' कहानी के कलागत वैशिष्ट्य को उद्घाटित कीजिए।

5.4.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. प्रियंवदा, उषा (2015). सम्पूर्ण कहानियाँ. दिल्ली. राजकमल प्रकाशन. ISBN : 978-81-267-0909-0.
2. जैन, निर्मला (2007). मेरी कहानियाँ : उषा प्रियंवदा. दिल्ली. वाणी प्रकाशन.
3. सिंह, नामवर (1992). कहानी : नई कहानी. इलाहाबाद. लोकभारती प्रकाशन.
4. राय, गोपाल (2011). हिन्दी कहानी का इतिहास. दिल्ली. राजकमल प्रकाशन. ISBN : 978-81-267-2055-2.
5. यादव, राजेन्द्र (2003). एक दुनिया : समानान्तर. दिल्ली. राधाकृष्ण प्रकाशन. ISBN : 81-7119-852-X.
6. अवस्थी, देवीशंकर (2002). नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति. दिल्ली. राजकमल प्रकाशन. ISBN : 81-267-0377-6.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : कहानी – 2

इकाई – 5 : बादलों के घेरे – कृष्णा सोबती

इकाई की रूपरेखा

5.5.0. उद्देश्य कथन
5.5.1. प्रस्तावना
5.5.2. कृष्णा सोबती की कहानियाँ : एक परिचय
5.5.3. हिन्दी कहानी के इतिहास में कृष्णा सोबती का स्थान और महत्त्व
5.5.4. 'बादलों के घेरे' कहानी का परिवेश और कथासार और शिल्प
    5.5.4.1. 'बादलों के घेरे' कहानी का कथासार
5.5.5. क्षय रोग का स्वास्थ्य पर पड़ता मृत्युकारक दंशमूलक प्रभाव
    5.5.5.1. शारीरिक प्रभाव
    5.5.5.2. मानसिक प्रभाव अर्थात् निचाट अकेलापन
5.5.6. क्षय रोग की संक्रामकता का सर्वव्यापी सामाजिक प्रभाव
    5.5.6.1. विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ता प्रभाव
        5.5.6.1.1. पितृ-पीढ़ी और संतति के सम्बन्धों पर
        5.5.6.1.2. पति-पत्नी के सम्बन्धों पर
5.5.7. सामाजिक परम्परावाद का निषेध करती अटूट प्रेम-संवेदना (रवि और मन्नो)
5.5.8. पाठ-सार
5.5.9. बोध प्रश्न

5.5.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे –

i. हिन्दी-कहानी में कृष्णा सोबती का स्थान एवं महत्त्व क्या है।
ii. क्षय रोग कितना भयावह है व उसके संक्रमण के डर और आशंका से सामाजिकपारिवारिक सम्बन्धों में किस क़दर टूटन और बेमुरौव्वती आती है।
iii. एक गहरी और वास्तविक प्रेम-संवेदना क्षय जैसे रोग की संक्रामकता को निष्प्रभावी कर सकती है।
iv. प्रेम की स्मृति अमिट और स्थायी होती है।
v. कृष्णा सोबती की कहानियों के भाषा-शिल्प की प्रभावशीलता कितनी गहरी और शक्तिशाली है।

5.5.1. प्रस्तावना

कृष्णा सोबती की कहानी 'बादलों के घेरे' स्वयं लेखिका की सूचनानुसार जनवरी 1955 में लिखी गई थी । यह कहानी 1980 में इसी नाम (बादलों के घेरे) से प्रकाशित उनके पहले कहानी-संग्रह में संगृहीत है । (सोबती, कृष्णा, बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2006, पृष्ठ 30) । यह इस संग्रह की सबसे पहली कहानी है और इस संग्रह की सबसे लम्बी कहानी है। कृष्णा सोबती ने अनेक लम्बी कहानियाँ लिखी हैं, जैसे – 'यारों के यार', 'तिन पहाड़', 'ऐ लड़की' आदि। किन्तु ये तीनों अब उपन्यास के रूप में छपकर आ चुके हैं अतः अब इन्हें कहानी के रूप में नहीं, उपन्यास के रूप में ही देखा-पढ़ा जाता है। इस दृष्टि से 'बादलों के घेरे' उनकी सबसे लम्बी कहानी मानी जा सकती है।

इस कहानी की कथावस्तु के अनेक स्तर हैं। इनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं –

1. रवि और मन्नो के बीच का अहेतुक और अनचीन्हा किन्तु स्मृति में स्थायी गहन प्रेम।
2. रवि की बुआ और रवि के बीच के औपचारिक सामाजिक सम्बन्ध।
3. रवि की पत्नी मीरा का अपने पति के प्रति बेगानापन और बेमुरौव्वत व्यवहार ।
4. क्षय रोग की संक्रामकता के भय से सम्बन्धों में पैदा होती संवेदनहीनता ।
5. क्षय रोग से ग्रस्त रोगी का सामाजिक बहिष्कार ।
6. क्षय रोग से ग्रस्त रोगी का व्यक्तिगत एवं सामाजिक निचाट अकेलापन ।
7. प्रेम-भावना की अक्षयता ।

उक्त समस्त स्तरों पर चलती हुई इस कहानी की कथावस्तु अन्ततः एक मुकम्मल अन्तर्वस्तु या कथ्य तक पहुँचती है। यह कथ्य या अन्तर्वस्तु है, 'प्रेम की अक्षयता या अक्षुण्णता', 'प्रेम-तत्त्व की अपराजेयता ।' इस प्रकार इस कहानी की स्थापना है, "प्रेम-तत्त्व अक्षुण्ण रहता है, रोग-शोक इत्यादि से अप्रभावित और असंक्रमित।"

5.5.2. कृष्णा सोबती की कहानियाँ : एक परिचय

कृष्णा सोबती ने कहानियाँ ज्यादा नहीं लिखीं। उनका केवल एक कहानी-संग्रह है, 'बादलों के घेरे' । जो 1980 में पहली बार छपकर आया । सन् 2006 में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ । इस संग्रह में कुल चौबीस कहानियाँ हैं । कृष्णा सोबती के कथा-लेखन की शुरुआत कहानी से ही हुई थी । बाद में वे उपन्यास पर केन्द्रित हो गईं। सन् 1991 से लेकर 1968 तक उन्होंने कहानियाँ ही लिखीं। सन् 1968 के बाद फिर सन् 1991 में ही 'ऐ लड़की' के रूप में उनकी अगली कहानी आई । सन् 1991 के बाद से लेकर अब तक उन्होंने कोई कहानी नहीं लिखी है।

जैसा कि ऊपर उल्लिखित किया गया, 'ऐ लड़की', 'यारों के यार' और 'तिन पहाड़' अब उपन्यास के रूप में प्रकाशित हो गए हैं। इनके पाठ में कोई अन्तर नहीं है । वह शब्दशः समान है। उपन्यास-रूप में ये बड़े

लिप्यक्षर (फ़ॉण्ट) में तथा अगल-बगल हाशिये छोड़कर प्रकाशित किए गए हैं किन्तु इससे कोई कथात्मक अन्तर नहीं पड़ता। रचनात्मक रूप से इनका शिल्पगत स्वरूप वहीं रहता है अर्थात् मूलतः ये कहानियाँ ही मानी जाएँगी। 'ऐ लड़की' हिन्दी की प्रसिद्ध साहित्यिक मासिक पत्रिका 'वर्तमान साहित्य' के सुप्रसिद्ध कथाकार श्री रवीन्द्र कालिया के कुशल सम्पादन में छपे 'कहानी' महाविशेषांक में प्रकाशित हुई थी और बहुत अधिक चर्चित हुई।

इन तीनों लम्बी कहानियों की संक्षिप्त चर्चा किया जाना यहाँ उपयुक्त होगा। मसलन, यदि 'यारों के यार' को लिया जाए तो यह कहा जाना उचित होगा कि हिन्दी में सरकारी कार्यालयों, कार्यपालिका में व्याप्त भ्रष्टाचार, मनमानेपन, खड़ूसपन, बेहुरमती, बदतमीज़ी इत्यादि का इतना व्यंग्यात्मक और ज़िंदादिल, सामने वाले को शर्मसार कर देने वाला चित्रण अपनी कहानी में किसी महिला कथाकार द्वारा पहली बार किया गया था। ऐसी बोल्डनेस इससे पहले हिन्दी की किसी भी महिला कथाकार में नहीं देखी गई। सरकारी दफ्तरों के बाबुओं की मस्खरियाँ यहाँ विस्तार में चित्रित हैं। सरकारी दफ्तरों में उच्च स्तर पर दिन-रात चलने वाले लेन-देन, ठेके-कमीशन के शाही धन्धे को इस कहानी में बेनक़ाब किया गया है। यह हमारे आज के समय से लगभग पचास साल पहले के सरकारी हिन्दुस्तान की हकीक़त है। आज़ादी के मात्र बीस साल बाद का सरकारी हिन्दुस्तान, जहाँ अवस्थी, टंडन, श्रीवास्तव, सिन्हा, पाशा, हजारासिंह-प्यारासिंह, तमाशा, भाटिया, सरताज-चंदोक, प्रभुदयाल जैसों का नेक्सस सक्रिय और स्थायी हैसियत अख्तियार कर चुका था। इस कहानी का शिल्प बहुत ही संश्लिष्ट है जिसके कारण इसमें सघन औपन्यासिकता आ गई है। अपने प्रकाशन-काल में यह कहानी अत्यधिक चर्चित हुई थी। (द्रष्टव्य, गुप्त, शम्भु, कहानी की अंदरूनी सतह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ – 151-52)।

'तिन पहाड़' पुरुष-वर्चस्व की औपनिवेशिकता में फँसी एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो अपनी मूल्य-निष्ठा के वशीभूत किसी तरह का कोई समझौता या समायोजन करने के स्थान पर स्वयं मृत्यु का वरण करना ज़्यादा उपयुक्त समझती है। एक विशिष्ट भारतीय पारिस्थितिकी में स्त्री की नियति का यह एक विशिष्ट शर्मनाक पहलू है जिसमें कुछ लोगों के कुछ समय के अपराध-बोध के स्थितियाँ 'आयी-गयी' हो जाती हैं।

'ऐ लड़की' कहानी एक मरणासन्न वृद्ध स्त्री की लम्बी दास्तान है। इस कहानी की अम्मू मृत्यु को चुनौती देती दिखाई देती है। वह बीमारी के कारण असमय मृत्यु की ओर बढ़ने से थोड़ा दुखी है किन्तु उसकी जिजीविषा उद्दामता-उच्छलता में तत्त्वतः कोई कमी नहीं आती। अम्मू के रूप में एक व्यक्ति के रूप में स्त्री के अस्तित्व की एक ज़बर्दस्त सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पैरोकार स्त्री के दर्शन हमें होते हैं। (वही, पृष्ठ – 158)।

कृष्णा सोबती की अन्य कहानियों में 'बादलों के घेरे', 'कुछ नहीं – कोई नहीं', 'दोहरी साँझ', 'डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा', 'न गुल था, न चमन था', 'दो राहें, दो बाहें', 'बदली बरस गई', 'बहनें', 'सिक्का बदल गया', 'कामदार भीखमलाल', 'आज़ादी शम्मोजान की', 'नफ़ीसा', 'मेरी माँ कहाँ ...।', 'जिगर की बात' आदि प्रमुख हैं।

कृष्णा सोबती हिन्दी की सबसे सहज, सबसे गम्भीर, सबसे यथार्थनिष्ठ तथा सबसे अधिक प्रतिबद्ध महिला कथाकार हैं। कृष्णा सोबती की कहानियाँ पढ़ते हुए पाठक को यह बिल्कुल महसूस नहीं होता कि वे किसी महिला कथाकार की कहानियाँ पढ़ रहे हैं। कृष्णा सोबती ने प्रारम्भ से ही अपने लिए एक ऐसा धरातल चुना है जहाँ लिंग के आधार पर किसी तरह का कोई आरक्षण या संरक्षण या विशिष्टीकरण न तो मान्य है और न विचारणीय है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण उनकी तीन खण्डों में प्रकाशित 'हम हशमत' पुस्तक-शृंखला है। "स्वयं को स्त्री मानकर और ऐसा मानते हुए अपने लिए कुछ विशेषाधिकारों की माँग करते हुए ऐसा गद्य नहीं लिखा जा सकता। दरअसल रचना की भूमि एक ऐसा खुला मैदान है जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों को ही अपने अन्तर्निषेधों से मुक्त होकर प्रविष्ट होना होता है। जब तक जिस किसी को भी यह मुक्ति नहीं मिलती, वह कालजयी रचना नहीं कर सकता।" (वही, पृष्ठ – 155)।

कृष्णा सोबती ज़मीन से जुड़ी हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कथाकार हैं। देसीपन उनकी आत्मा में बसा है। वे आधुनिक हैं पर आधुनिकतावाद से उन्हें परहेज़ है। कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती अपनी जड़ों से अत्यन्त ही गहरे जुड़ी हैं। 'हम हशमत' के अन्तिम आलेख 'मुलाक़ात हशमत से हशमत की' के एकदम अन्त में उन्होंने लिखा है – "इस सन्दूक से आज भी पकी फसलों की गन्ध आती है। धूप में सरसों की बासन्ती चूनर दीखती है। उन कच्ची सगी राहों को गुँजाती घोड़ों की टाप सुन पड़ती है। रहटों की सुहानी लय मेरे कानों पर ठुक जाती है।"

"इस सन्दूक में उस धरती की खुशबू बन्द है।" (सोबती, कृष्णा, हम हशमत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1977, पृष्ठ – 211-212)। इसी आलेख में इससे पहले उन्होंने यह भी लिखा था – "हमें सीधे-सादे लोग अच्छे लगते हैं। आम तौर पर यही वे लोग होते हैं जिनकी आँखों में आप इंसान की खुशियाँ, ग़म, उम्मीदें, आस्थाओं का असली रूप-रंग देख सकते हैं।" (वही, पृष्ठ – 207)।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि कृष्णा सोबती का रचनात्मक स्वभाव देशजता से ओत-प्रोत है। उनकी कहानियों पर भी उनके इस स्वभाव का भरपूर असर पड़ा है। इस सन्दर्भ में उनकी 'दादी-अम्मा', 'भोले बादशाह', 'टीलो ही टीलो', 'जिगरा की बात' आदि कहानियाँ देखी जा सकती हैं।

5.5.3. हिन्दी कहानी के इतिहास में कृष्णा सोबती का स्थान और महत्त्व

कृष्णा सोबती की कहानियाँ वास्तविक यथार्थ के अत्यधिक निकट की कहानियाँ हैं। हिन्दी कहानी की परम्परा में जिसे हम 'नयी कहानी' कहते हैं, कृष्णा सोबती उसी नयी कहानी-काल की लेखिका रही हैं। भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, अमरकान्त, शेखर जोशी, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश आदि लेखक-लेखिकाओं के समकाल उनका लेखन रहा है। संक्षेप में हम उन्हें नयी कहानी की सबसे समर्थ कहानीकार कह सकते हैं। 'बादलों के घेरे' संग्रह के फ्लैप पर उनके विषय में यह नितान्त उचित ही लिखा गया है – "भारतीय साहित्य के परिदृश्य पर कृष्णा सोबती अपनी संयमित अभिव्यक्ति और सुथरी रचनात्मकता के लिए जानी जाती हैं। कम लिखने को वे अपना परिचय मानती हैं जिसे स्पष्ट इस तरह किया जा सकता है कि उनका 'कम लिखना' दरअसल

'विशिष्ट लिखना' है। ... कृष्णा सोबती ने हिन्दी की कथा-भाषा को एक विलक्षण ताज़गी दी है। उनके भाषा-संस्कार के घनत्व, जीवन्त प्रांजलता और सम्प्रेषण ने हमारे समय के अनेक पेचीदा सच आलोकित किए हैं। उनके रचना-संसार की गहरी सघन ऐन्द्रिकता, तराश और लेखकीय अस्मिता ने एक बड़े पाठक-वर्ग को अपनी ओर आकृष्ट किया है। निश्चय ही कृष्णा सोबती ने हिन्दी के आधुनिक लेखन के प्रति पाठकों में एक नया भरोसा पैदा किया है। अपने समकालीनों और आगे की पीढ़ियों को मानवीय स्वातन्त्र्य और नैतिक उन्मुक्तता के लिए प्रभावित और प्रेरित किया है। निज के प्रति सचेत और समाज के प्रति चैतन्य किया है।" (द्रष्टव्य, सोबती, कृष्णा, बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2006, पृष्ठ – पिछला फ्लैप)।

युवा स्त्री-आलोचक डॉ॰ सुनीता गुप्ता ने अपने 'सशक्त स्त्री-पात्रों की स्रष्टा' शीर्षक लेख में लिखा है – "अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी के स्त्री लेखन को एक नवीन तथा सशक्त मोड़ देने वालों में कृष्णा सोबती का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कृष्णा सोबती की साहित्यिक यात्रा लगभग पचास वर्षों की लम्बी कालावधि को समेटे हुए है जिसमें स्त्री-चेतना के विविध मोड़ों का सहज ही अनुसन्धान किया जा सकता है।" (गुप्ता, सुनीता, स्त्री-चेतना के प्रस्थान-बिन्दु, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ –149, ISBN : 81-7714-363-8)। उनके समकालीन प्रसिद्ध कथाकार और प्रसिद्ध पत्रिका 'हंस' के सम्पादक राजेन्द्र यादव ने उनके विषय में लिखा था – "वे भयानक परफैक्शनिस्ट हैं।" (वही, पृष्ठ 149 पर उद्धृत)।

5.5.4. 'बादलों के घेरे' कहानी का परिवेश और कथासार तथा शिल्प

'बादलों के घेरे' कहानी का परिवेश बहुव्यापी है। अधिकांशतः यह कहानी वर्तमान उत्तराखण्ड के पहाड़ी परिक्षेत्र में फैली है। इसमें भी कहानी की घटनाओं का सर्वाधिक हिस्सा भुवाली नामक स्थान में घटित होता है। इसमें भी भुवाली का क्षयरोग निवारण केन्द्र 'सेनेटोरियम' कथानक के केन्द्र में है। कहानी की शुरुआत और अन्त दोनों इसी 'सेनेटोरियम' के एक कॉटेज में होते हैं। जैसे कहानी का यह प्रारम्भिक अंश – "भुवाली की इस छोटी-सी कॉटेज में लेटा-लेटा मैं सामने के पहाड़ देखता हूँ। पानी-भरे, सूखे-सूखे बादलों के घेरे देखता हूँ। बिना आँखों के भटक-भटक जाती धुँध के निष्फल प्रयास देखता हूँ और फिर लेटे-लेटे अपने तन का पतझार देखता हूँ। सामने पहाड़ के रूखे हरियाले मेरा मगढ़ जाती हुई पगडंडी मेरी बाँह पर उभरी लम्बी नस की तरह चमकती है। पहाड़ी हवाएँ मेरी उखड़ी-उखड़ी साँस की तरह कभी तेज, कभी हौले इस खिड़की से टकराती हैं, पलंग पर बिछी चद्दर और ऊपर पड़े कम्बल से लिपटी मेरी देह चूने की-सी कच्ची तह की तरह घुल-घुल जाती है और बरसों के ताने-बाने से बुनी मेरे प्राणों की धड़कनें हर क्षण बन्द हो जाने के डर में चूक जाती हैं।" (सोबती, कृष्णा, बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2006, पृष्ठ – 7, ISBN : 81-267-1184-1)।

कहानी के प्रारम्भ में भी बादलों के घेरे हैं और अन्त में भी वे यहाँ उपस्थित हैं। कथानायक रवि अन्त में इन्हीं बादलों के घेरे में समा जाने की आशंका से आक्रान्त है – "आए दिन दवा के नये बदलते हुए रंग देखकर अब

इतना तो जान गया हूँ कि इस छूटते-छूटते तन में मन को बहुत देर भटकना नहीं होगा। एक दिन खिड़की से बाहर देखते-देखते इन्हीं बादलों के घेरे में समा जाऊँगा ... इन्हीं में समा जाऊँगा।" (वही, पृष्ठ – 7)।

कहानी में भुवाली का अनेक बार उल्लेख और वर्णन आया है। पहले मन्नो के सन्दर्भ से तथा बाद में स्वयं कथानायक रवि के सन्दर्भ से। ऐसा प्रतीत होता है कि भुवाली का पर्वतीय परिदृश्य एवं परिवेश लेखिका को अत्यन्त ही प्रिय है। वे उसके जीवट से भरे नवोन्मेषी प्राकृतिक सौन्दर्य एवं आकर्षक परिवेश का पुनः पुनः चित्रण करने की कथात्मक आकांक्षा से भरी दिखाई देती हैं। भुवाली का शान्त, शीतल, प्रदूषण-रहित वातावरण क्षय रोगियों के लिए एक प्रकार की संजीवनी का काम करता है। भुवाली एक बहुत ही प्यारी, मनोहारी, प्राकृतिक उत्पादनों से समृद्ध एक केन्द्रीय पर्वतीय स्थल है जहाँ से कई महत्त्वपूर्ण स्थान निकटतर स्थित हैं। जैसे नैनीताल, काठगोदाम, रामगढ़ आदि। भुवाली की मनोहारिता का कहानी में निबद्ध यह विवरण उल्लेख्य है – "बस से उतरा। अड्डे पर रामगढ़ के लाल-लाल सेबों के ढेर देखकर यह नहीं लगा कि यही भुवाली है। बस में सोचता आया था कि वहाँ घुटन होगी, पर चीड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से लहराती हवाएँ बह-बह आती थीं। छाँह ऊपर उठती है, धूप नीचे उतरती है और भुवाली मन को अच्छी लगती है। तन को अच्छी लगती है। ... खुली-चौड़ी सड़क के मोड़ से अच्छी-सी पतली राह ऊपर जा रही थी। जंगले से नीचे देखा, अलग-अलग खड़े पहाड़ों के बीच की जगह पर एक खुली-चौड़ी घाटी बिछी थी। तिरछे-सीधे, छोटे-छोटे खेत किसी के घुटने पर रखे कसीदे के कपड़े की तरह धरती पर फैले थे। दूर सामने दक्खिन की ओर पानी का ताल धूप में चाँदी के थाल की तरह चमकता था।" (वही, पृष्ठ – 16-17)।

भुवाली के अलावा इस कहानी में नैनीताल का भी कई बार दृश्यांकन किया गया है। उदाहरण के लिए यह अंश देखा जा सकता है – "उलझा-उलझा-सा मैं बाहर निकला और उतराई उतरकर झील के किनारे-किनारे हो गया। सड़क के साथ-साथ इस ओर छाँह थी। उछल-उछल आती पानी की लहरें कभी धूप से रुपहली हो जाती थीं। देवी के मन्दिर के आगे पहुँचा, तो रुका, जंगले पर हाथ टिकाए झील में नौकाओं की दौड़ देखता रहा। बलिष्ठ हाथों में चप्पू थामे कुछ युवक तेज रफ़्तार से तल्लीताल की ओर जा रहे हैं, पीछे की किश्ती में अपने तन-मन से बेखबर एक प्रौढ़ बैठा ऊँघ रहा है। उसके पीछे बोट-क्लब की किश्ती में विदेशी युवतियाँ ... फिर और दो-चार पल वाली नौकाएँ ... जंगले पर से हाथ उठाकर बुआ के घर की दिशा में देखता हूँ। चीना की चोटी अपने पहाड़ी संयम से सिर उठाए सदा की तरह सीधी खड़ी है। एक ढलती-सी पथरीली ढलान को उसने जैसे हाथ से थाम रखा है।" (वही, पृष्ठ – 10-11)।

पहाड़ी परिदृश्य के अलावा काठगोदाम, लखनऊ, दक्षिण के किसी शहर आदि के उल्लेख भी इस कहानी में आए है। इस तरह कहा जा सकता है कि कुछ स्थानीय परिवेश लेते हुए यह कहानी अपनी भौगोलिकता में सम्पूर्ण भारत को समेटकर चलती है।

5.5.4.1. 'बादलों के घेरे' कहानी का कथासार

कथानायक रवि अपनी बुआ के पास भुवाली आता है तो वहाँ बुआ के जेठ की लड़की मन्नो आयी हुई है, जिससे बुआ रवि का परिचय कराती है। इस पहले परिचय में ही रवि मन्नो के प्रति कुछ इस क़दर आकर्षित होता है कि जैसे वह उसके दिल पर छा जाती है। यह कुछ-कुछ 'लव एट फ़र्स्ट साइट' जैसा मामला प्रतीत होता है। कहानीकार ने इस स्थिति का चित्रण कुछ इस तरह किया है – "उस दूर-दूर लगने वाले चेहरे से मैं अपने को लौटा नहीं सका। उस पतले किन्तु भरे-भरे मुख पर कसकर बाँधे घुँघराले बालों को देखकर मन में कुछ ऐसा-सा हो आया कि किसी ने गहरे उलाहने की सजा अपने को दे डाली है।" (वही, पृष्ठ – 9)।

इसी अहेतुक प्रेमाबद्धता के चलते रवि मन्नो पर जैसे अपना अधिकार-सा समझने लगता है। उसे बुआ का वह व्यवहार बहुत ही बुरा लगता है, जिसमें वे मन्नो के घर आने पर क्षय रोग के संक्रमण के भय से अपने बच्चों को लेकर बाहर निकल जाती हैं जिससे आहत होकर मन्नो दो दिन की बजाय एक ही दिन में वापस भुवाली अपने कॉटेज के लिए प्रस्थान कर जाती है। रवि मन्नो के प्रति इतना अधिक आकर्षित और अभिभूत हो रहा होता है कि मन्नो के भुवाली रवाना होने के अगले दिन ही, एक तरह से उसके पीछे-पीछे वह भी भुवाली उससे मिलने चला आता है। मन्नो को देखने, उससे मिलने आने का उसका यह सिलसिला उसकी शादी होने तक लगातार जारी रहता है। शादी हो जाने के बाद रवि अपनी पत्नी और गृहस्थी में व्यस्त हो जाता है और उधर मन्नो धीरे-धीरे चुपके से क्षय के अन्तिम पड़ाव तक पहुँचती हुई काल के गाल में समा जाती है। रवि को मन्नो की मृत्यु की ख़बर काफी दिनों बाद मिलती है, जब बरसों बाद एक बार वह अपने लखनऊ-प्रवास के दौरान अपनी बुआ से मिलता है। उसे यक़ायक इस ख़बर पर विश्वास नहीं होता या वह इस ख़बर पर विश्वास करना नहीं चाहता ! इस बीच रवि का विवाह हो जाता है और उसे एक बहुत ही सुन्दर पत्नी मिल जाती है जिसके साथ रहते हुए दस वर्ष कैसे बीत गए, पता ही नहीं चला।

दस वर्ष के पश्चात् रवि बीमार पड़ना शुरू होता है और उसे भी वही बीमारी हो जाती है जो मन्नो को थी, यानी क्षय रोग। एक वर्ष तक घर में लगातार बीमार रहने और ठीक न हो पाने पर उसे भी भुवाली के उसी सेनेटोरियम की शरण लेनी पड़ती है जहाँ एक समय मन्नो थी और वहाँ के एक कॉटेज में रहते हुए धीरे-धीरे मौत के मुँह में समा गई थी। आज रवि की भी एकदम वही स्थिति हो गई है और भुवाली के एक कॉटेज में रहते हुए जैसे वह अपने दिन गिन रहा है, मृत्यु का इंतज़ार कर रहा है। मृत्यु के इंतज़ार की इस घड़ी में उसकी जो मनःस्थिति यहाँ चित्रित की गई है, स्वभावतः उसमें स्मृति तत्त्व का प्राधान्य है। यह पूरी कहानी स्मृति तत्त्व के अधीन फ्लैशबैक शिल्प में चलती है। भुवाली के इस कॉटेज में क्षय रोग से लाइलाज़ रूप से ग्रस्त और धीरे-धीरे मृत्यु की ओर जाते रवि को बारी-बारी से मन्नो से मिलने से लेकर अब तक की प्रमुख-प्रमुख घटनाएँ एक-एक कर याद आती चलती हैं और उसकी पीड़ा और संत्रास और-और ज़्यादा बढ़ता जाता है। इस बीच सबसे ज़्यादा कष्ट उसे दो चीजों से होता है। एक तो बुआ का अपने जेठ की लड़की और अपनी पुत्री जैसी मन्नो के साथ घनघोर बेमुरव्वत व्यवहार और दूसरा अपनी ही पत्नी मीरा का अपने प्रति वह बेगानेपन का व्यवहार जहाँ अपने पति की देखभाल करने की बजाय वह अपने बच्चों को लेकर उससे अलग कहीं दूर चली जाती है और अपने पति को मरने के लिए अकेला

छोड़ जाती है। बीच-बीच में बुआ के तथा स्वयं रवि के बच्चों के चित्रांकन हैंजिनमें दिखाया गया है कि उनका व्यवहार बड़े लोगों की तरह बेमुरव्वत नहीं है। मसलन, बुआ के बच्चे मन्नो से बहुत लगाव रखते हैं और जब वह उनके घर आती है तो बहुत आत्मीयता के साथ 'मन्नो जीजी ... गन्नो जीजी' (वही, पृष्ठ – 9) कहते हुए उससे लिपट-लिपट जाते हैं। इसी तरह रवि के बच्चे भी अपने पापा की ओर हाथ बढ़ाते हैं पर उनकी माँ द्वारा बरज दिया जाता है।

पूर्व में कहा जा चुका है कि यह कहानी स्मृतिमूलक है। इस कहानी का शिल्प फ्लैशबैक का शिल्प है, जिसमें पूरी-की-पूरी कहानी स्मृति के रूप में चलती है। इसकी भाषा पर्याप्त सहज एवं सरल है। कृष्णा सोबती की कहानियों के भाषा-शिल्प पर व्यक्त किया गया प्रो॰ सत्यकाम का यह अभिमत इस कहानी पर भी पूरी तरह लागू होता है – "कृष्णा सोबती की कहन और भाषा काव्यमय है। उनके गद्य को आसानी से कविता की लय में ढाला जा सकता है। ... भाषा की यह लयात्मकता और इसमें पैबस्त उदासी की धुन कृष्णा सोबती के कहन की विशिष्टता है। वे एक संगीतकार की तरह अपनी भाषा को धुन और लय में लाघती हैं फिर उन्हें एक राग में बाँधकर सुर सजाती हैं।" (सत्यकाम, 'संवेद' पत्रिका (सं. : किशन कालजयी, दिल्ली), के जनवरी 2010 के अंक में 'पहाड़ों से उतरती नदी का संगीत' शीर्षक लेख, पृष्ठ – 26 एवं 27)।

5.5.5. क्षय रोग का स्वास्थ्य पर पड़ता मृत्युकारक दंशमूलक प्रभाव

क्षय रोग की विभीषिका और मारकता का बहुविध अंकन इस कहानी में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक परिव्याप्त है। इस प्रभाव को दो बिन्दुओं के रूप में व्याख्यायित कर सकते हैं – (i) शारीरिक प्रभाव तथा (ii) मानसिक प्रभाव अर्थात् निचाट अकेलापन।

5.5.5.1. शारीरिक प्रभाव

कथानायक रवि और मन्नो की शारीरिक स्थिति, कमज़ोरी, बदहाली, अंगों का दुबला-पतला व निर्बल होना, थकान, शारीरिक निष्क्रियता व अगतिशीलता आदि ऐसे संकेत हैं जो क्षय रोग से ग्रस्त होने की सूचना देते हैं। वस्तुतः एक समय हमारे यहाँ ऐसा भी था जब क्षय रोग असाध्य था। अब तो ऐसी-ऐसी पेटेंट दवाएँ आ गई हैं कि उनका एक निश्चित 'कोर्स' है। यदि बिना नागा के उनका सेवन किया जाए, पथ्य व खाने-पीने में कोई लापरवाही, असावधानी, अन्यमनस्कता न बरती जाए और सख्ती से चिकित्सकों के परामर्श का अनुसरण किया जाए तो एक निश्चित समयावधि में निश्चित रूप से यह रोग ठीक हो सकता है लेकिन यह कहानी तब की है जब भारत में टी.बी. का अर्थ मृत्यु माना जाता था। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया, यह कहानी आज़ादी के बाद के पहले दशक की अवधि में लिखी गई थी जब सामान्य स्वास्थ्य-सेवाएँ तक हमारे यहाँ विकासशील अवस्था में थीं। क्षय रोग को हमारे यहाँ 'राज-रोग' माना जाता था। यानी वह बीमारी जो बड़े लोगों, अमीरों, साधनसम्पन्न लोगों को होती है। सामान्य आदमी के लिए तो टी.बी. एक अभिशाप की तरह थी। सामान्य वर्ग के लोगों के पास न इसकी महँगी औषधियों की व्यवस्था की सुविधा थी और न इसके राजशाही पथ्य की। इसलिए उसका मरना

लगभग निश्चित होता था। कई बार सम्पन्न घरों के लोग भी इसके संघात से बच नहीं पाते थे। इस कहानी के रवि और मन्नो मध्यमवर्ग से जुड़े प्रतीत होते हैं, खाते-पीते मध्यमवर्ग से किन्तु उस समय इस वर्ग के लोगों को भी इस रोग से नीरोग हो पाना असम्भव ही था।

अतः क्षय रोग एक आतंक की तरह प्रतीत होता है। शरीर में इसके घुसने का मतलब शरीर का निरन्तर क्षयित या क्षीण से क्षीणतर होते जाना है। इस कहानी में पहले मन्नो और बाद में रवि इसी स्थिति से गुज़रते दिखाई देते हैं। मन्नो और रवि की क्षय रोग ग्रस्तता और उससे पैदा हुई मरणान्तकता का अनेकशः चित्रण लेखिका ने किया है। उदाहरण के लिए, मन्नो सम्बन्धी ये अंश देखे जा सकते हैं–

1. "मुख पर थकान के चिह्न थे। ... वही पीली, पतझड़ी दृष्टि उन हाथों पर जमी थी जो कम्बल पर एक-दूसरे से लगे मौन पड़े थे।" (सोबती, कृष्णा, बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2006, पृष्ठ – 13)।
2. "मन्नो ने पल-भर को थकी-थकी पलकें मूँद लीं और कुछ बोली नहीं।" (वही, पृष्ठ – 18)।
3. "वही दुबली-पतली देह, वही धुला-धुला-सा चेहरा। वही ... वही ...।" (वही, पृष्ठ – 22)।
4. "रात को सोई तो जगी नहीं। अम्मा छुट्टी पर थी। सुबह-सुबह ख्याली अन्दर आया तो साँस चुक गई थी।" (वही, पृष्ठ – 28)।

इसी प्रकार रवि की क्षयग्रस्तता और मरणासन्नता सम्बन्धी ये अंश भी देखे जा सकते हैं–

1. "... लेटे-लेटे अपने तन का पतझार देखता हूँ। ... मेरी उखड़ी-उखड़ी साँस ... पलंग पर बिछी चद्दर और ऊपर पड़े कम्बल से लपटी मेरी देह चूने की-सी कच्ची तह की तरह घुल-घुल जाती है और बरसों के ताने-बाने से बुनी मेरे प्राणों की धड़कनें हर क्षण बन्द हो जाने के डर में चूक जाती हैं।' (वही, पृष्ठ – 07)।
2. "अपने इस छूटते तन को देखता हूँ और देखकर रह जाता हूँ। आज इस रह जाने के सिवाय कुछ भी मेरे वश में नहीं रह गया। सब अलग जा पड़ा है।" (वही, पृष्ठ – 08)।
3. "कम्बल के नीचे पड़ा-पड़ा मैं दवा की शीशियाँ देखता हूँ और उन पर लिखे विज्ञापन देखता हूँ। घूँट भरकर जब इन्हें पीता हूँ तो सोचता हूँ, तन के रस रीत जाने पर हाड़-माँस सब काठ हो जाते हैं। (वही)।
4. "आए दिन दवा के नये बदलते हुए रंग देखकर अब इतना तो जान गया हूँ कि इस छूटते-छूटते तन में मन को बहुत देर भटकना नहीं होगा।" (वही, पृष्ठ – 30)।

5.5.5.2. मानसिक प्रभाव अर्थात् निचाट अकेलापन

टी.बी. का मारक प्रभाव रोगी की शारीरिक से भी ज़्यादा मनःस्थिति पर पड़ता है। वह भयावह अकेलेपन की चपेट में आ जाता है। चूँकि उसके सभी घर वाले संक्रमण के भय से उससे दूर हो चुके होते हैं इसलिए वह निचाट अकेलेपन से मृत्युपर्यन्त जूझता रहता है। इस अकेलेपन से उबरने का कोई सहारा या सम्बन्ध या विकल्प उसके पास नहीं होता। इस अकेलेपन से छुटकारा उसे मृत्यु के उपरान्त ही मिलता है। इस कहानी में इस भयावह

अकेलेपन का मार्मिक अंकन किया गया है। इस सन्दर्भ में कहानी का यह प्रारम्भिक अंश ही पर्याप्त होगा। वैसे तो रवि और मन्नो दोनों के अकेलेपन से कहानी भरी पड़ी है – “मैं लेटा रहता हूँ और सुबह हो जाती है। मैं लेटा रहता हूँ, शाम हो जाती है। मैं लेटा रहता हूँ, रात झुक जाती है। दरवाजे और खिडकियों पर पड़े परदे मेरी ही तरह दिन-रात, सुबह-शाम अकेले मौन-भाव से लटके रहते हैं। कोई इन्हें भरे-भरे हाथों से उठाकर कमरे की ओर बढ़ा नहीं आता। कोई इस देहरी पर अनायास मुस्कुराकर खड़ा नहीं हो जाता। रात, सुबह, शाम बारी-बारी से मेरी शैया के पास घिर-घिर आते हैं और मैं अपनी इन फीकी आँखों से अँधेरे और उजाले को नहीं, लोहे के पलंग पर पड़े अपने-आपको देखता हूँ।” (वही, पृष्ठ – 7-8)।

5.5.6. क्षय रोग की संक्रामकता का सर्वव्यापी सामाजिक प्रभाव

जैसा कि पूर्व में कहा गया, क्षय रोग एक संक्रामक रोग है। यह संक्रमित होता है व जो भी क्षय रोग से ग्रस्त रोगी के गहन सम्पर्क में आता है, उसका स्पर्श, आलिंगन आदि करता है, उसका जूठा खाता है, उसके खाने-पीने, सोने-उठने-बैठने इत्यादि से जुड़ी चीजों का इस्तेमाल करता है, उसके बिस्तर पर सोता है, उसके कपड़े पहनता है, उसके कमरे, टॉयलेट में जाता, देर तक रहता है, उसकी बरती हुई वस्तुओं को छूता है, इत्यादि-इत्यादि, तो उसके उससे संक्रमित होने की सम्भावनाएँ बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। इस कहानी में रवि लगभग ऐसा ही एक उदाहरण है। कहानी में स्पष्टतः तो यह नहीं कहा गया है लेकिन लेखिका संकेत करती हैं कि रवि मन्नो से ही संक्रमित हुआ है। बार-बार भुवाली मन्नो से मिलने जाना, उसे अंकवार में लेना, उसके साथ घूमना-फिरना, उसके पास बैठे रहना, उसकी वस्तुओं से वास्ता रखना, उसके द्वारा बुनी गई जर्सी को पहनना इत्यादि ऐसी गतिविधियाँ हैं जिनमें सम्पर्क सघन से सघनतर होता जाता है और जिनका परिणाम यह हुआ कि मन्नो की तरह रवि भी भुवाली आ पहुँचा। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे मन्नो के जाने के बाद उसकी खाली जगह को ख़ुद रवि ने भर दिया हो और उसके स्थान पर अब वह आ गया हो। कहानी में एक स्थान पर लेखिका लिखती हैं – “रात-भर ठीक से सो नहीं पाया। बार-बार नींद में लगता कि भुवाली में हूँ। भुवाली में सोया हूँ। वही ‘पाइन्स’ का बड़ी-बड़ी खिड़कियों वाला कमरा है। मन्नो के पलंग पर क्या हूँ और पास पड़ी कुर्सी पर बैठी-बैठी मन्नो अपनी उन्हीं दो आँखों से मुझे निहारती है।” (वही, पृष्ठ – 19)।

क्षय रोग बहुत ही सांघातिक रोग रहा है। शारीरिक के साथ-साथ मानसिक रूप से भी इसका गहरा असर पड़ता है। यह प्रभाव पारिवारिक-सामाजिक सम्बन्धों पर गम्भीरता के साथ पड़ता है। इसके संक्रमण के भय से पारिवारिक-सामाजिक सम्बन्धों में अलगाव, बेरुख़ी व बेमुरव्वती पैदा होती हैं। इस स्थिति का आकलन इस प्रकार किया जा सकता है –

5.5.6.1. विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ता प्रभाव –

इस बिन्दु को दो उपबिन्दुओं में विभाजित किया जा सकता है – (i) पितृ-पीढ़ी और संतति के सम्बन्धों पर और (ii) पति-पत्नी के सम्बन्धों पर। इनका विश्लेषण निम्नानुसार किया जा सकता है –

5.5.6.1.1. पितृ-पीढ़ी और संतति के सम्बन्धों पर

इसके उदाहरण के रूप में यहाँ रवि की बुआ को लिया जा सकता है जो अपने जेठ की लड़की, बेटी जैसी मन्नो के साथ भीषण पराएपन का व्यवहार करती है। मन्नो मेहमान की तरह बड़ी हसरतों से अपनी चाची के घर नैनीताल आती है लेकिन वह अपने बच्चों के साथ घर से बाहर निकल जाती है। बच्चे मन्नो दीदी के साथ घुलना-मिलना, खेलना चाहते हैं लेकिन बुआ वह स्वयं तथा बच्चे संक्रमित न हो जाएँ, इस डर से बच्चों को साथ लेकर घर से बाहर निकल जाती है। बुआ कहानी में एक स्थान पर अपनी इस स्थिति को स्वीकार भी करती है – "मैं वर्षों से उसे देखती आई हूँ और आज पत्थर-सी निष्ठुर हो गई हूँ। ... जो कुछ जितना भी था, वह प्यार, वह देखभाल सब व्यर्थ हो गए हैं। कभी छुट्टी के दिन उसकी बोर्डिंग से आने की राह तकती थी, अब उसके आने से पहले उसके जाने का क्षण मनाती हूँ और डरकर बच्चों को लिए घर से बाहर निकल जाती हूँ।" (वही, पृष्ठ –16)।

5.5.6.1.2. पति-पत्नी के सम्बन्धों पर

इसके उदाहरण के रूप में रवि की पत्नी मीरा को लिया जा सकता है। मीरा से रवि को बेइंतहा मुहब्बत थी। वह उस पर जी-जान से न्यौछावर था। उनका वैवाहिक जीवन बड़े ही प्रेमपूर्वक चल रहा था। उनमें परस्पर गहरा लगाव था लेकिन जैसे ही मीरा को पता चलता है कि रवि को टी.बी. है, वह स्वयं तथा अपने बच्चों को अपने पति से दूर रखना शुरू कर देती है। रवि इससे भारी रूप में मर्माहत होता है। कहानी में एक स्थान पर भुवाली में जब मीरा उससे मिलने आती है तो मात्र एक घण्टा उसके पास रुकती है। इस एक घण्टे में भी वह बच्चों समेत पति से दूरी बनाए रखती है। ऊपर से वह रोती रहती है लेकिन वस्तुतः यह एक औपचारिकता ही कही जाएगी। रवि को यह अनुभव ही नहीं होता कि यह उसकी वही पत्नी है जिससे वह कभी बेइंतहा प्यार करता था – "मीरा की ओर देखता रहा कि जो आज मुझे मिलने आई है, उसमें मेरी पत्नी कहाँ है, कहाँ है वह, जो सचमुच में मेरी थी।" (वही, पृष्ठ – 27)। ... "भरी आँखों से मीरा की कलाई की घड़ी देखने की निष्ठुरता से आहत हो मैं फटी-फटी रूखी दृष्टि से फाटक की ओर देखने लगा कि मेरा ही परिवार कुछ क्षण में मुझे यहाँ अकेला छोड़, मुझ से दूर चला जायेगा।" (वही)। ... "जिस मीरा को मैंने वर्षों जाना है, वह अब पास-सी नहीं लगती, अपनी-सी नहीं लगती।" (वही, पृष्ठ – 29)।

5.5.7. सामाजिक परम्परावाद का निषेध करती अटूट प्रेम-संवेदना (रवि और मन्नो)

अटूट प्रेम संवेदना इस कहानी का एक अतिमहत्त्वपूर्ण अभिप्राय है। यह प्रेम रवि और मन्नो के बीच का प्रेम है, हालाँकि यह केवल एक वायव, मात्र भावनात्मक प्रेम है। इसमें शारीरिकता या भौतिकता का लेश मात्र भी नहीं है। पूर्व में कहा गया कि रवि को मन्नो से 'लव एट फर्स्ट साईट' जैसा कुछ हुआ। इसमें उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह जान लेने के बाद भी कि मन्नो को टी.बी. है, रवि उससे प्रेम करना नहीं छोड़ता अपितु यह जान लेने के बाद तो उसका प्रेम और सहानुभूति उसके प्रति और अधिक बढ़ जाती है। मन्नो के प्रति उसका प्रेम का धागा ऐसा अटूट और आन्तरिक है कि वह बार-बार उससे मिलने भुवाली जाता है। उसे इस बात का भी डर नहीं होता कि

उसे संक्रमण हो सकता है। वस्तुतः यही उसके प्रेम की गहराई और वास्तविकता है कि संक्रमण की आशंका उसका रोड़ा नहीं बन पाती। उसके प्रेम की गहराई इसी बात से नापी जा सकती है कि जब उसके विवाह की बात शुरू होती है और उसे लड़की देखने को कहा जाता है तो सबसे पहले उसे मन्नो ही याद आती है – “मन से जिसे भूल चूका हूँ, उसे आज ही याद क्यों आना था। … क्यों याद आना था। … क्यों दीख जाना था उस हाथ को, जो वर्षों गए ‘पाइन्स’ की उतराई से उतरते-उतरते मैंने अन्तिम बार देखा था ?” (वही, पृष्ठ – 23)। जब वह स्वयं टी.बी. का शिकार हो जाता है और भुवाली के एक कॉटेज में चला जाता है तो रात-दिन उसका जैसे एक-ही काम रह जाता है – मन्नो को याद करते रहना और तड़पते रहना ! रवि मन्नो के प्रति स्वयं को अत्यधिक प्रेमासक्त पाता है और प्रेम की यह भावुकता धीरे-धीरे और सघन से सघनतर होती जाती है। इस प्रकार यह कहानी सामाजिक परम्परावाद का निषेध करती अटूट प्रेम-संवेदना की बेजोड़ कहानी बन जाती है। प्रेम-संवेदना का स्वरूप यहाँ चूँकि भावनात्मक (प्लेटोनिक / रोमांटिक) है। इस सन्दर्भ में दो समीक्षकों के अभिमत यहाँ उद्धरणीय है। प्रो॰ सत्यकाम ने लिखा है – “ ‘बादलों के घेरे’ एक ऐसी प्रेम कहानी है, जिसमें प्रेमी को यह मालूम है कि उसे कुछ हासिल होने वाला नहीं, वह एक नामालूम रास्ता है जिसकी कोई मंजिल नहीं। … समाज से परित्यक्ता युवती से प्रेम करने के दुस्साहस का ‘दण्ड’ उसे भोगना पड़ता है और अन्ततः वह भी भुवाली के उसी ‘सेनेटोरियम’ में दम तोड़ता है जहाँ उसकी प्रेमिका की जीवनलीला समाप्त हुई थी।” (सत्यकाम, ‘संवेद’ पत्रिका (सं. : किशन कालजयी, दिल्ली), के जनवरी 2010 के अंक में ‘पहाड़ों से उतरती नदी का संगीत’ शीर्षक लेख, पृष्ठ – 25)। इस कहानी में रोमानवाद का प्राधान्य है, इस सम्बन्ध में प्रो॰ शम्भु गुप्त लिखते हैं – “इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि कृष्णा सोबती की कहानियाँ नयी कहानी के रोमानवाद से एकदम अछूती नहीं रही हैं। उनकी कई कहानियों में इसका असर बोलता है। ख़ुद ‘बादलों के घेरे’ कहानी इससे आक्रान्त है।” (गुप्त, शम्भु, कहानी की अंदरूनी सतह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ – 157)।

5.5.8. पाठ-सार

इस पाठ को कुल आठ बिन्दुओं एवं एवं कतिपय उपबिन्दुओं में विभाजित किया गया है। प्रारम्भ में इस इकाई के उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है। जैसा कि हमने देखा, इस इकाई का उद्देश्य ‘बादलों के घेरे’ कहानी का बहुविध अध्ययन करना था। इस बहुविधता के अन्तर्गत इस कहानी की विषयवस्तु, कथ्य, कृष्णा सोबती का हिन्दी-कहानी की परम्परा में स्थान एवं महत्त्व आदि पर प्रकाश डालना था। ऊपर उद्देश्य के अन्तर्गत इसका विवरण दिया गया है। प्रस्तावना के अन्तर्गत इस कहानी की वस्तु एवं अन्तर्वस्तु पर प्रकाश डाला गया है। इस कहानी की कथावस्तु के अनेकानेक स्तरों पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तावना के पश्चात् ‘कृष्णा सोबती की कहानियाँ : एक परिचय’ के अतर्गत कृष्णा सोबती के कहानी-लेखन का जायज़ा लिया गया है। इसमें यह बताया गया है कि कृष्णा सोबती हिन्दी के नए कहानी काल की सबसे महत्त्वपूर्ण महिला कथाकार रही हैं। उन्होंने कहानियाँ संख्या में अपेक्षाकृत चाहे कम लिखी हों लेकिन उनका महत्त्व पर्याप्त रहा है। उन्होंने लम्बी कहानियाँ भी लिखी हैं और कलेवर में छोटी कहानियाँ भी लिखी हैं।

इस पाठ में हिन्दी कहानी में कृष्णा सोबती के स्थान और महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया गया कि न केवल हिन्दी अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में कृष्णा सोबती का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहाँ तक हिन्दी की बात है, इस सम्बन्ध में कथालोचक प्रो॰ शम्भु गुप्त का यह अभिमत यहाँ पर्याप्त होगा जिसमें उन्होंने कहा है – "कृष्णा सोबती हिन्दी की सबसे सहज, सबसे गम्भीर, सबसे आत्मीय, सबसे यथार्थनिष्ठ, सबसे विचारवती और सबसे प्रतिबद्ध महिला कथाकार है।" (वही , पृष्ठ – 152-53)। इस पुस्तक में कृष्णा सोबती पर लिखे गए उनके लेख का शीर्षक ही है – 'ज़्यादा नहीं, पर ज़रूरी' (द्रष्टव्य, वही, पृष्ठ –151-58)

इस पाठ के चौथे बिन्दु में 'बादलों के घेरे' कहानी में चित्रित परिवेश का विवरण दिया गया है। इस कहानी का परिवेश मूलतः पहाड़ी है। कहानी अधिकांशतः भुवाली में घटित होती है। भुवाली के पर्वतीय परिवेश का बहुविध और हृदयहारी दृश्यांकन कहानी में किया गया है। भुवाली के टी.बी. सेनेटोरियम और वहाँ के कॉटेज का यहाँ वर्णन है। लेखिका को इस पर्वतीय परिवेश से बेइंतहा लगाव है। भुवाली के अतिरिक्त नैनीताल विशेषतः वहाँ की झील का मनोरम चित्रांकन कहानी में किया गया है। इकाई के इस बिन्दु में स्पष्ट किया गया है कि इस कहानी का परिदृश्य एक प्रकार से अखिल भारतीय है। इसमें कथा की घटनाएँ लखनऊ और दक्षिण भारत में भी घटती दिखाई गई हैं।

इस बिन्दु में आगे 'बादलों के घेरे' कहानी का कथासार दिया गया है तथा इस कहानी के शिल्प पर बात की गई है। इस कहानी का कथा-समय काफी लम्बा और व्यापक है। यह मन्नो की बीमारी एवं उसकी मृत्यु से लेकर रवि के विवाह, उसकी बीमारी तथा उसके भी भुवाली पहुँचने और वहाँ अपने अकेलेपन में तिल-तिल मरते जाने तक फैला हुआ है। इस कहानी का शिल्प फ्लैशबैकीय है। पूरी कहानी एक मरणासन्न टी.बी. के मरीज़ रवि की स्मृति में चलती हुई घटित होती दिखाई गई है।

इस इकाई के छठे हिस्से में कहानी के मूलकथा-सन्दर्भ 'क्षय रोग के स्वास्थ्य पर पड़ते मृत्युकारक दंशमूलकप्रभाव' का निरूपण किया गया है। क्षय रोग अपने शिकार को शारीरिक रूप से तो निर्बल, खोखला एवं क्षीण तो करता ही है, मानसिक रूप से भी यह व्यक्ति को भरी निराशा और अकेलेपन की ओर ले जाता है। मन्नो और रवि दोनों के ही परिवारी जनों ने उनका परित्याग कर दिया होता है और उन्हें मरने के लिए भुवाली के कॉटेज में डाल दिया गया है। यहाँ वे घनघोर अकेलेपन की पीड़ा भोगते हुए धीरे-धीरे मृत्यु के निकट से निकटतर होते जाते हैं।

इकाई के सातवें भाग में क्षय रोग की संक्रामकता का सर्वव्यापी सामाजिक प्रभाव निरूपित किया गया है। इसे दो भागों में विभाजित किया गया है, एक पितृ-पीढ़ी और संतति के सम्बन्धों पर पड़ता प्रभाव तथा दूसरे पति-पत्नी के सम्बन्धों पर पड़ता प्रभाव। पहले में मुख्यतः बुआ आती है जो अपनी संतान जैसी मन्नो के मेहमान की तरह अपने घर आने पर उसकी देखभाल करना तो दूर बल्कि इसके उलट अपने बच्चों के साथ घर से बाहर निकल जाती है। दूसरे में मुख्यतः रवि की पत्नी मीरा आती है जो अपने बच्चों को लेकर रानीखेत निकल जाती है

और अपने पति को मरने के लिए अकेला छोड़ जाती है। ये दोनों ऐसा बेमुरव्वतपन इसलिए दिखाती हैं कि उन्हें डर है कि वे और उनके बच्चे कहीं रोगी के सम्पर्क में आकर क्षय रोग से संक्रमित न हो जाएँ!

इस इकाई के आठवें बिन्दु में क्षय रोग से ग्रस्त होने के बावजूद मन्नो के प्रति रवि के भावनात्मक प्रेम के निरूपण का विश्लेषण किया गया है। रवि का प्रेम वायवी एवं रोमांटिक क़िस्म का है। यह प्रेम रवि को कुछ देने के स्थान पर उसकी आसन्न मृत्यु का आधार बनता है। हाँ, यह अवश्य है कि यह रोमांटिक प्रेम सामाजिक परम्परावाद का निषेध करते हुए संघटित होता है।

5.5.9 . बोध प्रश्न

1. 'बादलों के घेरे' कहानी का कथासार बताते हुए उसके मूल कथ्य पर विचार कीजिए।
2. 'बादलों के घेरे' कहानी में सम्बन्धों के बेमुरव्वतपन का जो चित्रण किया गया है, उसका विश्लेषण कीजिए।
3. 'बादलों के घेरे' कहानी में निहित प्रेम-संवेदना का विवेचन कीजिए।
4. हिन्दी कहानी की परम्परा में कृष्णा सोबती का स्थान एवं महत्त्व का निरूपण कीजिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : कहानी – 2

इकाई – 6 : अमृतसर आ गया है ... – भीष्म साहनी

इकाई की रूपरेखा

5.6.00. उद्देश्य कथन
5.6.01. प्रस्तावना
5.6.02. भीष्म साहनी और नई कहानियाँ
5.6.03. 'अमृतसर आ गया है ...' का कथानक
5.6.04. भारत-विभाजन, आजादी और साम्प्रदायिक दंगे तथा आम भारतीय नागरिक की चिन्ता
5.6.05. साम्प्रदायिकता के मूल उत्स की पहचान
5.6.06. अल्पसंख्यक बनाम बहुसंख्यक का द्वन्द्व और उसकी प्रतिक्रियाएँ
5.6.07. वर्गीय चेतना से सम्पन्न कथाकार
5.6.08. अमृतसर आ जाने का मतलब
5.6.09. रेलगाड़ी का रूपक और कहानी में संकेत
5.6.10. कथा-शिल्प
5.6.11. पाठ-सार
5.6.12. बोध प्रश्न
5.6.13. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

5.6.00. उद्देश्य कथन

'अमृतसर आ गया है...' कहानी में देश-विभाजन के दौरान विस्थापन, साम्प्रदायिकता और अल्पसंख्यक तथा बहुसंख्यक मानसिकता के बारे में बहुत यथार्थ तरीके से चित्रण हुआ है। कहानी में रेलगाड़ी एक युक्ति की तरह प्रस्तुत की गई है जो गतिमान समय और देश दोनों का प्रतीक है। साम्प्रदायिक वातावरण में लोग किस तरह अपने आप को अनुशासित करते हैं, यह इस कहानी के सूक्ष्म विकास का अभिन्न हिस्सा है। इस कहानी को पढ़ने के बाद आप –

i. भीष्म साहनी के कथा साहित्य और प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
ii. साम्प्रदायिकता के स्वरूप की पहचान कर सकेंगे।
iii. साम्प्रदायिक माहौल में आम जनमानस के व्यवहार का आकलन कर सकेंगे।
iv. देश-विभाजन, स्वतन्त्रता और उसे लेकर आमजन के उधेड़बुन का आकलन कर सकेंगे।
v. 'अमृतसर आ गया है...' का निहितार्थ क्या है, स्पष्ट कर सकेंगे।
vi. आजादी के दौरान आम जीवन में क्या घटित हो रहा था, जान सकेंगे।
vii. 'अमृतसर आ गया है...' कहानी की कलात्मक विशेषताएँ स्पष्ट कर सकेंगे।

viii. आधुनिक हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भीष्म साहनी का स्थान रेखांकित कर सकेंगे।

5.6.01. प्रस्तावना

जनवादी कहानीकार के रूप में विख्यात भीष्म साहनी (1915-2003) का जन्म रावलपिंडी, पाकिस्तान में हुआ था। विभाजन के बाद उनका परिवार भारत आ गया। कई तरह से जीवन-यापन की कोशिश के अनन्तर उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य का अध्यापन शुरू किया। भीष्म साहनी मशहूर फिल्म अभिनेता बलराज साहनी के छोटे भाई थे। वे साहित्य-लेखन के साथ ही कई तरह की सांस्कृतिक गतिविधियों में संलग्न रहे जिसमें 'इप्टा' प्रमुख है। भीष्म साहनी ने कहानियों के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक और जीवनी साहित्य भी लिखा। इनके उपन्यास 'तमस' पर उन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसी उपन्यास पर मशहूर फ़िल्मकार गोविन्द निहलानी ने 'तमस' नाम से एक धारावाहिक भी बनाया जो बहुचर्चित हुआ। कहानी की दुनिया में भीष्म साहनी को प्रेमचंद की परम्परा का कथाकार माना जाता है। "हिन्दी समालोचना के क्षेत्र में इस बात को लेकर कोई सुस्पष्ट धारणा अभी तक नहीं बन पाई है कि भीष्म साहनी किस प्रकार के यथार्थवादी लेखक थे – 'अनुभववादी' या 'आलोचनात्मक यथार्थवादी' अथवा 'समाजवादी यथार्थवादी'। भीष्म साहनी इस विवाद से परे रहकर सिर्फ इतना मानते हैं कि उनका लेखन समाजोन्मुखी यथार्थवादी है।" (मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, प्रगतिशील आन्दोलन और भीष्म साहनी, नया पथ, अप्रैल-सितंबर 2015 संयुक्तांक) भीष्म साहनी उन गिने-चुने कथाकारों में से हैं जो नयी कहानी के अतिशय आत्मपरक और अनुभववादी रूढ़ी से परे सामाजिक यथार्थ और वर्ग चेतना से सम्पन्न हैं और इस चेतना को अपनी कहानियों में बहुत प्रामाणिकता के साथ अंकित करते हैं। भीष्म साहनी के कथा साहित्य से गुजरना अपने समय के बीच से गुजरना है। वे यथार्थवादी परम्परा के प्रगतिशील कथाकार हैं। उनकी कहानियाँ कलात्मक अभिव्यक्तियों के स्थान पर जीवनव्यापी विसंगतियों के विरुद्ध संघर्ष करती हुई दिखाई देती हैं। वे सामाजिक रुझान वाले रचनाकार हैं। भीष्म साहनी ने जब कहानियाँ लिखना शुरू किया उस समय नयी कहानी आन्दोलन का दौर था। उन्होंने किसान जीवन पर महज एक कहानी लिखी है लेकिन उनको मध्यमवर्गीय जीवन का कुशल चितेरा माना जाता है। वे शहर और ग्रामीण जीवन के मध्यमवर्ग की हकीकत का उद्घाटन करने में विशेष रूप से सफल रहे हैं। साम्प्रदायिक उन्माद और भारत-पाकिस्तान के विभाजन पर उन्होंने कई कहानियाँ लिखीं हैं जिसमें 'अमृतसर आ गया है...' सर्वाधिक चर्चित और महत्त्वपूर्ण कहानी है। भीष्म साहनी के कथाकार की निर्मिति भारत-पाकिस्तान के बँटवारे के तौर पर हुई थी जिसकी छाप उनकी कहानियों और उपन्यासों में स्पष्ट देखी जा सकती है।

भीष्म साहनी के प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं – भाग्य रेखा (सन् 1953), पहला पाठ (सन् 1956), भटकती राख (सन् 1966), पटरियाँ (सन् 1973), शोभायात्रा (सन् 1981), निशाचर (सन् 1983), पाली (सन् 1984), वाङ्चू (सन् 1996), डायन (सन् 1998) और प्रतिनिधि कहानियाँ (सन् 1988)। उनके उपन्यास प्रकाशन के अनुक्रम में निम्नलिखित हैं – झरोखे (सन् 1967), कड़ियाँ (सन् 1970), तमस (सन् 1972), बसन्ती (सन् 1980), कुन्तो (सन् 1983), मैय्या दास की माड़ी (सन् 1988) और नीलू नीलिमा नीलोफर (सन् 2000)। नाटक

हैं – हानूश (सन् 1977), कबीरा खड़ा बाजार में (सन् 1981), माधवी (सन् 1984) और मुआवजे (सन् 1993)। उन्होंने 'रंग दे बसन्ती चोला' और 'आलमगीर' नामक दो छोटे-छोटे नाटक भी लिखे हैं।

5.6.02. भीष्म साहनी और नई कहानियाँ

आम तौर पर सन् 1954 से नयी कहानी आन्दोलन का आरम्भ माना जाता है। लगभग इसी समय से भीष्म साहनी ने कहानियाँ लिखना शुरू किया था। अतः कालक्रम की दृष्टि से वे भी नयी कहानी के कथाकार माने जाते हैं। नयी कहानी यथार्थ और जीवन की वास्तविकताओं के अंकन के आधार पर अपने को पिछली कहानी से अलग करती है। नयी कहानी में आदर्शों के आधार पर कहानी गढ़े जाने का विरोध है। "पहले की कहानी में कोई 'विचार', 'सत्य' या 'आइडिया' लेखक के सामने कौंधता था और वह कुछ पात्रों, स्थितियों और घटनाओं के संयोग, संयोजन से उसे घटित या उद्घाटित कर देता था। इसीलिए नयी कहानी में कहानी के परम्परागत और रूढ़ तत्त्वों के आधार पर कहानी के मूल्यांकन का विरोध किया गया। ... 'काल के प्रवाह में' व्यक्ति की सामाजिकता का बोध और स्थिति ही आज की कहानी की विषय वस्तु है।" (मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृष्ठ – 62) भीष्म साहनी की कहानियों में भी नयी कहानी के सभी लक्षण पाए जाते हैं। उनके यहाँ भोगा हुआ यथार्थ और अनुभव की प्रामाणिकता दोनों वास्तविक रूप में मौजूद है। भीष्म साहनी की कहानियों में यद्यपि मध्यमवर्गीय जीवन का बहुत प्रामाणिक चित्रण है। साम्प्रदायिकता, देश-विभाजन के दौरान हुए दंगों को लेकर कथानक बुनने और उनका वर्गीय चित्रांकन करने में भीष्म साहनी को महारत हासिल है। जिस सूक्ष्मता और ईमानदारी से वे अपनी कहानियों में इनका बयान करते हैं, वह उनको प्रेमचंद की परम्परा से आगे का कथाकार सिद्ध करता है। भीष्म साहनी ने इसी कहानी 'अमृतसर आ गया है...' की रचना-प्रक्रिया पर बात करते हुए लिखा है कि यह घटनाएँ वास्तविक हैं। वास्तविकता के इस कदर नजदीक रखकर इतना बेहतर कहानी-लेखन ही भीष्म साहनी को नयी कहानी का प्रतिनिधि कहानीकार बनाता है। 'चीफ की दावत' हो या 'वाङ्चू', 'गंगो का जाया' हो या 'साग मीट' या 'खून का रिश्ता' – भीष्म साहनी की कहानियाँ सही मायने में नयी कहानी आन्दोलन की उपलब्धि हैं। उनकी एक अन्य प्रसिद्ध कहानी 'लीला नन्दलाल की' व्यंग्य का पुट लिए मध्यमवर्गीय जीवन का आख्यान ही है।

5.6.03. 'अमृतसर आ गया है...' का कथानक

'अमृतसर आ गया है...' कहानी में एक रेलयात्रा की कथा है। कथावाचक आजादी का जश्न देखने दिल्ली जा रहा है। जब वह रेलगाड़ी में सवार होता है तो उसमें कुछ यात्री पहले से मौजूद हैं। रेलगाड़ी से यात्रा के क्रम में स्टेशन आते हैं तो कुछ यात्री उतरते हैं, कुछ दूसरे चढ़ते हैं। इसी क्रम में जेहलम से अमृतसर के बीच की यात्रा के कुछ ब्यौरे हैं। इसमें यात्रियों के व्यवहार ही कथा की निर्मिति करते हैं। यात्रा के आरम्भ में रेलयात्री अपनी चुहलबाजी में मस्त हैं। वातावरण बहुत दोस्ताना है। कथावाचक आजादी का जश्न देखने दिल्ली जा रहा है और सामाजिक राजनैतिक घटनाओं से सबका रखता है। सरदारजी लाम के किस्से सुना रहे हैं। पठान यात्री दुबले बाबू से मजाक कर रहे हैं। देश की स्वतन्त्रता और विभाजन से सम्बन्धित आशंकाएँ सबके यहाँ हैं। सबसे ज्यादा दिलचस्पी अमृतसर के पाकिस्तान में जाने या न जाने को लेकर है और इस बात की भी कि मुहम्मद अली जिन्ना

बम्बई में रहेंगे या पाकिस्तान चले जायेंगे। एक झुटपुटा-सा है। किसी स्टेशन के आने पर यात्रियों का रेला आता है, कुछ पुराने लोग उतरते हैं और नये सवार होते हैं। कुल हलचल इसी से होती है। जेहलम स्टेशन बीतने के बाद एक यात्री चढ़ता है तो एक पठान उसे 'जगह नहीं है' कहकर धक्का देता है। यह बात दुबले बाबू को नागवार गुजरती है लेकिन मुस्लिम बहुल क्षेत्र होने की वजह से वह चुप रह जाता है। उसका गुस्सा अगले स्टेशन पर झलकता है। अगले स्टेशनों पर साम्प्रदायिक दंगों की ख़बरें मिलती हैं। आगजनी और हिंसा के दृश्य दिखाई पड़ते हैं। रेलयात्रा में सहयात्री इससे बहुत सहमे हुए दिखाई देते हैं। साम्प्रदायिक दंगे और आगजनी की यह घटनाएँ वजीराबाद स्टेशन पर दिखाई देती हैं। आशंका और असुरक्षा की इस लोमहर्षक स्थितियों में जब हिन्दू बहुल क्षेत्र आते हैं तो दुबका हुआ दुबला बाबू उग्र हो उठता है। वह पठानों पर बरस पड़ता है और पिछले स्टेशन पर हिन्दू यात्री से किए गए व्यवहार पर आक्रामक हो समर्थन जुटाने बाहर निकल जाता है। पठान मौके की नजाकत देख दूसरे डिब्बे में चले जाते हैं। दुबला बाबू लौटकर आने के बाद पठानों को न पाकर उत्तेजित हो उठता है। रेलगाड़ी में अजीब-सी दहशत का वातावरण है। ट्रेन चलती रहती है। गहरा रही रात में जब सब लोग ऊँघ रहे होते हैं कि अगले स्टेशन पर दुबला बाबू पठानों से भी अधिक आक्रामक व्यवहार करते हुए चढ़ने की कोशिश कर रहे एक मुसलमान यात्री को मारकर गिरा देता है। जैसे वह पिछले स्टेशन पर हुए अन्याय का बदला ले रहा हो लेकिन इस क्रम में वह बहुत बीभत्स-सा दिखाई पड़ता है। क्योंकि मानवीयता दोनों ही घटनाओं में नष्ट होती है। रेलगाड़ी में अजीब-सा सन्नाटा पसरा रहता है। जो झुटपुटा आजादी के जश्न की कल्पना में घिरा रहता है, कहानी के आखिर में इस अमानवीय घटना के बाद छँटने लगता है और आशंकाओं के बादल और गहराने लगते हैं। वस्तुतः साम्प्रदायिकता तथा अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की भावनाएँ और उससे जुड़ी आशंकाएँ व्यक्ति को किस कदर बदल डालती हैं, यह इस कहानी में बहुत खूबसूरती से व्यक्त हुआ है। विभाजन के कालखण्ड में पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में साम्प्रदायिकता, हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच भय-आशंका के साथ परस्पर घृणा का जो वातावरण निर्मित हो रहा था, उस भय और आशंका में मानव मनोविज्ञान का इस कहानी में बेहतरीन प्रस्तुतीकरण है।

इस कहानी में पारस्परिक भय और असहिष्णुता और दंगे की छाया में ट्रेन के मुसाफिरों में जो गहमागहमी है, वह बहुत खूबसूरत तरीके से अभिव्यक्त हुई है। मुसाफिर इतनी जल्दी बदले हुए वातावरण से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और बिना कोई सशक्त प्रतिरोध किए अपनी यात्रा पूरी करते रहते हैं। समय ऐसा है कि माला जपती हुई वृद्धा अपना निरर्थक प्रतिवाद भले करती रही हो लेकिन पहले तो मुस्लिम बहुल क्षेत्र में 'पठानों का विरोध कर पाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई' फिर दिन के उजाले में पठानों के प्रति आक्रामक रवैया अपनाने वाले बाबू को सरदार जैसे शाबाशी दे रहा हो, "बड़े जीवट वाले हो बाबू, दुबले-पतले हो पर बड़े गुर्दे वाले हो। बड़ी हिम्मत दिखाई है। तुमसे डरकर ही वे पठान डिब्बे से निकल गए। यहाँ बने रहते तो एक-न-एक की खोपड़ी तुम ज़रूर दुरुस्त कर देते ...।" पूरे हिन्दुस्तान के ये ही चरित्र और चेहरे हैं, एक तरफ पठान हैं तो दूसरी तरफ हिन्दू और सिक्ख। वजीराबाद में ट्रेन में पहले दंगापीड़ित हिन्दू परिवार को पठान बेरहमी से धक्के देकर चढ़ने से रोकते हैं तो अमृतसर में एक दंगापीड़ित मुसलमान परिवार हिन्दू यात्री का शिकार होता है। दंगापीड़ित हिन्दू और मुस्लिम परिवार प्रकारान्तर से दोनों पक्ष के शरणार्थियों के साथ हमारे डरे हुए समाज के अमानवीय, संवेदनहीन सलूक को

व्यक्त करते हैं। न तो यात्रियों की ओर से कोई सशक्त प्रतिवाद होता है और न असरदार समर्थन। एक के लिए वजीराबाद और मुस्लिम बहुसंख्यक आबादी भरोसा और प्रेरणा बनती है तो दूसरे के लिए अमृतसर का हिन्दू-सिक्ख बहुसंख्यक समाज। 'अमृतसर आ गया है...' का वहशीपन इस झुटपुटे से होकर भी गुजरताहै।

5.6.04. भारत-विभाजन, आजादी और साम्प्रदायिक दंगे तथा आम भारतीय नागरिक की चिन्ता

'अमृतसर आ गया है...' कहानी में जिस रेलयात्रा का जिक्र है, उसमें इस बात का संकेत आरम्भ में ही दे दिया गया है कि कथावाचक "दिल्ली में होनेवाला स्वतन्त्रता दिवस समारोह देखने जा रहा था।" यह वही समय है जब हमारे देश को स्वतन्त्रता और विभाजन दोनों एक साथ प्राप्त हुए। देश के स्वतन्त्र होने को पण्डित जवाहरलाल नेहरु, देश के प्रथम प्रधानमंत्री ने 'नियति से साक्षात्कार' कहा था। स्वतन्त्रता एक ऐसी माँग थी जो लम्बे समय के संघर्ष और अनेक बलिदान के उपरान्त प्राप्त हो रही थी। इसी समय देश के विभाजन का निर्णय भी लिया गया था जिसकी कोई रूपरेखा नहीं थी। किसी को कुछ भी स्पष्ट रूप से नहीं पता था। यह कहानी पाकिस्तान बनने को लेकर उठने वाली जन आशंकाओं और आकांक्षाओं का एक लोकवृत्त रचती है। कहानी में इस बात का जिक्र कथावाचक के बहाने भीष्म साहनी करते हैं जहाँ यात्री लगातार और अनेकशः चर्चा करते हैं। भीष्म साहनी ने उसे इस तरह अंकित किया है – "मेरे सामने बैठे सरदारजी बार-बार मुझसे पूछ रहे थे कि पाकिस्तान बन जाने पर जिन्ना साहिब बम्बई में ही रहेंगे या पाकिस्तान में जाकर बस जायेंगे, और मेरा हर बार यही जवाब होता – बम्बई क्यों छोड़ेंगे, पाकिस्तान में आते जाते रहेंगे, बम्बई छोड़ देने का क्या तुक है। लाहौर और गुरुदासपुर के बारे में भी अनुमान लगाये जा रहे थे कि कौन-सा शहर किस ओर जाएगा।" सही बात तो यह थी कि किसी को ठीक से नहीं पता था कि वास्तव में क्या होने वाला है। भीष्म साहनी इस कहानी में इसे बहुत सहजता से व्यक्त करते हैं और भविष्य के गर्भ में ऐसे प्रश्नों के उत्तर छोड़ देते हैं। एक विश्वास भर है कि समय के साथ सब ठीक हो जायेगा। जिस तरह के झुटपुटे की चर्चा कहानी में की गई है, वह इन्हीं आशंकाओं, उम्मीदों और परिस्थितियों से मिलकर बनता है। आजादी की प्राप्ति की सूचना के साथ साथ दंगों की ख़बरें भी मिलती जा रही थीं और सभी ख़बरों के बीच यह उम्मीद थी, इस पृष्ठभूमि में लगता था कि देश आजाद होने पर दंगे अपने आप बन्द हो जाएँगे।

'अमृतसर आ गया है...' कहानी के शुरुआती वर्णन में रेलगाड़ी के डिब्बे का जायजा है और उसके अनन्तर यह सूचना मिलने लगती है कि वातावरण भारत की आजादी के समय का है क्योंकि "उन्हीं दिनों पाकिस्तान के बनाए जाने का ऐलान किया गया था और लोग तरह-तरह के अनुमान लगाने लगे थे कि भविष्य में जीवन की रूपरेखा कैसी होगी। पर किसी की कल्पना बहुत दूर तक नहीं जा पाती थी।" विभाजन की त्रासदी कुछ इसी तरह राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' में व्यक्त हुई है जहाँ गंगौली के निवासी इस प्रश्न से जूझ रहे हैं कि पाकिस्तान बन जाने पर गंगौली भारत में रहेगा या पाकिस्तान में। यह आशंका बहुत ताकतवर है और यह परिदृश्य को बदल देने की ताकत रखती है। पाकिस्तान के विभाजन पर वैसे तो बहुत-सी बातें की गई हैं और ठीक ही अनुमान लगाया गया था कि अगर जिन्ना चाहते तो विभाजन नहीं होता क्योंकि पाकिस्तान का आधार जिन्ना की जिद, आहत अहंकार और महत्वाकांक्षा थी न कि कोई धार्मिक कारण। जिन्ना सभी मुसलमानों के नेता नहीं थे। उन्होंने और मुस्लिम लीग के कार्यकर्त्ताओं ने देश भर में अभियान चलाकर लोगों को पाकिस्तान के बारे में

बरगलाया था। राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' में इसका जिक्र आता है जहाँ लीग के दो कार्यकर्त्ता गंगौली आते हैं और पाकिस्तान के बारे में तक़रीर करते हैं लेकिन स्थानीय भोले नागरिक उनकी तकरीर को ख़ारिज कर देते हैं। 'अमृतसर आ गया है...' कहानी विभाजन के उसी पृष्ठभूमि को लेकर चलती है और इस पृष्ठभूमि को भीष्म साहनी बहुत खूबसूरती से कहानी के आरम्भ में ही अंकित करने में सफल रहे हैं। विभाजन की ऐसी पृष्ठभूमि में रेलगाड़ी का दृश्य देश और काल का एक व्यापक चित्र अंकित करता है।

5.6.05. साम्प्रदायिकता के मूल उत्स की पहचान

साम्प्रदायिकता एक जटिल अवधारणा है जो समुदायों के संघर्ष और टकराव के कुछ अन्तर्निहित मूल्यों के कारण सिद्धान्त रूप में आती है। विपिनचन्द्र मानते हैं – "किसी ख़ास धर्म के मानने वाले लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक हित समान होते हैं। यह वही धारणा है, जो भारत में हिन्दू, मुसलमान, ईसाइयों और सिक्खों को अलग-अलग समुदाय मानती है, जिसका निर्माण एक-दूसरे से अलग-थलग और बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से हुआ है।" इसे परिभाषित करते हुए विपिनचन्द्र मानते हैं – "साम्प्रदायिकता का आधार ही यह धारणा है कि भारतीय समाज कई ऐसे सम्प्रदायों में बँटा हुआ है, जिसके हित न सिर्फ अलग हैं, बल्कि एक-दूसरे के विरोधी भी हैं। साम्प्रदायिकता के जन्म के पीछे यह विश्वास भी है कि राजनैतिक और आर्थिक से लेकर सामाजिक और सांस्कृतिक इरादों के लिए लोगों को सिर्फ धर्म की रस्सी से ही बाँधकर रखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में अलग-अलग समुदायों के हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख और ईसाई सिर्फ धार्मिक ही नहीं बल्कि धर्म से परे मामलों में भी एक निश्चित समूह की तरह आचरण करेंगे, क्योंकि उनका धर्म एक है।" (विपिन चन्द्र, साम्प्रदायिकता एक परिचय, पृष्ठ – 7) यह कहानी पढ़ते हुए हम देखेंगे कि भीष्म साहनी ने बहुत चतुराई से विविध समुदायों के प्रतिनिधि चरित्र रेलगाड़ी में सफ़र करते हुए दिखाए हैं। किसी भी पात्र का नाम नहीं दिया है। उनकी पहचान एक समुदाय के तौर पर है जिसे उनकी पोशाक और उनका रहन-सहन तथा बोली-बानी से की जा सकती है। कहानी के आरम्भ में ही हमारा परिचय सरदारजी से होता है जो कथावाचक को लाम के किस्से सुना रहे हैं और गोरे फौजियों की खिल्ली उड़ाते रहे हैं। 'डिब्बे में तीन पठान व्यापारी भी थे' जिनका सामने वाली सीट पर बैठे 'दुबले बाबू' से मजाक चल रहा था। रेलगाड़ी में ही 'दायीं ओर कोने में, एक बुढ़िया मुँह-सिर ढाँपे बैठी थी और देर से माला जप रही थी।' जो कि कहानी में सरदारजी यानी सिख, पठान यानी मुसलमान, दुबला बाबू और बुढ़िया यानी हिन्दू सफ़र कर रहे हैं और गोरे फौजी यानी ईसाई भी अप्रत्यक्ष रूप से मौजूद हैं। कहानी में आगे भी वजीराबाद स्टेशन पर चढ़ने वाले व्यक्ति की पहचान भी उसके कपड़ों से करने की कोशिश है – "चीकट मैले कपड़े, ज़रूर कहीं हलवाई की दुकान करता होगा।" (पृष्ठ – 68) रही सही पहचान उसकी बेटी यह कहकर पूरी कर देती है – "पिताजी, सामान छूट गया।" (पृष्ठ – 69) पिताजी सम्बोधन हिन्दू परिवारों का सम्बोधन है। बाद में दुबला बाबू पठानों से उग्र स्वर में कहता भी है – "हिन्दू औरत को लात मारता है, हरामजादे, तेरी उस ...।"। इसी तरह दुबला बाबू जिस यात्री को लोहे की छड़ से मारकर गिरा देता है, उसकी पहचान भी उसके इस कथन से सहजता से हो जाती है, "खोलो जी दरवाजा, खुदा के वास्ते दरवाजा खोलो ...।" (पृष्ठ – 74)

अलग-अलग समुदाय के इन यात्रियों के मन में एक-दूसरे के समुदाय के प्रति बहुत से पूर्वाग्रह हैं। मसलन एक तो यह कि पठान माँसाहारी होते हैं और दूसरे सफाई नहीं रखते। इसे कहानीकार ने वहाँ दिखाया भी है जहाँ पठान दुबले बाबू को बोटी खाने का न्योता देते है। पठानों के मन में दुबले बाबू के प्रति पूर्वाग्रह यह है कि वह दाल खाता है इसलिए कमजोर है। यह सब बातें तो इस कहानी में ही आई हैं लेकिन साम्प्रदायिकता के मूल में वही धारणा है कि एक समुदाय दूसरे समुदाय के हित प्रभावित करता है। वजीराबाद में सवार होने वाला हिन्दू यात्री यद्यपि टिकट लेकर यात्रा करना चाहता है लेकिन चूँकि उसके आने से भीड़ और बढ़ जाएगी, यह छोटा-सा हित भी प्रभावित होते देख पठान उसे लात मारकर भगाना चाहता है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि महज इसे ही साम्प्रदायिकता का कारक नहीं माना जाना चाहिए। साम्प्रदायिकता का एक उत्प्रेरक तत्त्व यह ज़रूर हो सकता है। यहाँ हमें भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' का स्मरण करना चाहिए। 'तमस' में शाहनवाज़ अपने मित्र रघुनाथ के घर से कीमती जेवर आदि सुरक्षित ले आता है लेकिन उसके नौकर मिल्खी को देखकर, "न जाने ऐसा क्यों हुआ : मिल्खी की चुटिया पर नजर जाने के कारण, मस्जिद के आँगन में लोगों की भीड़ देखकर या इस कारण कि जो कुछ वह पिछले तीन दिन से देखता-सुनता आया था, वह विष की तरह उसके अन्दर घुलता जा रहा था। शाहनवाज़ ने सहसा ही बढ़कर मिल्खी की पीठ में जोर की लात जमायी।" (तमस, भीष्म साहनी) यहाँ सहज ही शाहनवाज़ के मानस में कुछ पूर्व घटित अवस्थाएँ हावी रही होंगी। ठीक ऐसी ही दशा साम्प्रदायिकता के निर्माण के विषय में कही जा सकती है। यहाँ यह देखा जाना चाहिए कि दुबला बाबू और पठान दोनों ही पेशावर के रहने वाले थे क्योंकि वे जब-तब पश्तो जबान में बातें कर रहे थे। उनके बीच एक हँसी-मजाक का रिश्ता था लेकिन जब पठान ने हिन्दू यात्री को लात मारी, तब के बाद हालात और बिगड़ जाते हैं। यहाँ एक जायज-सा सवाल उठता है कि यदि पठान ने हिन्दू यात्री को लात न मारी होती तो क्या दुबला बाबू और पठानों के बीच रिश्ता सौहार्दपूर्ण बना रहता ? यहाँ साम्प्रदायिकता का एक छद्म रूप देख सकते हैं। एक सुप्त साम्प्रदायिकता जिसकी अभिव्यक्ति अमृतसर आने पर दिखती है जब दुबला बाबू मुखर हो जाता है, पठान अपनी गठरी लेकर दूसरे डिब्बे में बढ़ जाते हैं और आगे के किसी स्टेशन पर चढ़ने की कोशिश कर रहे एक मुसलमान यात्री को दुबला बाबू लोहे की छड़ से मारकर नीचे गिरा देता है। भीष्म साहनी ने रेखांकित किया है– "पर इस बीच डिब्बे के तीनों पठान, अपनी-अपनी गठरी उठाकर बाहर निकल गए और अपने पठान साथियों के साथ गाड़ी के अगले किसी डिब्बे की ओर बढ़ गए। जो विभाजन पहले प्रत्येक डिब्बे के भीतर होता रहा था, अब सारी गाड़ी के स्तर पर होने लगा था।" (पृष्ठ – 73) समुदाय आपस में एकत्र होने लगे थे। सामुदायिकता की भावना और उनके बीच सुरक्षा को लेकर चिन्ता की भावना भी साम्प्रदायिकता के उत्स के मूल में है।

इन भीषण और भयावह साम्प्रदायिक स्थितियों के बीच भीष्म साहनी मानवीयता की अलख के लिए अवकाश ज़रूर रखते हैं। रेलगाड़ी के बाहर जहाँ घर जलाए जाने, आगजनी, लूटपाट और दंगे हो रहे हैं, 'कोई परिंदा तक नहीं फड़क रहा था', एक भिश्ती तमाम जोखिम के बीच पीठ पर मसक बाँधे प्यासों को पानी पिला रहा होता है। भीष्म लिखते हैं – "लगता था, वह इस मार-काट में अकेला पुण्य कमाने चला आया था।" (पृष्ठ – 70) वस्तुतः वह भिश्ती उस अमानवीय वातावरण में उम्मीद और मानवीयता की एक किरण है। भीष्म साहनी

अमानवीय वातावरण के चित्रण में ऐसे सद्प्रयासों को ओझल नहीं करते। यह उनकी मानवीयता के प्रति अगाध निष्ठा का परिचायक भी है।

5.6.06. अल्पसंख्यक बनाम बहुसंख्यक का द्वन्द्वऔर उसकी प्रतिक्रियाएँ

'अमृतसर आ गया है...' कहानी में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक काद्वन्द्व बहुत खूबसूरती से व्यक्त हुआ है। जब रेलयात्रा आरम्भ होती है तो एक तरह का संतुलन है। तीन पठान हैं और एक सिख, एक दुबला बाबू और कथावाचक यानी शक्ति का संतुलन है तब भी पठान वहाँ प्रभावी हैं क्योंकि इलाका मुस्लिम बहुल है। अभी जेहलम का स्टेशन बीता है। अपने बहुसंख्यक होने के बोध को लिए पठान दुबला बाबू से चुहलबाजी किए जा रहे हैं। दुबला बाबू इस चुहलबाजी से बहुत विचलित है लेकिन सहज बनने की कोशिश कर रहा है। उसकी कोशिश इस दृष्टिकोण से भी देखी जा सकती है कि उसके समुदाय से कोई सहयात्री नहीं है। सरदारजी हैं तो लेकिन उसके समुदाय के नहीं हैं। चुहलबाजी के बीच सहजता से अपनी यात्रा जारी रखे हुए दुबला बाबू एक अल्पसंख्यक बोध और स्थिति में है। चूँकि दंगों की ख़बरें मिलती रही हैं अतः जेहलम और वजीराबाद स्टेशन के बीच वह बहुत संयत रहता है जबकि बहुसंख्यक के भाव में पठान मुखर रहतेहैं। वजीराबाद स्टेशन पर नवागन्तुक यात्री पर सभी लोग प्रतिवाद कर रहे हैं लेकिन लात चलाने की हिम्मत पठान ही कर पाता है। अल्पसंख्यक बोध और डर तथा आशंका दुबले बाबू पर इस कदर हावी है कि वह अपनी सीट से उतर कर नीचे लेट जाता है, उसका चेहरा पीला पड़ जाता है लेकिन जैसे ही उसे पता चलता है कि हरबंसपुरा निकल गया है, वह मुखर हो उठता है। हरबंसपुरा हिन्दू बहुल क्षेत्र होने का सूचक है। यहाँ आते ही पठान अल्पसंख्यक हो जाते हैं और दुबला बाबू अकेला होकर भी बहुसंख्यक बोध से भर जाता है। उसका यह बोध उसके तेवर से झलकने लगता है जब वह पठानों को गाली देने लगता है और अमृतसर आने पर बाहर निकलकर गोलबन्द होने लगता है। यहाँ पठान अल्पसंख्यक होने का दंश महसूस कर अपनी गठरियाँ लेकर सुरक्षित ठिकानों की तलाश में चले जातेहैं। जो पठान हिन्दू यात्री को लात मारकर बहुत ठसक से यात्रा करते रहे हैं वही पठान हरबंसपुरा आते ही गिड़गिड़ाने लगते हैं। यहाँ अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के व्यवहार को देखा जा सकता है। वस्तुतः एक समाज में शक्ति का संतुलन ऐसे ही बनता है। साम्प्रदायिकता को ऐसे में फलने-फूलने का भरपूर अवसर मिलता है। भीष्म साहनी साम्प्रदायिकता रूपी उस तत्त्व की पहचान बहुत सफाई से करने में सक्षम हैं जो भारतीय समाज में बहुत गहरे तक धँसा हुआ है और जो रह-रहकर रक्त और मवाद की तरह रिसता रहता है, तड़प और चीख बनकर जब-तब उभरता रहता है लेकिन मिट नहीं पाता।

5.6.07. वर्गीय चेतना से सम्पन्न कथाकार

भीष्म साहनी वर्गीय चेतना के कथाकार हैं। उनके पात्रों में यह वर्गीय चरित्र देखा जा सकता है। इस कहानी में सभी पात्र सामान्य और मध्यमवर्ग के हैं। यह एक मानी हुई बात है कि साम्प्रदायिकता का विस्तार और प्रभाव मध्यमवर्गीय लोगों में अधिक है। रेल के सामान्य डिब्बे में यात्रा कर रहे लोगों की हैसियत मध्यमवर्गीय है। भीष्म साहनी इसे और गाढ़ा करते हैं जब वजीराबाद स्टेशन पर यात्री अपना सामान चढ़ाने की कोशिश कर रहा है और डिब्बे के भीतर से प्रतिरोध के जवाब में कहता है, "टिकट है जी मेरे पास, बेटिकट नहीं हूँ मैं।" यहाँ हमें

बरबस ही अमरकान्त की कहानी 'ज़िंदगी और जोंक' की याद आ जाती है जिसमें रजुआ को जब लोग चोरी का आरोप लगाकर मारने लगते हैं तो वह बार बार कहता है, 'मैं बरई हूँ', 'बरई हूँ' । जैसे बरई होना चोर न होने का सबूत हो । यहाँ यात्री द्वारा 'टिकट है जी मेरे पास' कहना जैसे मध्यमवर्ग के किसी व्यक्ति का सफाई देना है । कहानी के सभी पात्रों की आर्थिक हैसियत मध्यमवर्ग की है। भीष्म साहनी अपनी कहानियों में इसे बहुत सफाई से रखते हैं।

5.6.08. अमृतसर आ जाने का मतलब

कहानी में अमृतसर आ जाने का आशय क्या है ? दुबले बाबू के लिहाज से देखा जाये तो अमृतसर आ जाने का मतलब एक हिन्दू-सिख बहुल इलाके में पहुँच जाना है। एक सुरक्षित क्षेत्र में जहाँ मुसलमान दंगाई के रूप में होने की हिम्मत नहीं कर सकते । कहानी में जिस दुबला बाबू की बार बार चर्चा हो रही है, वह यात्रा के आरम्भ से ही बहुत गुमसुम-सा है। पठानों की ज्यादती सह रहा है, यात्रा में डर से पीला पड़ा हुआ है। ज़ाहिर सी बात है कि जिस क्षेत्र से उसने यात्रा शुरू की है, वह क्षेत्र-विभाजन के बाद हो रहे दंगों से बुरी तरह प्रभावित है और जहाँ जान-माल का हमेशा डर है । ऐसे क्षेत्र से मन में बहुत-सी कड़वाहट और घृणा लिए हुए अमृतसर पहुँचने का मतलब है, उस घृणा के निकल फटने का मुहाना आ जाना। अमृतसर आ जाने का मतलब शक्ति का एक पलड़े से दूसरे पलड़े में शिफ्ट हो जाना है। अमृतसर आ जाने के कई अर्थ लगाये जा सकते हैं लेकिन मोटे तौर पर अमृतसर आ जाने का मतलब कहानी में बहुत बीभत्स स्वरूप का झलक जाना है, साम्प्रदायिकता की सुप्त भावना का सतह पर आ जाना है। कहानी के आखिर में दुबला बाबू के चेहरे पर उग आई दाढ़ी उसे अधिक बीभत्स बना रही है तो इसके पीछे बड़ा कारण यह है कि पिछले स्टेशन पर उसने एक अनजान और अबोध यात्री को मारकर गिरा दिया था।

5.6.09. रेलगाड़ी का रूपक और कहानी में संकेत

नयी कहानी में संकेतों का बहुत महत्त्व है। 'अमृतसर आ गया है...' कहानी में रेलगाड़ी का एक रूपक निर्मित किया गया है। यह देश और काल का परिचायक है। एक ऐसा देश जहाँ कई समुदाय के लोग यात्रा कर रहे हैं । जहाँ नये लोग यात्रा में शामिल होते हैं और पुराने लोग उतरते हैं । ऐसे में रेलगाड़ी एक बड़े क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कर रही है जिसमें विविध धर्म, सम्प्रदाय के लोग सवार हैं। चूँकि वह गतिमान है इस तरह वह काल का प्रतिनिधि भी है। एक तरह से रेलगाड़ी देश का रूपक बनकर कहानी में उभरती है जहाँ साम्प्रदायिकता नासूर की तरह है। यह नासूर अवसर आने पर फट पड़ता है और मानवीयता की किरचें बिखर जाती हैं। इस कहानी में सभी पात्र सामान्य जनों के संकेतक हैं। रेलगाड़ी में घटित हो रही घटनाओं पर किसी का सशक्त प्रतिरोध न करना एक भयावह स्थिति का सूचक है। दंगे की खबर से पूरे डिब्बे में तनाव पसर जाता है और लोग अपनी सुरक्षा को लेकर फिक्रमंद हो जाते हैं। लेकिन यह आत्मकेन्द्रित लोग दूसरे लोगों के बारे में नहीं सोचते । यह त्रासद स्थितियों का परिचायक है।

5.6.10. कथा-शिल्प

'अमृतसर आ गया है...' कहानी की शुरुआत 'मैं' नामक कथावाचक से होती है। प्रथम तीन पैराग्राफ में इसी का स्वर सुनाई देता है। कथावाचक की यह प्रविधि भीष्म साहनी ने अपनी कहानियों में अनेकशः प्रयुक्त किया है। इस तरह यानी कथावाचक को रखने की प्रविधि से वे कहानी में एक विशेष शिल्प का प्रयोग करते हैं जहाँ स्थितियों का साक्षी बनने और उसी के अनुरूप ब्यौरे दर्ज करने की सुविधा रहती है। कहानीकार जहाँ-तहाँ संकेत भी करता जाता है और उसमें पूरक हिस्से भी जोड़ता जाता है। इस कहानी में कथावाचक के इस कथन से कि – "उन दिनों के बारे में सोचता हूँ, तो लगता है, हम किसी झुटपुटे में जी रहे थे" से आजादी और विभाजन के दौरान अनिश्चितता और आशंकाओं भरे वातावरण का पता चलता है जो कहानी में परिपार्श्व संगीत की तरह बजता रहता है। कहानी के आखिर तक यह झुटपुटा और गहराता चला जाता है। प्रस्तुत कहानी में जितने पात्र आये हैं, उनमें से किसी का नाम नहीं बताया गया है बल्कि उनकी सामुदायिक पहचान बताने पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस तरह यह कहानी अपने पात्रों के माध्यम से साम्प्रदायिकता के स्वरूप का निदर्शन कराने में सक्षम रही है। कथावाचक 'मैं' के अतिरिक्त सरदारजी, पठान, दुबला बाबू, माला फेरती बुढ़िया, और वजीराबाद स्टेशन पर चढ़ने वाला हिन्दू यात्री तथा अमृतसर के बाद गाड़ी में चढ़ने का प्रयास करने वाला मुसलमान यात्री प्रमुख पात्र हैं लेकिन सबको उनके वर्गीय चरित्र और सामुदायिक पहचान के साथ ही बताने की कोशिश हुई है। इससे रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे लोगों के सामुदायिक बोध को स्पष्ट करना आसान हुआ है और कहानी अपनी सफल परिणति की तरफ पहुँच सकी है।

एक अच्छी कहानी में संवाद और कथोपकथन उसकी जान होते हैं। वार्तालाप से कथा आगे बढ़ती है और उसका स्वरूप भी स्पष्ट होता जाता है। इसके अतिरिक्त पात्रों का चरित्र भी उसी के अनुरूप बनता जाता है। 'अमृतसर आ गया है...' कहानी में कथोपकथन संक्षिप्त और चुटीले हैं। पठान दुबले बाबू से चुहलबाजी कर रहे हैं – "ओ खंजीर के तुख़्म, इधर तुमें कौन देखता ए? अम तेरी बीवी को नई बोलेगा। ओ तू अमारे साथ बोटी तोड़। अम तेरे साथ दाल पियेगा ...।" (पृष्ठ – 66) दुबला बाबू चूँकि असुरक्षाबोध और आशंकाग्रस्त है अतः पश्तो में कुछ जवाब देकर चुप लगा जाता है। पठान अपने क्षेत्र में मुखर हैं तो चुहलबाजी कर रहे हैं जबकि हरबंसपुरा आते ही दुबला बाबू के स्वर में अतिरिक्त उत्तेजना आ जाती है। दुबका और सहमा-सा दुबला बाबू अमृतसर आने से पहले आक्रामक हो उठता है। उसकी आक्रामकता गालियों से लिपटी हुई आती है। पठान जो पहले चुहलबाजी कर रहे थे अब सफाई देने लगते हैं। संवाद देखा जाना चाहिए–

"तेरी मैं लात न तोडूँ तो कहना, गाड़ी तेरे बाप की है?" बाबू चिल्लाया।

"ओ अमने क्या बोला। सभी लोग उसको निकालता था, अमने भी निकाला, ए इदर अमको गाली देता ए। अम इसका जबान खींच लेगा।" (पृष्ठ – 72)

कहानी में जहाँ तनाव की सघनता का जिक्र करना है, वहाँ संवाद बहुत कम हैं, छोटे-से वाक्य में व्यक्त होकर रह गए हैं। तीन-चार शब्दों के यह वाक्य पूरे वातावरण में डर, घनी उदासी और आशंका भरने में सक्षम हो जाते हैं। "दंगा हुआ है। स्टेशन पर भी लोग भाग रहे हैं। कहीं दंगा हुआ है।" (पृष्ठ – 68) इस कहानी में संवादों से न सिर्फ स्थितियों की सघनता चित्रित हुई है बल्कि लोगों की उत्तेजना, भय, आशंका और डर भी व्यक्त हुआ है। यह इस कहानी की खास विशेषता भी है। पात्रों की सामुदायिकता और स्थानीयता भी उनके संवाद से पहचान में आ जाती है। भीष्म साहनी ने इस कहानी में इसका ख्याल भी रखा है कि संवाद पात्रों के सामाजिक और साम्प्रदायिक चरित्र का भी पता देते रहें। कहानी में संवाद चुस्त और कथा की गति में तीव्रता लाने वाले हैं। 'अमृतसर आ गया है...' की भाषा में पंजाबी का पुट है। पठानों की भाषा उनके अंदाज में झलकती है। वाक्य विन्यास छोटे रखे गए हैं और परिस्थितियों का चित्रांकन करने में सर्वथा सक्षम हैं। पात्रों की बोली-भाषा से उनकी पहचान आसानी से हो जाती है। भीष्म साहनी की कहानियों में वैसे भी पंजाब और पंजाबी अपनी पूरी स्थानीयता के साथ मौजूद रहती है जो इस कहानी में भी देखी जा सकती है।

5.6.11. पाठ-सार

भीष्म साहनी की पहचान एक जनवादी कथाकार के रूप में है। युग सापेक्ष सामाजिक यथार्थ, मूल्यपरक अर्थवत्ता और रचनात्मक सादगी उनकी कहानियों की विशेषता है। हिन्दी के प्रगतिशील कहानीकारों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। 'अमृतसर आ गया है...' कहानी आजादी के दौरान विभाजन और दंगों की पृष्ठभूमि में लिखी गई है जिसमें अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का द्वन्द्व तथा साम्प्रदायिकता का स्वरूप चित्रित है। यह कहानी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय स्वतन्त्रता को लेकर आमजन में उत्साह, विभाजन को लेकर तमाम आशंकाएँ, प्रश्न और अनिश्चितता, सामुदायिक गोलबन्दी, दंगा और विस्थापन की समस्या भी उठाती है। इस क्रम में साम्प्रदायिकता का स्वरूप भी स्पष्ट होता है। कहानी दंगाग्रस्त क्षेत्रों का सघन चित्रण करती है और उस समय की अफरा-तफरी को बहुत सटीक अंदाज में भी व्यक्त करती है। यह कहानी उस त्रासदी को भी व्यक्त करती है जो मौका पाकर साम्प्रदायिक हिंसा के लिए उकसाती है और इस हिंसा के लिए लानत-मलामत और सजा देने की बजाय 'बड़े जीवट वाले हो बाबू' कहकर पुरस्कृत करती है। इस कहानी में शहरों, घटनाओं और पात्रों का उपयोग ज़रूरी संकेतों के लिए किया गया है जो साम्प्रदायिकता और उसकी विभीषिका को व्यक्त करने में बहुत प्रभावी हुए हैं। भीष्म साहनी बहुत जन-प्रतिबद्ध रचनाकार हैं और उनकी यह प्रतिबद्धता इस कहानी में देखी जा सकती है।

5.6.12. बोध प्रश्न

1. 'अमृतसर आ गया है...' कहानी में लेखक का मूल उद्देश्य क्या है? उसकी सिद्धि में उसे कितनी सफलता मिली है?
2. " 'अमृतसर आ गया है...' कहानी में साम्प्रदायिकता की विभीषिका का चित्रण हुआ है।" आप इससे कहाँ तक सहमत हैं?

3. रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे लोगों की मनःस्थितियाँ नये स्टेशन आने पर क्यों बदलती जाती हैं ?
4. "दंगे अपने साथ विस्थापन की समस्या लेकर आते हैं।" कहानी में विस्थापन कर रहे मुसाफिरों का उदाहरण देते हुए सिद्ध कीजिए।
5. "आजादी और विभाजन दोनों ने भारतीयों को अनिश्चितता और आशंका से भर दिया था।" क्यों ?
6. दुबला बाबू का चरित्र-चित्रण कीजिए।

5.6.13. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. भीष्म साहनी, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली
2. नामवर सिंह, कहानी : नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
3. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद
4. विपिन चन्द्र, साम्प्रदायिकता, एक परिचय, अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
5. बनास जन, शताब्दी स्मरण भीष्म साहनी, विशेषांक, जुलाई-सितंबर, 2015
6. नया पथ, भीष्म साहनी जन्म शताब्दी विशेषांक, अप्रैल-सितंबर, 2015

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : कहानी – 2

इकाई – 7 : मलबे का मालिक – मोहन राकेश

इकाई की रूपरेखा

5.7.00. उद्देश्य कथन
5.7.01. प्रस्तावना
5.7.02. मोहन राकेश और नयी कहानी का क्षितिज
5.7.03. विभाजन की कहानियाँ और मलबे का मालिक
5.7.04. कथानक
5.7.05. विस्थापन और वतन के छूटने का दर्द
5.7.06. केंचुआ और मलबे का मालिक
5.7.07. युगीन यथार्थ और साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति
5.7.08. ताकतवर कौन है, गनी या रक्खे पहलवान !
5.7.09. संकेतों में छिपा है कहानी का मर्म
5.7.10. कथा-संरचना और मलबे का मालिक
5.7.11. पाठ-सार
5.7.12. बोध प्रश्न
5.7.13. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

5.7.00. उद्देश्य कथन

'मलबे का मालिक' कहानी में आजादी के दौरान विस्थापन कर गए लोगों का अपने छूटे हुए वतन को देखने लौटना और जो कुछ बचा रह गया है, उसको मलबे में बदलते जाने की कथा कही गई है । यह कहानी विभाजन, आजादी, पाकिस्तान का सच, आजादी के दौरान हुए साम्प्रदायिक दंगे और अपने लोगों द्वारा ही किए गए विश्वासघात की कथा को बहुत ठोस तरीके से कहती है और प्रतीकात्मक रूप से केंचुआ बन गए समाज की परतें उघाड़ती है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

i. मोहन राकेश के कथा साहित्य की मूल चेतना की पहचान कर सकेंगे ।
ii. नयी कहानी की त्रयी में मोहन राकेश का स्थान रेखांकित कर सकेंगे ।
iii. विस्थापन कर गए लोगों का अपने छूटे हुए वतन के प्रति लगाव को महसूस कर सकेंगे ।
iv. साम्प्रदायिकता की विभीषिका की पहचान कर सकेंगे ।
v. वतन छोड़कर गए लोगों की अपेक्षाओं और उसके बिखर जाने को देख सकेंगे ।
vi. रक्खे पहलवान जैसे गुण्डों के अनैतिक चरित्र की वास्तविकता जान सकेंगे ।
vii. कहानी में संकेतों के महत्त्व को रेखांकित कर सकेंगे ।

5.7.01. प्रस्तावना

नयी कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर मोहन राकेश का जन्म 08 जनवरी, 1925 को अमृतसर में हुआ था। उनका वास्तविक नाम मदन मोहन गुगलानी था। वैष्णव परिवार में जन्मे मोहन राकेश की शिक्षा-दीक्षा लाहौर के ओरियेंटेल कॉलेज (सम्बद्ध – पंजाब विश्वविद्यालय) से हुई। देश-विभाजन ने मोहन राकेश के जीवन-धारा में नया मोड़ लिया। उनसे उनका स्थायी शहर लाहौर छिन गया। "लाहौर छोड़ने के बाद अगले दस वर्षों में वे जोधपुर, बम्बई, जालन्धर, शिमला फिर जालन्धर आदि शहरों में भटकते रहे। हाँ, जीवन के अन्तिम दस वर्ष वे दिल्ली में रहे पर मकान बदलने का क्रम बराबर बना रहता। इसके साथ ही अनवरत यात्रा का क्रम भी चालू रहता ... शायद यह उनके अन्तर की अकुलाहट थी जो उन्हें कहीं भी टिककर रहने नहीं देती थी।" (प्रतिभा अग्रवाल, मोहन राकेश, मोनोग्राफ, पृष्ठ – 07) इस भटकाव और अनवरत यात्रा ने मोहन राकेश के साहित्यिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने तीन विवाह किए। पहले दो विधिवत् और तीसरा गन्धर्व विवाह। उनके कथा साहित्य पर वैवाहिक जीवन की अस्थिरता की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। वे बहुत समय तक हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'सारिका' के सम्पादक रहे। महज 48 वर्ष के जीवनकाल (मृत्यु – 03 जनवरी, 1972) में ही मोहन राकेश एक कथाकार, उपन्यासकार, नाटककार, सम्पादक और डायरी लेखक के रूप में विख्यात हुए।

मोहन राकेश को देश की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद लिखे गए नये साहित्य के सृजन का अगुआ माना जाता है। इस नये साहित्य का अधिकांश शहरी मनोवृत्ति वाले मध्यमवर्ग के लोगों द्वारा रचा गया। चूँकि मध्यमवर्गीय मनुष्य अपनी विविध समस्याओं में उलझा हुआ था अतः इस समय की रचनाएँ वैयक्तिक समस्याओं, अस्मिता की पहचान, अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, व्यक्ति के अन्तर्मन और शहरी मध्यमवर्गीय मनुष्य की अनुभूति, वासनाओं और कुण्ठाओं को केन्द्रित करके लिखी गईं। मोहन राकेश की रचनाओं में यह प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुआ है। मोहन राकेश ने अपने लेखन का प्रारम्भ कहानियों से किया। "सामाजिक चेतना, सामाजिक समस्याओं के चित्रण, देश-प्रेम की भावना एवं आदर्शप्रियता के स्थान पर इनकी रचनाओं का मूल स्वर हुआ – व्यक्तिगत समस्याएँ, कुण्ठाएँ, स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के विभिन्न स्वरूप एवं स्तर, उनमें पड़ी दरारें, परम्परागत मान्यताओं का खण्डन एवं उनके स्थान पर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की प्रतिष्ठा, यौन-सम्बन्धों में दुराव-छिपाव के स्थान पर खुलेपन का आग्रह आदि। भाषा और अभिव्यक्ति के स्तर पर भी अन्तर दिखा – अधिक सहज, सरल, दैनन्दिन उपयोग में आने वाली भाषा।" (प्रतिभा अग्रवाल, मोहन राकेश, मोनोग्राफ, पृष्ठ – 39)

मोहन राकेश की पहली कहानी 'नन्हीं' मानी जाती है जिसका रचनाकाल सन् 1944 है। यद्यपि यह कहानी कमलेश्वर ने 'सारिका' में सन् 1973 में 'मोहन राकेश स्मृति अंक' में प्रकाशित की थी। उनकी कहानियों का पहला संग्रह 'इंसान के खण्डहर' सन् 1950 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद उनकी कहानियों के संग्रह निम्नलिखित क्रम में आए – 'नये बादल' (सन् 1957), 'जानवर और जानवर' (सन् 1958), 'एक और ज़िंदगी' (सन् 1961), 'फौलाद का आकाश' (सन् 1966)। मोहन राकेश ने कालान्तर में इन कहानियों को चार नए संग्रह में जगह दी – 'आज के साए' (सन् 1967), 'रोयें रेशे' (सन् 1968), 'एक एक दुनिया' (सन् 1969), और 'मिले-जुले चेहरे' (सन् 1969)। सन् 1972 में यही कहानियाँ तीन नये संग्रहों में प्रकाशित हुईं – 'क्वार्टर', 'पहचान'

और 'वारिस' शीर्षक से । सन् 1972 में उनकी सम्पूर्ण कहानियों का संग्रह 'मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ । मोहन राकेश की अधिकांश कहानियाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की कहानियाँ हैं । पति-पत्नी के तनावपूर्ण सम्बन्ध के फलस्वरूप भोगी गई यन्त्रणा उनकी कहानियों में अनेकशः अभिव्यक्त हुई है । शहरी मध्यमवर्ग का जीवन उनकी कहानियों का प्रमुख प्रतिपाद्य है ।

मोहन राकेश ने तीन उपन्यास लिखे – 'अँधेरे बन्द कमरे' (सन् 1961), 'न आने वाला कल' (सन् 1968) और 'अन्तराल' (सन् 1972) । उनके लिखे तीन नाटक हैं – 'आषाढ़ का एक दिन' (सन् 1958), 'लहरों के राजहंस' (सन् 1963) और 'आधे अधूरे' (सन् 1969) । 'अंडे के छिलके' (सन् 1973), अन्य एकांकी तथा बीज नाटक (सन् 1973) और रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक (सन् 1974) उनके एकांकी, ध्वनि नाटक तथा रेडियो नाटक आदि हैं । कहानी, नाटक, उपन्यास के अतिरिक्त मोहन राकेश ने कुछ निबन्ध, जीवनी और साहित्यिक स्तम्भ आदि लिखे । 'बकलम खुद' 'नई कहानियाँ' शीर्षक पत्रिका में उनके स्तम्भ का नाम था । 'सारिका' पत्रिका के लिए भी उन्होंने स्तम्भ लिखे । आखिरी चट्टान तक (सन् 1953) उनके यात्रा वृत्तान्तों की प्रसिद्ध पुस्तक है । मोहन राकेश की डायरी उनके लिखे साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है जो सन् 1948 के कालावधि से लेकर सन् 1968 तक के उनके जीवन का दस्तावेज है । मोहन राकेश को उनके नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के लिए संगीत नाटक अकादमी द्वारा सन् 1959 के सर्वश्रेष्ठ नाटक सम्मान से सम्मानित किया गया था ।

5.7.02. मोहन राकेश और नयी कहानी का क्षितिज

अपनी डायरी में मोहन राकेश ने नयी कहानी के तीन स्तम्भों का जिक्र किया है । ये तीन स्तम्भ हैं – मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव । कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव के साथ मोहन राकेश की त्रयी ने हिन्दी कहानी में नयी कहानी आन्दोलन की शुरुआत की । नयी कहानी आन्दोलन अपनी पूर्ववर्ती कहानी से इन अर्थों में अलग थी कि वह यथार्थ और जीवन की वास्तविकताओं का अंकन बहुत ठोस तरीके से करती है जिसमें कथाकार का भोगा हुआ यथार्थ अभिव्यक्त होता है । नयी कहानी आदर्शों और विचारों के आधार पर कहानी गढ़े जाने का विरोध करती है । आइडिया, विचार या सत्य के आधार पर कहानी के वितान रचने को असंगत ठहराती है । इस तरह नयी कहानी कथ्य और संवेदना के आधार पर भी अपने को विशिष्ट सिद्ध करती है । नयी कहानी अपने वर्तमान पर केन्द्रित होते हुए उसके विसंगतियों और विद्रूपताओं को आँकती है । राजनीति के प्रति उदासीन और उपेक्षा का रुख़ रखने वाली नयी कहानी कई स्तर पर निष्ठा और आस्था से मोहभंग की कहानी है । मोहन राकेश की कहानियों में नयी कहानी के उपर्युक्त सभी लक्षण पाए जाते हैं । मोहन राकेश की कहानियों में "आधुनिक जीवन का कोई न कोई विशिष्ट पहलू उजागर हुआ है । राकेश मुख्यतः आधुनिक शहरी जीवन के कथाकार हैं, लेकिन उनकी संवेदना का दायरा मध्यमवर्ग तक सीमित नहीं है । निम्न वर्ग भी पूरी जीवन्तता के साथ उनकी कहानियों में मौजूद है । इनके कथा-चरित्रों का अकेलापन सामाजिक सन्दर्भों की उपज है । … वे जीवन-संघर्ष की निरन्तरता में विश्वास रखते हैं । पात्रों की इस संघर्षशीलता में ही लेखक की रचनात्मक संवेदना आश्चर्यजनक रूप से मुखर हो उठती है ।" (सं. : मोहन गुप्त, प्रतिनिधि कहानियाँ, मोहन राकेश, आवरण पृष्ठ) उनकी अधिकांश कहानियाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानियाँ हैं । अपनी कहानियों के

एकाग्र संकलन 'मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ' के फ्लैप पर लिखे आलेख में मोहन राकेश ने खुद स्वीकार किया है – "मेरी अधिकांश कहानियाँ सम्बन्धों की यन्त्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं, जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है। यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने वाला अकेलापन है और उसकी परिणति भी किसी तरह की 'सिनिसिज़्म' में नहीं झेलने की निष्ठा में है। व्यक्ति और समाज को परस्पर-विरोधी एक-दूसरे से भिन्न और आपस में कटी हुई इकाइयाँ न मानकर यहाँ उन्हें एक ऐसी अभिन्नता से देखने का प्रयत्न है, जहाँ व्यक्ति समाज की विडम्बनाओं का और समाज व्यक्ति की यन्त्रणाओं का आईना है।" मोहन राकेश की कहानियों में मानवीय सम्बन्धों की यन्त्रणा को झेलते लोगों के अकेलेपन की पीड़ा और त्रास को अत्यन्त सघन संवेदना और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से उभारा गया है। उनकी कहानियों की पृष्ठभूमि में स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ तो था ही, अपने परिवेश का परिचित यथार्थ सन्दर्भ भी था। वस्तुतः उनकी कहानियाँ नयी कहानी की प्रवृत्तियों का निर्धारण करने वाली कहानियाँ हैं। वे नयी कहानी की त्रयी में इसीलिए प्रमुख रूप से उल्लिखित किये जाते हैं।

5.7.03. विभाजन की कहानियाँ और मलबे का मालिक

सन् 1947 ई० में देश को मिली स्वतन्त्रता और उसके अनन्तर विभाजन और भीषण साम्प्रदायिक दंगे का प्रभाव हिन्दी कथा साहित्य पर भी देखा जा सकता है। कथाकारों ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में इस विभीषिका को बहुत मार्मिक अंदाज में व्यक्त किया है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क'-कृत 'चारा काटने की मशीन', कमलेश्वर-कृत 'कितने पाकिस्तान', अज्ञेय-कृत 'बदला' और 'शरणदाता', कृष्णा सोबती-कृत 'सिक्का बदल गया' और 'मेरी माँ कहाँ', अमृतराय-कृत 'व्यथा का सरगम', बदीउज्जमाँ-कृत 'अन्तिम इच्छा' और 'परदेसी', भीष्म साहनी-कृत 'अमृतसर आ गया है...', देवेन्द्र इस्सर-कृत 'मुक्ति' और 'नंगी तस्वीरें', महीप सिंह-कृत 'पानी और पुल', मीरा सीकरी-कृत 'सच्चो सच', राजी सेठ-कृत 'बाहरी लोग' और 'किसका इतिहास', विष्णु प्रभाकर-कृत 'मेरा वतन', नासिरा शर्मा-कृत 'सरहद के इस पार', विभाजन-केन्द्रित कुछ प्रमुख कहानियाँ हैं। इन सभी कहानियों में भारत-विभाजन का दर्द और उससे प्रभावित लोगों की व्यथा झलकती है। कहानियों में विभाजन से प्रभावित लोग अपने जिस वतन की तलाश में बसा-बसाया घर छोड़कर जाते हैं, वह उनको बहुत याद आता है और इस तरह अपनी जमीन से बिछड़ने की व्यथा इन कहानियों में बहुत मार्मिक तरीके से आई है। इस क्रम में मोहन राकेश द्वारा लिखित 'मलबे का मालिक' एक बहुत प्रसिद्ध कहानी मानी जाती है। इस कहानी में भी देश-विभाजन की विभीषिका का बहुत मार्मिक तरीके से अंकन मिलता है। मलबे का मालिक कहानी का आरम्भ ही इस कथन से होता है – "साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आये थे।" 'वे लोग' अर्थात् भारत छोड़कर पाकिस्तान जा बसे लोग। ऐसे लोग जो पाकिस्तान जाने के बाद भी भारत को भूल नहीं सके थे। ऐसे लोग भारत लौटकर जिस तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, वह विभाजन की तस्वीर बयाँ करने में सक्षम है। लोग अमृतसर घूमते हुए देख रहे हैं – "मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गई हैं।" "वल्लाह, कटरा जयमल सिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ के सब-के-सब मकान जल गए थे?" "वली, यह मस्जिद ज्यों-की-त्यों खड़ी है, इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया?" दूकानों का कम रह जाना,

मकानों का जल जाना, मस्जिद का बचा रह जाना कुछ ऐसे संकेत हैं जो विभाजन की हक़ीकत बयान करते हैं। मस्जिद गुरुद्वारा नहीं बनाया गया, यह आश्चर्य का विषय इसलिए है कि पाकिस्तान में उनके देखते-देखते धार्मिक स्थल या तो ज़मींदोज कर दिए गए या मस्जिदों में बदल दिए गए। वहाँ भी मकान जलाये गए, नया निर्माण हुआ। बहुत-सी चीजें बदल गईं लेकिन कुछ चीजें ऐसी थीं जो नहीं बदलीं और इसे कहानी में अब्दुल गनी अपने बाँसा बाजार के मुहाने पर दो महिलाओं को झगड़ा करते देखकर ही जान जाते हैं। "सबकुछ बदल गया, मगर बोलियाँ नहीं बदलीं।" 'मलबे का मालिक' विभाजन की विभीषिका की भावपूर्ण कथा के रूप में पढ़ी जाने वाली कहानी है।

5.7.04. कथानक

मलबे का मालिक देश-विभाजन की विभीषिका को केन्द्र में रखकर लिखी गई महत्त्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी में आजादी के साढ़े सात साल बाद लाहौर से कुछ लोग हॉकी मैच देखने के लिए अमृतसर आते हैं। इनमें उनकी संख्या अधिक है जो आज़ादी की लड़ाई में विभाजन से प्रभावित होकर पकिस्तान चले गए थे। अमृतसर लौटकर इन साढ़े सात सालों के महत्त्वपूर्ण बदलाव को देखकर लोग बहुत हैरान हैं। यह बदलाव आगजनी, तोड़-फोड़ और हिंसा के फलस्वरूप हुई है। उनके आने पर दोनों ही तरफ के लोग बहुत उत्सुक हैं और एक-दूसरे का कुशल-क्षेम पूछ रहे हैं। हैरत भरे अंदाज में प्रश्न पूछ रहे हैं। इन्हीं लोगों में बाँसा बाजार, अमृतसर में रहने वाले किन्तु बाद में अपने भरे-पूरे परिवार को छोड़कर पाकिस्तान चले गए अब्दुल गनी भी हैं। बाजार बाँसा को कहानी के केन्द्र में रखने के साथ ही लेखक अपना मंतव्य स्पष्ट कर देता है। वे बताना चाहते हैं कि साम्प्रदायिक दंगे में सबसे अधिक प्रभावित निचले तबके के लोग ही होते हैं, चाहे वे किसी भी समुदाय के हों। बाँसा बाजार मुहल्ले में विभाजन से पहले ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। विभाजन की त्रासदी को सबसे ज्यादा इन गरीबों ने, निचले तबके के हिन्दू-मुसलमानों ने ही झेला था। यहाँ मुसलमानों के घर के साथ-साथ हिन्दुओं के घर भी जला दिए गए थे।

आजादी के आन्दोलन के दौरान एक अलग मुल्क की आहट पाकर असुरक्षा भाव से अब्दुल गनी पाकिस्तान चला जाता है जबकि उसका बेटा चिरागदीन अपने परिवार सहित अपने नये बने घर में इस विश्वास के साथ रह जाता है कि यहाँ के रहवासियों के रहते उसका कुछ नहीं हो सकता। यह विश्वास अब्दुल गनी को भी पता था लेकिन उनका यह मानना भी था कि 'गली में खतरा न हो, बाहर से तो खतरा आ सकता है।' कहानी में इस विडम्बना को रेखांकित किया गया है कि यह खतरा अपने ही लोगों से आसन्न हुआ और यह विश्वास को तोड़ने वाला हुआ। मुहल्ले के ही रक्खा पहलवान की नजर चिरागदीन के घर और उसकी बेटियों पर बहुत पहले से थी। एक प्रायोजित दंगे में चिरागदीन और उसके परिवार वालों को रक्खा मार डालता है और दूसरे दंगाई चिरागदीन के घर को जला देते हैं और इसके बाद वहाँ मलबा भर शेष रह जाता है। वैसे तो निचले तबके के मुसलमानों के मुहल्ले बाँसा बाजार के अधिकांश घरों को नष्ट कर दिया गया है और उनमें से अधिकांश के मलबे ही शेष हैं लेकिन अब्दुल गनी के घर के मलबे के इर्द-गिर्द इस कहानी का कथानक बुना गया है। अब्दुल गनी को चिरागदीन और उसके परिवार के न रहने का पता तो है किन्तु घर के मलबे में तब्दील हो जाने की बात नहीं

मालूम। उनके लिए भारत आने का एक आकर्षण अपने उस घर को देखना भी है लेकिन वहाँ न सिर्फ घर बल्कि बहुत सारी चीजों के मलबे में तब्दील देखकर वे बहुत उदास लौटते हैं। इस दौरान उनका साक्षात्कार मुहल्ले के लोगों से होता है और इस तरह क्षरित होते समाज को देखकर अब्दुल गनी को बहुत दुःख होता है, उनका सारा उत्साह काफ़ूर हो जाता है। रक्खा से हुई मुलाकात भी एक असहज मुलाकात बनकर रह जातीहै। हालाँकि वे यह संतोष व्यक्त करते हुए लौटते हैं कि "मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूँगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे।" (सं. : मोहन गुप्त, प्रतिनिधि कहानियाँ, मोहन राकेश, पृष्ठ – 59) कहानी में सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु अब्दुल गनी के बेटे चिरागदीन के हत्यारे रक्खा पहलवान से अब्दुल गनी का साक्षात्कार है। कहानी का चरम-बिन्दु वहाँ है जहाँ समूचा मुहल्ला साँस रोके जानने के लिए उत्सुक है कि अब्दुल गनी, अपने बेटे के हत्यारे से रू-ब-रू होने के बाद क्या व्यवहार करेगा और रक्खे पहलवान भी उस समय कैसी प्रतिक्रिया करेगा। मनोरी, जो अब्दुल गनी को रास्ता दिखा रहा है, वह चाहता है कि गनी का सामना रक्खा पहलवान से न हो लेकिन यह आमना-सामना होता है।

कहानी में संकेत है कि जब अब्दुल गनी मलबे में तब्दील हो चुके घर की चौखट को छूता है तो वहाँ से एक केंचुआ सरसराते हुए निकलता है। यहाँ केंचुआ का सरसराते हुए निकलना और नाली में कहीं जाकर छिप जाना, सड़ गए समाज में लोगों की हकीकत को बहुत साफगोई से बयान कर देता है। विभाजन की इस कहानी में रक्खे पहलवान जैसा दबंग व्यक्ति भी गनी को सामने देख थूक निगलने लगता है और जो रक्खा चबूतरे पर बैठकर लोगों को सट्टे और पहलवानी के गुर सिखाया करता था, वह कथा के अन्त में वैष्णो देवी की यात्रा के किस्से सुनाता है। कहानी में जो मलबा केन्द्र में है, वह बाद में लावारिस जैसा दिखने लगता है। रक्खा अब्दुल गनी से हुई मुलाकात के बाद उससे जैसे उदासीन हो जाता है।

5.7.05. विस्थापन और वतन के छूटने का दर्द

मलबे का मालिक कहानी में विस्थापन और वतन के छूटने का दर्द कथा की विविध स्थितियों में साफ-साफ देखा जा सकता है। लाहौर से अमृतसर मैच देखने आये लोग साढ़े सात साल बाद आ सके हैं और 'हॉकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराए हो गए थे।' यह अपने देश के छूट जाने का दर्द ही था जो विस्थापन के बाद भी उन्हें साल रहा था और जब वे लौटते हैं तो 'उनकी आँखें इस आग्रह के साथ वहाँ की हर चीज को देख रही थीं जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा-खासा आकर्षण-केन्द्र हो।' लोग उन घरों-गलियों, मुहल्लों-बाजारों को देखकर अपने पुराने दिनों को याद करते हैं और अपनी स्मृतियाँ कुरेद रहे हैं। किसी को नुक्कड़ की सुक्खी भठियारिन की याद आ रही है तो किसी को नमक मंडी की नमकीन लालाइन। कोई बाजार के बदल जाने और इमारतों के एकदम से बदल जाने को लेकर आश्चर्य में है तो 'साढ़े सात साल में आये अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आँखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफ़सोस घिर जा रहा था। विभाजन के पहले पाकिस्तान चले गए अब्दुल गनी से रक्खा पहलवान भी पूछता है – "पाकिस्तान में तुम लोगों के क्या हाल हैं?" तो जवाब में गनी अपने शरीर का बोझ छड़ी पर डालकर कहता है – "मेरा हाल तो मेरा खुदा जानता है।" (सं. :

मोहन गुप्त, प्रतिनिधि कहानियाँ, मोहन राकेश, पृष्ठ – 58) उसके पास अपना हाल बताने लायक कुछ नहीं। शरीर का बोझ छड़ी पर डालने का दृश्य भी इस बात का संकेत हैं कि पाकिस्तान ने उन्हें बेसहारा कर दिया है। राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में भी पाकिस्तान गए लोगों के बारे में, लोगों की उत्सुकता के बारे में लिखा है। उनके यहाँ भी इसका ब्यौरा है कि जो लोग पाकिस्तान चले गए, वे यह जताने की कोशिश तो करते हैं कि वे वहाँ बहुत सुखी हैं लेकिन वास्तविकता यही है कि ऐसे लोग जिन्होंने भारत छोड़कर पाकिस्तान चुना वे वहाँ जाकर पछता रहे हैं। विभाजन पर केन्द्रित अधिकांश कहानियों और उपन्यासों में इस बात को कथाकारों ने रेखांकित किया है कि अपने वतन से विस्थापन के बाद लोगों को चैन और सुकून हासिल नहीं हुआ औरवे अपने छोड़े हुए देश को लेकर बहुत पछताते रहे। मलबे का मालिक कहानी में लाहौर से आये अधिकांश लोग भी इस दर्द की दवा खोजने अमृतसर आए हैं। अब्दुल गनी भी उनमें से एक है।

5.7.06. केंचुआ और मलबे का मालिक

मोहन राकेश कहानी में संकेतों को बहुत महत्त्व देते हैं। उनकी कहानी में मलबे के बीच से एक केंचुआ निकलता है और सरसराता हुआ नाली में जाकर कहीं छिप जाता है। कहानी का अंश है – "उन रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा जो गनी के पैर से छह-आठ इंच दूर नाली के साथ-साथ बनी ईंटों की पटरी पर इधर-उधर सरसराने लगा। वह छिपने के लिए एक सूराख ढूँढ़ता हुआ जरा-सा सिर उठाता, पर कोई जगह न पाकर दो-एक बार सिर पटकने के बाद दूसरी तरफ मुड़ जाता ।" (सं. : मोहन गुप्त, प्रतिनिधि कहानियाँ, मोहन राकेश, पृष्ठ – 55) कहानी में केंचुए का सिर पटकना और और छिपने के लिए बेचैन होना बहुत मायने रखता है। कहानी में व्यक्त वातावरण को देखा जाए तो बाँसा बाजार मुहल्ले के लोग भी इस केंचुए की तरह लिजलिजे और घृणास्पद हैं। जब रक्खा पहलवान लोगों के साथ चिरागदीन को मारने आता है तो सब लोगों को खबर हो जाती है लेकिन कोई बाहर नहीं निकलता। ऐसे समय, "आसपास के घरों की खिड़कियाँ तब बन्द हो गई थीं, जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाजे बन्द करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया था। बन्द किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुल्ताना के चीखने की आवाजें सुनाई देती रहीं ।" (सं. : मोहन गुप्त, प्रतिनिधि कहानियाँ, मोहन राकेश, पृष्ठ – 55) लेकिन ये लोग बाहर नहीं निकलते। जब अब्दुल गनी रक्खा पहलवान से रू-ब-रू होता है तो यह केंचुआ ही है जो सरसराता हुआ अपना सिर छिपाने की जगह ढूँढ़ता है। आमना-सामना होने पर रक्खा पहलवान के गले में अस्पष्ट-सी घरघराहट होती है। आवाज भारी हो जाती है जब वह कुछ बोलने को होता है, थूक निगलना पड़ता है। कहानी में संकेत है कि जो रक्खा पहलवान कभी इतना ताकतवर था कि गली का बादशाह कहा जाता था और लोगों में उसका बहुत दबदबा था, वह भी सच से सामना होने पर सूराख खोजने लगता है। इसका दूसरा प्रमाण तब देखा जा सकता है जब गनी से मुलाकात के बाद वाली शाम को वह चबूतरे पर जमा लोगों को बरसों पहले वैष्णो देवी की यात्रा के विवरण सुनाता है। मलबे का मालिक कहानी में केंचुआ सन्दर्भ गहन अर्थ का व्यंजक है। वह मुहल्ले के रीढ़-विहीन लोगों का परिचायक भी है। वे लोग जो अब्दुल गनी के आने के बाद चेहमें गोइयाँ करते हुए कुछ होने का इंतजार करते हुए आपस में खुसुरफुसुर कर रहे हैं।

5.7.07 युगीन यथार्थ और साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति

मोहन राकेश अपनी कहानियों में यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए जाने जाते हैं। यद्यपि उनकी कहानियों में मध्यमवर्गीय जीवन और स्त्री-पुरुष सम्बन्ध ही प्रमुख रूप से कथानक का हिस्सा रहे हैं लेकिन मलबे का मालिक कहानी साम्प्रदायिकता और विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई एक बहुचर्चित और सफल कहानी है। इस कहानी में आजादी के अनन्तर विभाजन के बाद दंगे, आगजनी और लूट तो है ही, विस्थापित कर गए लोगों का दर्द भी उभरकर आया है। कहानी में आजादी के समय में आम लोगों में भी जो वहशीपन आ गया था, उसका मार्मिक चित्रण मिलता है। चिरागदीन अपने परिवार सहित नये बने घर में रह गया है और रक्खा पहलवान पर बहुत विश्वास करता है लेकिन दंगे, पाकिस्तान की मानसिकता, निचले तबके का समाज कुछ इस तरह का सम्मिश्रण बनाते हैं कि साम्प्रदायिकता के लिए अनुकूल अवसर मिल जाता है।

मोहन राकेश दिखाते हैं कि भय और आशंका से आक्रान्त और अपने में सिमटा हुआ समाज किस तरह अपने पड़ोसी पर हो रहे अत्याचार के समय अपने घरों में कैद होकर बस चीखें सुनता रहा था। साढ़े सात साल बाद भी स्थितियाँ बहुत बदली नहीं हैं। अब्दुल गनी के आने के बाद उसी समाज में लोग अपने अपने घरों में दुबके हुए यह देखने की कोशिश में हैं कि चिरागदीन और उसके परिवारजन का हत्यारा रक्खा पहलवान से मिलने के बाद गनी मियाँ किस तरह का व्यवहार करेंगे। यह कुतूहल और चेहमें गोइयाँ बनी रहती है। कहानी में अनेकशः चेहमें गोइयाँ शब्द का प्रयोग है। लोगों की उत्सुकता और उनकी आपसी बातचीत को व्यक्त करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है। मुहल्ले के लोग किसी घटना का प्रतिरोध नहीं करते। बस आपस में इसको लेकर चर्चा करते रहते हैं। एक रीढ़-विहीन समाज इसी तरह का व्यवहार किया करता है। समय के यथार्थ की यह पकड़ मोहन राकेश की विशिष्टता है। अमृतसर आये लोग जिस हसरत और हैरत से गलियों-मुहल्लों और मकानों-इमारतों को देखते हैं, याद करते और याद करके उदास होते हैं, वह उस समय की वास्तविकता को उसकी समग्रता में पकड़ने की कोशिश है।

कहानी में मोहन राकेश ने साम्प्रदायिकता के क्रूर और बीभत्स चेहरे को भी दिखाया है, जब मासूम चिरागदीन को रक्खा मार डालता है और यह क्रूर कृत्य वह पाकिस्तान भेजने के नाम पर करता है। रक्खा और उसके शागिर्द चिरागदीन को तो गला रेतकर 'पाकिस्तान दे देते हैं' लेकिन ज़ुबैदा, किश्वर और सुल्ताना को 'दूसरे तवील रास्ते' से भिजवा देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह तवील रास्ता बलात्कार के बाद हत्या का है और वहशी हत्यारे यह करते ही हैं। साम्प्रदायिकता की एक बड़ी पहचान यह भी रेखांकित की गई है कि साम्प्रदायिक तत्त्व दूसरे समुदाय के साथ हत्या, लूट और हिंसा तथा आगजनी तो करते ही हैं, बलात्कार को भी एक प्रमुख साधन की तरह इस्तेमाल करते हैं। चिरागदीन के घर को दो दिनों तक लूटने के बाद किसी ने उसमें आग लगा दी थी। रक्खा पहलवान इससे बहुत दुखी होता है क्योंकि जिस असली वजह से उसने चिरागदीन का घर उजाड़ा था, वह चिरागदीन का नया मकान था। यहाँ यह देखने की बात है कि मोहन राकेश साम्प्रदायिकता के मूल में छिपे लोभ और साम्प्रदायिक हित को बेहद साफगोई से उघाड़ देते हैं। यह कहानी साम्प्रदायिकता के बीभत्स चेहरे को जिस समग्रता और यथार्थ तरीके से चित्रित करती है, वह उसे बहुत विशिष्ट कहानी बना देता है।

5.7.08. ताकतवर कौन है, गनी या रक्खे पहलवान !

मलबे का मालिक कहानी में दो प्रमुख पात्र हैं। अब्दुल गनी कहानी के केन्द्र में हैं जिनको अपना घर देखना है लेकिन रक्खा पहलवान घटनाओं के केन्द्र में है। अब्दुल गनी को रक्खा पहलवान पर भरोसा है। भरोसा चिरागदीन को और उसके परिवारवालों को भी था जो अब्दुल गनी के कहने पर भी पाकिस्तान नहीं गए थे। कहानी में आता है कि वारदात वाली रात को चिरागदीन रोटी का कौर हाथ में लिए रक्खा के बुलाने पर उतर आया था, जब रक्खा ने 'उसे पाकिस्तान दे दिया' था और उसकी पत्नी और बच्चियों को 'दूसरे तवील रास्ते' से भेजा था यानी मार डाला था। गली का बादशाह, रक्खे पहलवान चिरागदीन के परिवार का भरोसा था। ऐसे में यह सवाल उठाना कि ताकतवर कौन है, थोड़ा अटपटा लग सकता है लेकिन मोहन राकेश ने अपनी इस कहानी में संकेतों के सटीक और सशक्त प्रयोग से इसे दिखाया है कि वास्तव में रक्खा पहलवान भी एक केंचुआ जैसा ही है जो सचाई से सामना होने पर अपना सिर छिपाने के लिए जगह ढूँढ़ता है। वहाँ गनी मियाँ अपने व्यवहार से कहीं अधिक शक्तिशाली दिखाई पड़ते हैं। वे नेक की नेकी और बद की बदी को बनाए रखने की प्रार्थना के साथ जो हो गया उसे स्वीकार करने की नसीहत भी देते हैं और तब रक्खा पहलवान का हृदय परिवर्तन हुआ हो जैसे, वह वैष्णो देवी की अपनी बहुत पुरानी यात्रा के किस्से सुनाता है।

5.7.09. संकेतों में छिपा है कहानी का मर्म

नयी कहानी में संकेत को एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी गई है। वर्णन की बहुलता से बचने के लिए सांकेतिकता का सहारा लिया गया है। सांकेतिकता से प्रतीक विधान में आसानी रहती है। नयी कहानी में यह प्रतीक विधान बहुत सहजता से आया है। जहाँ यह आरोपित है, वहाँ इसकी सार्थकता ही संदिग्ध हो जाती है। मोहन राकेश मानते हैं कि "सांकेतिकता आज की कहानी की, या किसी एक भाषा की कहानी की ही उपलब्धि नहीं, कहानी मात्र की एक अनिवार्य उपलब्धि है। पुरानी कहानी से नयी कहानी इस अर्थ में अलग होती है कि उसमें सांकेतिकता का विस्तार भिन्न स्तरों पर होता है। ... यदि कहानी में संकेत नहीं है तो ऊपरी ढाँचे को कितना ही सँवारा और बेलबूटों से सजा लिया जाए, वह सही अर्थ में कहानी नहीं बन पाती – वह एक नैरेटिव या विवरण-मात्र बनकर रह जाती है।" (मोहन राकेश, आज के साए, भूमिका, पृष्ठ – 18-19)। नयी कहानी में प्रतीकों को महत्त्वपूर्ण माना गया है क्योंकि इन्होंने कहानी को सार्थक कलात्मकता और सांकेतिकता प्रदान की है, अन्तर्जगत के लक्ष्यहीन बहते यथार्थ को लक्ष्य और बहिर्जगत की लक्ष्योन्मुख दौड़ती वास्तविकता को गहराई दी है। मोहन राकेश की कहानियों में सांकेतिक प्रतीक-विधान देखे जा सकते हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'एक और ज़िंदगी' में बीना और प्रकाश के सम्बन्ध-विच्छेद के दूरगामी परिणाम को संकेतित करने के लिए, विशेषकर बच्चे के सन्दर्भ में, अदालत में पंखे से चिड़िया के बच्चे का घायल हो जाना, उनके सार्थक प्रतीक-विधान का सटीक उदाहरण है। कहानी 'मलबे का मालिक' प्रतीक-विधान और संकेतों की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण कहानी है। मलबा विभाजन के दौरान फैले उन्माद और वहशीपन की परिणति है। यह मलबा वस्तुतः सामाजिक सम्बन्धों के टूटन और बिखराव का ही मलबा है। साथ ही जले हुए किवाड़ की चौखट की लकड़ी का भुरभुराना, सामाजिक सम्बन्धों के विघटन के सूचक है। एक स्तर पर यह कहानी मूल्य-भंग और निर्माण के बीच की कहानी भी है – कई इमारतें तो फिर

खड़ी हो गई हैं मगर मलबे का ढेर अब भी मौजूद है। इन प्रतीकों के माध्यम से विभाजन के दौरान फैले वैमनस्य, त्रास और अविश्वास के नीचे छिपी मानवीय सम्बन्धों की जिस क्षीण धारा को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है, वही इस कहानी की विशेषता है। इस विस्फोटक स्थिति का इतने संयम से निरूपण, इस कहानी के शिल्प की खूबी है। मलबे की चौखट पर बैठा कौवा और रक्खे पहलवान की ओर मुँह करके भौंकता हुआ कुत्ता इस कहानी के सटीक संकेत हैं। ये दोनों संकेत कथात्मक विवरणों के अंग बनकर आए हैं। प्राथमिक रूप से कहानी से जुड़ने के बावजूद यह कहानी साम्प्रदायिकता, उसके घात-प्रतिघात, राजनैतिक विडम्बना और उसके सामाजिक परिणामों के सन्दर्भ में व्यापक हो उठती है। पहले स्तर पर यह कहानी केवल रक्खे पहलवान और गनी मियाँ की न होकर विभाजन की विभीषिका से बचे उस मलबे की हो जाती है जो हमारे सामने एक प्रश्न की तरह खड़ा है और जिसकी चौखट की सड़ी लकड़ी के रेशे झर रहे हैं। इस स्तर पर मलबे का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व उभरता है।

5.7.10. कथा संरचना और मलबे का मालिक

मोहन राकेश कहानियों की विशिष्ट संरचना के लिए जाने जाते हैं। उनके यहाँ कहानी रचने पर समग्र प्रभाव बहुत यथार्थपरक है। मोहन राकेश अपने कथा साहित्य में सघन वातावरण की सृष्टि करते हैं। उनके नाटकों और उपन्यासों में भी कथा के स्तर पर यह सघनता देखी जा सकती है। 'मलबे का मालिक' कहानी भी अपनी समग्रता में बहुत प्रभावशाली है। कहानी के आरम्भ में लाहौर से अमृतसर मैच देखने के बहाने आने का उल्लेख कर कहानीकार ने स्पष्ट कर दिया है कि उसका मंतव्य साम्प्रदायिकता के चरित्र का उद्घाटन करना है और एक ऐसे क्षण के यथार्थ को पकड़ना है जो कहानीपन की सृष्टि कर सके। अगले अंश में अमृतसर आये हुए लोग अतीत के नॉस्टेल्जिक वातावरण में हैं जहाँ हर दृश्य उनके लिए कौतूहल का विषय है। ऐसे में गनी मियाँ का प्रसंग आता है और लेखक बहुत चतुराई से उनके मकान के मलबे के सामने ही अतीत की उस लोमहर्षक साम्प्रदायिक घटना का विवरण रख देते हैं जिससे कहानी आधार पाती है। अपनी किताब 'कहानी की बात' में मार्कण्डेय ने इस संरचना की परतें उधेड़कर रख दी हैं। उन्होंने लेखकीय चतुराई का संकेत करते हुए चिरागदीन और उसके परिवार के लोगों की हत्या के विवरण को 'चिप्पी' करार दिया है जिससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं – "पहली यह कि उस गली में 'रक्खे' नाम का कोई बर्बर मनुष्य है जिसने गनी के परिवार की हत्या की है, और हत्या भी इसलिए की है कि वह उसके घर पर कब्ज़ा करना चाहता था। दूसरी बात यह कि किसी दूसरे व्यक्ति ने जो 'रक्खे' से दो कदम आगे था, उस घर को जलाकर मलबे में बदल दिया और 'रक्खे' के घर के बजाय उस मलबे का मालिक बन बैठा।" (मार्कण्डेय, कहानी की बात, पृष्ठ – 54-55) कहानी की संरचना जिन संकल्पनाओं के सहारे आगे बढ़ती है, उनमें से एक रक्खे पहलवान का हृदय परिवर्तन भी है। सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताने वाला रक्खे पहलवान गनी से मिलने के बाद वैष्णो देवी की यात्रा के पन्द्रह वर्ष पुराने किस्से सुनाने लगता है। मार्कण्डेय ने अपने उसी आलेख में इसका उद्घाटन करते हुए लिखा है – "गनी के भोलेपन के साथ ही लेखक की विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों की समझ तो कहानी की प्रारम्भिक मंच-प्रक्रिया से ही स्पष्ट हो उठती है लेकिन कुछ दूर और आगे जाकर 'गनी' की सादगी और सहृदयता पर 'रक्खे' जैसा दैत्य सहसा बदल भी जाता है। ... इतना ही नहीं, फिर तो सारी प्रकृति उसके हृदय-परिवर्तन का संकेत बन जाती है और कुत्ते-कौवे तक इस परिवर्तन में शरीक हो जाते हैं। मन में बात

उठती है कि 'रक्खे' ने एक कदम और आगे बढ़कर वहाँ कोई आश्रम क्यों नहीं बना लिया।" (मार्कण्डेय, कहानी की बात, पृष्ठ – 55) बहुत ध्यान से देखने पर यह कहानी एक 'मसाला' कहानी लगेगी जैसा कि मार्कण्डेय मानते हैं लेकिन कथा की संरचना इस चतुराई से निर्मित है कि उसके यथार्थस्वरूप का भरोसा हो जाता है।

5.7.11. पाठ-सार

मोहन राकेश-कृत 'मलबे का मालिक' कहानी पढ़ने के बाद आपने जाना कि कैसे यह कहानी साम्प्रदायिकता के बीभत्स चेहरे को उधेड़ कर रख देती है। यह कहानी गनी मियाँ के बहाने विस्थापित लोगों की पीड़ा का आख्यान भी है जो किसी मोहवश या भटकाव के कारण पाकिस्तान चले गए हैं लेकिन वहाँ जाकर उन्हें पता चला कि वे छले गए हैं। नई जगह पर उन्हें अपने पुराने वतन की याद सताती रहती है और उसे याद करके वे बिसूरते रहते हैं। इसीलिए मौका मिलने पर किसी-न-किसी बहाने से वे अपनी उन यादों को ज़िंदा करने चले आते हैं। अब्दुल गनी भी इसी में अपना मकान देखने की हसरत लिये आते हैं और उसे मलबे में तब्दील हुआ देख बहुत उदास लौटते हैं। उनका उदास होना महज मकान के मलबे में बदल जाने से नहीं है बल्कि बहुत सारी चीजों के मलबे में परिवर्तित हो जाने से भी है। वे गर्मजोशी के अभाव और अविश्वास के इस तरह छा जाने से भी दुखी होकर लाहौर लौट जाते हैं। कहानी अपने आरम्भ में जिस उत्साह और उत्सुकता से शुरू होती है आखिर में उतना ही उदासी और निराशा भरे माहौल में पाठक को ले जाकर छोड़ देती है।

5.7.12. बोध प्रश्न

1. मोहन राकेश की मूल कथा चेतना क्या है?
2. इस कहानी में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
3. कहानी में आए संकेत कितने प्रभावी हैं? क्या मोहन राकेश को संकेतों के माध्यम से निहितार्थ स्पष्ट करने में सफलता मिली है?
4. अब्दुल गनी के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
5. "रक्खा पहलवान ने मकान की लालसा में चिरागदीन को मार दिया था।" इस घटना को साम्प्रदायिकता से कैसे जोड़ेंगे?
6. मोहन राकेश की कहानी कला पर प्रकाश डालिए।
7. "मलबे का मालिक विभाजन और विस्थापन के दर्द की कहानी है।" स्पष्ट कीजिए।

5.7.13. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. मोहन राकेश, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली
2. मोहन राकेश, आज के साए, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 1967
3. नामवर सिंह, कहानी : नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद

5. मार्कण्डेय, कहानी की बात, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. अनीता राकेश, मोहन राकेश (मोनोग्राफ), साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
7. वागर्थ, अंक : 238, मई, 2015

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖